

# तद्भव

आधुनिक रचनाशीलता पर केंद्रित विशिष्ट संचयन

वर्ष-6, अंक-2

पूर्णांक - 37

मई - 2018

संपादक

अखिलेश

आवरण

अशोक सिद्धार्थ

लेजरटाइप सेटिंग

मोहिनी शर्मा

दिल्ली

मुद्रण

बी.के. आफसेट

नवीन शाहदरा, दिल्ली - 32

मूल्य

एक प्रति : सौ रुपये

संस्थाओं के लिए : एक सौ पचास रुपये

वार्षिक सदस्यता : दो सौ रुपये (डाक खर्च सहित)

संस्थाओं के लिए : तीन सौ रुपये (डाक खर्च सहित)

विदेश के लिए : साठ डालर

आजीवन सदस्यता : पांच हजार रुपये

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा से सहयोग प्राप्त

सम्पर्क

18/201, इंदिरा नगर,

लखनऊ - 226016

उत्तर प्रदेश

दूरभाष : 0522-2345301

ई-मेल : akhilesh\_tadbhav@yahoo.com

समस्त कानूनी विवादों का न्यायक्षेत्र लखनऊ, उत्तर प्रदेश होगा।

स्वामी-संपादक-प्रकाशक-मुद्रक अखिलेश द्वारा 18/201, इंदिरा नगर, लखनऊ, उ.प्र. से प्रकाशित और बी.के. आफसेट, एफ-93 पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, नई दिल्ली-110032 से मुद्रित

## अनुक्रम

### जीवन

बिसनाथ का बलरामपुर - II विश्वनाथ त्रिपाठी 1

### शताब्दी

सेवासदन : हुस्न का बाजार या सेवा का सदन गरिमा श्रीवास्तव 17

### लेख

दलित पर्यावरणवाद : अलग स्वर और सपने मुकुल शर्मा 39 / महाभारत की हिंदी परंपरा राजकुमार 67

### लंबी कहानी

धनु प्रचंड प्रवीर 82

### विशेष

हिंदी साहित्येतिहास संबंधी आरंभिक लेखन और औपनिवेशिक परियोजना योगेश प्रताप शेखर 112 /

गंगा जमुनी तहजीब की नींव अशोक महेश्वरी 127

### कविताएं

कविताएं नवल शुक्ल 133 / कविताएं श्रीप्रकाश शुक्ल 138 / कविताएं जसिंता केरकड़ा 146 /

कविताएं संध्या नवोदिता 153

### लंबी कविता

पागल होने से ठीक पहले अच्युतानंद मिश्र 158

### उपन्यास

हमसैनिक फार्मस की बदौलत राजू शर्मा 163

### वृत्तांत

गुजरे जमाने का शहर - II ममता कालिया 234

### स्मरण

‘जाऊंगा कहां रहूंगा यहीं’ अरुण कमल 248

### समीक्षाएं

तुम्हें याद हो कि न याद हो... प्रियदर्शन 256 / संगीत की तर्ज पर उपन्यास संजय कुमार 261 /

वैचारिक क्षेत्ररक्षण की एक सच्ची झूठी गाथा सत्यम कुमार सिंह 268 / यातनामयी करुणा से

निःसृत मुक्ति कथाएं अमिय बिंदु 272 / सभ्यता समीक्षा का गत्यात्मक पाठ प्रियम अंकित 277 /

दुख को बयान करने का जोखिम प्रीति चौधरी 281

अधिक दिन नहीं बीते हैं : इलाहाबाद से लौट रहा था, साथ में एक दोस्त थे जिन्होंने मुझसे जानना चाहा कि एक दौर में साहित्य के सबसे बड़े केंद्र इलाहाबाद में अब जो साहित्यिक माहौल है वह पहले की तुलना में कैसा है, जाहिर है मित्र की नए इलाहाबाद से अच्छी वाकफियत नहीं थी और पहले के इलाहाबाद से उनका मेरे संदर्भ में आशय उन दिनों से था जब मैं इलाहाबाद में पढ़ता था या उसके बाद नौकरी करते अथवा न करते हुए रहा करता था। जवाब में मैंने जो तुरंत सूझा उसे कहा लेकिन खास यह रहा कि मुझमें अपने इलाहाबाद प्रवास के समय के चित्र उभरने लगे थे। यहां मैं साहित्य की प्रसिद्ध नगरी इलाहाबाद पर कोई संस्मरणात्मक लेख या पुस्तक लिखने नहीं जा रहा हूं, वैसे भी यह काम रवींद्र कालिया, ममता कालिया, ज्ञानरंजन, देवी प्रसाद मिश्र ने बेहतरीन तरीके से किया है, मैं पुराने और नए वक्त का कोई तुलनात्मक अध्ययन भी नहीं प्रस्तुत कर रहा हूं, यहां मैं महज अपनी एक छोटी सी स्मृति और उससे उपजने वाली बेचैनी को साझा करना चाहता हूं। अस्सी के दशक के शुरु में मैं वहां स्नातकोत्तर शिक्षा के लिए गया था लेकिन वहां पहुंचने की पृष्ठभूमि में असली आकर्षण वहां का साहित्यिक परिवेश था जो स्पष्ट है, बहुत विराट और भव्य था। महादेवी वर्मा, अमृत राय, उपेंद्रनाथ अशक, भैरव प्रसाद गुप्त, शैलेश मटियानी, विजयदेव नारायण साही, नरेश मेहता, अमरकांत, मार्कंडेय, शेखर जोशी, लक्ष्मीकांत वर्मा, डा. रघुवंश, रामस्वरूप चतुर्वेदी, जगदीश गुप्त, दूधनाथ सिंह, रवींद्र कालिया, ममता कालिया, सतीश जमाली, हरदेव बाहरी सत्य प्रकाश मिश्र, नीलाभ, राजेंद्र कुमार जैसे विख्यात लेखक वहां रहते थे। कहा जाता था, तब वहां हर मोहल्ले में कोई न कोई नामचीन रचनाकार जरूर निवास करता था। यह कथन जितना लक्षणा में सही था उतना ही सटीक अभिधा में भी था। और यही बात कमोबेश छापाखानों, छोटे प्रकाशकों तथा लघु पत्रिकाओं के संबंध में सही थी। बहरहाल हम अपनी बात को लेखकों तक ही सीमित रखते हैं। आज का इलाहाबाद सूना है उपरोक्त विभूतियों की आभा से। शेखर जोशी और ममता जी वहां से निकलकर क्रमशः लखनऊ, दिल्ली रहने लगे हैं; शेष काल से होड़ में अंततः नहीं बचे। जो

पार्थिव रूप से नहीं रहे, वे साधारण नहीं थे। उनमें से अनेक न केवल हिंदी बल्कि समग्र भारतीय साहित्य की विशिष्ट प्रतिभा थे लेकिन उन्हें याद में बनाये रखने के लिए, उनकी स्मृति को सजीव रखने के लिए, उनके शब्दों संवेदन विचारों की विरासत को प्रसारित करने के लिए सरकार समाज और साहित्य संसार के नागरिकों ने क्या उपक्रम किये, यह विचारणीय है। कितना दुर्भाग्यपूर्ण है कि उनमें से अधिकतर की कृतियों की उपलब्धता तक अबाधित नहीं कही जा सकती, उनकी स्मृति में संग्रहालय, शोधपीठ आदि की बातें तो बहुत दूर। जाहिर है, इलाहाबाद यहां प्रश्न उठाने का एक जरिया है वर्ना लखनऊ, बनारस और दिल्ली या अन्यत्र हालात समान रूप से बदतर हैं। दिलचस्प और क्रूर है कि ऐसी दुर्दशा तब है जब इस देश के कुछ प्रधानमंत्री हिंदी का कवि होने का दंभ भरते थे और पांच वर्ष तक तो एक मानव संसाधन मंत्री इलाहाबाद के ही थे। वाकई यह सब दुखद और क्षोभककारक है लेकिन इन सबने साहित्यिक मन को परास्त करने में सफलता नहीं पायी थी क्योंकि यह मन बुनियादी रूप से सत्ताविरोधी प्रतिष्ठानविरोधी रहा है और उसने यही महसूस किया कि हमें जो सत्ताएं, प्रतिष्ठान मिले उनसे इससे बेहतर सद्व्यवहार की अपेक्षा भी नहीं की जा सकती। लेकिन इस प्रसंग में चीजें कारुणिक और असह्य तब हो जाती हैं जब हम पाते हैं कि हमारी साहित्यिक दुनिया के कुछ अंदरूनी बाशिंदे यानी कुछ लिखने पढ़ने वाले लोग, लेखक संगठनों के सदस्य, कार्यकर्त्ता अपने रचनाकारों के प्रति उदासीन, निष्क्रिय, बेरहम हो रहे हैं।

कुछ ही पहले की बात है : हिंदी साहित्य की दो विरल विभूतियों, केदारनाथ सिंह और दूधनाथ सिंह का निधन हुआ। जिसे कहते हैं कि चिता की राख भी अभी ठंडी नहीं हुई थी, कुछ लोगों द्वारा अपनी भाषा के इन दो श्रेष्ठ रचनाकारों की कापालिक क्रिया आरंभ कर दी गयी। उनको लेकर छींटाकशी, नुक्ताचीनी, पदाघात आदि का चक्र चला। यूं अपने लेखकों का सम्मान करने का रिवाज हमारे समाज में पहले भी नहीं था लेकिन यह भी सही है कि उनके दिवंगत होते ही उनका अपमान करने का रिवाज भी नहीं था। वैसे पहले भी विरोध किया जाता रहा है और इसमें कुछ गलत नहीं है कि किसी बड़ी प्रतिभा के गुजर जाने के उपरांत हम स्तुति का कोलाहल पैदा करने के बजाय उसके अवदान की शक्ति और कमजोरियों, सामर्थ्य और सीमाओं का तटस्थ और शानदार मूल्यांकन करें किंतु विरासत को याद करने का यह शिल्प अब काफी क्षीण हो चुका है। अब उसकी जगह पर एक हिंसा पसर गई है; मूल्यांकनकर्ता के स्थान पर पत्थरबाज या लोकभाषा में कहें, 'ढेलमरवा' आसीन हो गए हैं। खैर इन सबकी दूसरे प्रकार से भी व्याख्या की जा सकती है : किसी का दुनिया से चले जाना उसे निर्दोष नहीं बना देता। निधन जैसे किसी की खूबियों को स्मरण करने का अवसर देता है वैसे ही उसकी कमियों, छुद्रताओं, बेरहमी को भी याद दिलाने का मौका है जिसे 'दिवंगत शख्स आलोचना से परे है' की सामंती और सनातन प्रथा के कारण रोका नहीं जा सकता। आखिर जब दुनिया में अनगिनत संकोच खत्म हो रहे हैं तो इसको सीने से चिपकाकर क्यों ढोया जाए, विचारों की अभिव्यक्ति पर अवसरानुकूलता की पाबंदी क्यों लगाई जाये। यह उसी तरह का अंधाधुंध विश्वास है जैसे समाज में किसी काम को करने

के लिए खलमास, मलमास, सूतक में बंदिश लगा दिए जाने का अंधविश्वास है। अथवा जैसे पुरोहित नवरात्र, शिवरात्रि, मंगल वृहस्पत के अवसर पर मांस मदिरा का सेवन निषिद्ध घोषित करते हैं। कहा जाता है, सिक्के की तरह सत्य के भी दो पहलू होते हैं; दो ही नहीं सत्य के अनेक पहलू होते हैं जिनमें कम से कम दो पहलू तो उपर्युक्त प्रसंग में साबित ही हो रहे हैं। बहरहाल उचित जो भी पक्ष हो, यहां महज इतना ही कहा जा सकता है : हिंदी साहित्य में आला दर्जे की प्रतिष्ठा प्राप्त करना काफी मुश्किल है; और अगर कोई विरला इसे पा भी गया तो जहन्नुम कुछ होता हो न होता हो लेकिन उसकी मृत्यु के बाद उसे वहां पहुंचाने के लिए बहुतेरे सक्रिय हो जायेंगे। वैसे इस तरह के लक्षण भी हमारे समाज में दिखाई देने लगे हैं कि कहा जा सकता है, वह वक्त ज्यादा दूर नहीं जब बड़े से बड़े रचनाकार को अशक्त, वृद्ध, अकेला होने पर कुछ लोग उसे जीते जी ही जहन्नुम भेज देने की गतिविधि करने लगेंगे।

हिंदी का साहित्यकार होना वाकई काफी दिक्कततलब काम है। वह सदैव पाठक, प्रकाशक, पैसा, प्रसिद्धि का दबाव अभाव झेलता रहता है। यह स्थिति अपवादों के अतिरिक्ति कम ज्यादा सभी लेखकों के साथ रही है। इस त्रासदी की जकड़बंदी का अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि अब साहित्यिक बिरादरी ने इससे भिड़ने, कोई नया विकल्प तैयार करने के बजाय इसे हिंदी लेखक की नियति के रूप में लगभग स्वीकार कर लिया है। स्वयं लेखकगण में अधिसंख्य सामूहिक प्रतिरोध का रास्ता अपनाने की जगह उसमें अपने अनुकूलन को बेहतर समझने लगे हैं। नई पीढ़ी हमेशा बदलाव के पक्ष में खड़ी होकर नए स्वरूप को हासिल करने के लिए जद्दोजहद करती है लेकिन यह सोचते, कहते हुए बेहद तकलीफ होती है और लिखते हुए हाथ कांपता है कि नई पीढ़ी का काफी बड़ा हिस्सा इन सबसे उदासीन है या फिर वातावरण की वर्तमानता में अपने को घुलमिल जाने दे रहा है। अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण मंजर होगा जब वरिष्ठ लेखकों से युवा लेखकों का रिश्ता महज इतना रह जायेगा : कुछ साहित्यकारों के देहावसान के बाद उनकी स्मृति में उनके परिवार वाले कोई पुरस्कार आयोजित करेंगे जिसे समकालीन लेखक लेंगे।

क्या इसको साहित्यिक उपभोक्तावाद कहा जायेगा? जो चला गया, जो सत्ताहीन हो गया वह अब किस काम का। वह न एक पर एक फ्री दे सकता है न 'ज्यादा' दे सकता है अतः किस लायक। अब लेखकगण एक छतनार पेड़ की शाखाएं प्रशाखाएं पत्तियां फूल कच्चे पक्के फल नहीं हैं, झगड़ा लू ईर्ष्या लू पड़ोसियों की तरह रहने का चलन बढ़ गया है। ऐसे हालात को देखते हुए कहा जा सकता है कि परंपरा और समकालीनता का संबंध जितना निर्बल इस दशक में हुआ है उतना पहले कभी शायद ही हुआ हो। अभी हमने समकालीनता की खामियां देखीं मगर हमें इस सवाल का सामना करना ही होगा कि आजादी के बाद के इक्का दुक्का अपवादों को छोड़ दें तो हमारी परंपराओं के जो प्रमुख चेहरे हुए हैं उनमें से अधिकतर ने अपने आचरण और व्यक्तित्व से गहरे निराश किया है। कहना कष्टपूर्ण है, अनेक बार उनमें से कई ने आधिपत्य, स्वार्थ, षडयंत्रों की ऐसी मिसालें पेश कीं जिससे परंपरा की अवधारणा दागदार हुई। स्पष्ट है, परंपरा और समकालीनता के रिश्ते को नजीर

बनने की लियाकत के लिए दोनों को उज्ज्वल बनना पड़ता है। उपरोक्त विश्लेषण को लेकर एक अन्य मुद्दा भी है : सामाजिक राजनीतिक जीवन में बीते कुछ वर्षों में भारतीय समाज में अनेक वर्चस्वशाली संस्थाओं और विचारों को दमित प्रताड़ित अस्मिताओं ने चुनौती प्रस्तुत की है। और दिखने लगा है : हमारी मुख्यधारा की पूज्य परंपरा में अधिकांशतः हिंदुत्व, सवर्णवाद, पुरुषवाद की जकड़बंदी रही है जिसे हाशिये का नजरिया समस्याग्रस्त कर रहा है परिणामस्वरूप कुछ भव्यताएं धूसरित होती हैं, उन्हें चोट पहुंचती है अथवा वे आहत होती हैं तो यह ठीक ही है और इसे कोई रोक भी नहीं सकता है। निश्चय ही एकल विचार और एक परंपरा का युग समाप्त हो गया है। किंतु यह भी सत्य है कि परंपराओं का विखंडन और परंपराओं की बेइज्जती दो भिन्न भिन्न क्रियाएं हैं। एक पोलिटिकल है दूसरा पर्सनल जिसमें घृणा, कपट, यशःकांक्षा है। दुर्भाग्यपूर्ण है कि पहली से अधिक दूसरी सक्रिय है।

खेद है कि तद्भव की वेब साइट के संचालन में कुछ कारणों से गतिरोध आ गया है, अतः वहीं पर तद्भव पढ़ने के अभ्यस्त पाठकों को असुविधा होगी। हालांकि हमारी कोशिश है, भविष्य में नए और बेहतर कलेवर उसे उपलब्ध करा सकें। वैसे तद्भव [www.notnul.com](http://www.notnul.com) पर उपलब्ध रहेगी, वहां इसे पढ़ा जा सकता है।

बीते कुछ महीनों में कुंवर नारायण, केदारनाथ सिंह, दूधनाथ सिंह, राम कुमार, शिवरतन थानवी, मनु शर्मा, अशोक गुप्त, सुशील सिद्धार्थ जैसे महत्वपूर्ण रचनाकारों का निधन हो गया। उक्त सभी के लिए हमारी श्रद्धांजलि।

अखिलेश

## बिसनाथ का बलरामपुर - II

विश्वनाथ त्रिपाठी

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ पर प्रतिबंध लग गया। प्रतिबंध गृहमंत्री सरदार पटेल ने लगाया था। उन्होंने कहा— जब हमने देखा कि बच्चों से कहा जाता है कि वे बाप का कहा न मानें तो हमें चिन्ता हुई। यह भी देखा कि जिस पिस्तौल से बापू मारे गए वो ग्वालियर की थी। कुछ दिनों के लिए संघ के स्वयं सेवक निष्क्रिय रहे। लगभग एक महीने बाद एक आदमी मुझे खोजता हुआ मेरे जीजा के यहां आया। वह गांधी टोपी खद्दर का कुर्ता पहने बिल्कुल कांग्रेसी लग रहा था। मैंने देखते ही पहचान लिया ये तो श्याम लाल पांडेय हैं। गोंडा के भूरी कंजी आंखों वाले स्वयं सेवक। वह मुझे देखते ही बोले— *पथ भूल न जाना पथिक कहीं।*

मुझे एक पार्क में ले गए। फिर समझाया ऊपर का आदेश है, हमें कार्यविधि बदल देनी है। जगह जगह मंडली बनाओ— खेलकूद की, कीर्तन की, बच्चों की पढ़ाई की। जाते समय उन्होंने फिर एक पंक्ति पढ़ी— *पथ पर जाते हुए पथिक को अक्सर शाम हुआ करती है।*

मैं आदेश पर जान दे देने वाला स्वयं सेवक था। मुझे अच्छा लगा कि राष्ट्रीय कार्य फिर कर रहा हूं। मैंने रमना में, जहां अब एम.एल.के. कालेज है, क्लब शुरू कर दिया। लगभग 20 पुराने स्वयं सेवक रोज शाम को मिलते। सप्ताह में एक बार कीर्तन मंडली इकट्ठा होती। झारखंडी मंदिर में, जहां अब बस अड्डे के पास स्टेशन बन गया है, हम कीर्तन में गाते— *केशव माधव दीन दयाल।*

केशव यानी आदि संघ स्थापक केशव बलराम हेडगवार। माधव यानी माधव सदाशिव गोलवलकर और दीनदयाल उपाध्याय और इस तरह संघकार्य फिर बदले हुए रूप में चलने लगा। इस बीच एक बड़ी योजना आई शिक्षा प्रसार की। धड़ाधड़ पैम्पलेट आने लगे। योजना का प्रचार होने लगा। स्वयं सेवकों की टोलियां बन गईं जो उपनगरों और गांवों में जाकर बच्चों और अशिक्षित बुढ़ों को पढ़ाने का काम करने लगीं। मैं प्रमुख था। प्रचारक कौशलेंद्र जी और मैं चाउरखाता

गाए। बिदेश्वरी सिंह के यहां रुके। रात करीब 8 बजे कुछ बच्चे और एकाध बुढ़े आते थे। हम उनसे बात करते और थोड़ा बहुत पढ़ाते। ज्यादातर संघ की बातें करते या शिवाजी, राणाप्रताप, वीर हकीकत राय की। मेरा मन इस काम में नहीं लगता। बिदेश्वरी सिंह के यहां खाना सादा किंतु स्वादिष्ट मिलता था। वे लोग हम कार्यकर्ताओं को राष्ट्रसेवक समझकर श्रद्धापूर्वक भोजन कराते। हमारा ख्याल रखते। एक रात मैंने भांग पी। भोजन किया। सोचने लगा और साकेत की पंक्तियां याद आई—

*करुणे तू क्यों रोती है 'उत्तर' में और अधिक वो रोई  
मेरी विभूति है उसको भवभूति कहे क्यों कोई*

'उत्तर' के श्लेष तक दिमाग नहीं गया था सो समझ में नहीं आ रहा था कि उत्तर देने के बजाय करुणा और अधिक रोने क्यों लगी? मैं उसी उमर में यानी 16-17 में अपने को मैथिलीशरण गुप्त काव्य का अधिकारी समझता था, तो परेशान रहा। सहसा भवभूति के 'उत्तर रामचरित' पर ध्यान गया और पंक्ति का मर्म समझ में आया। सुना था कि देवकीनंदन खत्री ने चंद्रकांता संतति उपन्यास, भूतनाथ आदि भांग के नशे में लिखे थे। और तो और आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आलोचना विजया का प्रसाद ग्रहण करके लिखी थी। कहते हैं आचार्य शुक्ल का हृदय इनलार्ज (Enlarge) था। डाक्टरों ने कहा भांग छोड़ दीजिये खतरा है। आचार्य श्री ने कहा बताते हैं—चोला छूट जाये लेकिन गोला नहीं छूटेगा। मैथिली शरण गुप्त की पंक्ति समझने के बाद मैं भी भांग के महत्व का कायल हो गया। साधना में निरंतरता जरूर नहीं आई। कुछ दिनों बाद शिक्षा प्रसार योजना के तहत बलरामपुर में एक सभा हुई उसमें स्थानीय कांग्रेसी एम.एल.ए. बलदेव प्रसार सैलानी भाषण देने आए। उन्होंने कहा— हम लोगों ने तय किया है कि शिक्षा प्रसार योजना का हम समर्थन करेंगे। उन्होंने भाषण में कांग्रेसी नेता शिव नारायण टंडन का भी नाम लिया। बाद में हमने बलरामपुर नगर में एक लंबा जुलूस निकाला। उसमें ज्यादातर छोटे छोटे बच्चे थे। मुझे जुलूस को अनुशासित करने का काम दिया गया। मैं जगह जगह सीटी बजाता। मैं शिक्षा प्रसार के महत्व पर 3-4 मिनट भाषण देता फिर सीटी बजाता। जुलूस चल देता। करीब एक घंटे तक यात्रा चली। यात्रा समाप्त होने पर प्रचारक भाऊराव सावरगावकर ने कहा— आज तुम्हारे कार्य से मैं प्रसन्न हुआ। मुझे अंत तक नहीं मालूम कि बच्चों की भीड़ कहां से आई? पोस्टर, दफ्ती, झंडे, किसने तैयार किये?

शिक्षा प्रसार की योजना के साथ विद्यार्थी परिषद की स्थापना हुई। इसकी विधिवत घोषणा करने के लिए बलरामपुर में या कि जिला गोंडा में (तब बलरामपुर जिला गोंडा के अंतर्गत था स्वतंत्र जिला नहीं बना था) अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद की स्थापना के लिए समारोह आयोजित किया गया। जिसका उद्घाटन डा. कृष्ण बहादुर डी.फिल. को करना था। प्रचारक सावरगावकर बहादुर को बहादुर कहते। हम डी.फिल. को समझते कि कोई बहुत बड़े अधिकारी की पदसूचक उपाधि है। हम लोग इससे बेहद प्रभावित आतंकित थे। जगह जगह कहते घूमते डा. कृष्ण बहादुर डी. फिल. आ रहे हैं। उनको टिकाने के लिए बलरामपुर रियासत का गेस्ट हाउस बुक किया गया। व्यवस्था का जिम्मा मेरा था क्योंकि विद्यार्थी परिषद का संयोजक मैं ही था। उन्हें जिस गाड़ी से आना था वह रेलवे स्टेशन पर सवें चार बजे पहुंचती थी। यह वही गाड़ी थी जिससे मैं राप्ती पुल पर दुर्घटनाग्रस्त होते होते बचा था। खैर उन्हें लाने के लिए कलारस घोड़े से खिचने वाली बग्घी का इंतजाम भी रियासत की ओर से हो गया। मैं ठीक पौने चार बजे स्टेशन पहुंचा। गाड़ी ठीक समय पर आई लेकिन डा. कृष्ण बहादुर डी.फिल. नहीं आए। मैं और पशुपति गेस्ट हाउस पहुंचे। सोचा थोड़ी देर मौज मस्ती करेंगे। गेस्ट हाउस में स्नान नित्यकर्म करेंगे। देखेंगे गेस्ट हाउस



में कैसा होता है लेकिन चौकीदार या केयरटेकर मेरी पोशाक देखकर भांप गया। उसने पंखे वगैरह बंद कर दिये और हमें डांटकर भगा दिया और कमरे में ताला लगा दिया। हम अपना सा मुंह लेकर गेस्ट हाउस से निकल आए।

रियासत में महारानी के व्यक्तिगत सचिव श्री यज्ञमणि दीक्षित थे। वे विद्वान, दर्शनशास्त्र के पंडित नेपाल के कर्मकांडी ब्राह्मण थे। उनके छोटे भाई श्री राजमणि दीक्षित भी उच्च पदाधिकारी थे। बलरामपुर में दीक्षित बंधुओं की चलती थी। पंडित रामप्रकट मणि, एस.सी. कालेजिएट के प्रिंसिपल बंगाली चौधरी साहब उनके पार्षद थे। मुझे संघ की ओर से आदेश हुआ कि उनके पास जाकर परिषद के लिए चंदा उगाहो। मैं पशुपति के साथ गया। पशुपति के पिता श्री गुरुबख्श सिंह को दीक्षित बंधु जानते थे। पशुपति महाराजा के वंशीय थे। दीक्षित जी ने कहा तुम लोग अभी पढ़ो लिखो, देश का काम बाद में करना। जवाब में मैंने कुछ कहा तो दीक्षित जी ने पं. रामप्रकट मणि और चौधरी साहब की ओर मुस्कराकर देखा और कहा कि ये बालक तीव्र बुद्धि का मालूम पड़ता है। उन्होंने सौ रुपये दिये। 1949 में हम प्रमुदित हुए। चलते हुए हमने नमस्ते की तो उन्होंने कहा नमस्ते मत कहो। प्रणाम कहो। हमने प्रणाम कहा। हमने देखा कि उनके पास जो आता था उनका चरण स्पर्श करता था। बीसियों नौकर चाकर उनकी सेवा में थे। सब नेपाली थे। उनका निवास राजभवन में ही था।

सौ रुपये राजा भाऊ सावरगावकर को हमने दे दिये।

मुझे चंदा मांगने एक जगह और भेजा गया। एक कपड़ा दूकानदार के यहां। कपड़ा दूकान बलरामपुर चौक में थी। दूकानदार संघप्रेमी मारवाड़ी अर्धेड़ उम्र के थे। दुकान अच्छी चलती थी। वे तरौताजा स्वस्थ प्रसन्न गोरे सुवेशी पोशाक से चुस्त दुरुस्त हंसमुख व्यक्ति थे। मैं तीन चार कार्यकर्ताओं के साथ गया था। मैंने उनसे बीस रुपये मांगे। उन्होंने कामकाज में मंदी का रोना रोया। बड़ी मुश्किल से अठन्नी देने पर राजी हुए। मुझे बड़ा अजीब लगा। मैंने उनसे कहा— आप चंदा मत दीजिये। आपकी दशा पर तो मुझे ही दया आ रही है। आपको मैं ही एक रुपया दान में दे रहा हूँ। यह सुनकर उन्हें बहुत क्रोध आ गया। मुझे बदतमीज कहकर पूरी मंडली को दूकान से भगा दिया। मैंने उन्हें कुछ पलटकर नहीं कहा। हम लोग हंसते हुए बाहर निकले। रतिभान ने कहा— ठीक किया साले को।

प्रचारक कौशलेंद्र जी ने कहा— तुम किसी दूकानदार से चंदा मांगने मत जाता। तुम चंदा उगाहना नहीं जानते। तुम अखबार बेचने का काम करो।

तीन अखबार थे— राष्ट्रधर्म पत्रिका, आर्गनाइजर, पांचजन्य और एक अखबार नागपुर से निकलता, युगधर्म या युगप्रभात— यह नाम ठीक से नहीं याद पड़ रहा है। ये सब स्कूल में आते थे। मेरे पते से पहले वे हेडमास्टर डा. भगवती प्रसाद सिंह के आफिस में पहुंचते। वे मुझे घूरकर देखते, डांटते, समझाते फिर मेरे हवाले कर देते। मैं एक स्वयं सेवक प्रेम के साथ इसे बेचता बांटता। कुछ पैसे मिलते कुछ नहीं मिलते। तब हम उसे स्कूल में नोटिस बोर्ड पर चिपका देते। सब उसे पढ़ते। थोड़ी देर में स्कूल का चपरासी उन्हें फाड़कर फेक देता। पैसे अक्सर हमारे पास नहीं होते। राष्ट्रीय पैसे खर्च करने की हिम्मत नहीं पड़ती। संघ कार्यालय में एक स्वयं सेवक संतराम त्रिपाठी रहते थे। विवाहित थे। गंजे हो चले थे। अकडू थे। आलोचना सबकी करते। उन्हें भी भूख लगी थी और पैसे पास नहीं होते। एक दिन मुझसे बोले— यार क्या राष्ट्रीय राष्ट्रीय लगा रखा है, सब्जी मंडी के पास कलेजी वाला बैठता है, अखबार से उगाहे पैसे निकालो चलो कलेजी खाते हैं। भूख लगी है। आखिरकार हम भी तो राष्ट्रीय नागरिक हैं। स्वस्थ नहीं रहेंगे तो देश की सेवा कैसे करेंगे। मैं मांसाहारी था। मेरे पिता जी मांसाहार के शौकीन थे। जाड़े में आने वाले एक बेहद खूबसूरत

और जायकेदार पक्षी पटेरा के शौकीन थे। संतराम भी मांसाहारी थे। सो हमने सब्जी मंडी में जाकर भुनी हुई कलेजी खाई और राष्ट्रीय सेवा का व्रत दुहराया। प्रचारक कौशलेंद्र जी से कह दिया, पैसा कोई देता ही नहीं। कुछ दिनों बाद मेरे नाम से अखबार आना बंद और हमारा कलेजी खाना मौकूफ।

संतराम त्रिपाठी बलरामपुर के पास ही किसी गांव में रहते थे। उच्च कुलीन ब्राह्मण थे। खेती थी, भैंस थी। लोटा भर घी लाये। घरवालों ने दे दिया कि संतराम खाएंगे तो स्वस्थ रहेंगे। लोटा कार्यालय में रख दिया गया। कार्यालय लाज यानी निवास भी था। वहीं मैं, संतराम, कौशलेंद्र जी और प्रताप नारायण तिवारी रहते थे। प्रताप जी जिला संघ चालक थे। घी, दूध का शौक था। लोटा भर घी देखा तो उसके साथ न्याय करने लगे। संतराम ने ताड़ा। प्रताप जी घी चम्मच से नहीं हाथ से निकालते हैं। एक दिन अकेले में मुझसे कहा— ई देखो, घी लाया हूं। मैं थोड़ा थोड़ा खाता हूं कि देर तक चले और प्रताप जी चकोटा भर भर के निकाल निकाल के खा जाते हैं। तौ का हमहीं भद्रा में पैदा हुए हैं। हम भी चकोटा भर भर के निकालेंगे। और घी जल्दी ही खतम हो गया। संतराम को राहत मिली। घी के नाम पर खाये हमार....।

संघ पर प्रतिबंध लगा था और प्रतिबंध हटवाने की कोशिश हो रही थी। नतीजा न निकला तो प्रतिबंध के विरुद्ध सत्याग्रह करने की योजना बनी। विद्यार्थियों और नवयुवकों पर ज्यादा भरोसा था। जोर शोर से तैयारियां चलने लगीं। विद्यार्थियों को सत्याग्रह के लिए तैयार करने का कार्य मुझे सौंपा गया। मैंने लगभग बीस विद्यार्थी तैयार कर लिये। ज्यादातर छात्र डीएवी स्कूल के थे। राम भरत, बाबू लाल, रतिभान, रामदास आदि, संतराम जी तो थे ही। रोज मीटिंग करता कि मन बना रहे। एक दिन कुछ विद्यार्थियों ने कहा— घरवाले मना कर रहे हैं हम तो नहीं जा पाएंगे। मैं निराश होकर रोने लगा तब विद्यार्थियों ने कहा— अच्छा विश्वनाथ जी जायेंगे जाएंगे। और उन्होंने सत्याग्रह में भाग लिया भी।

प्रतिबंध तोड़ने का आयोजन राजमहल के सामने रामलीला मैदान में किया गया। गिरफ्तारी के पहले एक घटना घटी। सत्याग्रह के लिए पशुपति भी आए थे। ऐन वक्त पर उनके घर के लोग आए और वे जबरदस्ती पशुपति को उठाकर घर वापस ले गए। मुझे बहुत बुरा लगा लेकिन कुछ नहीं हो सकता था।

वह 25 दिसम्बर की शाम थी। जाड़े में शाम जल्दी हो जाती है। 4 बजे का समय दिया गया था। नियत समय पर करीब 50 लोग इकट्ठा हुए। शाखा का कार्यक्रम करने लगे। पुलिस ने उन सबको गिरफ्तार कर लिया। हम लोग जुलूस में नारे लगाते हुए चलने लगे। पुलिस हमें पुलिस स्टेशन ले गई। हवालालात में बंद कर दिया। खाने को कुछ नहीं दिया। रात को बारह बजे के करीब बस में बिठाकर गोंडा कचेहरी की जेल में ले गए। मैंने पहली बार जेल देखी। जेल जाने के अनुभव का रोमांच हुआ; थोड़ा गर्व का अनुभव हुआ। सोचा तिलक, गांधी, जवाहर लाल, सुभाष चंद्र बोस जेल गए थे। इसी गोंडा जेल में खुदीराम बोस थे। आखिर गुरु जी भी तो जेल में हैं।

दूसरे दिन केस बदलने की कारवाई शुरू हुई। जेलवालों ने चालाकी की। कहा कि एक एक करके सत्याग्रहियों को छोड़ा जा रहा है। एक एक जाता वहां उसको सजा सुनाई जाती और वहीं जबरदस्ती उसके कपड़े उतारकर उसे कैदी की पोशाक पहना दी जाती। हमें आदेश था कि जेल के कपड़े नहीं पहनने हैं। लेकिन लोगों ने डर के मारे या जोर जबरदस्ती के मारे पोशाक पहन ली थी। मुझे बुलाया गया। तीन महीने की सजा सुनाई गई। कपड़े बदलने के लिए कहा गया तो मैंने हाथ पैर समेटकर मुट्ठी बांध ली। वार्डन ने कहा यहां बड़े बड़े कपड़े बदल लेते हैं और इस लौंडे को देखो। इसे अभी ठीक करते हैं। मुझे उल्टा टांगकर नंगा कर दिया। फिर शरम के मारे मैंने कपड़े बदल लिये। प्रतिबंध तोड़ दो गुरु जी को छोड़ दो नारे लगाता रहा। जेल के कपड़े पहना

दिये गए तो मैं उदास अकेले वहीं बैठा रहा। रोने का मन कर रहा था लेकिन किसके आगे रोता? थोड़ी देर में वहां छोटा जेलर आया। वह गोरा, दोहरे बदन का अडेड़ मुसलमान था। उसने निहायत शराफत से मुझसे पूछा— यह सब तुम लोग क्यों कर रहे हो? मैंने उससे संघ का सिद्धांत बघारा। वह ताज्जुब से मुझे देखता रहा। मैं गुस्से में था और उसे बेंधना चाहता था, मैंने पूछा— क्यों आपके घर में बच्चे नहीं हैं जो आप हम लोगों पर इतना जुल्म कर रहे हैं? वह चुप, गंभीर हो गया। और चला गया। थोड़ी देर में उसका सहायक कोई हिंदू नौजवान आया। उसने मुझे अपने साथ लिया और एक बैरक में दाखिल कर दिया। मुझे अपने साथियों से अलग कर दिया। वह लौंडा बैरक थी। उसके बच्चे पाकेटमार, गिरहकट, छोटी छोटी चोरियां करने वाले, घर से भागकर आने वाले बच्चे थे। वे अनेक प्रकार के फिल्मी गाने गा रहे थे और अश्लील बात कर रहे थे। मुझे बहुत तकलीफ हुई; सोचा अब तीन महीने इन्हीं के साथ रहना पड़ेगा। हे राम। एक ने मेरे कपड़े देखकर कहा— इसकी साफ़ी कहां है, नहीं है, सबरे इस पर मार पड़ेगी तब पता चलेगा बच्चू को। मैं और घबरा गया एकाएक उसमें से एक लड़के ने मुझसे कहा— अरे बाबू आप यहां कैसे आ गए, मैं बलरामपुर के खलवा मुहल्ले का हूँ। मैं आपको जानता हूँ। आप तो पढ़ते थे। फिर उसने और लड़कों को डांटा— ये पढ़े लिखे शरीफ लड़के हैं इनसे बदतमीजी मत करना। ये सत्याग्रह करके आए हैं। उसने मेरे कपड़े संभाल दिये।

लौंडा बैरक, वही जिसे जुविनाइल बैरक कहें, अपराधी बच्चों की बैरक। इन बच्चों से झाड़ू लगवाई जाती, कपड़े धुलवाये जाते, छोटे मोटे दौड़ धूप के कार्य करवाये जाते। इन्हें जेल में बंद राजनैतिक नेताओं की सेवा में, जेल अधिकारियों के घर पर काम करने के लिए भेजा जाता। इनका विविध प्रकार से शोषण भी किया जाता। कुल मिलाकर वह स्थान हर तरह से मैला कुचैला और गंदी अभद्र हरकतों से भरा हुआ था। मुझे दूसरे दिन सुबह होते ही वहां से निकालकर अपने साथियों के साथ कर दिया गया।

वहां दो स्लैब्स के बीच छूटी हुई निचली करीब 3 फीट चौड़ी और 6 फीट लंबी जगह में हम दो तसला, दो कंबल लिये बैठे या लेते रहते। जेल में वे शाखा नहीं करने देते लेकिन हम कोरस और गीत गाते। चर्चा करते, अंत्याक्षरी खेलते। कभी कभी किसी का भाषण भी होता। सबरे, फीकी दलिया गुड़ के साथ या सूखा भुना चना गुड़ के साथ नाश्ते में मिलता। दोपहर को दो मोटी मोटी जली अधजली रोटियां, पनही दाल और सब्जी मिलती। जेल की सब्जी को झलश कहते। वह सब्जी की जड़ों को कूटकर बनाई जाती। जैसे गोभी के फूल की नहीं, गोभी के डंठल की जड़ या पत्तों की सब्जी बनाई जाती। वैसे ही मूली, बैंगन आदि की। शाम को बैरक से थोड़ी दूर पर ही दाल में तड़का लगता जिसकी गंध आती। हम समझ लेते कि खाना आने वाला है। शुरू में खाना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था। बाद में धीरे धीरे अच्छा लगने लगा। दो तसले में से एक हम टट्टी में जाने के लिए काम में लाते। दूसरे से पानी पीते। कभी कभी संजोग मिलते तो नहाते भी। कंबल गंदे और कि पता नहीं किन लोगों के इस्तेमाल किये होते। उसमें जुएं भी होते। लेकिन कई लोगों के साथ रहने से वातावरण गुल्जार रहता।

पता नहीं क्या हुआ कि कुछ दिनों के बाद मुझे सबसे अलग सालिटरी सेल में भेज दिया गया। यह मैं आज तक नहीं समझ पाया। शायद खूफिया रपट के कारण। उस समय मैं सत्रह साल का था। सालिटरी सेल खौफनाक जगह थी। शायद डराने के लिए वहां भेजा गया।

कहते हैं कि सालिटरी सेल में खतरनाक कैदी, जिन्हें फांसी देनी होती थी, इसी तरह के कैदी, रखे जाते थे। छोटी छोटी कोठरियां बनी थीं। छत बहुत ऊपर। टट्टी पेशाब करने के लिए दो तसलेनुमा बर्तन रखे थे बस। खाना एक छेदनुमा खोह से अंदर दे दिया जाता। सुबह शाम

एक घंटे के लिए बाहर हथकड़ी पहनाकर ले जाया जाता। मैं बिन्कुल ऐसा खतरनाक नहीं था। लेकिन एक बात जरूर हुई थी: गोंडा जेल में खाना शाम को दिन डूबते ही दे दिया जाता था। रोज शाम को खाने के बाद विचार विमर्श बौद्धिक होता था। एक बार विषय था प्रतिबंध हटाने के लिए आज क्या करेंगे? मेरी बारी आई तो मैंने कहा— एक ऐसा आंदोलन करना चाहिए जिसमें स्वयं सेवक विधानसभा के सामने अपना सिर काटकर फेंक दें। ऐसे स्वयं सेवकों की लिस्ट बनाई जाये जो ऐसा करने के लिए तैयार हों। मैंने प्रस्तावित किया कि इसमें पहला नाम मेरा लिखा जाये। मेरे सामने गुरु गोविंद सिंह के पंच प्यारे, हकीकत राय आदि की गाथाएं घूम रही थीं। हो सकता है प्रस्ताव के नाम की सूचना किसी ने जेल अधिकारियों को पहुंचा दी हो। खैर मुझे वहां 7 दिन रखा गया गया। मैंने वहां कविता लिखी जिसकी कुछ पंक्तियां याद हैं— पहली पंक्ति तो पं. शिवशरण पांडे के मुंह से सुनी हुई लांग फेलो की एक पंक्ति का अनुवाद है—

मैं मानव हूँ उड़ न सकूंगा पर पग रखता चढ़ सकता हूँ  
सागर में यदि सोम छिपा लाकर अनंत में जड़ सकता हूँ  
अरे अंधेरे, कमर कसा तुमने रव्याच्छादन को  
अथवा पावन पुण्य तपस्वी शुभ माधव आनन को  
(माधव— माधव सदाशिवराव गोलवलकर गुरु जी)  
स्वार्थांध सत्तामदांध कुछ तो शरमाओ  
माखंडन का दीप जलाने वालो, निजमस्तक न उठाओ।

एक दिन शाम को सिविल सर्जन मुझे देखने आया। दूसरे दिन सुबह मुझे लखनऊ सेंट्रल जेल में भेज दिया गया हथकड़ी पहनाकर। वहां की व्यवस्था अच्छी थी। वहां के कई स्वयं सेवकों की याद है— सुदर्शन, विनोद कुमार दीक्षित, एक बच्चन जी थे लल्लन प्रसाद व्यास जो बाद में संघ की ओर से देश विदेश में हिंदी भाषा के विकास का काम देखने लगे। वहां खाना बेहतर मिलता था। कई स्वयं सेवक पढ़ने लिखने वाले थे। एक बंगाल का स्वयं सेवक था। कई हरिद्वार के थे। उनमें से एक बौना था। वह बहुत झगड़ातू था। कुछ दिनों बाद सार्वजनिक क्षमादान करके विद्यार्थियों को छोड़ दिया गया। मुझे भी। छूटते समय जेल के सामने एक छोटे से पार्क में कुछ स्वयं सेवकों के साथ बाजपेयी जी— अटल बिहारी बाजपेयी जी मिले। उन्होंने सबका परिचय लिया। शायद कुछ खिलाया पिलाया। मेरी कविता सुनी। उसे अपने पास रख लिया। कहा, छापेंगे। और मैं जेल से छूटकर फिर बलरामपुर पहुंचा।

बलरामपुर में स्टेशन पर हमारा स्वागत हुआ। लेकिन मुझे घरवालों की याद आ रही थी। घरवालों की याद से जेल में— गोंडा जेल में— दादा का मिलना याद आ गया। दादा मैं अपने पिता को कहता था। वे लंबे, पतले इकहरे बदन के पहलवान थे। ऊपर से बहुत रूखे। मुझे याद नहीं, कभी मुझे प्यार किया हो या अपने साथ बिस्तर पर सुलाया हो। जेल में एक दिन वार्डन ने खबर की कि तुमसे कोई मिलने आया है। मैं जेल में फाटक पर मिलने के लिए गया, देखा तो दादा थे। दादा उदास बैठे थे। मिलने का समय 15 मिनट का था, वे 14 मिनट तक चुप मेरे सामने बैठे रहे। मैं जेल के कपड़ों में था। वे मुझे देखते रहे। उनके आँठ फरफराते रहे। आखिरी में यह कहते हुए उठकर चले गए कि तुम माफी तो मांगोगे नहीं।

बलरामपुर में एक और घटना हुई जिससे दादा विह्वल हुए। मैं गांव से बलरामपुर अपने जीजा के यहां पहुंचता था। एक बार ऐसा हुआ कि गांव से चला सीधा संघ के कार्यालय पहुंचा। वहां से सीधे गोरखपुर चला गया। वहां संघ का समारोह था। गुरु जी आने वाले थे। घर पर खबर पहुंची कि मैं तो बलरामपुर जीजा के यहां पहुंचा ही नहीं। दादा घबराये। बिसनाथ कहां गायब

हो गया? दादा ऊपर ऊपर से कोई परवाह नहीं करते थे। गांव से गैसंडी स्टेशन के रास्ते में नदिया पड़ती थी। जंगली जानवर मिलते थे। चोर बदमाश मिलते थे। मैं घर से निकलता था तो मोहल्ले पड़ोस के लोग मुझे विदाई देते थे। दादा घर के दरवाजे पर ही खड़े रहते। चुपचाप। वे मुझे दूँढ़ने निकल पड़े, रास्ते में एक गद्दी मिला। गद्दी एक ऐसी जाति है जिसे नाजायज पेशा या अपराधकर्मी शुमार किया जाता है। वह बैठा था। दादा, उसके पीछे जाकर बैठ गए तो उसने घूमकर पैतरा बदला और लाठी से प्रहार करने को था कि दादा का चेहरा देखकर रुक गया, बोला— खुशकिस्मत हो कि बच गए। मेरे पीछे आकर क्यों बैठे? दादा ने अपनी विपदा सुनाई, बड़ा लड़का नहीं मिल रहा है। बलरामपुर पढ़ने गया था पता नहीं कहां क्या हुआ? कहते हैं कि उसने अंगुलियों से कुछ गिना और कहा घबड़ाओ मत; वह कल तक मिल जाएगा। दूसरे दिन बढ़नी से छोटके काका मुझे दूँढ़ने बलरामपुर पहुंचे तो उन्हें लोगों ने बताया भइया आजकल ये साले संघ वाले उत्पात मचाये हैं। छोटे छोटे बच्चों को गुमराह करते हैं। मां बाप का कहना न मानो, दंगा फसाद करो, गांधीजी नेहरूजी को गाली दो। हिंदू मुसलमान दंगा कराओ, शादी ब्याह न करो, कुंआरे रहो, पढ़ाई लिखाई न करो यही सब शिक्षा देते हैं। संघ वाले अनेक बच्चों के साथ तुम्हारे बच्चे बिसनाथ को भी गोरखपुर ले गए हैं 'गुरुजी के पास'। छोटके काका ने दादा को खबर दी। दादा बढ़नी से लौट रहे थे। संजोग की बात कि जिस समय वे बढ़नी से गैसंडी स्टेशन पर उतरे, ठीक उसी समय मैं भी बलरामपुर से गैसंडी उतरा। उन्हें देखा तो मैं डरा। दादा ने मुझे मारा कभी नहीं था लेकिन मैं उनसे डरता बहुत था। उनका गुस्सा देखा था। मैंने सोचा अब मेरी सख्त पिटाई होगी। पिटाई से कम, उन्हें गुस्से में देखने से ज्यादा डर लगता था। लेकिन दादा कुछ नहीं बोले। करीब 12 मील का रास्ता था गैसंडी से बिस्कोहर। रास्ते में सिर्फ यह कहा— खाना कुछ खाया है कि नहीं? भूख तो नहीं लगी है? किसी को बताकर कहीं जाया करो। मुझे आश्चर्य हुआ। दादा के नाराज न होने पर।

और मैं जेल से गांव पहुंचा तो दादा ऊपर छत पर चले गए थे। अम्मा नीचे थीं। मुझे देखते ही पकड़कर चीखने लगीं। दादा ने अम्मा की आवाज सुनी तो हड़बड़ाकर सीढ़ी से नीचे उतरे। मुझे देखा तो फिर चुपचाप ऊपर छत पर चले गए। अम्मा देर तक मुझे चिपटाये रोती रहीं। कुछ दिनों बाद बलरामपुर पहुंच मैं फिर 'राष्ट्रीय कार्य' में लग गया। बहन के घर ही पर रहने लगा। अब जीजा के घर वाले मुझे पहले जैसा अपनापन नहीं देते। बल्कि शक की नजरों से देखते; पता नहीं यह क्या करता रहता है। इसकी पार्टी ने गांधीजी को मारा है, यह भी उसमें शामिल न हो। मैं सवेरे उठता। पूर्व दिशा में एक पोखरा था; वहीं जाकर नित्यकर्म से निपटता। स्नान वहीं करता। एक छोटा सा मंदिर था। उसमें रामचरित मानस का पाठ होता रहता। मैं सवेरे का नश्ता करता था, या नहीं। नहीं मालूम। शायद, अक्सर नहीं मिलता था। क्लास में पढ़ाई के समय कभी कभी मेरा दिमाग भूख से सन्न हो जाता फिर क्लास में क्या पढ़ाया जा रहा है समझ में नहीं आता। करीब 3 बजे छुट्टी होती तब घर आकर खाना खाता। आरएसएस के लोग सब कुछ करते थे लेकिन मुझे खाना पीना मिलता है या नहीं इसकी परवाह नहीं करते थे। कभी कभी गणवेश यानी हाफ पैंट, कमीज, काली टोपी, बेल्ट किरमिच का जूता ठीक न होने पर डांट भी पड़ती। मैं संकोच, शर्म या गरीब कहलाने के डर से उन्हें अपनी स्थिति नहीं बताता। लेकिन ऐसी स्थिति बतानी नहीं पड़ती, लोग जान लेते हैं। मेरी स्थिति सबको पता थी। कुछ दिनों बाद आठवीं क्लास में अच्छे नंबर आने के कारण मुझे वजीफा मिल गया। आठ रुपये महीने था। तब मेरी स्थिति ठीक हो गई। उन दिनों आठ रुपया महीना, ऊपरी खर्च के लिए काफी होता था। मेरे जैसे विद्यार्थी के लिए बहुत होता था। जेल जाने के बाद वजीफा बंद हो गया।

जीजाजी के घर पर रहने के दिनों की कई घटनाएं याद आती हैं। बड़ा परिवार था। चार भाई थे, उनकी पत्नियां थीं। सबसे कमाऊ भाई बच्चा बाबू की एक ही संतान थी लीला। वह पागल थी। घर में झगड़ा होता; खासतौर पर जब मेरी बहन और उनके पति में, तब मेरी स्थिति बहुत खराब होती। मैं बहुत अपमानित अनुभव करता। ऐसे अवसरों पर गरीब रिश्तेदार को बड़ा अपमानित करते हैं। एक घटना और हुई। वहां आटा मशीन में एक काला कलूटा अधेड़ आदमी काम करता था। आप जानते हैं कि साला जीजा में हंसी मजाक का रिश्ता होता है। वहां काम करने वाले सभी आदमी मुझसे मजाक करते। कभी कभी कुछ लोग निहायत महा मजाक करते। वह अधेड़ आदमी महा मजाक भी करता और अकेले में मेरा गाल भी पकड़ता। मुझे बड़ा बुरा लगता। मैंने उसको चेतावनी देते हुए कहा ऐसा मत करो वरना मैं मारूंगा। मुझे अपने पिता और काका, बड़के काका, छोटके काका का रोब याद आता। और यह साला मुझे क्या समझता है; खैर उसने एक बार फिर वही हरकत की तो मैंने पास ही पड़ी एक सरिया ठीक उसके पांव की हड्डी पर जोर से मारी। वह चीख उठा किंतु कुछ नहीं बोला। थोड़ी देर बाद बोला— तुम मेरे मालिक बच्चा बाबू के रिश्तेदार हो वरना मैं तुम्हें अभी ठीक कर देता। लेकिन इसके बाद उसने न मजाक किया न हरकत की।

मैंने इसके पहले उस क्रांतिकारी युवक केशव शुक्ला का उल्लेख किया होगा। केशव शुक्ला क्रांतिकारी समाजवादी पार्टी के नेता कार्यकर्ता थे। उन दिनों इस पार्टी में सर्वोपरि नेता योगेश चंद्र चटर्जी थे। इस पार्टी का बहुत बड़ा समारोह बलरामपुर में हुआ। समारोह के आयोजक केशव शुक्ला ही थे। इस समारोह में मैंने यानी राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्यकर्ता बिसनाथ ने इस पार्टी के कई नेताओं झारखंडे राय, केशव शर्मा और साथ योगेश चटर्जी का भाषण सुना। चटर्जी हिंदी में बोले। हालांकि वे ठीक हिंदी नहीं बोल पाते थे। लेकिन उनके व्यक्तित्व के प्रताप गौरव से उनका भाषण सर्वाधिक प्रभावशाली था। वे बोलते— ब्रिटिश सरकार हमको जेल में डाला हम गया। हम ब्रिटिश सरकार का विरोध करता, बम फेंकता, बिल्कुल नहीं डरता। लोग तुमल ध्वनि से ब्रिटिश सरकार मुर्दाबाद और योगेश चटर्जी जिंदाबाद के नारे लगाते। मैं भी नारा लगाता।

एक बात यह थी कि स्वयं सेवक होते हुए भी मैं कांग्रेस, कम्युनिस्ट, समाजवादी सभी पार्टियों की सभाओं में जाता; सबसे प्रभावित भी होता। गांधी, नेहरू, सुभाष के प्रभाव से अछूता मैं कभी नहीं रहा। स्वयं सेवक होते हुए भी गांधी जी की हत्या होने पर मैं बहुत रोया था।

एक दिन जीजाजी के यहां आटा मशीन के पास केशव शुक्ल बैठे थे कि गेंदा ने— गेंदा उनकी पार्टी का कार्यकर्ता था, कहा— झारखंडे राय घर पर आए हैं। उनके आते ही केशव हड़बड़ा कर उठे और कहा— अब मैं चलता हूं। केशव शुक्ला अक्सर मुझसे कहते— तुम आरएसएस में रह नहीं पाओगे। एक दिन बहस में मैंने उनसे योगेश चटर्जी की आलोचना की। वे बिगड़ गए और बोले— इस गोलवलकर ने देश की आजादी के लिए क्या किया है। तुम्हारी पार्टी ने देश की आजादी के लिए क्या किया। क्या तुम देश के करोड़ों मुसलमानों को पाकिस्तान भेज दोगे। तुम्हारी पार्टी देश के दुश्मनों पूंजीपतियों, सामंतों और बेवकूफों की पार्टी है। मुझे बड़ा बुरा लगा। लेकिन मैं सोचने लगा।

सो उस दिन केशव शुक्ला ने मुझसे कहा— तुम भी चलो झारखंडे राय से मिल लो। मैं उनके साथ हो लिया। केशव शुक्ला ने 15-16 साल की उम्र में सरकारी खजाना लूटा था जो इतिहास में पिपरहवां कांड के नाम से मशहूर है। इस सरकारी खजाने की लूट की योजना झारखंडे राय ने बनाई थी। केशव शुक्ला का घर पास में ही था। घर झोपड़ीनुमा था। केशव शुक्ला के बाप, मां, केशव की पत्नी, उनका बच्चा उसी घर में रहते थे। पहुंचा तो देखा झारखंडे राय एक झोला

लिये वहीं एक कमरे में बैठे हैं। केशव शुक्ला को बताया कि गोंडा स्टेशन पर एक सीआईडी वाला मिल गया। उसने मेरे कागजात की तलाशी ली, कागजात उसने जब्त कर लिये हैं। मुझे छोड़ दिया। इसीलिए एक ट्रेन मेरी छूट गई। मुझसे आरएसएस के बारे में बात करने लगे। कुछ देर तक बात करने के बाद बोले— अरे मैं तो समझता था तुम कच्चे हो। तुम तो पक्के हो। खैर तुम राहुल जी की किताबें पढ़ो— तुम्हारी क्षय हो, भागो नहीं दुनिया को बदलो, मानव समाज अभी यही पढ़ो, आगे और किताबें बताऊंगा। मैंने उनके साथ खाना खाया। वे मुझे बहुत अच्छे लगे। बहुत सीधा सादा। आंदोलन के तेज और ब्रिटिश सत्ता के विरोध की गरिमा से मुक्त। केशव शुक्ला ने ही वे किताबें मुझे दी थीं।

मैं आरएसएस में था लेकिन पढ़ाकू था। उन किताबों में कुछ ऐसा था जिसने मुझे विचलित कर दिया। मैं सवेरे पोखरे में स्नान करता, स्कूल जाता, आरएसएस की शाखा में जाता और राहुल जी की कोई किताब पढ़ता। एक किताब में लिखा था— यह जो बिड़ला ने मंदिर बनवाये हैं वह मजदूरों के पैसों को काटकर बढ़ाई हुई आमदनी से। मजदूर ने रुपये की कमाई की। उसे आठ आना ही दिया। डेढ़ रुपया हड़प लिया। उस डेढ़ रुपये में से एक आने से मंदिर बनवा दिया। लोगों ने समझा सेठ जी बड़े धार्मिक हैं। यह सरप्लस वैल्यू का सिद्धांत और उसका व्यवहार राहुल जी की किताब में बहुत सरल तरीके से समझाया गया था। मैं तब सरप्लस का सिद्धांत न जानता था न समझ पाया लेकिन मजदूरी के पैसे की चोरी समझ गया। धर्म का आडंबर धर्माधिकारियों का पाखंड आदि भी समझ में आने लगा। मैं अंदर से विचलित हो गया। एक बात और पढ़ी एक किताब में— लिखा था कि यरुशलम से विस्थापित निर्वासित यहूदी भी नित्य प्रार्थना करता है जिसका एक अंश इस प्रकार है ‘.... यदि मैं तुम्हें भूल जाऊं तो मेरा दाहिना हाथ काम करना बंद कर दे। यरुशलम। यदि मैं तुम्हें अपने सर्वाधिक आनंद सुख का कारण न समझूँ तो ये जीभ मेरे तालू से चिपक जाये।’

मैंने सोचा अरे यार तो दुनिया में दूसरे धर्मों के अनुयायी भी अपने धर्मस्थलों का वैसा ही सम्मान, श्रद्धा करते हैं जैसा कि हम हिन्दू अयोध्या और मथुरा का करते हैं। इससे मेरा भाव बदल गया। बदल तो नहीं गया लेकिन दौर बदलने लगा। मैं जहां तहां, जब तब इन बातों की चर्चा अन्य स्वयं सेवकों से भी करने लगा। स्वयं सेवक मेरी बात सुनते और ताज्जुब से मुझे देखते, चौंकते। धीरे धीरे मैं आरएसएस में शक और अविश्वास का पात्र बन गया। एक बार तो उतरौला, पास ही के एक कस्बे की शाखा में मेरा परिचय ‘साम्यवादी’ कराया गया कि बिसनाथ को जो भी कहना हो कह दें, मैंने मजदूरों और उनके मेहनत के पैसों की कटौती की बात कही। स्वयं सेवकों पर इसका असर पड़ा। इसके बाद मेरा और कोई भाषण साम्यवाद पर नहीं कराया गया।

जीजा के घर में रहते हुए कुछ पारिवारिक समस्याएं खड़ी होतीं। पहले मैं, जीजा और बहन एक ही कमरे में सोते थे। बल्कि उसके पहले तो जीजा के बड़े भाई की पत्नी मुझे अपने साथ सुलाती थीं। कभी कभी तो मुझे इतना प्यार करतीं कि दूध भी पिलातीं। माने मैं उनका दुधमुहां बच्चा हूँ। फिर कुछ दिनों बाद उन्होंने मुझसे कहा— अब तुम अपनी सगी बहन के कमरे में रहो। वहां रहने लगा। कुछ दिनों बाद उन्हें भी परेशानी होने लगी। मैं कुछ समझ नहीं पाता था। इंतजाम यह किया गया कि मुझे पड़ोस के एक घर में सोने को कहा गया। वहां एक महिला के पास, जो विधवा हो गई थी। एक देवर था जिसकी शादी हो गई थी। घर में स्कूल के दो बच्चे शायद किराये पर रहते थे। विधवा ने कहा— यह छोटा है मेरे पास ही सो जाया करेगा। मुझे वह बहुत अच्छी लगती। उसके कपड़ों से अजीब खुशबू आती। मैं कुछ समझ नहीं पाता। वह मुझे चिपटा लेती। एक दिन उसने मेरी बहन से मजाक में हंसते हुए कहा— यह बिसनाथ सोते हुए इतने जोर से चिपटा

लेता है मानों...। और हंसने लगी। मुझे बड़ी शर्म लगी। मेरी बहन ने मुझसे कहा— इतने जोर से मत चिपटाया करो। मेरी आदत अभी भी है जो अच्छे लगें उन्हें चिपटाकर सोने की। मैं बचपन में अपनी मां के साथ चिपटकर सो नहीं पाया। मैं दो साल का था तब मेरा छोटा भाई आ गया। मुझे मां के दूध और उनसे चिपटकर सोने से वंचित कर दिया गया। लगभग 12-13 साल की उम्र से मैं घर से बाहर रहा। मेरी छोटी बहन बहुत दिनों तक मुझे बाहर का आदमी समझती रही। जब मैं घर से चावल दाल की गठरी उठाता तो वह झांकती। तुम ले जा रहे हो हम क्या खाएंगे। मेरा भाई क्या खाएगा। वह भाई छोटे शेर सिंह को ही समझती। मेरे छोटे भाई की शादी मुझसे पहले हुई। मां बहुत कहतीं— हाय बड़के बाबू (बिसनाथ) का अब घर में निश्चिंत होकर बैठना भी मुश्किल हो जाएगा। छोटे भाई की पत्नी के सामने जेठ को यानी मुझे नहीं पड़ना चाहिए। हो सकता है मेरा व्यक्तित्व चूंकि आत्मीयता के लिए बचपन से ही लगातार तरसता रहा है और इस विधवा को इतने जोर से चिपटाना उसी का अनजाना कारण हो। इस प्रसंग में अब मुझे ज्ञानरंजन की कहानी 'छलांग' याद आती है। बहरहाल, कुछ दिनों के बाद वहां से भी मेरा पत्ता कट गया और मैं आरएसएस के कार्यालय में सोने लगा। इस तरह मेरे खाने पीने की व्यवस्था टूट गई। बहन के यहां खाना पीना मिल जाता था। कार्यालय में 'राष्ट्रीय कार्य' की तो व्यवस्था थी। खाने पीने की नहीं। बिल्कुल आकाशवृत्ति पर मेरा जीवन करीब दो साल तक चला। ऐसी स्थिति में केवल एक जगह मेरे भोजन की व्यवस्था थी वह थी पशुपति का घर। पोस्ट आफिस के चौराहे के पास भगवतीगंज की तरफ जाओ तो दाहिने हाथ की ओर। मैं शाम को पहुंचता। गप्प लगती। पशुपति से ज्यादा उनके चाचा गिरिजा और रुद्र, उनके भाई विनय प्रताप और राघवेंद्र सिंह कहते— बिसनाथ जी आए है बिसनाथ जी आए हैं— गप्प शुरू हो जाती। 2-3 घंटे चलती। खाना खाता और वहीं सो जाता। यह क्रम बलरामपुर छोड़ने पर ही टूटा।

उन दिनों बलरामपुर का वातावरण बहुत सुसंगत और सजीव था। सभी पार्टियों के लोग सभी पार्टियों के लोगों से मिलते बहस करते और एक दूसरे के शादी गम में शरीक होते थे। आरएसएस था, मुस्लिम लीग थी लेकिन उनके सदस्यों के बीच मतभेद के बावजूद कोई द्वेष या अशुभ की भावना नहीं थी। गांधी जी की हत्या हुई तो जरूर कुछ हलचल मची। 31 जनवरी को सुबह दस बजे शवयात्रा निकली उसमें हिन्दुओं से ज्यादा मुसलमान थे। किसी उर्दू शायर ने एक कविता लिखी थी, उसकी एक पंक्ति पढ़ते या रोते हुए जुलूस चल रहा था— *हाय बापू जी तुम्हें पाये कहां!* एक दूसरी कविता थी—

*हाय वो मारा गया जो मारने के था खिलाफ।*

*गोलिये पिस्तौल को बापू का सीना हाय हाय।*

कोई हिन्दी कविता इस अवसर की मुझे याद नहीं पड़ती या इतनी जल्दी लिखी ही न गई हो। गांधीजी की जो शोकसभा रामलीला मैदान में हुई उसी में बाबू नानक चंद्र इशरत ने हिचकियां भरते हुए कहा था— बापू तुम न मरते मैं मर जाता। इस सभा में बैठे खड़े लोगों में से कोई मर जाता। इशरत के साथ शोकसभा के लोग भी रोने लगे। इस शोकसभा के अलावा बलरामपुर की कुछ और राजनैतिक सभाओं की मुझे याद आ रही है। ये सभाएं राजनीतिक और ज्यादातर 1950-51 की चुनावी सभाएं थीं। पहली सभा वेट्स पार्क में जवाहर लाल नेहरू की थी। दस हजार की भीड़ रही होगी। मैंने सबसे पहले जवाहर लाल के दर्शन वहीं किये। वे चूड़ीदार पायजामा और शेरवानी पहने थे, टोपी पहने, दुबले और पीले से— (परवर्ती गाजर जैसे लाल नहीं) अकड़ते हुए तेज चले आए और मंच पर चढ़ गए। लोग नारे लगा रहे थे— गांधी नेहरू सुभाष जिंदाबाद। किसी ने नारा लागाया— मुस्लिम लीग मुर्दाबाद। नेहरू जी ने फौरन टोका— हम किसी का मुर्दाबाद पसंद



नहीं करते। जाड़ा था, किसी ने उन्हें ओवर कोट पहनाने की कोशिश की। नेहरू ने झटक दिया, बोले— मेरे भीतर काफी गर्मी है, मुझे ओवर कोट की जरूरत नहीं है। बाद में नेहरू ने कहा— जिस दिन देश की झाड़ू नेहरू के हाथ में आएगी वह बड़े सामंतों, काला बाजारियों और देश के दुश्मनों को बंगाल की खाड़ी में फेंक देगा। लोगों ने हर्षध्वनि की, नारे लगाये। नेहरू जी को अगली जगह जाना था।

मैं आरएसएस में था लेकिन नेहरू के भाषण के दौरान जोश का अनुभव कर रहा था। नेहरू के व्यक्तित्व में विलक्षण आकर्षण था। वे देवता लग रहे थे। खूबसूरत तो वे थे ही। आरएसएस के नेता वैद्य जी ने भी नेहरू को 'जलवंत' (वे ज्वलंत नहीं बोल पाते थे) कहा। बाद में मेरी पत्नी ने बताया कि नेहरू की उस सभा में वह भी अपने बाबा के कंधे पर बैठकर भाषण सुनने आई थीं। उसी समय दूसरा भाषण लोहिया का हुआ रामलीला मैदान में। इन भाषणों का महत्व मेरे लिये यह है कि मैंने जवाहर लाल नेहरू और राममनोहर लोहिया को लगभग 14-15 वर्ष की उमर में सुना। मुझमें राजनैतिक चेतना नहीं थी लेकिन आरएसएस का होने के बावजूद मेरे मन में इन लोगों के प्रति परम आदर का भाव था। लोहिया की सभा में उतने लोग नहीं थे लेकिन उनका भाषण साफ सुथरा था। भाषा बहुत अच्छी थी, ठेठ हिंदुस्तानी। लगभग व्याकरण सम्मत। नेहरू की तरह ऊबड़खाबड़ टूटेफूटे वाक्यों वाली नहीं। इसका मतलब यह नहीं कि वह नेहरू की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली थे।

लोहिया के भाषण में मुझे चौखंभा व्यवस्था की याद है। वे समझा रहे थे कि कांग्रेस आजादी के आंदोलन के दौरान किये गए वादों से भटक गई है। इसीलिए हम उससे अलग हो गए हैं। वह देश की आम जनता की समस्याओं पर ध्यान नहीं दे रही है। लोहिया के भाषण से हम बहुत प्रभावित हुए, खासतौर पर उनकी शैली से। पशुपति ने पूछा— बिसनाथ जी किसका भाषण ज्यादा अच्छा था, नेहरू जी का या लोहिया का? बिसनाथ ने कहा— कुछ कह नहीं सकता। सोचना पड़ेगा।

इसके पहले हमने ज्यादातर आर्यसमाज की सभाएं देखी थीं। कीर्तन मंडलियां या धर्मोपदेश सुने थे। मुस्लिम लीग की सभाएं दूर से झांक ली थीं। आरोप प्रत्योराप वाली राजनीतिक सभाएं नहीं देखी थीं। इसी दौर में कम्यूनिस्ट पार्टी की भी सभा— चुनावी सभा— देखी। क्रांतिकारी समाजवादी पार्टी योगेश चंद्र चटर्जी वाली पार्टी का जिक्र पहले आ चुका है। कम्यूनिस्ट पार्टी का बलरामपुर में कोई खास काम नहीं था। लेकिन शुगर मिल थी और बिजली का प्लांट पावर हाउस था, जिसमें मजदूर थे, उन्हीं के बल पर पार्टी बनी होगी। सभा में उनके नेताओं ने क्या कहा यह तो समझ में नहीं आया लेकिन पीछे से कोई आवाज आ रही थी वह साफ साफ सुनाई पड़ रही थी। दो तीन स्थानीय कांग्रेसी नेता आवाज लगा रहे थे— झूठ बोल रहे हो। कामरेड झूठ बोल रहे हो। मंच के कम्यूनिस्ट नेता अप्रभावित होकर उत्साहपूर्वक बोलते जा रहे थे। बीच बीच में उनके समर्थक नारे भी लगा रहे थे। लाल झंडे फहरा रहे थे। लेकिन आखिरकार इतना हड़बोंग मचा कि सभा नहीं चल पाई। कम्यूनिस्ट भाषणकर्ता मंच से नीचे उतरे तो स्थानीय युवक उन्हें ताना देने लगे— सन् 42 में कहां थे, सन् 42 में कहां थे। सोवियत संघ और स्तालिन का नाम ले लेकर वे युवक ताने दे रहे थे। कम्यूनिस्ट नेता और कार्यकर्ता उनका भरसक जवाब देने में लगे हुए थे। आखिर मारपीट की नौबत आ गई। कम्यूनिस्ट समर्थक कम थे इसलिए ज्यादा वही पिटे। हालांकि भरसक उन्होंने भी पीटा। मैं इस बात से बहुत प्रभावित हुआ कि कम्यूनिस्ट दृढ़तापूर्वक निडर होकर बहुसंख्यक विरोधियों के सामने तन कर खड़े थे और अपनी बात कर रहे थे।

कांग्रेस की एक विशाल सभा हुई। उसमें एक मुसलमान नेता और गोविंद वल्लभ पंत का भाषण हुआ। बहुत भीड़ थी। पंत जी देर से पहुंचे। मुसलमान कांग्रेसी नेता पहुंचे ही थे कि नमाज

का अजान सुनाई पड़ा। घोषणा हुई कि नेता नमाज पढ़ने के बाद भाषण देंगे। मुसलमान नेता का भाषण धाराप्रवाह उर्दू में था। जोशीला। पंत जी धीरे धीरे बोल रहे थे। उनका सिर हिल रहा था। कहते हैं कि साइमन कमीशन के विरुद्ध प्रदर्शन के दौरान उन्होंने लाठियां अपने ऊपर रोक लीं जो जवाहर लाल नेहरू पर बरस रही थीं या बरसने वाली थीं और उन्हीं के कारण उनका शरीर जर्जर हो गया था। उनके भाषण के पूर्व एक कवि उनकी प्रशंसा में एक कविता पढ़ने लगे लेकिन पंत जी ने उन्हें बीच में रोक दिया।

मैं जिस साल 1949 में बलरामपुर से कानपुर पढ़ने गया था। उसी साल केशव शुक्ला की हत्या हो गई। तुलसीपुर के पास किसी खंडहरनुमा घर में किसी ने उन्हें गोली मार दी। कहा जाता है कि गोली उन्हें देसी कट्टे से मारी गई कनपटी पर रखकर। बहुत खलबली मची। जन आक्रोश उमड़ पड़ा। केशव शुक्ला हाल ही में 3-4 साल पहले ही आजीवन कारावास की सजा— आजादी मिल जाने के कारण पहले ही— भुगतकर छूटे थे। उनका जन स्वागत हुआ था। केशव शुक्ला लंबे छरहरे, बलरामपुर के शायद सबसे स्वस्थ और आकर्षक व्यक्तित्व वाले युवक थे। वे समाजवादी क्रांतिकारी पार्टी के उगते हुए अखिल भारतीय नेता थे। जन आक्रोश स्वाभाविक था। करुणा, सहानुभूति और गुस्से की लहर दौड़ पड़ी। हत्यारा कौन था?

नाना प्रकार की बातें सुनाई पड़ीं। कहा गया कि महाराजा बलरामपुर के किसी रिश्तेदार जमींदार ने उनकी हत्या कराई है। एक स्थानीय नेता श्याम लाल पथरकट्ट नाम लिया गया। क्रांतिकारी समाजवादी पार्टी के सामने श्याल लाल का नाम हत्यारे के रूप में घोषित किया गया। कई गिरफ्तारियां हुईं। लेकिन बाद में सब छूट गए। कोई सबूत नहीं मिला। फुसफुसाहट यह सुनाई पड़ी कि यह केस प्रेम का है या सोने की तस्करी का। बलरामपुर नेपाल की सीमा के पास है। अपराध कर्म करके अपराधी नेपाल में छिप जाते थे। कुछ दिन के बाद वे फिर भारत में अपना काम करने लगते थे। कहते हैं कि इन अपराधकर्मियों के बीच सौदा बड़ी विश्वसनीयता, मजबूती से पटता है। अमानत में खयानत करने पर वे सीधे हत्या कर देते हैं। केशव शुक्ला बलरामपुर से बढ़नी गए थे। बढ़नी सीमांत कस्बा है। वहां से शाम की गाड़ी से लौट रहे थे। तुलसीपुर रुक गए किसी खंडहरनुमा मकान में। कोई उनका पीछा कर रहा था। उसी ने उन्हें गोली मार दी।

मैं कानपुर आने से पहले उनसे मिला था। उनके घर जाकर खाना खाया था। उन्होंने कहा था कि मैं कानपुर आऊंगा। मुझे लेबर कमिश्नर से काम है। अब मैं आपको एक अजीब घटना बताने जा रहा हूं। एक दिन शाम को मेरा मन बहुत उदास हुआ। मैं एसडी कालेज के हॉस्टल में रहता था। इम्तहान के दिन थे। शिवरात्रि का दिन था। मैं थका था, शाम को ही सो गया। सपने में देखा कि एक सफेद सांप फन उठाये खड़ा है और उसे किसी ने बंदूक की नली से दागकर छरों से मार दिया है। छरों से आहत वह सांप पीड़ा से लोटपोट रहा है। मैं घबराकर उठ बैठा। संयोग देखिये कि लगभग उसी समय उसी रात केशव शुक्ला को गोली मारी गई थी। यह संयोग मात्र हो सकता है क्योंकि कुछ दिनों पहले मैंने एक सांप को इसी तरह गोली से मारे जाते देखा भी था। पुराने कानपुर के भाटिया के गैरेज में सांप निकला था और उसे इसी तरह गोलियों से मारा गया था और यह सपना उसी के मुझ पर पड़े प्रभाव के कारण हो।

तुलसीपुर में पाटनदेवी का मेला लगता है। यह दो तीन जिलों का सबसे मशहूर और बड़ा मेला है। यह प्रधानतः पशु मेला है। बैल, गाय और घोड़ों का। पाटनदेवी का संस्कृत नाम पाटेश्वरी देवी है। यह मूलतः शक्तिपीठ है। इसका संबंध कभी नाथ संप्रदाय से भी रहा होगा क्योंकि मेले के सबसे अहम दिन बाबा रतननाथ आते हैं। बाबा रतननाथ पाटनदेवी के गुरु थे। पाटनदेवी के मंदिर में देवी की मनौती मानकर लोग बलि चढ़ाते हैं। बलि सुअर के बच्चे की दी जाती है। सुअर

के बच्चे को छौना कहते हैं। बचपन में मुझे पेट की बीमारी हो गई थी। खून आने लगा था। तब मां ने पाटनदेवी की मनौती मानी थी। मैंने भी सुअर के छौने की बलि दी है। मुझे याद है छौने की कीमत आठ आने थी। लेकिन यह 1940 के पहले की बात है। अब पाटनदेवी के मंदिर का जीर्णोद्धार करा दिया गया है। तुलसीपुर ऐतिहासिक महत्व का था। 1859 के बाद नाना साहब, बेगम हजरत महल इसी रास्ते से नेपाल चले गए थे। तुलसीपुर भारत का अंतिम कस्बा है, इसके बाद नेपाल शुरू हो जाता है। यह मेरे गांव से 14-15 मील की दूरी पर होगा। पाटनदेवी के मेले के अवसर पर बड़ी भीड़ होती है। इधर उधर से लोग मेला देखने आते हैं। एक बार बलरामपुर स्टेशन पर मैंने अजीब दृश्य देखा। मेला जाने वाली रेलगाड़ी के जनाना डब्बा में भयंकर भीड़ थी। औरतें एक दूसरी से सटी मुड़ी तुड़ी सब ठुसी हुई थीं। बीच डब्बे में एक देहाती आदमी फंस गया था। वह भी कोई बात नहीं। उस फंसे हुए आदमी के पास जो औरत थी उसका आदमी डब्बे के बाहर खड़ा हुआ फंसे हुए आदमी को ललकार रहा था। साले बाहर निकल तब बताता हूं। वहां मेरी जनाने के पास सटा तू साला क्या कर रहा है। वह आदमी बाहर निकलने के लिए हाथ पैर मार रहा था। लेकिन बाहर निकल पाना उसके बस में नहीं था। डब्बे में बेतरह चिल्लाया मची थी। बीच डब्बे में अवांछित परपुरुष स्पर्श हो रहा था और कोई कुछ नहीं कर सकता था। टीटीई पुलिस— कोई डब्बे में प्रवेश नहीं कर सकता था। पाटनदेवी के मेले में यह दृश्य अक्सर देखने में आता है। देहाती डब्बे में अनजाने घुस जाते हैं और फिर उतरने वाले स्टेशन यानी तुलसीपुर तक फंसे रहते हैं। एक बार मैं तुलसीपुर स्टेशन पर मेले के ही दिनों में टिकट कटा रहा था। मेरे साथ मेरे गांव के मौलवी साहब थे। मौलवी जाकिर नदवी। लंबी लाइन थी। लोग एक दूसरे पर पिले पड़ते थे। टिकट बाबू परेशान था। खैर किसी तरह जब मौलवी साहब का नंबर आया तो उन्होंने टिकट बाबू से कहा— बाबू साहब आपके बाल बहुत खूबसूरत हैं। बाबू साहब ने मौलवी साहब को देखा और टिकट काट दिया। मैंने पूछा— मौलवी साहब आपने टिकट बाबू से क्यों कहा कि आपके बाल खूबसूरत हैं। मौलवी साहब ने जो जवाब दिया वह आगे की जिंदगी में मेरे बहुत काम आया। मौलवी साहब ने कहा— तुमने देखा नहीं टिकट बाबू के चेहरे पर से थकान दूर हो गई। उसने घर जाकर शीशे में अपने बाल जरूर देखे होंगे।

बलरामपुर में मेरे गांव बिस्कोहर की वेश्याएं पेशा करती थीं। हमारे घर वाले उन्हें जानते थे। कई लोगों को मैं भी जानता था। कभी कभी दादा उनके हाथ मेरे लिए चावल दाल इत्यादि की गठरी भिजवाते थे। जिसे लेने में उनके कोठे पर जाता था। कई के नाम थे— इलायची, जमुर्द, कुत्तन, जाफरी आदि। उनके घर के आदमी स्वाभिमानी होते थे। अक्सर लंबे चौड़े भी होते थे। कामधाम बहुत कम करते थे। उनके स्वाभिमानी होने की वजह विचित्र लगेगी। वे मानते थे कि वे रईसों की संतानें हैं— नवाबों, जमींदारों या सेठों की। क्योंकि वेश्याओं के पास ज्यादातर ऐसे ही बड़े बड़े लोग आते हैं। उनका रहनसहन भी उसी तर्ज पर होता था। एक बार बचपन में मैंने एक बेड़िया से, जिसका नाम सुक्खा था, कुछ अपशब्द कहे— उसने पलटकर मुझे देखा और कहा— मैं कुछ कह दूं तो तुम्हारे खानदान की इज्जत मिट्टी में मिल जाएगी। मैंने उसकी बात गांठ बांध ली। मेरे मन में वेश्याओं के जीवन के बारे में बड़ी उत्सुकता रहती। मेरी उम्र कुछ कुछ दुनियादारी को समझने की हो गई थी। मेरे पास कुछ रुपये थे। वही वजीफा मिलने वाले पैसे। मैंने सोचा— चलो जरा कोठे पर देखें कि क्या होता है। मैं हिम्मत करके एक कोठे की सीढ़ियों पर चढ़ गया। वहां एक ढिबरी जल रही थी। मैं पहुंच तो गया वेश्या के पास और वह सामने खड़ी थी। लेकिन मैं क्या कहूं उससे। हिम्मत करके मैंने पूछा— तुम यहां क्या करती हो? उसने जवाब दिया— पांच रुपये। मैं पसीना पसीना। धड़ाधड़ सीढ़ियों पर दौड़ता हुआ भाग आया।

उमर तो उमर होती है। कोठा न सही सिनेमा तो है। मैंने तब तक कोई सिनेमा नहीं देखा था। एक बार मिडिल स्कूल का फार्म भरने बस्ती गया था। सवेरे गाड़ी बस्ती स्टेशन पर पहुंची। शहर में गए तो चारों तरफ पोस्टर लगा था— 'सवेरा'। मैंने सोचा शहर शहर की बात, यहां सवेरा होने पर लग जाता होगा पोस्टर 'सवेरा'। कहने की जरूरत नहीं कि वह सवेरा फिल्म का पोस्टर लगा था।

मेरे जीजा के बड़े भाई को बहुत दिनों के बाद लड़का हुआ। उन्होंने बलरामपुर हास्पिटल की सभी नर्सों को गोंडा ले जाकर सिनेमा दिखाने का कार्यक्रम बनाया। उनकी बस चलती थी। उसी में बैठकर हम लोग गोंडा गए। वहां 'मिलन' फिल्म देखी। देखकर मैं अभिभूत हो गया। उसका एक गाना अभी तक मुझे याद है— *गुनगुन गुनगुन बोले भवरवा मोरी बगीचा में आइके*। बाद में ये पता चला कि उस फिल्म का हीरो दिलीप कुमार था। वह फिल्म शरत चटर्जी के उपन्यास 'नौका डूबी' पर बनी थी।

1950 ई. में बलरामपुर में महाविष्णु यज्ञ हुआ। यह आयोजन बलरामपुर राज्य की ओर से हुआ था। लाखों रुपया उस समय का खर्च हुआ। उसके चलते चारों शंकराचार्य वहां आए। देश के अनेक संस्कृत विद्वान। मेरी जानकारी में रियासत की ओर से कामकाज पं. रामप्रकट मणि त्रिपाठी देखते थे। इसमें स्वामी करपात्री जी भी आए। उनका बहुत दबदबा था। वे पहले धर्माचार्य थे जो राजनीति में आए। उन्होंने रामराज्य परिषद नाम से राजनैतिक संस्था बनाई, उससे चुनाव भी लड़ा। विशेष सफलता नहीं मिली। मैंने देखा कि मंच पर जब करपात्री जी आते तब शंकराचार्यों को छोड़कर बाकी सब लोग खड़े हो जाते। करपात्री जी चारों शंकराचार्यों को साष्टांग दंडवत करते। करपात्री जी तेजस्वी थे। कंठ मधुर था। संस्कृत परिषद में उन्होंने धाराप्रवाह संस्कृत में भाषण दिया था। एक सत्र शंका समाधान का था। उसमें मनोरंजक और गर्मागर्म विवाद छिड़ गया। विवाद तो कई छिड़े जिसमें एक तुलसीदास के रामचरितमानस और वेदों के तुलनात्मक महत्व का था। किंतु जिस विवाद की चर्चा करने जा रहा हूँ वह राजनीति का था। शंका समाधान के समय श्रोताओं में से किसी को भी प्रश्न पूछने का अधिकार था। श्रोताओं में जो युवक प्रश्न पूछने खड़ा हुआ वह क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी का सदस्य अर्जुन त्रिपाठी था। मेरे कान खड़े हो गए। उसने किंचित विस्तार से सीता निर्वासन की कथा का हवाला देते हुए राम पर नारी उत्पीड़न का और शंबूक वध का उल्लेख करते हुए दलित अत्याचार का सीधा आरोप राम पर लगाया। उसकी भाषा खरी और सीधी थी। सभा अब तक तो श्रद्धा और भक्ति के वातावरण में भीगी थी। यह प्रपंच बीच में कहां से आ गया! बलरामपुर की भाषा में यह उखमज कहां से पैदा हो गया। कई मंचस्थ विद्वानों ने अर्जुन त्रिपाठी को समाधान करने का प्रयास किया किंतु अर्जुन त्रिपाठी अब तक अपने प्रश्न पर अड़े रहे और कहते रहे यह तो समाधान नहीं हुआ। अंत में एक वृद्ध विद्वान ने कहा— लगता है कि इस युवक का मस्तिष्क कुछ भ्रष्टजनों के कुसंग से भ्रष्ट हो गया है। इससे उलझना समय का अपव्यय होगा। और मामला निपटा दिया गया। एक दिन सभा में कोलाहल मचा। देखा कि स्वयं सेवक एक व्यक्ति को पकड़े ला रहे हैं— कहते हुए कि गिरहकट है। वह व्यक्ति बेवकूफ की तरह पता नहीं क्या बड़बड़ा रहा था। उसकी सिट्टी पिट्टी गुम थी। मैंने देखा वह तो मेरे गांव का भगौती बनिया का लड़का चौधरी था। चौधरी उसकी जाति का नाम नहीं उसका ही नाम था चौधरी बनिया। फिर उसे छोड़ दिया गया।

बलरामपुर अवध के सामान्य कस्बों से ज्यादा साफ सुथरा और नई सुविधाओं वाला था। ऐसा राज्य के कारण था। बलरामपुर में रियासत के अनेक छोटे बड़े कर्मचारियों की अच्छी संख्या थी। उनकी छोटी बड़ी बंधी तनखाहें थीं। फिर ऊपर की आमदनी थी। कई शानदार बंगले थे।

उस समय गांव से ऐसे नौकर चाकर आसानी से मिल जाते थे जो कस्बे या शहर में गांव के नौकरीयाप्ता आदमी के यहां कम तनख्वाह पर नौकरी करते थे। इसलिए कर्मचारियों के यहां नौकर चाकर खूब रहते। पचास रुपये महीना पाने वाला अफसर समझा जाता था। तीस रुपया महीना पाने वाला सम्पन्न। राशन पानी गांव से आता। गांव में खेती होती और बलरामपुर में नौकरी तो क्या कहना। लोग और उनके बच्चे बाबू साहब बने घूमते। रियासत में तांगा बग्घी फिटन की कमी नहीं थी। कारों भी दिखलाई पड़ जातीं। एक लाइब्रेरी थी जिसमें पढ़ाकू लड़कों को वहां किताबें लाने और बैठकर पढ़ने की सुविधा थी। चौराहे पर बाबा की पकौड़ी चाट की दूकान, शायरी, कविता, सिनेमा, राजनीति की बातें, पान, तंबाकू, सिगरेट चाय पर चर्चा, फिल्मी गीत, प्रेम, इशकिया बातें, सब ओर मामला चकाचक था निम्न मध्यवर्गीय और मध्यवर्गीय जनों का। पान की दूकानें कदम कदम पर थीं। शाम को चाट की दूकानों पर रौनक होती। बलरामपुर की आलू की टिक्की मशहूर थी, गोलगप्पा भी। कभी कभी रिकवच और करेले का भरुआ और दहीबड़ा भी दूकान पर मिलता। बलरामपुर की सबसे अच्छी मिठाई कलाकंद थी। मुझे वहां का कलाकंद अलवर के कलाकंद (अब मिल्ककेक) से ज्यादा अच्छा लगता। पूरब टोले में मास्टर की पेड़ा की दूकान मशहूर थी। इसी तरह चौक में सिंधी हलवाई की इमरती और गुलाब जामुन। जहां तक मिठाई का सवाल है, बलरामपुर की मिठाई बहुत अच्छी थी। उससे अच्छी मिठाई आसपास सिर्फ लखनऊ में मिलती रही होगी।

बलरामपुर चौक के थोड़ा उत्तर तरफ नुक्ती पहलवान की दूध दही रबड़ी की दूकान थी। जो शाम को पांच बजे खुलती, रात को 9 बजे तक खुली रहती। तब तक सामान खतम। वैसी रबड़ी और कहीं खाने को नहीं मिली। छल्ले पर छल्ले और पके औंटाएँ दूध की अपनी खुशबू। किसी चीज की मिलावट का नाम नहीं। और दही की क्या बात करें। शोहरतगढ़ से लेकर बलरामपुर तक की एक ऐसी पट्टी थी जिसमें वह मीठा दही मिलता था। यह मीठा दही बंगाल की मिश्टी दोई से भिन्न स्वाद का है। जमाने के पहले ही उसमें चीनी डाल दी जाती थी। मलाई दूध में ही मिली रहती। वह मीठा दही और रबड़ी नुक्ती के दुकान की मशहूर थी। नुक्ती का लड़का कुश्ती लड़ता था। सीजनल फल— आम, कटहल, जामुन, सिंघाड़ा से बलरामपुर जगह जगह गमगमाता रहता। पोस्ट आफिस चौराहे के थोड़ा पूरब सराय के होटल का पराठा गोश्त मशहूर था। पोस्ट आफिस पर ही पेट्रोल मिलता था। वहीं एक रेस्त्रां था जिसका कबाब बहुत अच्छा था। कुछ खास जगहों पर शाम को कलेजी और तली हुई मछली मिलती। शाम को चौक में बेला के फूलों के गजरे बिकते। मदिरालय तो भीड़ से भरे रहते, जिसमें अनेक घिसू माधव दिखलाई पड़ते। बलरामपुर में कीर्तन भजन का वातवरण था। ज्यादातर रिटायर्ड अफसरों की जमात कीर्तन भजन में लग जाती। कुछ लोग पीने पिलाने का अड्डा बना लेते। उसी में शेर शायरी का भी दौर चलता। बाबू नानक चंद, इशरत, बाबू जगन्नाथ प्रसाद, पं. रामप्रकट मणि का सत्संग था। पशुपति से याराना था। बिसनाथ विजी थे। कुछ ऐसा था कि थोड़ा बहुत काम सबको मिल जाता। लोग गरीबी में खुश रहते। स्कूलों में खेलकूद, अंत्याक्षरी, कविता, विवाद प्रतियोगिताएं होतीं। कुल मिलाकर एक लय थी जिसमें बलरामपुर मगन था। विषमताएं थीं लेकिन वे चीखती नहीं, दबी दवाई रहतीं। मैं बिसनाथ खुद अधनंगे और अधपेटे थे लेकिन स्वाधीनता आंदोलन की गमक, साहित्य प्रेम, मित्रों का साहचर्य, शाखा की जिम्मेदारियां, साथ ही साथ गांधी नेहरू सुभाष की प्रभा के प्रभाव में मस्त रहते। पढ़ना है, आगे बढ़ना है। इन्तहान में अच्छे नंबर लाना है और देश की सेवा करना है। कुछ ऐसा था जो भूख और गरीबी को भुलाए रखता। जेल से छूटे, इन्तहान सिर पर था।

जिस सराय में पराठा गोश्त की दूकान थी उसी में इब्रार रिजवी एक घर में रहता था।

नौजवान शिया मुसलमान। शादी हो चुकी थी। सरदार जाफरी जब बलरामपुर आते उनसे मिलता। वह उर्दू शेर बड़े अंदाज से पढ़ता सुनाता। उसने मेरे मन में मजाज की कविता के प्रति रुचि जगाई। मजाज की कविता में मुझे ऐसा भाव, तीव्रता और बेचैनी, कुछ कर गुजरने की आवाज सुनाई पड़ती जो विह्वल कर देती—

ए गमे दिल क्या करूं  
ए वहशते दिल क्या करूं  
सैकड़ों सुल्तान जाबिर हैं नजर के सामने  
सैकड़ों चंगेज नादिर हैं नजर के सामने  
बढ़के इस सुल्तान के हाथों से खंजर छीन लूं  
ताज पर उसके चमकता है जो पत्थर तोड़ दूं  
कोई तोड़े या न तोड़े मैं ही बढ़कर तोड़ दूं

आरएसएस का जुनून धीमा पड़ रहा था। इधर उधर देखने की एक आतुरता बढ़ रही थी। इस आतुरता में फिल्मों का बहुत बड़ा हाथ था। याद रखिये वह काल हिंदी सिनेमा का स्वर्णयुग था।

अगले अंक में जारी

## सेवासदन : हुस्न का बाजार या सेवा का सदन

गरिमा श्रीवास्तव

यह प्रेमचंद के उपन्यास 'सेवासदन' का शती वर्ष है। सौ वर्ष पहले लिखी गयी इस कृति का पुनर्पाठ प्रस्तुत कर रही हैं महत्वपूर्ण आलोचक गरिमा श्रीवास्तव।

हिंदी में 'सेवासदन' और उर्दू के उपन्यास 'उमराव जान अदा' के प्रकाशन में लगभग बीस वर्ष का अंतराल है। 'उमराव जान अदा' का प्रकाशन 1899 में हुआ और 'बाजारे हुस्न' लगभग 1916-17 में लिखा गया, जिसका हिंदी संस्करण 'सेवासदन' शीर्षक से 1918 में आया। 24 फरवरी 1917 को प्रेमचंद ने मुंशी दयानारायण निगम को 'बाजार ए हुस्न के बारे में लिखा था— "मैं आजकल किस्सा लिखते लिखते नाविल लिख चला। कोई सौ सफे तक पहुंच चुका है। इसी वजह से छोटा किस्सा न लिख सका। अब इस नाविल में ऐसा जी लग गया है कि दूसरा काम करने को जी ही नहीं चाहता। किस्सा दिलचस्प है और मुझे ऐसा ख्याल होता है कि अबकी बार नाविल नवीसी में भी कामयाब हो सकूंगा।"<sup>1</sup> 'सेवासदन अपने मूल रूप में उर्दू में तैयार था, जिसके बारे में अमृत राय ने लिखा कि "बाजारे हुस्न में मुंशीजी को अपनी जमीन मिल गई है। समाज में जितनी बेईमानी है, ढोंग ढकोसला है, उन पर चोट करने वाले किस्से लिखना ही उनकी अपनी बात होगी।" प्रेमचंद 'नाविल निगार' के तौर पर सेवासदन से प्रतिष्ठित हुए, और रुसवा के साथ भी यही हुआ। दोनों रचनाएं बहुध्वन्यात्मक हैं और इन दोनों उपन्यासों में बतौर नायिका ऐसी स्त्री का चित्रण किया गया जो किन्हीं कारणों से 'पतिता' की श्रेणी में आती है। ये दोनों उपन्यास अपने अपने ढंग से अपने समय समाज की कथा कहने के साथ स्त्री की वकालत स्वतंत्र अभिकर्ता के रूप में और यौनिकता के प्रति सजग स्वतंत्र मनुष्य के नजरिए से करते हैं। 'सेवासदन' के प्रकाशन को सौ वर्ष बीत चुके हैं और इन सौ वर्षों में इस उपन्यास की पड़ताल विभिन्न दृष्टिकोण से की

जा चुकी है। यह विश्व के विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम का अनिवार्य हिस्सा है और सभी प्रमुख देशी विदेशी भाषाओं में अनूदित है। यह आलेख 19वीं शती के उत्तरार्ध और बीसवीं शती के पूर्वार्ध में स्त्री यौनिकता के प्रश्न पर भारतीय लेखकों के रवैये की पड़ताल करने का प्रयास है। साथ ही उर्दू और बांग्ला में प्रेमचंद के समकालीन रचनाकारों के स्त्री संबंधी रुझान का विश्लेषण भी इसमें अंतर्गुम्फित है। इसमें सेवासदन के उर्दू और हिंदी संस्करणों की तुलना का भी प्रयास किया गया है।

यह तय है कि स्त्री की चेतना का निर्माण न केवल सिर्फ जैविकता और दैनंदिन जीवन की स्थितियां करती हैं, बल्कि उसकी चेतना के निर्माण में 'सामुदायिकता' की भूमिका प्रमुख होती है। अपने समुदाय में उनके कुछ आदर्श होते हैं। ऐसे तमाम संरचनात्मक अवसर, जो स्त्री को स्त्री होने के कारण मिलते हैं वे परिवार, समाज और समुदाय के अंतर्गत ही उन्हें उपलब्ध होते हैं। इन्हीं से स्त्रियों की अंतश्चेतना का निर्माण होता है, जिनके आधार पर वे अपनी जटिल पहचान को स्थापित करती हैं और किसी आदर्श या कर्तव्य के निर्वहन के लिए तत्पर होती हैं। लेकिन यह चेतना भी उनमें तभी आती है जब उन्हें एक वर्ग विशेष, समुदाय अथवा राष्ट्र के सदस्य के नाते एक वृहत्तर संस्कृति का अंग होने का अहसास हो। 19वीं सदी के उत्तरार्ध और 20वीं सदी के पूर्वार्ध का साहित्य देखें तो हमें पता चलता है कि संस्कृति के संस्थानीकरण की प्रवृत्ति समाज सुधार की अनिवार्य चिंता बनकर आई, जिसमें बाजार में स्त्री की कौन सी छवि बिकनी है यह तय था। इसमें संस्कृति भी पण्य थी और स्त्री भी। आश्चर्य नहीं कि 1899 के दौर में 'उमराव जान अदा' जितनी लोकप्रिय हुई वह हिंदी उपन्यासकारों के लिए चुनौती थी, क्योंकि छपते ही उसके दसियों संस्करण निकल गए। प्रेमचंद ने 'बाजारे हुस्न' लिखकर पाठकीय रुचि को समाज सुधार की तरफ मोड़ना चाहा, पर उर्दू में उन्हें प्रकाशक नहीं मिला और इसका हिंदी तर्जुमा 'सेवासदन' के नाम से आया जो बतौर लेखक प्रेमचंद की आशंकाओं को धता बताते हुए आज की भाषा में कहें तो 'बेस्ट सेलर' साबित हुआ। 'सेवासदन' की सफलता से प्रेमचंद कितने उत्साहित थे इसका पता दयानारायण निगम को 25 अक्टूबर 1919 को लिखे उनके पत्र से चलता है : "...किस्से शायद मैं लिखूं या न लिखूं, आजकल बाजारे हुस्न की सफाई और नए नाविल की तसनीफ में बेहद मसरूफ हूं। बाजारे हुस्न का गुजराती तर्जुमा शायी हो रहा है...हिंदी में लोग इसे बेहतरीन नाविल खयाल करते हैं।"<sup>2</sup> मिर्जा हादी रुसवा और प्रेमचंद दोनों ने तवायफ बन गई स्त्रियों का चित्रण किया। मिर्जा साहेब गदर के बाद 1858 के लखनऊ की पैदाइश थे और प्रेमचंद 1880 के बनारस के पास के गांव लमही की। मिर्जा हादी रुसवा को शहराती स्वभाव विरासत में मिला था। इसके बरअक्स प्रेमचंद को ग्राम्यता मिली थी। अपने जीवन का बड़ा हिस्सा शहर में बिताने के बावजूद प्रेमचंद शहर के मनमाफिक मिजाज में ढल नहीं सके थे। दोनों रचनाकार फारसी और उर्दू में निष्णात थे और आजीविका के तौर पर दोनों ने लेखन को ही अपनाया, प्रेमचंद का अपना छापाखाना था; वहीं मिर्जा साहेब रासायनिक और खगोलीय प्रयोगों के साथ अपराध कथा और जासूसी उपन्यास लिखने और पढ़ने का शौक रखते थे। प्रेमचंद, लेखन को सामाजिक सरोकार और राष्ट्रीय उत्तरदायित्व से जोड़कर देखते थे। इन दोनों लेखकों को अपने शुरुआती उपन्यास ने ही सफलता के शिखर पर पहुंचा दिया। हालांकि हादी ने 'उमराव जान अदा' से पहले 'अफशां ऐ राज' शीर्षक उपन्यास लिखा पर वह अपूर्ण था और प्रेमचंद तो 'बाजारे हुस्न' को एक कहानी मानकर ही लिख रहे थे, जिसकी चर्चा उन्होंने जनवरी 1917 में मुंशी दयानारायण निगम को लिखे पत्र में की थी—'मैंने इसे कहानी के रूप में लिखना शुरू किया था, पर अब उसे उपन्यास के रूप में लिख रहा हूं।'<sup>1</sup>



‘सेवासदन’ का मुख्य कथानक है— स्त्रीत्व के आदर्श से सुमन का पतन और उसके पुनः उत्थान का प्रयास, उधर ‘उमरावजान अदा’ का कथानक तवायफों के जीवन के अंदरूनी कार्यव्यापार, बाजार में बैठी स्त्री की तहजीब, रचनात्मक रुझानों और लोकप्रियता के व्याज से अपने समय समाज से निर्मित हुआ है। ‘सेवासदन’ में प्रेमचंद सुमन से सुमनबाई बन जाने वाली स्त्री के पतन की कहानी सुनाते हैं और ‘उमराव जान अदा’ में हादी रुसवा अमीरन से उमराव बनी रेखी कहने वाली तवायफ की कहानी सुनते हैं। ‘सेवासदन’ के छपते छपते मिर्जा हादी के उपन्यास को बीस वर्ष बीत चुके थे और इन बीस वर्षों का अंतराल उत्तर भारत में आ रहे बहुत से सांस्कृतिक सामाजिक बदलावों और आहतों का अंतराल है। इसलिए ‘सेवासदन’ पर बात करने के लिए ‘उमराव जान अदा’ से होकर गुजरना जरूरी है। मिर्जा हादी रुसवा ‘उमराव जान अदा’ को आपबीती या आत्मकथा या जीवनी कहने के पक्ष में हैं और भूमिका में लिखते हैं : अपनी आपबीती, वह जिस कदर कहती जाती थीं, मैं उनसे छुपा के लिखता जाता था। पूरी होने के बाद मैंने मसीदा लिखाया। इस पर उमराव जान बहुत बिगड़ीं। आखिर खुद पढ़ा और जा बजा जो कुछ रह गया था, उसे दुरुस्त कर दिया। मैं उमराव जान को उस जमाने से जानता हूं, जब उनकी नवाब साहब से मुलाकात थी। उन्हीं दिनों मेरा उठना बैठना भी, अक्सर उनके यहां रहता था। बरसों बाद फिर एक बार उमराव जान की मुलाकात नवाब साहब से उनके मकान पर हुई, जब वह उनकी बेगम साहिबा की मेहमान थीं। इस मुलाकात का जिक्र आगे है। इसके कुछ अर्से बाद उमराव जान हज करने चली गईं।

उस वक्त तक की उनकी जिंदगी की तमाम घटनाओं को मैं निजी तौर से जानता था। इसलिए मैंने यह किस्सा वहीं तक लिखा, जहां तक मैं अपनी जानकारी से उनके बयान के एक एक लफ्ज को सही समझता था। हज वापसी के बाद उमराव जान खामोशी की जिंदगी बसर करने लगीं। जो कुछ पास जमा था उसी पर गुजर औकात थी। वैसे उनको किसी चीज की कमी नहीं थी। मकान, नौकर चाकर, आराम का सामान, खाना पहनना, जो कुछ पास जमा था, उससे अच्छी तरह चलता रहा। वह मुशायरों में जाती थीं, मुहर्रम की मजलिसों में सोज पढ़ती थीं और कभी कभी वैसे भी गाने बजाने के जलसों में शरीक होती थीं।

इस आप बीती में जो कुछ बयान हुआ है, मुझे उसके सही होने में कोई भी शक नहीं है। मगर यह मेरी जाती राय है। नाजरीन की अख्तियार है, जो चाहें समझें।”<sup>3</sup> इसके बाद पाठक बच्ची अमीरन के उमराव जान अदा में तब्दील होने और यश के शिखर पर पहुंचने के बाद स्वयं को पतित श्रेणी की स्त्री के रूप में पहचानने और फिर बदले जमाने में अपने अकेलेपन को अपना कर हज पर जाने और इस शेर के साथ उपन्यास के अंत तक की यात्रा करता है।

**मरने के दिन करीब हैं, शायद कि ऐ हयात**

**तुझ से तबीयत अपनी बहुत सेर हो गई<sup>4</sup>**

उमराव की जीवन यात्रा फूलों भरी पगडंडी नहीं है। बचपन में अपहरण का शिकार हो वह खानम के कोठे पर आ बिकी। मौलवी साहेब से पढ़ाई लिखाई सीखी, कोठे और बाजार के माहौल ने चौदह साल की उम्र में देह की भाषा सिखा दी, तवायफ बनने की पूरी प्रक्रिया उसने तफसील से बयान की है। कैसे एक साधारण सांवले रंग की किशोरी कोठे की तहजीब का अंग बन जाती है, पर आत्मसम्मान से समझौता नहीं करती। कोठों पर आने वाले ग्राहक, सामंती समाज के अवशेषों के रूप में घिसी शेरवानी पहनने वाले खाली और भरी जेबों वाले नवाबजादे, नौजवान बिलकिस जैसी तवायफों की चालाकियों, हंसी मजाक, मान अपमान, नाच गान, शेरों सुखन से गुजरते हुए मुजरों

में जाती अपने फन के बल पर बाजार भाव से वाकिफ होते हुए धीरे धीरे वह खानम के नियंत्रण से बाहर निकल गई, कई बार छली गई। कई दोस्त बने, पर कहीं सच्चा प्रेम नहीं मिला। कई मुजरे किए पर कोई घर न मिला। अपने मन की आवाज सुनी तो धोखे खाये। बचपन में बिलुडे परिवार ने तवायफ जानकर उसे तुकरा दिया। घर गृहस्थी करने की इच्छाएं रही भी हों तो उन्हें पूरा करना संभव नहीं हो पाया, क्योंकि बाजारू औरतों को घर में जगह देना तो किसी सभ्य पुरुष के लिए संभव नहीं था। इसलिए हमपेशा स्त्रियों को वह नसीहत करती है— ‘ऐ बेवकूफ रंडी! कभी इस भुलावे में न आना कि कोई तुझको सच्चे दिल से चाहेगा। तेरा आशना जो तुझ पर जान देता है चार दिन के बाद चलता फिरता नजर आएगा। वह तुझसे हरगिज निवाह नहीं कर सकता और न तू इस लायक है। सच्ची चाहत का मजा उसी नेकबख्त का हक है, जो एक मुंह देखके दूसरे का मुंह कभी नहीं देखती। तुझ जैसी बाजारी शफतल को यह नेमत खुदा नहीं दे सकता।’<sup>5</sup>

यह नेमत है किसी का शरीकेहयात बनने की। नेमत जो गृहिणी को मिलती है, तवायफ को नहीं। तवायफ तो बाजारू ही रहेगी। इस सत्य को जानने के बावजूद उमराव का सपना है एक अदद सच्चा प्रेमी पा लेना। जो नहीं मिलना था नहीं मिला। हां इतना जरूर पता चल गया कि चाहे वह कितना ही सुरीला मर्सिया गाए, कितने अच्छे शेर कहे घर की चहारदीवारी के भीतर उसकी कोई जगह नहीं। उसे तो प्रेमियों की संतानों के जनमवार पर दुआएं गानी हैं, मजलिसों की रौनकें बढ़ानी हैं, बिना जाहिर किए कि मजलिस का मजा ले रहे सुगंधित हुक्का पीते आशिकों के वायदों में वो भी कभी थी। उसे तो बख्शीश के चंद सिक्के लेकर अपने कोठे पर लौट आना है। यह अकेली तवायफ की कथा नहीं बल्कि गृहिणी बनाम तवायफ के मुद्दे की है जिसे उन दिनों बहुत से रचनाकारों ने उठाया। मिर्जा हादी रुसवा जिस उमराव की आपबीती लिख रहे थे वह गदर के बाद के लखनऊ की तवायफ है, जिसे कलावंत नहीं पतित स्त्री का दर्जा दिया जाना ब्रिटिश राज के कानूनों की बंदोबस्त है। इस प्रसंग में उत्तर भारत की कोठा या तवायफ संस्कृति पर एक नजर डाल लेना जरूरी है, क्योंकि सन् 1858 से 1877 के म्युनिसिपल रिकार्ड रूम के खातों में अधिकतम कर देनेवालों में वे स्त्रियां हैं जिन्हें रिकार्ड्स में ‘नाचने और गाने का व्यवसाय करने वाली लड़कियां’ कहा गया। नागरिक कर खातों में संयुक्त प्रांत की इन तवायफों के संपत्ति स्रोतों में बगीचे, घर, खेत, दुकानों की पूरी सूची हमें मिलती है जिनकी गिनती ब्रिटिश राज के खिलाफ विद्रोहियों का साथ देने वाले नागरिकों में की गई। गदर के बाद इन तवायफों को सत्ता के खिलाफ षड्यंत्र रचने, विद्रोहियों को आश्रय देने और नवाब वाजिद अली शाह के पक्षधरों के रूप में चिन्हित किया गया। तवायफों को ब्रिटिश सरकार द्वारा निरंतर मेमोरेण्डम दिए जाते थे, लखनऊ और अन्य सैनिक छावनियों के लिए इन्हें खतरा माना जाता था, क्योंकि जितने ब्रिटिश सैनिक गदर में नहीं मरे उनसे तीन गुना ज्यादा यौन रोगों से मरे। यह अनुभव किया गया कि स्वस्थ छावनियों में ही सैनिक रोगमुक्त रह सकते हैं। इसलिए ‘संक्रामक रोग अधिनियम 1864’ पारित कर वेश्याओं की चिकित्सा जांच तथा उनका पंजीकरण अनिवार्य कर दिया। “अखबारों में खबरें प्रकाशित हुईं कि अनेक वेश्याओं ने पुलिस उत्पीड़न से तंग आकर आत्महत्या कर ली।”<sup>6</sup> इस अधिनियम के आने के पहले ही, यानि 1856 में, अवध में तवायफों को मिलने वाली पेंशन पर अंग्रेजों की टेढ़ी नजर पड़ गई थी। 1857 में तो वे संदेह के घेरे में आ गई थीं, लेकिन 1864 से तो वे अति साधारण देह श्रमिकों में तब्दील हो गईं। वे स्त्रियां जो साहित्य संस्कृति, कला की वाहिकाएं बनकर पुराने समय से ही शासन, सत्ता और संस्कृति में सम्मानित हुआ करती थीं, बदले समय में अपनी कलाओं के साथ भरण पोषण के लिए बाजारों में बैठने लगीं। ब्रिटिश कानूनों ने उन्हें बेहद दीनावस्था में पहुंचा दिया; अब वे ‘सिंगिंग एंड डांसिंग गर्ल्स’ बनकर सिविक टैक्स खातों में कर अदाकर्ता थीं।

ये बदले समय की नई तरह की चुनौतियां थीं, जहां एक तरफ सभ्य नागरिक समाज था जो इन तवायफों पर टैक्स लगा रहा था साथ ही उनके साथ अपने संपर्कों को अवैध समझता था और कानूनी प्रावधानों के तहत इनकी मेडिकल जांच करवाता था। शरीर के निरीक्षण परीक्षण से बचने के लिए ये अक्सर नर्सों, दाइयों और पुलिस को उत्कोच देती थीं। अपने अस्तित्व को बचाने के लिए उनकी ये रणनीतियां थीं।

### झूला किन डारो रे अमराइयां : स्त्रीत्व का उत्सव

इस पेशे के पारंपरिक स्वरूप को संदेहास्पद बना दिए जाने के बावजूद पुरुषों की दुनिया में ये औरतें एक विशिष्ट सत्ता और पहचान के साथ उपस्थित रहीं। जिस बृहत्तर समाज का वे अंश हैं उसने दिन के उजाले में उनसे गुरेज किया और रात की रोशनी में संग की कामना की। इन तवायफों के जीवन में पुरुष सत्ता परंपरागत अर्थों में न थी, न है। अपने दायरे में गाने बजाने वाली स्त्रियां अपनी यौनिकता के साथ हमेशा उत्सवित रहीं, और यदि फ्रायडीयन सिद्धांत को मानें तो यौनिकता एक नैसर्गिक काम प्रवृत्ति है जो सामाजिक नीति नियमों से विद्रोह करती है। अपनी स्वच्छंद परवाज के लिए जो पंख पा जाए तो आत्मा को मुक्त कर डालती है। जंजीरों में जकड़ दी जाए तो दमित कुंठा बनने में वक्त जाया नहीं करती। वही यौनिकता संस्कृति का सहारा लेकर कभी इन स्त्रियों को सम्मानित तो कभी अपमानित करती रही। लेकिन अपने समूह, अपने कोठों के दायरे में ये यौनिकता का सिर्फ उत्सव मनाती रहीं बल्कि सैकड़ों हजारों लोगों जिनमें पुरुष, बच्चे, ख्वाजासरा, हाशिये पर धकेल दिए गए बुजुर्ग, दिवालिया हो चुके ग्राहक, विभिन्न प्रकार के छोटे मोटे काम करने वाले मसलन कहार, धोबी, फूल बेचने वाले, पनवाड़ी, मद्य विक्रेता आदि को रोजगार मुहैया कराती रहीं। जहां ये गई वहां दर्जी, हज्जाम, रंगरेज, हलवाई, किराने सर्राफे की दुकानें खुलती गईं या यूँ कहें कि इन स्त्रियों से बाजार बसते गए और कोठों के भीतर अपनी अलग अस्मिता का उत्सव ये बनाती दीखीं। जो भीतर ही भीतर जीवन राग की तरह बजता रहा। उन्होंने अपने निजी मंतव्यों, परिभाषाओं, विवरणों के साथ जीना सीखा। औपनिवेशिक भारत द्वारा प्रदत्त अपमानों ने उन्हें और चतुर और व्यावहारिक बनाया और वे अपने स्त्रीत्व के साथ एक दूसरी दुनिया रचने में कामयाब रहीं। इनमें से कुछ या बहुत की अभिलाषा गृहस्थित बनने की भी रहा करती। एक लंबे समय तक बहुविवाह या रखैल की हैसियत से एकनिष्ठ प्रेम में भी मुब्तिला रहा करतीं और इसके डेरों प्रमाण भी मिलते हैं। दूसरी तरफ बड़े सेठों, रसूखदार लोगों से संपर्क के कारण वे सत्ता को भी प्रभावित किया करतीं और अपने संपर्कों के जरिए कई जरूरतमंदों का भला किया करतीं। इसके प्रमाण भी मिलते हैं कि संपन्न तवायफें बुजुर्ग हो चुके तबलचियों, सारंगियों, मौलवियों, चौकीदारों को पेंशन दिया करती थीं। साथ ही वयस प्राप्त, रोगी बुजुर्ग तवायफों की देखभाल और इंतजाम करने की मानवीय संस्कृति का पोषण भी कई कोठों में किया जाता था। अवध के नवाब वाजिद अलीशाह के निष्कासन के बाद उनकी पनाह में रहने वाली तवायफों ने दरबारी संस्कृति के सलीके और तहजीब को संभाले रखा। आज भी उनकी वंशज लखनऊ में हैं जो गर्व के साथ अपनी पूर्वजाओं का जिक्र करती हैं, जिनके कोठों पर कन्याजन्म पर उत्सव मनाया जाता है और पुत्रजन्म पर मनहूसियत छा जाती है। अपने समय में ये तवायफें काफी रुतबेदार थीं। 18वीं शताब्दी में उन्होंने स्वयं को अवध के दरबार में स्थापित कर लिया था। अब्दुल हलीम 'शरर' लिखते हैं कि—“लखनऊ की वेश्याएं आमतौर पर तीन जातियों की थीं एक तो कंचनिया जो असली रंडियां थीं और उनका पेशा आम तौर पर सतीत्व बेचना था ...दूसरी चूनेवालियां थीं जिनका असली पेशा चूना बेचना था मगर बाद में बाजारी औरतों के गिरोह में शामिल हो गईं

और अंत में जाकर उन्हें बड़ी ख्याति मिली। चूने वाली हैदर जिसका गला मशहूर था और समझा जाता था कि उसका सा गला किसी ने पाया ही नहीं, इसी जाति की थी और अपनी बिरादरी की रंडियों का बड़ा गिरोह रखती थी। तीसरी नागरानियां थीं। तीनों वे बाजारी स्त्रियां हैं जिन्होंने अपने गिरोह कायम कर लिए हैं और बिरादरी रखती हैं वरना बहुत सी और कौमों की औरतें भी आवारगी में पड़ने के बाद इसी गिरोह में शामिल हो जाती हैं...जोहरा और मुशतरी कवयित्रियां और गायिकाएं ही नहीं उच्चकोटि की नर्तकियां भी थीं।<sup>7</sup> उधर अवध के वजीर रहे हकीम मेंहदी ने अपनी सफलता के पीछे प्यारी नामक तवायफ की भूमिका का जिक्र किया है। अवध की तहजीब और गायन नृत्य कलाओं को बचाए रखने का काम इन तवायफों ने किया, हिंदुस्तानी संगीत और कथक जैसी नृत्य शैली इन्हीं के संरक्षण में पुष्पित पल्लवित हुई। अब्दुल हलीम 'शरर' ने रेख्ती (उर्दू का एक काव्यांग) में रचना करने वाली बहुत सी तवायफों का जिक्र 'गुजिश्ता लखनऊ' में किया है। लखनऊ की तवायफें लंबे समय तक वहां की जटिल सोपानिक समाज व्यवस्था का अंग बनी रहीं। चौधराइन के नेतृत्व में कोठा चलता था, जो अब भी नई उम्र की लड़कियों को तवायफ बनने के कायदे सिखाती हैं। संपन्न और आभिजात्य वर्ग के लोग इनके सरपरस्त बनते थे, जो नई बनी तवायफों को धन देकर खरीद लेते थे, जिसमें से चौधराइन को एक तिहाई हिस्सा बतौर कमीशन मिला करता था। इन तवायफों के अलावा अपहृत या खोयी हुई लड़कियां भी थीं, जिन्हें रंडी कहा जाता था और जो कोठे में रहती थीं और तवायफों की अपेक्षा कम इज्जत पाती थीं। इनके अलावा पर्देदार विवाहिताएं जिन्हें खानगी कहा जाता था वे भी आर्थिक कारणों से कोठों से जुड़ी रहती थीं। बदले में वे अपनी आय का एक हिस्सा चौधराइन को देती थीं। चौधराइन कोठे पर परहेदार, चौकीदार, दरजी, कहार को तनखाहें देती थीं, कोठों के निचले हिस्से संगतकारों, नौकरों से आबाद रहते थे वे अक्सर उनके लिए खुफियागिरी कर पुलिस से बचाते थे।

### दशते जनों की सैर में बहला हुआ था दिल जिंदा में लाये फिर मुझे अहबाब घर के।

मिर्जा हादी रुसवा उर्दू के वे पहले साहित्यकार हैं जिन्होंने कोठों और तवायफों की जिंदगी का अत्यंत प्रामाणिक वर्णन किया है। शाखिब रुदौलवी का कहना है कि 'उमराव जान' में 19वीं सदी का लखनऊ पूरी तरह से उजागर हुआ है और यही इस नॉवेल की खूबी है। हालांकि बतौर लेखक रुसवा की गहरी दिलचस्पी अपराध कथाओं में थी। उन्होंने खूनी शृंखला में कई उपन्यास लिखे थे। उनकी पैनी नजर ने लखनऊ की तवायफों के जीवन को देखने में मदद की होगी, इसलिए वे संक्रमणकालीन अवध प्रांत की सामाजिक राजनैतिक स्थितियों को 'उमराव जान अदा' में उकेर सके। तवायफें जो अवध की संस्कृति का अविभाज्य अंग थीं, रुसवा के देखते न देखते उन्हें जबरन देश भर में फैली 110 ब्रिटिश सैन्य छावनियों में भेजा जाने लगा। इससे न सिर्फ इस पेशे का अमानवीकरण हुआ बल्कि तवायफों को गर्हित दृष्टि से देखा जाने लगा। माना जाने लगा कि कोठों पर अपहृत, घर्षित, बलात्कृत स्त्रियां ही जाती हैं। ब्रिटिश राज ने इनके सांस्कृतिक अवदान को सिरे से नकार दिया। जबकि सच्चाई यह थी कि इनमें अपहृत लड़कियों का प्रतिशत बहुत कम होता था, बाल विधवाएं, घर से सताई, उत्पीड़ित, भूखी, धनहीन, अशिक्षित, आश्रयहीन, महामारियों में परिवार को खो देने वाली और कुछ नाच गान में गहरी रुचि रखने वाली स्त्रियां होती थीं। कुछ ऐसी स्त्रियों ने भी कोठों की राह पकड़ी जो परिवार और पितृसत्ता की अधीनता से तंग आ चुकी थीं। स्त्रियों में अशिक्षा, रोजगार के अवसरों का अभाव और पितृसत्तात्मक मूल्यों की दबंगई के कारण कइयों को तवायफ का पेशा अपनाना पड़ा और कालांतर में वे मात्र देह श्रमिकों में

अवमूल्यित या रिड्यूस हो गई। उधर पश्चिम में भी उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी उपन्यासों में इन्हें अमर्यादित जीवन जीने वाली स्त्रियां कहा गया और उनके भीतर चलने वाले पाप पुण्य के द्वंद्व को जगह दी गई। इस दौर के उपन्यासों में मर्यादित बनाम पतित स्त्री का द्वित्व विलोम रचा गया, जिसे पाठकों में लोकप्रियता हासिल हुई। विक्टोरियन शुद्धतावादी मूल्यों की प्रतिस्थापना में इस तरह के कथानकों ने ध्यान आकर्षित किया। औपनिवेशिक भारत में, विशेषकर बंगाल और आगे चलकर उत्तर प्रदेश में भी, समाज में स्त्री पुरुषों की अनियंत्रित यौनिकता की आलोचना की गई। स्त्री की आकांक्षा और यौनिकता अब विशेष संदेह और नियंत्रण के घेरे में थी। समाज सुधारकों को यह समझ में ही नहीं आया कि ये स्त्रियां जैसी भी, जिस रूप में हैं उसके पीछे संस्कृति की बहुत बड़ी भूमिका को देखा जाना जरूरी है। सामंती समाज के खोखले मूल्य, पितृसत्तात्मक व्यवस्था और लैंगिक और जातीय विभेद, दहेज, अनमेल, बाल विवाह और सबसे बढ़कर स्त्री देह को पण्य समझने की संस्कृति ने इन्हें कोठों की ओर धकेला। यह भी कि अपहरण, यौन हिंसा, अविवाहित मातृत्व की पीड़ा, निर्धनता, परिवार द्वारा परित्याग, सामाजिक घरेलू हिंसा ने अनेक स्त्रियों को देह व्यापार की ओर मुखातिब कर दिया, जहां से वापस लौटने के रास्ते बंद थे।

### चाहता हूं कि उसे पूजना छोड़ दूं लेकिन कुफ़्र जो खूं में है दीं पर नहीं आने देता

आदर्श स्त्री की जो अवधारणा प्रेमचंद को अपने समाज से मिली थी वह त्यागमयी, एकनिष्ठ, पतिप्राणा की थी। उसे समग्रता में विश्लेषित करने पर कई बिंदु आपस में गुंथे दिखाई देते हैं जिनकी अर्थच्छटाओं को समझने के लिए औपन्यासिक परिदृश्य को समग्रता में देखे जाने की जरूरत है। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के गद्य में साहित्य रूपों और कथ्य की भिन्नता के बावजूद एक ही जैसे कथानक का दोहराव यह बताता है कि राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में सांस्कृतिक मूल्यों और राजनीतिक उद्देश्य की भूमिका प्रमुख थी। प्रेमचंद के समूचे कथा साहित्य में एक खास किस्म की अंतःसूत्रता है। स्त्री संबंधी मुद्दों पर वे न तो संकीर्ण हैं न प्रतिगामी। ऐतिहासिक संदर्भ में प्रेमचंद के स्त्री पात्र परंपरागत स्त्री की भूमिका से कहीं आगे नेतृत्वकारी भूमिका की आहट देते हैं। उदाहरण के लिए आने वाले दिनों में स्त्री चेतना के विभिन्न पड़ावों का पता 'सेवासदन' की सुमन से लेकर 'गोदान' की मालती जैसी पात्र देती हैं। यहां सवाल यह है कि स्त्री संबंधी नैतिकता की अवधारणा वे कहां से ग्रहण करते हैं? साथ ही क्या वे अपने समय के एकमात्र ऐसे रचनाकार थे जो स्त्री की नैतिकता को समाज सुधार से जोड़कर देखते थे? प्रेमचंद का स्त्री संबंधी नजरिया और उनके द्वारा प्रस्तुत की गई जेंडर की छवियां समाज में स्त्रियों की स्टीरियोटाइप छवियों से कैसे प्रभावित हैं? साथ ही स्त्री यौनिकता के मुद्दे पर उनका ट्रीटमेंट क्या है यह देखने की बात है। प्रेमचंद का समय बौद्धिक संक्रमण से प्रभावित है जिसमें औपनिवेशिक समाज बनाम परंपरागत भारतीय समाज, परंपरा बनाम आधुनिकता की टकराहटें और अंतर्विरोध सामने आ रहे थे जो वस्तुतः ऐतिहासिक प्रक्रिया का ही हिस्सा है। उधर भारतीय राजनीतिक परिदृश्य पर गांधी आ और छा चुके हैं। भारतीय राजनैतिक परिदृश्य पर गांधी के आने के साथ ही स्त्री संबंधी उनके विचारों को सांस्कृतिक उत्थान से जोड़ा जाना स्वाभाविक ही था, जिसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रेमचंद में दिखाई देती है। सेवासदन में विट्ठलदास गांधी के यौनिकता संबंधी विचारों का वाहक बनकर आता है— 'महत्तर आध्यात्मिक उन्नति के लिए दुनियावी खासकर यौन सुख की इच्छा पर विजय पाना जरूरी है।' महात्मा गांधी भी मगनलाल गांधी को लिखे एक पत्र में अपनी यौनेच्छाओं पर नियंत्रण की बात करते हैं।<sup>8</sup> भारतीय आदर्श स्त्री की छवि मातृत्व से संपृक्त है। इस मातृत्व

को 'धरती मां' से जोड़कर देखा जा रहा है, स्त्री का एक अमर्यादित आचरण इस आदर्श छवि को ध्वस्त कर दे सकता है। प्रेमचंद का कहना है—“स्त्री में स्त्रीत्व ही नहीं, बल्कि मातृत्व भी होना चाहिए। जब तक वह भाव न हो, तब तक किसी से प्यार, पालन कुछ भी संभव नहीं।”<sup>9</sup> यह छवि भारतीय जन की अपनी है नितान्त निजी; ब्रिटिश प्रभुओं का कोई दखल नहीं, जिसे बाहरी आक्रमणकारियों, हमलों से बचाना है। इसलिए प्रेमचंद स्त्री में उन गुणों की स्थापना और कल्पना करते हैं जिसे शिक्षा द्वारा नई स्त्री छवि का आदर्श वहन करना था।<sup>10</sup> इसके अलावा प्रेमचंद को विरासत में या तो तिलिस्मी, ऐय्यारी, जासूसी उपन्यास मिले थे या देवरानी जैतानी की कहानी, वामा शिक्षक जैसी पुस्तकें, जिन्हें 'कंडक्ट बुक्स' या आचरण पुस्तक कहा गया है।<sup>11</sup> इधर गांधी ने निजी और आश्रम जीवन में स्त्री संबंधी प्रयोग किये। उनका मानना था कि स्त्रियों में सहनशीलता पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा होती है। गांधी जी का कहना था कि “भारत से केवल अंग्रेजों को और उनके राज्य को हटाने से भारत को अपनी सच्ची सभ्यता का स्वराज नहीं मिलेगा। हम अंग्रेजों को हटा दें और उन्हीं की सभ्यता और उन्हीं के आदर्श को स्वीकार करें तो हमारा उद्धार नहीं होगा। हमें अपनी आत्मा को बचाना चाहिए। भारत के लिखे पढ़े लोग पश्चिम के मोह में फंस गए हैं। जो लोग पश्चिम के असर तले नहीं आए हैं, वे भारत की धर्मपरायण नैतिक सभ्यता को मानते हैं। उनको अगर आत्मशक्ति का उपयोग करने का तरीका सिखाया जाए, सत्याग्रह का रास्ता बताया जाए, तो वे पश्चिमी राज्य पद्धति का और उससे होने वाले अन्याय का मुकाबला कर सकेंगे तथा शस्त्रबल के बिना भारत को स्वतंत्र करके दुनिया को भी बचा सकेंगे।” आगे वे यूरोप की सभ्यता और वहां की संसद को 'वेश्या' कहते हैं “...जैसे बुरे हाल बेसवा के होते हैं, वैसे ही सदा पार्लियामेंट के होते हैं। “... यह सभ्यता तो अधर्म है और यह यूरोप में इतने दरजे तक फैल गई है कि वहां के लोग आधे पागल जैसे देखने में आते हैं। उनमें सच्ची कुबत नहीं है; वे नशा करके अपनी ताकत कायम रखते हैं। एकांत में वे बैठ ही नहीं सकते। जो स्त्रियां घर की रानी होनी चाहिए, उन्हें गलियों में भटकना पड़ता है, या कोई मजदूरी करनी पड़ती है। इंग्लैंड में ही चालीस लाख गरीब औरतों को पेट के लिए सख्त मजदूरी करनी पड़ती है, और आजकल इसके कारण 'सफ्रेजेट' का आंदोलन चल रहा है।”<sup>12</sup>

स्पष्ट है कि गांधी जी के लिए देह श्रमिक स्त्रियां बहुत सम्मान की पात्र नहीं हैं, यानि यौनिकता की बात तो दूर वे स्त्रियों के स्वावलंबन की भी आलोचना यूरोपीय संदर्भों में करते देखते हैं। भारतीय राजनैतिक परिदृश्य पर गांधी के आने के साथ ही स्त्री संबंधी उनके विचारों को सांस्कृतिक उत्थान से जोड़ा जाना स्वाभाविक ही था, जिसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रेमचंद के यहाँ दिखाई देती है। इसी कारण से ममता, त्याग, समर्पण, सहनशीलता को विशिष्ट गुण माना गया और जिसके कारण स्त्रियों को पुरुषों से श्रेष्ठ माना गया और प्रेमचंद ने इन गुणों को वहन करने वाले पुरुष को 'देवता' की उपाधि दे डाली। गांधी जी की तरह प्रेमचंद भी पश्चिमी तर्ज पर मध्यवर्ग या शहरी बुर्जुआ की ओर नहीं देखते बल्कि हाशिये पर पड़े किसान, मजदूर और औरतों पर अपना ध्यान केंद्रित करते हैं। वे गांधी से एक कदम आगे जाकर क्रांतिकारी भूमिका निभाते देखते हैं जिसे विशिष्ट कालखंड और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में ही समझा जा सकता है। यहीं पर उनका लिखा हुआ साहित्य प्रचलित मानसिकता के अंतर्विरोधों को व्यक्त करता दीखता है। यद्यपि प्रेमचंद अपने निबंधों और कहानियों में स्त्री प्रश्नों पर उपन्यासों की अपेक्षाकृत ज्यादा प्रगतिकामी दिखाई देते हैं, लेकिन यथार्थ का दबाव उन पर इतना ज्यादा है कि समाजसुधार के एजेंडे को लेकर चलने के बावजूद क्रांतिकारी किस्म की प्रगतिशीलता को उनके पाठक स्वीकार नहीं कर पाते। संभवतः इसीलिए उनकी वे कहानियां लोकप्रियता अर्जित करने से रह जाती हैं, जो इस

पैटर्न पर रची गई हैं। प्रेमचंद के उपन्यास हमें इस बात का पता देते हैं कि कैसे संस्कृति का सांस्थानिकीकरण किया जाता है और साहित्य भी उसी संस्कृति का हिस्सा है जिसमें बाजार में स्त्री की कौन सी छवि बिकनी है यह तय होता है। यह भी कि संस्कृति भी बाजार में बिकने की वस्तु है। प्रेमचंद समाज की गतिविधियों को शब्द और संवाद ही नहीं देते, बल्कि उसमें दखल भी देते हैं। शांता जो अपनी सगी बहन को अपने घर में सम्मान नहीं दे सकी उसके पतिव्रत के बारे में प्रेमचंद की सुमन सोचती है—“उसके मन ने कहा जिसे पतिव्रत जैसा साधन मिल गया है, उसे अब और किसी साधन की क्या आवश्यकता? इसमें सुख संतोष और शांति सब कुछ है।” इसलिए सदन के गायब हो जाने पर भी शांता अपना पातिव्रत्य नहीं छोड़ती और अंततः उसे इसका पुरस्कार भी मिलता है एक सुखी परिवार के रूप में। प्रेमचंद सुमन को उसके विलोम में रूप में चित्रित करते हैं, जो चली आती हुई रूढ़ियों से अलग हटकर चलने का प्रयास करती है। वह अपने बल पर जीना चाहती है, पातिव्रत्य की महिमा को समझने का प्रयास नहीं करती, इसलिए मुंह की खाती है। जैसे प्रेमचंद चहारदीवारी के भीतर तो स्त्री स्वावलंबन के पक्षधर हैं लेकिन स्त्री के घर के बाहर नौकरी करने को वे बहुत सम्मान नहीं दे पाते जिसे वे पत्नी शिवरानी देवी के साथ अंतरंग संवादों में खुलकर अभिव्यक्त करते हैं। शिवरानी देवी ने उनसे संवाद का हवाला देते हुए लिखा है—

“मैं बोली— मैं देखती हूँ कि यहां भी काफी स्त्रियां नौकरी करने लगी हैं।

“आप बोले— नौकरियां करने लगी हैं, मगर वह अच्छा नहीं है, मैं इसको अच्छा नहीं समझता। अब इसका नतीजा क्या हो रहा है? अब पुरुष और स्त्री दोनों नौकरियां करने लगे, तब इसके माने क्या हैं? रुपये ज्यादा आ जाएंगे। उसी का तो यह फल है कि पुरुषों की बेकारी बढ़ रही है।

“मैं बोली— कुछ हो स्त्रियों की कुछ अपनी कमाई तो रहती ही है। आप बोले— यह कमाई का सवाल अभी थोड़े दिनों से उठा है, नहीं तो पहले स्त्रियों की कमाई एक पैसा नहीं होती थी और स्त्रियां काफी दबदबे के साथ घर पर शासन करती थीं।”<sup>13</sup> प्रेमचंद अपने विचारों में सुदृढ़ हैं, वे परंपराओं की आलोचना तो करते हैं लेकिन सुमन जैसी स्त्री जो परंपरागत खांचे में नहीं आती, उसकी तवालत और मुसीबतों को खूब बढ़ा चढ़ाकर चित्रित करते हैं। वे मेटा लिटरेरी फंक्शन के तहत काम करते हैं, समाज सुधारकों का यथार्थ, जीवन की बहुस्तरीयता, स्त्री की बेचैनी, स्वातंत्र्य की पिपासा और अंत में विवश होकर सत्य की ओर लौटा लाना उनके अंतर्द्वंद्व को भी दर्शाता है। इस अंतर्द्वंद्व को बांग्ला उपन्यासों में भी देखा जा सकता है जहां इस दौर में उपन्यासकार विवाह संस्था का क्रिटीक पेश कर रहे थे। उदाहरण के तौर पर बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय का ‘कृष्णकांतार विल’ (1878) और शरतचंद्र के ‘चरित्रहीन’ (1913) को देखा जा सकता है। यह वह दौर था जब ये लेखक समाज सुधार के एजेंडे को लेकर सिर्फ चल ही नहीं रहे थे, उसका एक क्रिटीक भी रच रहे थे जिसके लिए उपन्यास विधा सबसे उपयुक्त थी। बांग्ला के उपन्यासों में सतीत्व और पत्नीत्व के महिमामंडन का क्रिटीक रचकर समाज में व्याप्त कुरीतियों को उभारा गया। इसके उदाहरण के तौर पर बंकिमचंद्र, जो पारंपरिक किस्म के सुधारवादी माने जाते थे, उनकी नायिका बाल विधवा रोहिणी के चरित्र को देखा जा सकता है जिसके भीतर विद्रोह की लपट है। ‘कृष्णकांतार विल’ में वह कहती है—“मेरी किस गलती की सजा मुझे मिली है कि मैं बाल विधवा होकर संसार के सभी सुखों से वंचित रहूँ? क्या मैं दूसरों की तुलना में ज्यादा पापी हूँ कि मुझे नियति के नाम पर सभी सुखों से वंचित रहना होगा। अपना समूचा यौवन और सौंदर्य लिए हुए, किस दुःख से अपना जीवन लकड़ी के सूखे कुंदे सा व्यतीत करना होगा।”<sup>24</sup> प्रेमचंद के ‘सेवासदन’ की तर्ज पर रोहिणी से यह अपेक्षा की जाती है कि स्त्री अपनी यौनिकता और भौतिक सुखों के बारे में न सोचे, सोचे तो सिर्फ यही कि अगले जन्म में पति पाने के लिए इस जन्म में कष्ट करना

जरूरी है। और, सुमन जैसी स्त्री को अपने चरित्र में सुधार के लिए विधवाश्रम में रहना तजवीज किया जाता है। इसके अलावा बांग्ला के उपन्यासों में एक दूसरी प्रवृत्ति भी देखी गई जो अधिक रेडिकल थी, जिसमें विधवा पुनर्विवाह की वकालत की गई ताकि उनकी स्थिति में सुधार हो सके। शरतचंद्र के 'चरित्रहीन' की नायिका बाल विधवा है। अपने प्रेमी सतीश से गहरा आंतरिक जुड़ाव होने के बावजूद वह पुनर्विवाह के लिए तैयार नहीं होती। उसे मालूम है कि सभ्य समाज इस संबंध को स्वीकृति नहीं देगा। वह अपने पक्ष में नहीं खड़ी होती। वह पुरुष के पक्ष में खड़ी होकर आत्मोत्सर्ग से पाठक की अप्रतिम सहानुभूति अर्जित कर लेती है और पाठक भावात्मक रूप से विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में खड़ा हो जाता है। इस दौर के उपन्यासों में बंगाली विधवा का जीवन विशेष रूप से रेखांकित किया गया कि कैसे पति के मरते ही विधवा स्त्री से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह स्वयं को जीवन की मुख्यधारा, समस्त सुख आराम से अलग कर ले और बेहद त्यागमय, पवित्र जीवन व्यतीत करें। तनिका सरकार ने इन विधवाओं की कठिन जीवन चर्या, इच्छाओं पर आत्मनियंत्रण, व्रत उपवास, ईश भजन समन्वित दिनचर्या का विश्लेषण किया है।<sup>15</sup> प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों में विधवा स्त्रियां समस्या के रूप में आती हैं लेकिन उनकी सिर्फ दो रचनाएं हैं जिनमें विधवा विवाह का प्रसंग आता है। 17 मई 1932 को प्रेमचंद ने रघुवीर सिंह को पत्र में लिखा— "प्रतिज्ञा और प्रेमा मैंने ही लिखे। मैंने प्रेमा 1905 में लिखा...जिसमें एक विधवा का पुनर्विवाह है...उसमें पूर्णा और अमृत का विवाह हो जाता है...विधवा के विवाह का चित्रण करके मैंने हिंदू स्त्री को उसके उच्चादर्श से पतित होते दिखाया। उस समय मैं बिलकुल युवा था, सुधार के लिए ईर्ष्यालु किस्म के उत्साह से भरा हुआ था। मैं इस किताब को उस रूप में देखना नहीं चाहता था। इसलिए मैंने उसमें सुधार किये और दोबारा लिखा।"<sup>16</sup> स्पष्ट है कि प्रेमचंद हिंदू विधवा को सतीत्व के पथ से च्युत होते नहीं देख सकते थे। 'प्रेमा' को दोबारा लिखकर उन्होंने प्रेमा द्वारा विधवा विवाह का नकार और आध्यात्मिक पथ पर उसे अग्रसर होना दिखाया। उन्होंने स्त्रियों के सुधार की तजवीज की, लेकिन उनका रवैया बड़ा कठोर रहा। हिंदू स्त्री के प्रति उनका दृष्टिकोण गंभीर विवेचन का विषय है, क्योंकि उनके पुरुष पात्र जो पतित हो गए हैं, उन्हें सुधरने के पर्याप्त और आसान अवसर प्रेमचंद मुहैया करवाते हैं, जबकि स्त्री पात्रों को सुधरने के अवसर या तो नहीं मिलते और, मिलते भी हैं तो उसके लिए कड़े नियम और कानून हैं। तवायफों के कोठों पर जाने वाला सदन बड़ी आसानी से परिवार जनों की क्षमा का पात्र बनकर शांता के साथ गृहस्थ जीवन जीने लगता है, वहीं सुमन, जिसका, नैतिक और धार्मिक पतन हो चुका है क्योंकि उसने तवायफगिरी की है चाहे कुछ ही दिनों के लिए, उसे समाज परिवार कोई वापस स्वीकारने को तैयार नहीं। यहां तक कि पितृसत्ता से अनुकूलित मस्तिष्क वाली सगी बहन शांता भी नहीं। इसी तरह 'धिक्कार' कहानी में (फरवरी 1925) में विधवा मणि का अंत आत्महत्या में होता है, क्योंकि उसे बचाने वाला इंद्रनाथ उससे चुपचाप विवाह कर लेता है लेकिन अंततः सामाजिक और पारिवारिक अपमान की जगह वह मृत्यु का वरण करती है। इसी तरह 'प्रेमाश्रम' की विधवा गायत्री का अंत तीर्थाटन के पवित्र पहाड़ों में होता है। प्रेमचंद की रचनाएं तत्कालीन यथार्थ को अभिव्यक्त कर रही हैं, जिसमें पुरुष सभी अधिकारों से समन्वित है लेकिन मर्यादाच्युत पतित होने पर स्त्री के लिए दोबारा उठकर प्रतिष्ठा पाना असंभव है।

'कर्मभूमि' उपन्यास में प्रेमचंद ने पुरुषों के प्रति बहुत उदार दृष्टिकोण व्यक्त किया है। विवाहित अमर सकीना से प्रेम करता है, लेकिन अंततः वह परिवार की व्यवस्था में ही लौट आता है। तत्कालीन समाज व्यवस्था में स्त्री द्वारा पुरुष को गलत ठहराने का कोई अधिकार नहीं है। स्त्री हमेशा पति को उसके किये के लिए माफ कर देती है। सन्मार्ग पर लौटने के सभी रास्ते उसके



लिए खुले और स्त्री के लिए बंद हैं।

**मैं देखता हूँ जो उनकी तरफ तो हैरत है  
मेरी निगाह का वह इजतराव देखते हैं**

यहां सवाल यह है कि स्त्री संबंधी नैतिकता की अवधारणा प्रेमचंद कहां से ग्रहण करते हैं? साथ ही क्या वे अपने समय के एकमात्र ऐसे रचनाकार थे जो स्त्री की नैतिकता को समाज सुधार से जोड़कर देखते थे। प्रेमचंद का स्त्री संबंधी नजरिया और उनके द्वारा प्रस्तुत की गई जेंडर की छवियां समाज में स्त्रियों की स्टीरियोटाइप छवियों से कैसे प्रभावित हैं?

प्रेमचंद की तरह मिर्जा हादी रुसवा भी कहते हैं कि जैसा जीवन वे देखते हैं उसे वे उपन्यास में व्यक्त करते हैं, जिससे पाठक को वह जाना पहचाना नजर आता है। 'जात ऐ शरीफ' शीर्षक उपन्यास के संदर्भ में वे पाठकों से इसरार करते हैं कि 'इसे अपने समय के इतिहास के रूप में पढ़ा जाना चाहिए'। उधर प्रेमचंद का बल भी, सामाजिक कुरीतियों, गैर बराबरी की प्रवृत्तियों को उभारकर दिखाने पर है।

प्रेमचंद और मिर्जा हादी रुसवा के उपन्यासों में रूप के स्तर पर अंतर है हालांकि कथ्य में एक सीमा तक समानता है। रुसवा 'उमराव जान अदा' में आत्मकथात्मक रूपबंध को अपनाते हैं, उसमें उमराव की जीवनकथा सिलसिलेवार ढंग से बेहद प्रामाणिक ढंग से कही गई है। रुसवा उमराव से उसका अतीत पूछते हैं और उमराव उत्तर में अपनी जीवनकथा कहती है। प्लाट कई अध्यायों में बंटा हुआ है, लेकिन इतिहास की वास्तविक तिथियां सिरे से नदारद हैं। मसलन 1857 के गदर और सामाजिक उथल पुथल का थोड़ा हवाला दिया गया है लेकिन ब्योरेवार तिथियों का नितांत अभाव है। घटनाओं के दोहराव के कारण अंत तक आते आते उपन्यास अपनी संरचना में ढीला पड़ जाता है, उसके ढीले ढाले तंतुओं को बांधने की जरूरत लगती है। अमीना याकिन का कहना है कि "रुसवा की उमराव का चरित्र जटिल है जिसकी कहानी वह खुद रुसवा को सुनाती है ...रुसवा हमसे चाहते हैं, कि हम उमराव जान की कहानी को आत्मकथ्य के रूप में पढ़ें। ज्यों ज्यों कथा आगे बढ़ती जाती है वैसे वैसे कहानी की 'मैं' रुसवा की ओर स्थानांतरित हो जाती है। जिसे हम गहन पठन (क्लोज रीडिंग) कहते हैं उसके अनुसार पुरुष के रूप में रुसवा और लेखक के रूप में रुसवा परस्पर अलग अलग दीख पड़ते हैं। कथाकार रुसवा और पुरुष रुसवा पूरे उपन्यास में समय समय पर आवाजाही करते रहते हैं, रुसवा बार बार उमराव के साथ घटी घटनाओं को पूछते हैं, उमराव बहुत बार अपने बारे में बताती चलती है पर कहीं कहीं ठमक भी जाती है, कहीं कुछ बातें स्पष्ट बताना भी नहीं चाहती, कहीं अपनी यौनिकता को बहुत ही मर्यादित ढंग से काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी देती है। यहीं पर यह उपन्यास बहुअर्थछटाएं लिए हुए अपनी जटिल संरचना में पाठक को अपने साथ लिए चलता है। 1857 के आसपास के लखनऊ, कानपुर, फैजाबाद के रास्तों, पगडंडियों, सरायों, रासता घाटों, बाजार की रौनकें, चिमगोइयों से होते हुए चौक पर अपहृत अमीरन के तवायफ उमराव बनने की कहानी अपने अंत तक पहुंचती है जहां वह शैरो शायरी लिखती एकाकी लेकिन पर्देदार जिंदगी जीती हुई पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ती है, दिल में तवायफ के लिए एक गहरी अपसुर्दगी, उसके इल्म के प्रति गहरे सम्मान के साथ लिपटी चली आती है। हादी रुसवा कहीं भी तवायफों को समाज से निकालकर उन्हें हाशिये की अस्मिताएं नहीं बनाते बल्कि यह दिखाते हैं कि शिक्षा, सौंदर्य और कला समन्वित कलावंत तवायफ को सभ्य समाज, उसका अपना परिवार मर्यादा के नाम पर स्वीकार नहीं करता। वह जलसों में गाने, मुजरा करने के लिए बुलाई जाती है, उसकी कला के कद्रदान भी हैं, संग साथ, युवा शरीर के लिए इच्छा रखने वाले लोग भी हैं लेकिन विवाह संस्था में नामित, मान्यताप्राप्त स्त्री के सामने 'वह' कुछ नहीं।

विशुद्ध प्रेम, एकनिष्ठता, अर्धांगिनी का गौरव उसका प्राप्य नहीं। रुसवा इस स्त्री के लिए बहुत संवेदनशील हैं, लेकिन बतौर लेखक उन्हें उमराव के आत्म का जो मसाला चाहिए उसके लिए वे उसे बेतरह कुरेदते हैं। यहीं पर लेखक रुसवा और पुरुष रुसवा समान भावभूमि पर खड़े दिखाई देते हैं। वे मजे लेकर कोठों की आंतरिक संरचना, वैभव का वर्णन करते हैं। सिर्फ खुशीद के रूप में ऐसी तवायफ उन्हें मिलती है जो सच्चे प्रेम की तलाश में हैं, बेहद खूबसूरत लेकिन अपनी स्थिति से असंतुष्ट और इसलिए उदास। वह मेले में गायब हो जाती है और बरसों बाद नवाब की पत्नी के रूप में उमराव से मिलती है। उमराव के साथ ही बिकी बच्ची रामदेई भी बरसों बाद बेगम के रूप में उमराव को पति बच्चे समेत मिलती है, जिसका कहना है—“खुदा ने सब आरजुएं मेरी पूरी कीं। औलाद की हवस थी, खुदा के सदके से औलाद भी है...जब रामदेई ये बातें कह रही थी उमराव जान को अपनी किस्मत पर अफसोस आ रहा था और दिल ही दिल में कहती थी, तकदीर हो तो ऐसी हो। एक मेरी फूटी तकदीर। बिकी भी तो कहां! रंडी के घर में।”<sup>17</sup>

इसके बरअक्स ‘सेवासदन’ को देखें तो उसकी संरचना बिलकुल नगरीय है। सुमन की कामनाओं का पति से पूरा होना असंभव है। उसने खाता पीता बचपन और कैशोर्य देखा है। दरोगा कृष्णचंद्र की गिरफ्तारी से पूरे परिवार की आर्थिक संरचना तहस नहस हो जाती है। सावधानीपूर्वक कम खर्च में जीने का जो उपदेश 1882 में लाला श्रीनिवासदास ‘परीक्षा गुरु’ में दे रहे थे उसी तर्ज पर ‘सेवासदन’ में असावधान जीवन के व्यावहारिक पक्ष का यथार्थ चित्रण है। कृष्णचंद्र पत्नी की बात नहीं मानते : “गंगाजली चतुर स्त्री थी। उन्हें समझाया करती कि जरा हाथ रोककर खर्च करो। जीवन में यदि और कुछ नहीं करना है तो लड़कियों का विवाह तो करना ही पड़ेगा। उस समय किसके सामने हाथ फैलाते फिरोगे...दारोगाजी इन बातों को हंसी में उड़ा देते।”<sup>18</sup> रिश्वत लेकर दरोगाजी फंस जाते हैं और उधर अनमेल विवाह होता है सुमन का और वो भी गरीब घर में। अब ये हिंदू गृहिणी की मर्यादा का तकाजा है कि वह कम खर्च में बिना प्रश्न किये गृहस्थी चलाये, पर्दे और घूंघट में ढंकी रहे, सभी दुनियावी इच्छाओं को कुचल दे। सुमन ऐसा नहीं कर सकी। उसे भोली बाई के स्वातंत्र्य ने लुभा लिया। सुमन बनारस में रहती है। वही बनारस—“जहां बहुत दिनों से तवायफें नागरिक जीवन के केंद्र में रहती चली आती थीं। सभ्य समाज सिर्फ आनंद के लिए ही नहीं वरन कला, संगीत नृत्य का लुत्फ लेने के साथ साथ ऐसे आभिजात्य माहौल की खोज में इन तवायफों के पास आता था, जो सौंदर्यबोधीय दृष्टि से परिष्कृत हो। जो भी तवायफ एक बार सौंदर्य और कला में महारत हासिल कर लेती, उसे हमेशा के लिए सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती। बनारस के महाराज और सत्ताधीशों के सामने उसे अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिए कहा जाता, साथ ही सभी प्रमुख मंदिरों और पवित्र नदी गंगा की रेत पर होने वाले धार्मिक अनुष्ठानों में आमंत्रित की जाती।”<sup>19</sup> लेकिन बीसवीं शती के दूसरे दशक तक तवायफों के हालात में महत्वपूर्ण बदलाव आ चुके थे। समाजसुधार के एजेंडे ने राजनीति में खास जगह बना ली थी। समाजसुधार की नई आवाजों ने पुरानी काशी के समाज और परंपराओं को बदलकर रख दिया, विशेषकर तवायफों के संदर्भ में। इसका परिणाम यह हुआ कि तवायफों को नये सिरे से अपने लिए संरक्षक और दरबार ढूंढने पड़े। जबकि निचले दर्जे की देहश्रमिक तवायफें सैनिक छावनियों से जुड़ गईं या शहरी बाजारों में ही सैनिकों की यौन आवश्यकताएं पूरी करने लगीं। उच्चस्तरीय तवायफों ने अपने नए संरक्षकों के रूप में नव्य अभिजात्य और मध्यवर्ग में संभावनाएं तलाशीं। उमराव जैसी तवायफों ने गीत नृत्य में पारंगत होने में वर्षों लगाए थे, “इसी अर्से में मेरी भी तालीम शुरू हो गई। मेरी तबियत गाने बजाने के बहुत ही मुनासिब पाई गई...आवाज भी पक्के गाने के लायक थी। सरगम साफ होने के बाद उस्ताद ने आस्ताई शुरू करा दी। उस्ताद जी बहुत उसूल

से तालीम देते थे। हर एक राग का सुर ब्यौरा जबानी याद करवाया जाता था और वही गले से निकलवाते थे। मजाल न थी कोई सुर कोमल से अति कोमल, शुद्ध से अशुद्ध या तीव्र से तीव्रतर हो जाये ...”<sup>20</sup> वहीं बदले वक्त में लगभग बीस वर्ष के अंतराल से ‘सेवासदन’ की पकी हुई तवायफ भोलीबाई, सुमन से कहती है—“...यहां गाने को कौन पूछता है, ध्रुपद और तिल्लाने की जरूरत ही नहीं। बस चलती हुई गजलों की धूम है, दो चार ठुमरियां और कुछ थियेटर के गाने आ जाएं और बस फिर तुम्हीं तुम हो। यहां तो अच्छी सूरत और मजेदार बातें चाहिए, सो खुदा ने यह दोनों ही बातें तुममें कूट कूटकर भर दी हैं। मैं कसम खाकर कहती हूं सुमन, तुम एक बार यह लोहे की जंजीर तोड़ दो फिर लोग कैसे दीवानों की तरह दौड़ते हैं।”

### न पूछो नामाए कमाल की दिलावे जी

#### तमाम उग्र का किस्सा लिखा हुआ पाया

ये जंजीर कौन सी थी जिसे तोड़ने का जिक् भोली बाई कर रही है? इस जंजीर की गिरफ्त को उसने निजी तौर पर महसूस किया है—“जिंदगी जैसी नेमत रो रोकर दिन काटने के लिए नहीं दी गई है। जब जिंदगी का कुछ मजा ही न मिला तो उससे फायदा ही क्या? पहले तो मुझे भी डर लगता था कि बड़ी बदनामी मिलेगी, लोग मुझे जलील समझेंगे, लेकिन घर से निकलने की देर थी। फिर तो मेरा वह रंग जमा कि अच्छे अच्छे खुशामदें करने लगे...आज यहां कौन रईस, कौन महाजन, कौन मौलवी, कौन पंडित ऐसा है जो मेरे तलुए सहलाने में अपनी इज्जत न समझे।”<sup>22</sup> देखने की बात है कि अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, शिक्षा की रोजगार से असंबद्धता, पर्दा जैसे अनेक कारण हैं जो स्त्री की यौनिकता को नियंत्रित करने का प्रयास करते हैं। यही ताकतें स्त्री को मात्र ‘देह’ में रिड्यूस करती हैं। विवाह का बंधन यदि समानता और पारस्परिक सम्मान पर टिका हो तो आम स्त्री उसमें सुख तलाश लेती है। लेकिन विवाह जब अपमान की जड़ बन जाये, शिक्षा जब साक्षरता से आगे न बढ़ पाए, स्त्री जब स्वयं को दोयम दर्जे की वस्तु समझने लगे तब वह ‘देह श्रम’ की ओर जाती है, जहां उसे झूठा ही सही, सम्मान तो मिलता है। पति के घर से निकलकर आत्मसम्मान की खोज में सुमन वहां पहुंचती है, जहां उसके रूप, सौंदर्य और यौवन की कद्र तो है पर सभ्य कहे जाने वाले समाज में अब उसका चौतरफा अपमान होना तय है। इसलिए वह कोठे पर आनेवालों के साथ गंभीर नहीं, बल्कि खिलंदड़ा व्यवहार करती है। जो लोग उसकी निर्धन अवस्था के कारण दुरदुरा देते थे, वे अब चरण चापन करते हैं। पद्मसिंह जिन्होंने लोकापवाद के भय से उसे आश्रय नहीं दिया, वे हिंदू धर्म के रहनुमा हैं। वे ब्राम्हणी को पतन की गर्त में गिरते देख उसके उद्धार के लिए तत्पर हो जाते हैं। इस पूरे दौर में समाजसुधारकों द्वारा तवायफों के कोठों पर जाने को चरित्रहीनता से जोड़ा गया। इस मुद्दे पर हिंदू और मुसलमान समाजसुधारक एकमत थे। तवायफों को अश्लील माना जाने लगा, स्त्री की पहचान को हिंदू राष्ट्र और सभ्यता से संबद्ध करके देखने का प्रयास हुआ। चारू गुप्ता का कहना है कि “इस दौर में भाषा के मानकीकरण के साथ साथ साहित्य में अश्लीलता के लेशमात्र संकेत पर भी हमला बोला गया। ऐसे तत्वों को एक पतनशील और असभ्य संस्कृति की निशानी माना जाने लगा। यौन और शारीरिक आनंद के प्रति भय बढ़ने लगा। उन्हें राष्ट्र की मर्यादा का उल्लंघन माना जाने लगा। एक राष्ट्रवादी हिंदू पहचान का उभार नैतिकता और प्रतिष्ठा के साझा विचार के साथ गुंथ गया। अतीत की असुविधाजनक परंपराओं से एक सोची समझी दूरी रखी जाने लगी और एक एकांगी, उच्च, लिखित, सांस्कृतिक नियमावली स्थापित करने का प्रयास किया जाने लगा...कामुक के स्थान पर सच्चरित्रता की दिशा में हुए इस बदलाव ने लैंगिक छवियों को आमूल रूप से बदल डाला और

अधिकांश 'उच्च' साहित्य में स्त्री की कामुकता, यौनिकता और मौज मस्ती वाली छवि के स्थान पर एक शास्त्रीय और सौम्य छवि दिखाई देने लगी। साहित्य में नैतिक संहिता की वकालत एक राष्ट्रीय प्रतिमान बन गया।<sup>23</sup> लगता है स्त्री की इसी शांत और सौम्य छवि को उभारने के लिए प्रेमचंद ने सुमन का चरित्र गढ़ा। अमृतराय ने विक्टर ह्यूगो के 'ला मिजराबेल' का प्रभाव प्रेमचंद पर देखा है<sup>24</sup> जिसमें ज्यां वालाज्यां की एक बार की हुई चोरी उसे हमेशा के लिए चोर बना देती है और वहां का समाज जावेर के रूप में जीवन भर उससे निर्मम प्रतिशोध लेता रहता है। प्रेमचंद की सुमन का उठाया एक अनुचित कदम उसे जीवन भर के लिए दागी बना देता है। वह बदले हुए समय की औपनिवेशिक दृष्टि का वहन करती है जहां औपनिवेशिक दृष्टि से अपने समाज को देखने की चेतना विकसित हो रही थी, इसलिए मध्य और उच्चवर्गीय समाज तवायफों को समाज के लिए अनैतिक और उनकी हरकतों को अश्लील मानता था जो समय का तकाजा था। ये 'उमराव जान अदा' से बीस वर्ष बाद का समाज था जहां हिंदू और मुस्लिम दोनों के सुधार एजेंडे में 'सिंगिंग एंड डांसिंग गर्ल्स' का पेशा अनैतिक था जिन्हें बीच बाजार में रहने का कोई हक नहीं था। अब तवायफों के पास जाने को मुस्लिम शासकों की चरित्रहीनता से भी जोड़कर देखा जाने लगा। प्रेमचंद इन्हें पूरे समाज के लिए हानिकारक मानते थे। 'बाजार हुस्न' का हिंदी तर्जुमा करते हुए उन्होंने 15वें अध्याय में जो एक अतिरिक्त अंश जोड़ा है, वह कई दृष्टियों से मानीखेज है : "इसलिए आवश्यक है कि इन विष भरी नागिनों को आबादी से दूर, किसी पृथक स्थान में रक्खा जाय। तब उस निंद्य स्थान की ओर सैर करने को जाते हुए हमें संकोच होगा। यदि वह आबादी से दूर हो, और वहां घूमने के लिए किसी बहाने की गुंजाइश न हो तो ऐसे बहुत कम बेहया आदमी होंगे जो इस मीनाबाजार में कदम रखने का साहस कर सकें।"<sup>25</sup> देह श्रमिकों को अब संस्कृति और तहजीब की वाहिकाओं के रूप में नहीं, बल्कि उनको उन पतित स्त्रियों के रूप में देखा जाने लगा, जो युवकों को बहला फुसलाकर उनसे धन ऐंठ लेती हैं और घर टूट जाते हैं। इन तथाकथित 'पतिताओं' के बरअक्स स्त्री के वधू रूप को महिमामंडित किया जाने लगा। यद्यपि 19वीं शती के अंतिम वर्षों में ही विवाह इत्यादि के अवसर पर नाच पार्टी बुलाये जाने को फिजूलखर्ची से जोड़कर देखा गया और बहुत से जातिवादी संगठनों ने नाचनेवालों को बुलाने वालों का बहिष्कार भी किया तथा कई प्रस्ताव भी पास किये, लेकिन अब भी परंपरावादियों और सुधारवादियों में इस मुद्दे पर मतभेद उभरकर सामने आ जाते थे। 'सेवासदन' में सदन के पिता मदनसिंह बेटे की बारात में बिना नाच के जाना नहीं चाहते "...नाच के बिना जनवासा ही क्या? कम से कम मैंने तो कभी नहीं देखा...मैं भी इस प्रथा को निंद्य समझता हूं। भला किसी तरह लोगों की आंखें खुलीं, लेकिन भाई, नक्कू नहीं बनना चाहता। जब सब लोग छोड़ देंगे तो मैं भी छोड़ दूंगा...मेरे एक ही लड़का है, उसके विवाह में मन के सब हौसले पूरे करना चाहता हूं। विवाह के बाद मैं भी तुम्हारा मत स्वीकार कर लूंगा। इस समय मुझे अपने पुराने ढंग पर चलने दो..." जबकि छोटे भाई पद्मसिंह सुधार के पक्ष में हैं और काफी बहस के बाद वे बड़े भाई को नाच के आयोजन की जगह कुआं खुदवाने में निवेश करने को राजी करते हुए कहते हैं...सैकड़ों स्त्रियां जो हर रोज बाजारों में झरोखों में दिखाई देती हैं, जिन्होंने अपनी लज्जा और सतीत्व को भ्रष्ट कर दिया है, उनके जीवन का सर्वनाश करने वाले हम्हीं लोग हैं..."<sup>26</sup>

**सुन चुके हाल तवाही का मेरी, और सुनो  
अब तुम्हें कुछ मेरी तकरीर मजा देती है**

पद्मसिंह पर आर्य समाज के सुधारवाद का प्रभाव है, यह तथ्य है कि 1898 में बनारस और

लखनऊ में तवायफों पर सरकार की ओर से पाबंदी लगा दी गई और 1917 में आगरा में भी तवायफों को शहर के केंद्र से हटाने के लिए प्रस्ताव पारित किये गए। इसके लिए स्थानीय निकायों और नगर निगमों पर दबाव डालकर इसे क्रियान्वित कराया गया। हिंदुओं में आधुनिकता के साथ साथ पतिव्रता पत्नी, स्त्री शुचिता, स्त्री को मर्यादा का प्रतीक मानना एक हिंदू राष्ट्र के निर्माण के लिए अनिवार्य महसूस किया गया। हालांकि मुस्लिम बौद्धिकों और समाजसुधारकों के लिए भी स्त्री का एजेंडा महत्वपूर्ण था लेकिन कोठा संस्कृति को लेकर उनके यहां उतनी कट्टरता नहीं देखी गयी जबकि हिंदू सुधारवादियों के सुधार माडल में मुस्लिम स्त्रियों का प्रश्न प्रमुख नहीं था। संभवतः इसीलिए मिर्जा हादी रुसवा जितने साहस के साथ कोठों के आंतरिक संसार, स्त्री यौनिकता के यथार्थ चित्रण के साथ 'उमराव जान' में उपस्थित होते हैं वैसा प्रेमचंद नहीं कर पाते। बाजारे हुस्न के बारे में अमृतराय लिखते हैं, "खैर किताब छपी लेकिन कोई खास कामयाबी उसे नहीं मिली, उर्दू वालों के लिए कोठे की जिंदगी और उनके मसलों में कोई नयापन नहीं था। नजीर अहमद, सरशार और मिर्जा रुसवा जैसे लोग उसके बारे में बहुत लिख चुके थे और बहुत अच्छा लिख चुके थे।"<sup>27</sup> अमृतराय नितांत तटस्थता से बताते हैं कि कोठों की अंदरूनी जिंदगी के बारे में मुंशी जी का ज्ञान बस इतना ही था कि वे उन गलियों और बाजारों से गुजरते थे, जिनका जिक्र वे उपन्यास में सतही तौर पर करते हैं। हादी रुसवा जितना अनुभव और तवायफों की जिंदगी के छोटे बड़े ब्यौरे प्रेमचंद के पास नहीं थे और वे इस उद्देश्य से लिख भी नहीं रहे थे। "यहां तक कि जो उपन्यास मूल रूप में बाजारे हुस्न नाम से लिखा जाता है, यानि सौंदर्य, यौवन, राग, वासना, इच्छा न जाने कितनी अर्थ ध्वनियां जिसमें समाहित हैं उसी कथानक के हिंदी उल्थे को वे 'सेवासदन' सेवा का घर यानि कुछ कुछ नारी सुधार, बाल सुधार गृह, हिंदू धर्म सुधारकों की तर्ज पर नाम देते हैं।" प्रेमचंद को यही शीर्षक सबसे उपयुक्त लगा। स्त्रियों को शिक्षित करने के मुद्दे पर भी सुधारकों का जो रवैया था वह इस पत्र से जाहिर हो जाता है—"हम अपनी स्त्रियों को शिक्षित तो देखना चाहते हैं पर यदि शिक्षा का अर्थ उनका अपने मनमाफिक लोगों के साथ मनमाना मेलजोल बढ़ाना, ज्ञान में वृद्धि के साथ नैतिकता का हास जुड़ जाना, हमारे सम्मान का अवमूल्यन और घरों के अंदर की निजता का हनन हो जाये तो हम अपनी स्त्रियों को शिक्षित करने के बजाय अपना सम्मान संजोकर रखना चाहेंगे चाहे इसके लिए हमें हठधर्मी, पूर्वग्रही या सिरफिरा ही क्यों न कहा जाए।"<sup>28</sup> यौनिकता के प्रश्न पर भी हिंदू समाजसुधारकों का रवैया अलग था। यौन इच्छाओं का दमन करने, समलैंगिकता और तवायफों के पास जाने से मना करके युवकों को चारित्रिक रूप से स्वस्थ और राष्ट्र निर्माण में भूमिका निभाने के साथ साथ स्त्रियों को यह उपदेश दिया जाना जरूरी था कि समय रहते उनका विवाह हो, वे सतीत्व का पालन करें, ऐसे साहित्य से परहेज करें जिनसे मन में कामुक विचार आते हों। नैतिकता का यही दबाव प्रेमचंद को उपन्यास का शीर्षक 'सेवासदन' रखने के लिए प्रेरित करता है। इसके साथ ही स्त्री यौनिकता शुरू से ही समाज सुधारकों को चुनौती दे रही थी। रुसवा समाज सुधार का एजेंडा लेकर 'उमराव जान अदा' नहीं लिख रहे थे लेकिन यही बात प्रेमचंद के बारे में नहीं कही जा सकती। चारू गुप्ता का कहना सही है कि—"इन सभी कोशिशों के बावजूद सामूहिक धार्मिक पहचान और उस पर बनाई गई पितृसत्ता अस्थिर थी। उदाहरण के लिए, सम्मान हासिल करने की सारी ललक अपने आप में तनाव का स्रोत थी। अंतरजातीय विवाह बेहद तीखे द्वंद का मुद्दा था। हिंदू एकता कई तरह की कृत्रिमताओं पर टिकी हुई थी, जो कभी भी डांवाडोल हो सकती थी। इसके अलावा तमाम नियमों के बावजूद कुछ मध्यवर्गीय महिलाओं, विशेषकर कई निम्नजातीय स्त्रियों, विधवाओं और वेश्याओं ने नए ढांचे को ठुकराया।"<sup>29</sup> सुमन पितृसत्ता के परंपरागत ढांचे में से निकलने का प्रयास करती

है। कहने को वह भोली बाई से प्रभावित है लेकिन अनमेल विवाह के खांचे में वह खुद को मिसफिट पाती है। बचपन में ईसाई लेडी से उसने शिक्षा पाई है, लेकिन उस शिक्षा का कोई व्यावहारिक पक्ष जान पाती कि इससे पहले ही परिस्थितियां उलट पलट जाती हैं। लाड़ दुलार में पली सुमन बहुत कम वेतन वाले गजाधर के पल्ले बांध दी जाती है, जो पर्दे का उतना ही हिमायती है जितना अन्य कोई ब्राह्मण, या सवर्ण। यह पर्दा हिंदुओं और मुसलमानों के सांस्कृतिक व्यवहार से जुड़ा हुआ था। पर्दा स्त्रियों की यौनिकता पर नियंत्रण बनाये रखने का एक औजार था। पर्दा हटा कि औरत बिगड़ी। औरत के बिगड़ जाने का खतरा ही था जिससे जातीय वर्चस्व भी कमजोर पड़ सकता था। इसीलिए आंशिक पर्दे की वकालत के साथ साथ कोठे पर पेशा अपना चुकी स्त्री के शुद्धिकरण की चिंता से पूरा शहर चिंतित हो उठता है। सुमन को पति के घर से प्रताड़ना मिलने पर वह सीधे भोली बाई की शरण में चली गई हो, ऐसा नहीं है। वह पहले वकील पद्मसिंह के घर आश्रय की अपेक्षा से जाती है, लेकिन लोकापवाद के भय से पद्मसिंह उसे घर से जाने को कहलवा देते हैं, अब सुमन रास्ते पर है, मायके का आसरा नहीं, रोजी रोटी लायक शिक्षा नहीं, पर्दे में रहती चली आई है तो कोई सामाजिक संपर्क नहीं—“गजाधर की निर्दयता से भी उसे इतना दुःख न हुआ था जितना इस समय हो रहा था। उसे अब मालूम हुआ कि मैंने घर से निकलकर बड़ी भूल की...मैं इन पंडित जी को कितना भला आदमी समझती थी। पर अब मालूम हुआ कि ये रंगे हुए सियार हैं...यह दुल्कार क्यों संहू? मुझे कहीं रहने का स्थान चाहिए। खाने भर को किसी न किसी तरह कमा लूंगी? कपड़े भी सीयूंगी तो खाने भर को मिल जाएगा, फिर किसी की धौंस क्यों संहू? व्यर्थ में एक बेड़ी पैरों में पड़ी हुई थी। और लोकलाज से वह मुझे रख भी लें तो उठते बैठते ताने दिया करेंगे। बस, चलकर एक मकान ठीक कर लूं। भोली क्या मेरे साथ इतना भी सलूक न करेगी। वह मुझे अपने घर बार बार बुलाती थी, क्या इतनी भी दया न करेगी?”<sup>30</sup> भोली के घर में सुमन को सिर्फ आश्रय ही नहीं मिलता, अपनी यौनिकता, अपने स्त्रीत्व की महत्ता से भी वाकफियत होती है। वह भोली को बताती है कि उसने ईसाई लेडी से शिक्षा भी पाई है, इस पर जो भोली कहती है वह ध्यान देने की बात है—“दो तीन साल और कसर रह गई। इतने दिन और पढ़ लेती तो फिर यह ताक न लगी रहती। मालूम हो जाता कि हमारी जिंदगी का मकसद क्या है, हमें जिंदगी का लुत्फ कैसे उठाना चाहिए। हम कोई भेड़ बकरी तो हैं नहीं कि मां बाप जिसके गले मढ़ दें बस उसी की हो रहें। अगर अल्लाह को मंजूर होता कि तुम मुसीबतें झेलो तो तुम्हें परियों की सूरत क्यों देता! यह बेहूदा रिवाज यहीं के लोगों में है कि औरतों को इतना जलील समझते हैं, नहीं तो और मुल्कों में औरतें आजाद हैं, अपनी पसंद से शादी और जब उससे रास नहीं आती तो तिलाक दे देती हैं। लेकिन हम लोग वही पुरानी लकीर पीटे चली जा रही हैं।”<sup>31</sup> अपने स्त्रीत्व को लेकर यह सचेतनता प्रेमचंद का वैशिष्ट्य है, अपने गुणों की पहचान, यानि अपने जीवन का उत्तरदायित्व स्वयं उठाने को तैयार यह ‘नई स्त्री छवि’ है, जो आश्रय के अभाव में मरना नहीं चाहती, जीना चाहती है, यह पितृसत्ता के बनाए नियमों से तंग आई स्त्री है। इतनी शिक्षित नहीं कि नौकरी कर सके इसलिए अपनी देह को रोजी रोटी कमाने का जरिया बना लेना चाहती है। सुमन सिलाई करके जीवन यापन करने को तैयार है, भोली बाई पकी हुई तवायफ है, वह सुंदर स्त्री देह की कीमत बाजार में जानती है; इसलिए सुमन को उसकी सलाह है...“यहां ऐरों गैरों की आने की हिम्मत ही नहीं होती। यहां तो सिर्फ ईर्स लोग आते हैं। बस उन्हें फंसाए रखना चाहिए। अगर वह शरीफ है तब तो तबियत आप ही आप मिल जाती है और बेशरमी का भी ध्यान नहीं होता। लेकिन अगर उससे अपनी तबियत न मिले तो उसे बातों में लगाये रहो, जहां तक उसे नोचते खसोटते बने नोचो। आखिर को वह परेशां होकर खुद ही चला जाएगा, उसके दूसरे भाई और आ

फंसेंगे...।’ इसके बाद सुमन उस राह पर चल निकलती है जो उसी के शब्दों में ‘कलंक की कालिख’ का रास्ता है, जिस पर जाना आसान है, लौटना मुश्किल। सुमन विट्ठलदास से कहती है—‘आप सोचते होंगे कि मैं भोग विलास की लालसा से इस कुमार्ग पर आई हूँ, पर ऐसा नहीं है। मैं ऐसी अंधी नहीं कि भले बुरे की पहचान न कर सकूँ। मैं जानती हूँ कि मैंने अत्यंत निकृष्ट कर्म किया है। लेकिन मैं विवश थी, इसके सिवाय मेरे लिए और कोई रास्ता न था...यद्यपि इस काजल की कोठरी में जाकर पवित्र रहना अत्यंत कठिन है पर मैंने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि अपने सत्य की रक्षा करूंगी। और ईश्वर चाहेंगे तो मैं अपना प्रण पूरा करूंगी। मैं गाऊंगी, नाचूंगी, पर अपने को भ्रष्ट न होने दूंगी।’<sup>32</sup>

स्त्री यौनिकता पर नियंत्रण के लिए परंपरा और संस्कृति के साथ साथ स्वयं स्त्री द्वारा अपनी इच्छाओं को कलंक बताना हिंदू सुधारवादी रवैये का परिणाम है, जो अपनी देह के प्रति सचेतन स्त्री को चुनौती मानता था। स्त्री की खुदमुख्तारी पतनशीलता की श्रेणी में शामिल थी। भूख और अभाव से मरना सभ्यता थी, लेकिन भोजन और आश्रय के लिए तवायफ बनना असभ्यता थी। राष्ट्र के हित में सुमन जैसी ब्राह्मणी का हृदय अपरिवर्तन और अपने चारित्रिक सुधार के लिए व्याकुलता वह थोपी हुई नैतिकता की प्रतिध्वनि थी जिसके तहत कामुक स्त्री कुलटा और पथभ्रष्ट थी, उसे सुधार कर समाजसेवा में लगा देना उसकी शास्त्रीय और सौम्य छवि की पुनर्स्थापना थी। भारतीय भाषाओं के साथ साथ हिंदी में स्त्रियों की यौन अस्मिता को अपने नियंत्रण में लेने के लिए अश्लील साहित्य के प्रकाशन पर रोक भी लगायी जाने लगी। “1870 में जोसेफिन बटलर द्वारा स्थापित की गई ‘एसोसिएशन फार मोरल एंड सोशल हाईजीन’ की भारतीय शाखा अपने केंद्रीय संगठनकर्ता मैलिसैंट शेफर्ड के माध्यम से अश्लीलता के खिलाफ एक तीखी मुहिम छेड़े हुए थी। इन धर्मयोद्धाओं ने यौनिकता और सेक्स संबंधी अभिव्यक्तियों पर लगाम कसी।”<sup>33</sup>

उधर कई महिला संगठन भी अश्लीलता का विरोध कर रहे थे। ‘आल इंडिया वीमेंस कांफ्रेंस’ ने अश्लील विज्ञापन, अश्लील किताबों पर रोक लगाने के लिए औपनिवेशिक सरकार को पत्र लिखा था। गांधी जी भी समाज और साहित्य की गंदगी की कड़ी आलोचना अपने भाषणों और लेखों में कर ही रहे थे। सुधार अभियानों में तो पहले से ही नौटंकी या नाच की कलाकारों को अश्लील और नाचने वाली लड़कियों को ‘वेश्या’ कहना शुरू कर दिया गया था। “वेश्यावृत्ति विरोधी कानूनों में वेश्या, वारांगना, रखैल, तवायफ में कोई अंतर नहीं रह गया था। अनेक रखैलों और वारांगनाओं को समाज में सम्मानजनक दर्जा प्राप्त था ...अतः अंग्रेजों ने वारांगनाओं एवं महिला मित्रों का दर्जा घटाकर उन्हें सामान्य वेश्याओं का दर्जा दे दिया। इस प्रकार जो लोग रखैलों के स्वामी थे, वे उनके ग्राहकों की श्रेणी में आ गए। परिणामस्वरूप कुलीन एवं सभ्रांत लोगों ने महसूस किया कि इससे उनका रुतबा घट गया है और वे मालिक से ग्राहक बन गए हैं...”<sup>34</sup> इस प्रकार समाज सुधार कार्यक्रमों ने देह श्रमिकों की कई श्रेणियां अनजाने में ही तैयार कर दीं। कल तक नौटंकी और नाच जो उत्सवों और सार्वजनिक कार्यक्रमों का हिस्सा थे उन पर अश्लीलता का आरोप लगाकर अपने एजेंडे को पवित्र हिंदूवादी रूप दिया जाने लगा। इस तरह 1897 में की गई न्यायमूर्ति रानडे की घोषणा ‘आज के बाद सभी समाज सुधार संगठन कृतसंकल्प हैं कि वे अपने परिवारों में होने वाले विवाह या अन्य समारोहों में नाच की अनुमति नहीं देंगे और न ही उन समारोहों में शामिल होंगे जहां नाच की व्यवस्था होगी’ का अक्षरशः पालन करने का प्रयास किया गया जिसका अगला कदम था देह श्रमिकों का निर्वासन।

प्रश्न है कि समाज को तवायफों की आवश्यकता है या नहीं। प्रेमचंद इस मुद्दे पर स्पष्ट

नहीं हैं। सभ्य कहे जाने वाले समाज से निकाल बाहर करना क्या स्थायी समाधान है या ऐसी स्थितियों में सुधार जिसमें कोई स्त्री देह श्रम के लिए बाध्य न हो। दूसरी स्थिति तो एक यूटोपिया है। पहली स्थिति कोई समाधान नहीं है बल्कि अभिजात्य और देह श्रमिकों के बीच के अंतराल को बढ़ाने की साजिश है। साथ ही हाशिये पर धकेल देने से न समाजसुधार हो सकता है न ही वे सामाजिक संसरण के दबावों से मुक्त हो सकती हैं। इन जैसी स्त्रियों को संस्कृत शास्त्रीय ग्रंथों में प्रयुक्त 'भृत्या' जो विभिन्न प्रकार के श्रम करती है जिसमें उत्पादन से लेकर यौन श्रम शामिल है। कहा जाना चाहिए, सुमन जैसी स्त्रियों का क्या हो? दहेज और अनमेल विवाह का शिकार हुई सुमन अपनी पहचान समाज से मांगती दीखती है। ससुराल, मायका, बहन शांता का घर, विधवाश्रम कहीं भी उसके लिए ठौर नहीं है, हर जगह उसे गर्हित पेशवाली समझकर किनारे कर दिया जाता है।

प्रेमचंद स्त्री को लेकर बड़े कश्मकश से गुजरते हैं; कुछ नहीं समझ आता तो वर्षों के खोये पति और अब, संन्यास ले चुके गजाधर से मिला देते हैं। अब सुमन को उस अनाथ आश्रम में पचास कन्याओं की देखभाल करनी होगी जो वेश्याओं की संतानें हैं—“इस अनाथालय के लिए एक पवित्र आत्मा की आवश्यकता है और तुम्हीं वह आत्मा हो। मैंने बहुत दूँदा पर ऐसी कोई महिला न मिली जो इस काम को सेवा, प्रेम भाव से करे, जो कन्याओं का माता की भाँति पालन करे और अपने प्रेम से अकेली उनकी माताओं का स्थान पूरा कर दे।”<sup>35</sup> यह स्त्री की आदर्श छवि थी जिसकी सिद्धि के लिए पूरा कथा वितान रचा गया, अपने समय के कई राष्ट्रवादियों की तरह वे पश्चिम विरोधी, पढ़ी लिखी स्त्री को सामने लाये। सुमन या रोहिणी जैसी चरित्र राष्ट्रवादी रुझान के लिए पूरी तरह फिट बैठती हैं जो अपनी करुणा, दयालुता, सहजता, निर्धनता, की वजह से लंबे समय तक कष्ट झेलती हैं, चाहे वे पत्नियाँ हों, विधवाएँ, तवायफें हों, वे किसी भी जाति की हों। उन्हें पाठक की दया का पात्र बना दिया जाता है, जिनमें सुधार की आवश्यकता अनिवार्यतः होती है। स्त्रीत्व का आदर्श पाने के लिए चरित्रों की अपनी पहचान कहीं गुम हो जाती है; वे अक्सर सेवा, त्याग, समर्पण की प्रतिमूर्ति बन जाती हैं। सुमन भी ऐसा ही एक चरित्र है, जो सुमन भोली बाई के कोठे पर स्वयं गई थी वही विट्ठलदास के यह कहने से ‘...सोचो तो थोड़े दिनों तक इंद्रियों को सुख देने के लिए तुम अपनी आत्मा और समाज पर कितना अन्याय कर रही हो...’ तिलमिला जाती है। ‘सुमन ने आज तक किसी से ऐसी बातें न सुनी थीं। वह इंद्रियों के सुख को और अपने आदर को जीवन का मुख्य उद्देश्य समझती आई थी। उसे आज मालूम हुआ कि सुख संतोष से प्राप्त होता है और आदर सेवा से।’<sup>36</sup> पाठक सुमन के इस आकस्मिक हृदय परिवर्तन को बहुत दूर तक विश्वसनीय नहीं मानता। सेवा को जीवन का आदर्श बताने के लिए लेखक की कृतसंकल्पता को समझ भी जाता है। स्त्री का अपने इंद्रिय सुख के लिए जीना अनुचित है, निष्काम सेवा में ही उसके जीवन की वास्तविक सिद्धि है; इसे स्त्री के लिए तय करने वाला कौन सा समाज है? यह तय है कि प्रेमचंद को भारतीय सामाजिक समस्याओं और परंपराओं की गहरी परख है, लेकिन स्त्री के सुधार का एक तैयार एजेंडा लेकर वे इस उपन्यास को रचते हैं। स्त्री को पतित, यौनेच्छाओं से परिपूर्ण और स्वार्थी दिखाकर वे इस सामाजिक समस्या की गहराई में पड़ताल ही नहीं करते हैं, प्रकारांतर से यह भी दिखाते हैं कि पतित स्त्री यानि भोली बाई जैसी तवायफें ऊंची जाति की मासूम इंद्रियेच्छाओं से भरी सुमन को गलत राह दिखाती हैं।

जहां तक समस्याओं के समाधान की बात है तो वह है शहर, बस्ती से दूर ऐसा सदन बनाना जहां, अवैध कही जाने वाली बच्चियाँ रह सकें, उन्हें पढ़ाई लिखाई, हस्तकलाओं का ज्ञान दिया जा सके। प्रेमचंद जब समाज सुधार पर बात करते हैं तो उनका ध्यान निरंतर इस पर रहता है



कि पाठकों के संस्कारों को कहीं चोट न पहुंचे। सुमन 'सेवासदन' में सारे कार्य करती दिखाई देती है ऐसे जैसे अपने पतित होने का प्रायश्चित्त कर रही हो। गांधी भी स्त्रियों को पैसिव यौनिक ऑब्जेक्ट्स मानकर चलते थे, ब्रह्मचर्य के प्रयोगों से यह बात स्पष्ट है। प्रेमचंद भी उसी तर्ज पर सोचते हैं, वे इस मुद्दे पर नहीं लिखते कि बतौर स्त्री सुमन की अन्य दुनियावी इच्छाएं क्या हमेशा के लिए दमित हो गईं। दूसरे की बच्चियों की पालक बनने मात्र से उसके निज की मातृत्व इच्छा का दमन क्यों और किसलिए किया गया। इस संदर्भ में पद्मसिंह और सुभद्रा का निःसंतान दांपत्य भी द्रष्टव्य है। सुभद्रा को घर में सभी सुख हैं पर उसे दुःख है कि निःसंतान रह जाने के कारण पति उसे पहले जैसा प्रेम नहीं करता। प्रेमचंद इसे पूर्वजन्म के पापकर्म के फल से जोड़ देते हैं। आगे चलकर जब पद्मसिंह के सामाजिक कार्यों की उदात्तता को सुभद्रा समझ जाती है तब पद्मसिंह अनुभव करते हैं कि 'एक निःसंतान स्त्री भी अपने पति के लिए शांति और प्रसन्नता का स्रोत हो सकती है'। इस कथन की पितृसत्ताक टोन पर हम गौर न भी करें तो यह अस्पष्ट ही रह जाता है कि संतानहीनता कैसे किसी स्त्री की समझदारी के स्तर को प्रभावित कर सकती है।

प्रेमचंद की तुलना में मिर्जा हादी रुसवा का स्त्री के सतीत्व के प्रति कोई विशेष आग्रह नहीं है। कोठे पर रहने के बावजूद सुमन अपना सतीत्व और स्वयंपाकी होकर जातीय शुद्धता बनाये रखती है। प्रेमचंद उसे नाचते गाते, हंसते, सजते संवरते दिखाते हैं पर शरीर बेचेते हुए नहीं दिखाते। सुमन के मन में सतीत्व और यौनिकता को लेकर कोई द्वंद्व नहीं, उसे बहुत शुरु से ही मालूम है कि उसे रिझाना है, लुभाना है पर शरीर नहीं देना है। सतीत्व, पतीत्व और शरीर की पवित्रता बनाये रखने की धारणा हिंदू राष्ट्र से संबद्ध है, जिसे सुमन बखूबी निभा ले जाती है, यह बात दूसरी है कि सजग पाठक कितनी दूर तक इससे सहमत होता है। इसकी तुलना में उमराव जान अदा स्वयं को कभी पतित नहीं कहती, न ही वह अपने अस्तित्व को 'असती' कहकर खारिज करती है। उसमें सतीत्व के प्रति अतिरिक्त आग्रह भी नहीं है। बचपन में हुए अपहरण और कोठे पर खानम को बेचे जाने को वह दुर्भाग्यपूर्ण जरूर बताती है, लेकिन अपने अस्तित्व को लेकर उसे पछतावा या सुधारगृह में जाने की जरूरत नहीं लगती। उसके जीवन के उत्तरार्ध की दिनचर्या के बारे में रुसवा लिखते है "....इसके बाद उमराव जान ने बहुत सी किताबें इस किस्म की, उर्दू, फारसी बजाये खुद पढ़ीं। इससे तबीअत साफ होती गई। कसायद अनवरी और खाकानी एकएक करके पढ़े मगर झूठी खुशामद की बातों में अब उसका दिल न लगता था, इसलिए इनको बंद करके अल्मारी में रख दिया। फिलहाल कई अखबार भी उसके पास आते थे, उन्हें देखा करती, उनसे दुनिया का हाल मालूम होता रहता...उमराव जान बहुत दिन हुए सच्चे दिल से तौबा कर चुकी है और जहां तक हो सकता है, रोजा नमाज की पाबंद है। रफती रंडी की तरह है खुदा चाहे मारे, चाहे जिलाए। उससे पर्दे में घुट के तो न बैठा जाएगा। मगर पर्दावालियों के लिए दिल से दुआगो है। खुदा उनका राज सुहाग कायम रखे..."<sup>37</sup> वहीं सुमन के मन में सदैव पाप पुण्य का द्वंद्व चलता रहता है, इसके बीच का मार्ग वह निकालती है कि वह शरीर नहीं बेचेगी, सिर्फ नाच गान करेगी। वह अपने जातीय संस्कारों के गर्व को नहीं भूलती। प्रेमचंद पाठक के संस्कारों को धक्का नहीं पहुंचाना चाहते और कठिन समय में भी वह देह की शुचिता के हिमायती हैं। सुमन यदि अपना सतीत्व खो देती तो भारतीय समाज में उसकी कोई जगह नहीं रहती, सुमन को कोठे पर चढ़ने के कारण उसे जीवन भर प्रायश्चित्त करना पड़ता है, लेकिन वास्तविक क्षमा से वह वंचित ही रह जाती है। वहीं कोठे पर आने वाले सदन को उसके परिवार जनों द्वारा फिर से अपना लिया जाता है, वह सुखी वैवाहिक जीवन जीता है। स्त्री पुरुष के संदर्भ में क्षमा और प्रायश्चित्त के मापदंड परस्पर भिन्न हैं। सुमन के तवायफ हो जाने की सूचना पिता कृष्णचंद्र को जब मिलती है तो वह गजाधर से कहता है

कि 'यदि तुम्हीं उसकी जान ले लेते तो परिवार की इज्जत पर कोई आंच ही नहीं आ सकती थी।' प्रेमचंद और रुसवा का एजेंडा अलग अलग है, प्रेमचंद के लिए तवायफें सामाजिक स्वास्थ्य के लिए हानिकर हैं और रुसवा के लिए कोई भी और काम करने वाली किसी अन्य स्त्री की तरह तवायफ भी एक स्त्री है, जिसकी जीवनशैली साधारण गृहस्थ स्त्री से अलग है, संवेदना और भावना के स्तर पर उनमें कोई अंतर नहीं बल्कि मौलवी साहेब से जो शिक्षा उमराव ने कोठे पर पाई उसने उसे रचनाकार और अपेक्षाकृत ज्यादा व्यावहारिक बनने में मदद की, मनुष्य चरित्र की परख सुमन से ज्यादा उमराव को है।

### अब तो इस राह से वो शख्स गुजरता भी नहीं अब किस उम्मीद पे दरवाजे से झांके कोई

यदि 'बाजारेहुस्न' और 'सेवासदन' को आमने सामने रखा जाये तो कुछ दिलचस्प तथ्य हाथ लगते हैं। अमृतराय ने 3 सितंबर 1918 को प्रेमचंद द्वारा इम्तियाज अली को लिखे पत्र का हवाला दिया है— "मैं इसकी फेयर कापी तभी बनाऊंगा जब आप इसका जिम्मा लें...मैं तो इसे फेयर करने की तकलीफ नहीं दे सकता। मैंने इसमें पूरे के पूरे दृश्य बदल दिए हैं।"<sup>38</sup>

यहां तक कि जो उपन्यास मूल रूप में 'बाजारेहुस्न' नाम से लिखा जाता है, जिसमें सौंदर्य, यौवन, राग, वासना, इच्छा न जाने कितनी अर्थ ध्वनियां समाहित हैं, उसी के हिंदी तर्जुमा को वे 'सेवासदन' यानि सेवा का घर बना देते हैं। यही नहीं 1918-19 में प्रेमचंद ने इसकी फेयर कॉपी बनाई तब इसके हिंदी संस्करण में उन्होंने कई सुधार कर दिए और 'बाजारे हुस्न' को वैसा का वैसा रहने दिया। इसकी मूल में पाठकीय अभिरुचि का सवाल था। साथ ही वे, जैसा कि गोपाल राय ने लिखा है— "हिंदू समाज को आधुनिक और तर्कसंगत रूप देना चाहते थे।"<sup>39</sup> उन्हें इसका अहसास था कि 'बाजारे हुस्न' शीर्षक उर्दू के पाठकों में खप जाएगा क्योंकि नजीर अहमद और मिर्जा हादी रुसवा ने उपन्यासों में हुस्न के बाजार की सैर करवा दी थी। सनसनीखेज, चमकदार, भड़कीला शीर्षक उन्हें उर्दू की पाठकीय मनोरुचि के अनुकूल लगा और उन्हें यह मालूम था कि हिंदी पाठकीय संसार पर यदि अपना प्रभाव छोड़ना है तो शीर्षक पर विशेष ध्यान दिए जाने की जरूरत है। शुद्धतावादी रवैये को लेकर चलने वाले उपन्यास का हिंदी पाठकों ने बड़े उत्साह के साथ स्वागत भी किया। आश्चर्य नहीं कि जो सुमन उर्दू में 'खिलंदड़ी, जीवंत, गर्वीली और मर्यादित' थी वह हिंदी में 'सुंदर, चंचल और अभिमानिनी' बन चुकी थी। इसी तरह 'बाजारे हुस्न' में यह दृश्य है : "सुमन किसी काम में मशगूल हो, पर उनकी आवाज सुनते ही चिक की आड़ में आकर खड़ी हो जाती है। उसकी शोख तबियत को इस ताकझांक में एक अजीब लुत्फ हासिल होता था। वो महज अपने हुस्न का जलवा दिखाने के लिए, महज दूसरों को बेकरार करने के लिए ये करिश्मा दिखाती थी।" (हिंदी तर्जुमा राबीअ बहार) जबकि सेवासदन में इस प्रसंग को यों चित्रित किया गया है : "स्कूल से जाते हुए हुए युवक सुमन के द्वार की ओर टकटकी लगाये हुए चले जाते। शोहदे उधर से निकलते तो राधा और कान्हा के गीत गाने लगते। सुमन कोई काम करती हो पर उन्हें चिक की आड़ से एक झलक दिखा देती। उसके चंचल हृदय को इस ताकझांक में असीम आनंद प्राप्त होता था। किसी कुवासना से नहीं, केवल अपने यौवन की छटा दिखाने के लिए, केवल दूसरों के हृदय पर विजय पाने के लिए यह खेल खेलती थी।"

सेवासदन के 15वें अध्याय में एक पूरा अंश है, जो तवायफों को विषभरी नागिनें सिद्ध करता है। इस आलेख में ऊपर वह अंश उद्धृत भी किया गया है, लेकिन बाजारे हुस्न में वो पूरा अंश है ही नहीं। 'सेवासदन' में प्रेमचंद हिंदू समाजसुधारकों की भाषा में सोच और लिख रहे हैं।

इसलिए पतिता, असती स्त्री को विषाक्त चरित्र कहते हैं।

प्रेमचंद समाज की गतिविधियों को शब्द और संवाद ही नहीं देते बल्कि उसमें दखल भी देते हैं। स्त्री और पुरुष का अपनी यौनेच्छाओं पर विजय पाकर समाज हित साधन बन जाना उनके युग की मांग थी, युग के हिंदू राष्ट्रवादी एजेंडे को पूरा करने में सहयोगी थी। भारतीय विवाह संस्था का क्रिटीक भी प्रेमचंद बेहतरीन ढंग से प्रस्तुत करते हैं, जो सामाजिक कुप्रथाओं के कारण दांपत्य में बेड़ी का काम करता है। सुमन के द्वारा विद्रोह की कोशिश विवाह संस्था के रूढ़िवादी स्वरूप का नकार है। जब व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास के अवसर अनुपलब्ध हों तो अनमेल विवाह के शिकार स्त्री पुरुष स्वस्थ समाज के निर्माण में योगदान नहीं कर सकते। दहेज, अशिक्षा, पर्दा ये सब अनैतिकता की ओर उन्मुख करते हैं, उसकी अपेक्षा तवायफ (हालांकि यह कोई विकल्प नहीं है) आत्मनिर्भर और स्वचेतन है, जिसके लिए उमराव जान अदा को देखा जा सकता है, जो भले समाज की दृष्टि में पतित हो लेकिन अपने जीवन में उन नियंत्रणों से मुक्त है जो धीरे धीरे उसकी मनुष्यता को निगल जाते हैं।

## संदर्भ

1. अमृतराय, कलम का सिपाही, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 170
2. वही, पृ. 206
3. उमराव जान अदा, भूमिका, मिर्जा हादी रुसावा, ग्लोबल एक्सचेंज पब्लिशर्स, संस्करण 2010, पृ. 5-10
4. वही, पृ. 152
5. वही, पृ. 151-52
6. स्त्री संघर्ष का इतिहास, राधा कुमार, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 2005, पृ. 83
7. गुजिश्ता लखनऊ, अब्दुल हलीम 'शरर', नेशनल बुक ट्रस्ट, 1971, पृ. 167
8. एरिक एच एरिक्सन, गांधीज टुथ रूआन द ओरिजिंस ऑफ मिलिटेंट नॉन वोइलेंस, न्यूयार्क, नॉर्टन, 1969, पृ. 374
9. प्रेमचंद घर में, शिवरानी देवी, आत्माराम एंड संस, दिल्ली 2012, पृ. 24
10. देखें, पार्थ चटर्जी, 'कॉलॅनाइजेशन, नेशनलिजम एंड कॉलॅनाइज्ड वुमॅन : द कटेस्ट इन इण्डिया', अमेरिकन एथनोलॉजिस्ट, खंड 16, 4 नवंबर 1989, पृ. 4
11. गरिमा श्रीवास्तव, नवजागरण स्त्री प्रश्न और आचरण पुस्तकें, स्त्री-प्रतिमान, सीएसडीएस, दिसंबर 2014
12. हिंद स्वराज, मोहनदास करमचंद गांधी, (अनुवाद : अमृतलाल नाणावटी) <http://www.hindisamay.com/content/4708/7/-विमर्श-हिंद-स्वराज-अनुवाद-अमृतलाल-ठाकोरदास-नाणावटी-5>
13. प्रेमचंद घर में, वही, पृ. 217
14. कृष्णकांतार विल, बकिमचंद्र चटर्जी, अनुवाद जे.सी. घोष, नूरकोफ: न्यू डायरेक्शन, 1962:29
15. तनिका सरकार, हिंदू वाइफ, हिंदू नेशन, कम्युनिटी, रिलीजन एंड कल्चरल नेशनलिज्म, ब्लूमिंगटन, इंडियाना युनिवर्सिटी प्रेस, 2005, पृ. 34-35
16. कमल किशोर गोयनका, संपादन प्रेमचंद विश्वकोश, दिल्ली, 1981, खंड-1, पृ. 144-45 पर उद्धृत
17. उमराव जान अदा, वही, पृ. 135
18. सेवासदन, प्रेमचंद, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, दूसरा संस्करण, 2013, पृ. 8
19. वसुधा डालमिया, सेवासदन, अंगरेजी अनुवाद की भूमिका, 2005, पृ. 9-10
20. उमराव जान अदा, वही, पृ. 25
21. सेवासदन, वही, पृ. 40
22. सेवासदन, वही, पृ. 39
23. स्त्रीत्व से हिंदुत्व तक, चारू गुप्ता, राजकमल प्रकाशन 2012, पृ. 42
24. कलम का सिपाही, वही, पृ. 204
25. सेवासदन, वही, पृ. 55

26. वही, पृ. 103
27. कलम का सिपाही, वही, 206
28. अलीगढ़ इंस्टिट्यूट गजट, 8 जुलाई 1870, नेटिव न्यूजपेपर रिपोर्ट्स ऑफ यू.पी., 1870, पृ. 271
29. चारु गुप्ता, स्त्रीत्व से हिंदुत्व तक, राजकमल प्रकाशन, 2012, पृ. 33
30. सेवासदन, वही, पृ. 40
31. वही, 39
32. वही, पृ. 61
33. देखें, चारु गुप्ता, वही, पृ. 54
34. राधा कुमार, स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, 2006
35. सेवासदन, वही, पृ. 218
36. वही, पृ. 61
37. उमराव जान अदा, वही, पृ. 15
38. अमृत राय, कलम का सिपाही, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1976
39. हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृ. 127

## दलित पर्यावरणवाद : अलग स्वर और सपने

---

मुकुल शर्मा

तद्भव-36 में हमने मुकुल शर्मा के लेख को प्रकाशित किया था; जिसने लोगों को गहरे प्रभावित किया। बाद में मुकुल ने काम को विस्तार दिया, जिसे हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं।

वो चेरुमी स्त्रियां  
घर से बाहर निकलीं  
हंसिया कमर में खोंसकर  
पत्तों की तलाश  
इमली और अंगूर के बेल  
जुवार और चावल  
जंगली जड़ें और ताजे धड़  
फल फूल और मछलियां  
तेज आते जाते बार बार  
सब कुछ हासिल करती हैं काली  
तुम अश्वेत शाविकाएं  
काली मिट्टी को तुमने दिया है रंग  
काले चीते, लाल चीते  
शेर के बच्चे..

के.के.एस.दास, मलयाली दलित लेखक<sup>1</sup>

इस लेख में दलित और पर्यावरण के अंतर्संबंधों की विभिन्न धाराओं की खोजबीन की गई है।

एक ओर भारत के पर्यावरण इतिहास में दलित अदृश्य हैं, तो दूसरी ओर उन्हें पर्यावरणीय विमर्श से जुदा विकास और आधुनिकता के पैरोकार के रूप में देखा गया है। इसके बरक्स, हाल के सालों में दलित बुद्धिजीवियों ने यह भी जोर दिया है कि दलित एक समुदाय के रूप में प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के साथ प्राकृतिक, सामाजिक और जैविक रूप से जुड़े हैं। उन्होंने दलितों को 'जमीन से जड़ेंवाला' करार दिया है।<sup>2</sup> दलित और पर्यावरण के अंतर्संबंध जटिल और तनावपूर्ण हैं। पर्यावरण की मनुष्यकेंद्रित अवधारणाओं में मुख्यतः मानवीय अनुभवों पर ध्यान रहता है। पर अस्पृश्य या समाज बहिष्कृत या बंधुआ मजदूर जिसे इंसान से कमतर समझा जाता है, मनुष्य/प्रकृति के युग्मक में नहीं समाते हैं। हमें चुनौती पेश आती है कि मानवीय अस्तित्व के हाशिये या उसके बाहर जीनेवालों के लिए प्रकृति के अर्थों और प्रभावों को कैसे समझा जाए। साथ ही, दलित और पर्यावरण के आपसी रिश्ते कभी स्थिर नहीं रहे हैं; वे समय और काल के हिसाब से और प्राकृतिक और सामाजिक स्थितियों के संदर्भ में बदलते रहे हैं।

भारतीय पर्यावरणवाद में औद्योगीकरण, आधुनिकता, प्राकृतिक संसाधनों और संरक्षण पर इसके प्रभावों की विशद चर्चा हुई है। कई पर्यावरण आंदोलनों जैसे केरल में साइलेंट वैली पनबिजली परियोजना का विरोध, जंगलों पर चिपको आंदोलन, टिहरी और नर्मदा बांध पर विरोध, हिमालय और गंधमर्दन क्षेत्रों में खनन के खिलाफ आंदोलन, ताजमहल पर प्रदूषण प्रभाव की चर्चा आदि ने हमारी पर्यावरण चिंता और पर्यावरण मुद्दों के साथ आजीविका, अस्तित्व, स्वामित्व, अधिकार के जटिल संबंधों पर जानकारी का दायरा विस्तृत किया।<sup>3</sup> कुछ और परिघटनाओं, जैसे वैश्विक तापमान में वृद्धि और जलवायु परिवर्तन, हिमनदों का पिघलना, समुद्र के जलस्तर में चढ़ाव, बारिशों में बदलाव, प्राकृतिक विपदाओं में वृद्धि से भी समकालीन पर्यावरणवाद का कारण और अंजाम स्थापित हुआ है। हाल में कुछ दलित और पर्यावरण संगठनों ने जलवायु परिवर्तन जनित प्राकृतिक विपदाओं के समय में जातिभेद के प्रचलन की जांच पड़ताल की है। यह सुझाया गया है कि जलवायु परिवर्तन की मौजूदा समझदारी में, खासकर प्राकृतिक विपदाओं का संकट कम करने की रणनीति बनाने और लागू करने में दलितों के समावेश और निषेध के मुद्दों पर खास ध्यान देना चाहिए।<sup>4</sup> इसी प्रकार वनीकरण में दलितों के सरोकारों की बात उठाई गई है और वन नीतियों और कार्यक्रमों : यहां तक कि संयुक्त वनप्रबंध और सामुदायिक वन प्रबंध में परिवर्तन सुझाया गया है।<sup>5</sup> दलित चेतना और संगठनों के उभार से भी प्राकृतिक संसाधनों के स्वामित्व की प्रकृति और सामुदायिक एकता पर सवाल खड़े हुए हैं। उदाहरण के लिए, पहले दक्षिण भारत के दलितों को पवित्र उपवनों में प्रवेश करने की मनाही थी, पर अब वे न केवल इनमें प्रवेश कर रहे हैं बल्कि वहां की जमीन और अन्य संसाधनों पर अपना दावा कर रहे हैं। एलिजा केंट जिन्होंने तमिलनाडु के पवित्र उपवनों पर गंभीर शोध किया है, कहती हैं : *“इन घटनाक्रमों से पवित्र उपवनों में उन बहिष्कृत और कमजोर सामाजिक समूहों की पहुंच होगी जिन्हें वहां पूजा से वर्जित किया गया था।”*<sup>6</sup>

यद्यपि पर्यावरणवाद को एक आधुनिक विचार कहा गया है, पिछली दो सदियों से भारतीय मानव समाज में पर्यावरण सरोकार रहे हैं।<sup>7</sup> पर पर्यावरण के साथ जुड़ाव में विभिन्नता है और यह भिन्न जीवन स्थितियों, विश्लेषण और दृष्टियों पर आधारित है। यहां उद्योग और आधुनिकता का नकार है, प्रकृति के प्रति पारंपरिक, धार्मिक और रूमानी दृष्टिकोण है, मानव और प्रकृति के बीच अशोषणकारी संबंधों पर जोर है और कई अन्य दृष्टियां हैं। ये कभी एक दूसरे के पूरक, तो कभी प्रतियोगी हैं। इन सबके बीच दलितों ने अपनी पर्यावरण दृष्टि निर्मित की है जो खासकर उन्नीसवीं सदी में जातिविरोधी विचारों के संगठित उभार के बाद काफी मुखरित हुई है।

इस लेख में दलित नजरिए से पर्यावरण विचारों का दायरा विस्तृत करने की कोशिश की गई है। यहां पर्यावरण विचारों में वह सोच और सक्रियता शामिल है जो मनुष्य और प्रकृति के बीच के संबंधों और इसे प्रभावित करने वाले सामाजिक मानकों की व्याख्या करता है। वे अपने जीवन अनुभवों और पर्यावरणीय ज्ञान के आधार पर जाति व्यवस्था को एक पर्यावरणीय मॉडल मानने की समझ, प्रकृति के नियमों को समाज का नियामक बनाना, पर्यावरण व्यवस्था की अप्रतिमता और विशिष्टता और एक प्रकृति प्रदत्त, स्थायी प्राकृतिक व्यवस्था की पवित्रता को कई प्रकार की चुनौती देते हैं। यहां मुख्यतः श्रम, स्थान, अतीत, स्मृति, बलिदान, बंधुआ और प्रकृति और उसके संसाधनों तक पहुंच में विभेद के मुद्दे दलितों की पर्यावरण अंतर्दृष्टि के आधारभूत तत्व नजर आते हैं। दलितों के बेचैन और अशांत पर्यावरण पटल को समझने के लिए मैं कई प्रकार के दलित उत्पादों की मदद लेता हूँ : दलितों के कविता, गीत और कहानियाँ, जातिविरोधी बुद्धिजीवियों की पर्यावरणीय अभिव्यक्तियाँ, दलितों के सामूहिक सांस्कृतिक प्रतीक, देवी देवता, मिथक, जानवर, खानपान जो प्रकृति और उसके बाह्य रूपों के साथ उनके अर्थपूर्ण संबंधों की बानगी देता है। ये प्रस्तुतियाँ रोचक और सुंदर सृजनात्मक कृतियाँ हैं, साथ ही साथ ये कई बार प्रकृति के इर्दगिर्द हिंसा, युद्ध, खूनखराबे और बलिदान की कहानियाँ हैं। उनके पर्यावरण अनुभव और अभिव्यक्ति को कई प्रकार से समझा जा सकता है : एक बौद्धिक उपक्रम, श्रम का एक उत्पाद, सृजनात्मकता का स्रोत, एक पर्यावरणीय स्थल जो जीविका और उसके संघर्ष की राजनीति के साथ गूँथा हुआ है, प्रकृति के साथ संवाद जिसमें अपने और दूसरों के बीच के संबंध—स्व, निज और पराए के अर्थ उजागर करते हैं, एक ऐसी रंगभूमि जहाँ समुदाय और संस्कृति उत्पादों में 'जाति जड़', 'जातिभूत', 'जाति जनत' के सवाल जवाब निकलते हैं।

निःसंदेह दलितों पर काफी उल्लेखनीय अध्ययन हैं जिनमें अलग अलग विषयों, जैसे दलित इतिहास, जातिविरोधी बुद्धिजीवी और उनके विचार, अस्पृश्यता, मानव अधिकार, सम्मान, आरक्षण, लिंग, खाद्य, भूमि, पानी, रोजगार, बेरोजगारी आदि पर शोध हैं। पर कोई ऐसा अध्ययन नहीं है जिनमें इन सारे मुद्दों को एक साथ गूँथकर दलित और पर्यावरणवाद के बीच के रिश्ते समझने की कोशिश की गई हो। यह भी सच है कि दलितों के श्रम, प्राकृतिक संसाधन, गांव और समुदाय, खाद्य, पशु, शाकाहार और विकास संबंधी विचार हमारे पर्यावरण अध्ययनों और राजनीति में शामिल नहीं किए गए हैं। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि दलितों में ये सारे मुद्दे प्रकट तौर पर्यावरणीय भाषा में व्यक्त नहीं किए गए हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि मुख्यधारा के कुछ पर्यावरण विमर्शों में प्रकृति, प्राकृतिक संबद्धता और अप्राकृतिक प्रदूषण के बारे में ब्राह्मणवादी विचारों के वर्चस्व के कारण दलित या तो अदृश्य रहते हैं, या उन्हें उनकी जगहों में प्रकृतिस्थ बताया जाता है, या वे शोषित प्रताड़ित होते हैं जिनकी मुक्ति उदार समाज के हाथों से हो सकती है। पर दलित दृष्टिकोण से पर्यावरण की एक अनदेखी दुनिया और इसमें जाति की कई जटिलताएँ और विरोधाभास उजागर होते हैं। साथ ही साथ, यह ध्यान रखना चाहिए कि दलितों की कोई एक आवाज या एकहरी अभिव्यक्ति नहीं है और उनकी पर्यावरण परंपराएँ समय और स्थान के मुताबिक भिन्न भिन्न हैं।

अतीत से आज तक के भारत के विभिन्न हिस्सों से टुकड़ों टुकड़ों में जोड़े उदाहरणों के जरिए मैं इस लेख में दलित पर्यावरणवाद का चित्र उकेरना चाहता हूँ। यह लेख तीन भागों में है। पहले में भारत के तीन प्रदेशों में कुछ दलित लोककथाओं और मौखिक परंपराओं के माध्यम से प्राकृतिक दुनिया के साथ उनके संबंधों की परतें देखी गई हैं। यहां उनकी मौखिक, वाचिक परंपरा, गद्य पद्य, कविता गीत, मिथक विश्वास, नाटक संगीत हैं। दूसरे भाग में, देवी देवताओं, खाद्य,

पशुओं के बारे में दलितों के विचार हैं जो दलित पर्यावरणवाद के नए पहलू सामने लाते हैं। समकालीन दलित बुद्धिजीवियों और कार्यकर्ताओं ने ऐसी सामग्रियां जमा करने और परंपराओं को समझने समझाने में अग्रणी भूमिका निभाई हैं, अन्यथा तो ये सब विलुप्त ही थे। तीसरे, अंतिम भाग में औपनिवेशिक भारत के जातिविरोधी बुद्धिजीवी और सामाजिक प्रणेता : जोतिबा फुले के लेखन के पर्यावरणीय पहलुओं की खोज की गई है।

## दलित पर्यावरण परंपराएं और पृथ्वी

कंचा इलाही, प्रसिद्ध अध्येता और दलित बहुजन आंदोलन के कार्यकर्ता, ने अपनी चर्चित किताब 'मैं हिंदू क्यों नहीं हूँ' में दलित बहुजन जीवन में प्रकृति के अर्थ और एक जाति संघर्षरत समाज में उनके अलग अलग पर्यावरण अनुभवों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। इलाही के अनुसार दलित बहुजन प्रकृति के साथ आंतरिक और रोजाना संबंधों के साथ चर्म तकनीक के विज्ञान, खाद के वैज्ञानिक प्रयोग और उत्पादन के उपकरणों के अन्वेषक और प्रणेता हैं जिनसे हमारे उत्पादन में वृद्धि के साथ साथ पर्यावरण हराभरा और साफ रहता है। शूद्रों ने उत्पादन का ज्ञान सृजित किया और हमारे कृषि और दस्तकारी ज्ञान तथा कौशल में नवरचना की। चांडाल गांव, शहर और देश को प्रदूषणमुक्त रखता था और पर्यावरण शुद्ध रखने की संस्कृति का निर्माता था।<sup>8</sup> लेखक ज्ञान विधा का एक दलित बहुजन सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं जो प्रकृति के साथ रोजाना और नजदीकी संबंधों से उत्सर्जित होता है। उनका मत है कि प्रकृति के साथ हमारा मेलजोल या तो प्रकृति और मानव शरीर के बीच के 'संभव' या दोनों के बीच के 'विरुद्ध परीशिला' (अंतर्विरोध) से होता है जो 'परिणामा' या 'मारपू' के जरिए रूपांतरित होकर कुछ कोथा(नया) रूप लेता है। यद्यपि इलाही की दलित बहुजन के बारे में समझदारी में कुछ रूमानिकरण है, फिर भी यह नव हिंदूवादियों और पर्या जातिवरण के प्रवक्ताओं के विचारों से खासा अलग है जो दलितों के जीवन का आदर्शिकरण करते हैं। इलाही दलितों के पर्यावरणीय स्वर और समझ को स्पष्टतः उनके शारीरिक श्रम, श्रम के उपकरण और उत्पाद और काम के अनुभवों से जोड़ते हैं जिसमें जाति शोषण निहित हैं। लेखक के अनुसार : *“संभव या कोथा का मानव, पशु, आदि के लिए उसके उपयोग (उपयोगिता) के संदर्भ में मूल्यांकन किया जाता है। यदि कोथा वस्तु (नया पदार्थ) दलित बहुजन के अस्तित्व के उद्देश्यों की पूर्ति करता है, तो उसे बार बार पुनरुत्पादित किया जाता है।”*<sup>9</sup>

दलित अपने श्रम की बदौलत पर्यावरणीय, प्रौद्योगिकी और इंजीनियरी दक्षता, सृजनात्मकता और ज्ञान के धनी हैं और इस वजह से उनका प्रकृति के साथ करीबी रिश्ता बनता है। वे मिट्टी के विशेषज्ञ हैं, पौधों की प्रजातियों के जानकार और प्रजनक हैं, बीजों के संरक्षक हैं। जमीन, पौधे, पशु, कीटाणु, मिट्टी, बीज, उपकरणों के बारे में उनकी जानकारी पारंपरिक चिकित्सा पद्धति, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास और उत्पादकता में वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है। इलाही उदाहरण के साथ बताते हैं : *“एक कुम्हार या मटका बनाने वाले के संपूर्ण ज्ञान संसार में कई चीजें शामिल हैं : सही मिट्टी जमा करना, उसे चिकनी मिट्टी में तब्दील करना, उसे चाक पर रखना, आग में जलाना। और इस सबके लिए स्थानीय पदार्थों और उपकरणों, चिकनी मिट्टी और उसे पकाने की वैज्ञानिक जानकारी के साथ साथ बाजार की भी एक पैनी समझ जरूरी है। उंगलियां चलाने का मानसिक कौशल, चाक चलाने की शारीरिक क्षमता, चिकनी मिट्टी का मटका, बर्तन, शीशी बनाने का गुण। आग का इस्तेमाल भी एक बेहद दक्ष और मिहनती प्रक्रिया है।”*<sup>10</sup>



के. सत्यनारायणा और सूजी थारू के दक्षिण भारतीय भाषाओं में खासकर 1990 के दशक में दलित लेखन और विचारों के बेहद प्रभावशाली और जरूरी संकलनों में हमें कई कविताओं, लेखों और संस्मरणों में दलितों के जमीन, कृषि, पानी और जंगल के साथ गहरे और भरपूर समृद्ध संबंधों की काफी जानकारी मिलती है। जाति वर्चस्व और शोषण से दलित सुजनात्मकता और सक्रियता समाप्त नहीं हो जाती है। वास्तव में इससे दलित श्रम, श्रमिक और प्राकृतिक संसाधनों के साथ उसके हर दिन के रिश्ते को एक अलग अर्थ मिलता है। जैसे, तमिल दलित लेखक ईमायम की कहानियों के संकलन 'मनबारम' जिसका शाब्दिक मतलब है 'मिट्टी का बोझ' में श्रम की प्रकृति, बारिश के बाद मिट्टी के भारी चिपचिपेपन और खेती के भावनात्मक तनाव का जिक्र होता है। ईमायम के लेखन का परिचय देते हुए सत्यनारायणा और थारू कहते हैं— "यहां हम एक छोटे किसान की जिंदगी के एक लंबे दिन का महाकाव्यात्मक वर्णन पाते हैं जो अपनी पूरी विशेषज्ञता से खेत की बुआई की निगरानी करता है, साथ ही खुद अपनी पत्नी के साथ मजदूरों के काम में हाथ बंटता है। वे पौ फटने से पहले काम शुरू करते हैं और सबके साथ काम करते हुए हर चीज को ऐसे समय पर निबटाते हैं कि सूरज ढलने से पहले बुआई खत्म हो जाए। हम पाते हैं कि जमीन और उसके मिजाज के बारे में उन्हें गहरी जानकारी है— ऐसी जानकारी और जुड़ाव जो मिट्टी के साथ काम करके ही शामिल होता है। इस गांव की कहानी में यदि कोई वैरी है, तो वह ऊंची जाति का भूस्वामी नहीं बल्कि बेसमय की बारिश है। भूस्वामी और मजदूर एक ही स्तर पर मिलते जुलते हैं : वह उन्हें समझाता है, अपनी चिंताएं बांटता है, मनाता है, झिड़कता है, सलाह लेता है, अपना क्रोध दबाता है।" <sup>11</sup>

कुछ ऐतिहासिक अध्ययनों में दलितों के कृषि और इसके तकनीक संबंधी ज्ञान और अनुभवों की विस्तृत चर्चा की गई है। भूमिहीन मजदूरों और बटाईदारों ने कमरतोड़ मेहनत करके और अपने हाथों हथेलियों के उपकरणों से खेती की दशा दिशा बदली है। उन्होंने तमाम जातीय दबावों के बीच कृषि और इसके संरक्षण के क्षेत्रों में कई अभिनव प्रयोग किए हैं। के.टी. राममोहन ने केरल के कुट्टनाड क्षेत्र में उन्नीसवीं सदी के अंत से 1940 के दशक तक 'चावल की कहानियों' में दिखाया है कि किस प्रकार कुट्टनाड की झीलों, दलदलों (बैकवाटर जो मानव या प्रकृति निर्मित अप्रवाही जलस्रोतों की कई शृंखलाएं हैं) को सुधारकर, सुखाकर और तैयार करके चावल की खेती, यहां तक कि समुद्र स्तर के नीचे के मुश्किलात में हुई। ये काम कई तरह के दास मजदूर, नीच, बंधुआ, भूमिहीन, आदि करते थे जिनमें अधिकांश पुलाया जाति के दलित थे। पुलाया शब्द के कई अर्थ हैं : पुलाया का मतलब है धान, यानी पुलाया खेत का आदमी है। पुला का एक और अर्थ है प्रदूषण, यानी पुलाया प्रदूषित होते हैं। पुलाया की छाया भी ऊंची जाति के लोगों को प्रदूषित करती थी, यहां तक कि उन्हें ब्राह्मणों और नायरों से एक खास निर्धारित दूरी— ब्राह्मणों से नब्बे फुट और नायरों से चौंसठ फुट— बनाए रखने का नियम था।<sup>12</sup> पर उनके श्रम और इसके नतीजे को बेहद सराहा गया है, यहां तक कि परिवर्तनकारी माना गया है— "ऐसे विषम हालातों में जमीन के सुधार की तकनीक का श्रेय दबी हुई पुलाया जाति को है। जब सारी जमीन ऊंची जातियों और समुदायों, राज्य और मंदिरों के हाथों में थी, तब पुलाया और अन्य भूमिहीन जातियों के लोग मालिकों या मंदिरों की जमीन के टुकड़ों या सामुदायिक जमीन पर बसने के लिए मजबूर थे। दलदल या झील में पानी के बहाव से आई हुई मिट्टी या रेत से जमीन के नए टुकड़े बनते थे जिन पर पुलाया कब्जाकर लेते थे। इसके अलावा वे नदी के धसानों और कीच कादावाले हिस्सों, दलदलों और झीलों के उथले हिस्सों का भी सुधार करके उस पर भरण पोषण लायक खेती करते थे। पुलाया ने ऐसी परिस्थितियों में जमीन के सुधार की तकनीक के बुनियादी सिद्धांत ईजाद किए। इस पर

जोर देना जरूरी है क्योंकि कुट्टनाड के बारे में उपलब्ध सारे शोधों में जमीन के सुधार और चावल की खेती के लिए नायर और सीरियन ईसाई समुदाय के 'उद्यमी किसानों' को श्रेय दिया गया है और पुलाया की अग्रणी भूमिका की अवमानना हुई है।<sup>13</sup>

भारतीय, खासकर राजस्थानी, लोक साहित्य के महान अध्येता कोमल कोठारी ने दिखाया है कि किस प्रकार हमारे संगीत, नाटक और तमाशा परंपराओं में (कठपुतली, लोकगीत और कथा, आदि) कमतर जातियां भूमि, पानी, कृषि, सिंचाई और पशुधन के अनेक दृष्टांत प्रस्तुत करती हैं। इस प्रक्रिया में दलित अपने पर्यावरण मनीषी गढ़ते हैं और समाज में आमतौर पर व्याप्त और स्वीकृत देवी देवताओं की सत्ता और प्रभाव को कमजोर करने की कोशिश करते हैं। मौखिक वृत्तांतों के जरिए वे अतीत की व्याख्या करते हैं और वर्तमान की बदली हुई तस्वीर पेश करते हैं। जैसे कोठारी मेवाड़ की छोटी सदरी के नजदीक पिपलिया गांव से गुजरते हुए यह देखते हैं कि कोई 500 लोग एक जगह जमकर दो मुखबंचा भट्टों से वंशावली वृत्तांत सुन रहे हैं। दोनों भट्ट ढोल बजाकर एक सुंदर लय और ताल में राउत समुदाय के उदय की कहानी सुना रहे हैं। कहानी पुनिया नाम के आदमी के बारे में है। कहा जाता है कि पुनिया के पहले वहां खेती का कोई प्रचलन नहीं था। पर पुनिया ने खुद ही खेती सीखने और करने का फैसला किया और सबसे पहली बार मकई बोयी। मकई की फसल अच्छी हुई। पर जब फसल काटने का समय आया, तो यकायक सूर्य और चांद अवतरित हुए और उन्होंने पुनिया से पूछा कि आखिरकार उनकी कृपा के बगैर कोई अच्छी फसल कैसे हो सकती है? पुनिया ने तपाक से जवाब दिया कि यह भगवानों की कृपा है— सूरज की रोशनी की किरणें और चांद की शीतलता जिसमें फसल हो पाई— जिससे उसे अच्छी फसल हासिल हुई। भगवानों ने फसल में अपना हिस्सा मांगा और पुनिया ने उन्हें खड़ी फसल में से अपनी इच्छानुसार हिस्सा लेने का आग्रह किया। सूरज और चांद को मकई के पौधे की जानकारी नहीं थी तो उन्होंने पौधे का ऊपरी फूला खिला हुआ हिस्सा ले लिया और नीचे का हिस्सा छोड़ दिया जिसमें मकई लगी थी। इस प्रकार पुनिया के पास अच्छी फसल रह पाई। अगले साल पुनिया ने ज्वार बोया। इस बार सूरज और चांद ने फिर अपना हिस्सा मांगा और पिछले साल का अनुभव याद करते हुए पौधे का निचला हिस्सा मांगा जिसके लिए पुनिया तुरंत तैयार हो गया। इस बार भी पुनिया को पूरी फसल मिल गई क्योंकि ज्वार पौधे के शीर्ष में मिलता है। और भगवान को पौधे का धड़ा भर मिला। कहानी वाचन के बाद एक भट्ट ने लोगों से सवाल किया : “अब आपने कहानी सुनी, आप अब क्या सोचते हैं? क्या आप सूरज और चांद को पहचान सकते हैं?” और चार पांच सौ लोगा लगभग एक आवाज में जोर से बोले— ‘चंद्रवंशी, सूर्यवंशी।’ कोठारी निष्कर्ष में कहते हैं कि ये नाम राजपूत समुदाय के सामंतों के हैं।<sup>14</sup> यह विवरण रेखांकित करता है कि दलितों के पर्यावरण विश्व में केवल श्रम पद्धतियां नहीं बल्कि श्रम मूल्यों के बंटवारे का भी मुद्दा है।

महाराष्ट्र के कपास उपजाऊ बरार क्षेत्र में दलित खेत मजदूरों की एक परंपरागत सांस्कृतिक क्रिया है— ‘धूरी’ जिसमें वे प्रकृति से कठोर नहीं होने और उदारता के साथ वर्षा देने की प्रार्थना करते हैं जिससे किसानों को अच्छी फसल मिल सके।<sup>15</sup> उत्तर भारत में चमार खेतिहर और कृषि मजदूर का काम करते हुए मिट्टी की उर्वरता, जुताई, बुआई और फसल कटाई के लिए कई रस्म और अनुष्ठान करते हैं। रामनारायण रावत ने औपनिवेशिक उत्तर प्रदेश में चमारों के बारे में अपने विस्तृत अध्ययन में पाया कि चमार खरीफ और रबी फसल की शुरुआत के मौके पर कई रस्म विस्तारपूर्वक करते हैं, जैसे, अपने हल से खेतों में पांच अलग अलग जगहों पर पांच बार खुदाई करना और हर फसल के लिए अलग अनुष्ठान है : “जैसे गन्ने की बुआई से पहले चमार गुड़ की डली को हल पर घिस देते हैं और घिसा हुआ हिस्सा किसानों मजदूरों में बांट दिया जाता है...

गेहूँ की फसल की शुरुआत पर अनाज के कुछ दाने मिट्टी के एक छोटे बर्तन में डालकर जमीन के अंदर गाड़ दिया जाता है, कुछ दाने खेत में गंगा की दिशा करके फेंके जाते हैं और पांच मुट्ठी भर दाने खेत के अलग अलग हिस्सों में गाड़े जाते हैं। बुआई के बाद हल के सम्मान में अग्नि की आहुति दी जाती है। यह भी आस्था है कि खेत के मालिक को बुआई के समय भूखा रहना चाहिए...कपास की खेती के दौरान भी ऐसे अनुष्ठान किए जाते हैं। फसल तोड़ने से पहले खेत में अग्नि की आहुति का अनुष्ठान किया जाता है और जो स्त्री कपास तोड़ती है वह खेत में बैठकर चावल खाती है। अच्छी बारिश के लिए और शरद और वसंत में फसलों को ओस और बारिश से बचाव के लिए खास पूजा और रस्में हैं। मानसून में अच्छी बारिश के लिए कई रस्में और विधिया होती हैं : कुएं में एक छोटा हल लटकाना, या खेत में कुछ चपातियां और एक मिट्टी के बर्तन में पानी भरकर रखना। खेती के लिए कुआं खोदने से पहले शनिवार की रात को प्रस्तावित स्थल पर छोटे छोटे बर्तनों में पानी भरकर रखना और जिस बर्तन का पानी सबसे पहले सूखता है, उस स्थल को कुआं खोदने के लिए उपयुक्त समझना, आदि।<sup>16</sup>

जाने माने मिथिला रंग रंगाई के प्रसिद्ध दलित कलाकारों ने अपने चित्रों में प्रकृति के रोजाना अनुभव दिखाए हैं। दुसाध स्त्री कलाकारों ने अपने गोदना चित्रों में मुख्यतः फूल पत्ते, खेत, जानवर और विभिन्न आकृतियां उकेरे हैं। यहां जीवन वृक्ष और सूर्य की छवियां प्रमुखता से नजर आती हैं। जैसे, दुसाध जाति के श्रवण कुमार पासवान और उनकी मां उर्मिला देवी के मिथिला चित्रों में प्रकृति छाई रहती है : “हरित मणी की पृष्ठभूमि में काली स्याही से गोदना शैली में चित्र बाईं तरफ स्त्री की रोजाना जिंदगी का चित्रण है— पानी और भूसा लाते हुए, खाना पकाते, बच्चे को ढोलाते, जानवर की देखभाल करते। दाहिनी तरफ जंगल के जानवर चित्रित हैं। इस सबके नीचे मछलियों से भरा एक तालाब है और जाल में फंसी कुछ मछलियां हैं। और इस सारे चित्रों को आच्छादित करता हुआ विशाल ‘जीवन वृक्ष’ है जिस पर चिड़ियाएं भरी हुई हैं।”<sup>17</sup>

ये छिटपुट उदाहरण कृषि, भूमि, श्रम और जाति के नजरिए से देखे समझे जा सकते हैं। ये हमें इस बात की झलक देते हैं कि आधुनिक, व्यवस्थित पर्यावरण आंदोलन के जन्म से पहले भी दलित पर्यावरणवाद आजमा रहे थे। दलितों का पर्यावरण के साथ रिश्ता प्रायः जाति के जरिए संचारित होता है। भूमि, कृषि और मिट्टी की जमीनी वास्तविकताओं को जाति के भेदभाव के साथ बुनकर देखने से हमें अदम्य साहस और भारी दहशत, जुड़ाव और उदासीनता, दोनों के पुट मिलते हैं जो पर्यावरणवाद के अलग प्रकार और अंदाज बताते हैं।

### सी. जे कुट्टपन : माटी और पसीना

कुट्टपन केरल के तिरुवल्ला के एक जाने माने दलित लोकगायक, एक कलाकार और अभिनेता हैं जिन्होंने दलित लोक साहित्य और कला विधाओं में शोध किया है। वह केरल लोक साहित्य अकादमी के अध्यक्ष थे और उन्होंने क्षेत्रीय और राष्ट्रीय टेलीविजन चैनलों में भी काम किया है।<sup>18</sup> कुट्टपन ने बेहद साधना से मध्य केरल में दलितों और आदिवासियों के लोक साहित्य संग्रहीत किए हैं। इस क्षेत्र— पालाघाट, त्रिसूर और इरनाकुलम— में दलितों और आदिवासियों की सघन आबादी है और उनकी आबादी का एक मुख्य बड़ा हिस्सा कृषि और संबंधित गतिविधियों से संलग्न है। जैसे, पालाघाट में उन्नत पर्वतीय और मैदानी क्षेत्र है। घाटियों और समतल भूमितलों के साथ साथ यहां पर्वत के ऊंचे शिखर, लंबी तराइयां, बृहद वीहड़ घने जंगल और घुमावदार भूदृश्य हैं। यह राज्य का एक मुख्य धान उपजाऊ क्षेत्र है और इसकी अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि आधारित है। सूखे खेत हों या गहरे पानी, धान की खेती में दिन रात हाड़तोड़ मेहनत रहती है। इस क्षेत्र में

कई तरह के आर्थिक बदलावों के बावजूद प्राकृतिक संसाधनों पर दलितों की निर्भरता हर तरफ जाहिर है और उनकी आजीविका उनके श्रम पर निर्भर है। दलित श्रम उनके गानों में गूंजता है और ये गाने प्रकृति के संरक्षण और सम्मान, फसलों के मौसमी चक्र, पशुओं, पौधों, फसलों और नदियों का भी वर्णन करते हैं। कई गाने नारियल के पेड़, खजूर, ताड़ी, खेतों के बारे में हैं। देवी देवताओं और पवित्र जंगल के गाने हैं। काफी गानों में सूरज, पृथ्वी और पानी के अनगणित संदर्भ हैं। साथ ही साथ इन गानों में अन्याय और दलितों के सपने दीखते हैं और कई बार गाने एक दूसरे से सवाल जवाब की शैली में लिखे जाते हैं। के. सत्यनारायण और सूची थारू का कहना है : “इन गीतों से पता चलता है कि जमीन पर काम करने और कृषि संबंधी जानकारीयों और स्थानीय इतिहास का असीम खजाना रखने के अलावा, दलित, एक सर्वेक्षक और निरीक्षक के तौर पर भी, कृषि कार्यों से अविलग थे। चूंकि भूस्वामी कृषि से दूर रहते थे, दलित पर्वतीय इलाकों में बड़ी जोतों का सारा काम संभालते थे। दूसरे शब्दों में, दलित केवल मजदूर की तरह खेत नहीं जोतते थे। वे मिट्टी, खेती, कृषि कैलेंडर, मौसम, कृषि अर्थव्यवस्था, श्रम प्रबंध, आदि के बारे में जमीनी वैज्ञानिक और प्रबंधकीय ज्ञान रखते थे।”<sup>19</sup>

कुट्टपन का लोक साहित्य और गीतों का संकलन दलितों की पर्यावरण अंतर्दृष्टि, उनके इतिहास और विचारों में प्रकृति के वास और सांस्कृतिक परंपराओं और जन प्रस्तुतियों के जरिए पर्यावरण के प्रतिबिंबों का एक सुंदर उदाहरण है— एक अमोल मौखिक इतिहास का निर्माण— जबकि दलितों के शब्द और लेखन को खामोश करने की सामाजिक स्थितियां थीं। इन गीतों में कुछ दीर्घजीवी पर्यावरण मुद्दे बसते हैं— पृथ्वी के सपने, प्राकृतिक और सामाजिक व्यवस्था में पर्यावरण की सुंदरता और आश्चर्य, गैर मनुष्यों का मानवीकरण, स्थलों का प्रेम और निष्ठा, मौसमी चक्र का ज्ञान और संवेदनशीलता, श्रम की कठोरता और भयंकरता, और प्रकृति में संभावित द्वंद्व और विपदा की तीव्र चेतना। उदाहरण के लिए, लोकगीत ‘पक्कानारपट्टू’ मूल रूप में केरल के एक अग्रणी दलित गवैया पुक्कनर गाते थे जो ख्यातिप्राप्त रिवायत पराची पेटा पंथीरूकुलम में बारहवें व्यक्ति थे। कुट्टपन ने उनके गीतों का संकलन करते हुए कहा : “यह गीत पृथ्वी के निर्माण पर एक ठोस नजर डालता है— पहले से मौजूद पदार्थों से निर्मित एक क्षेत्र। रोशनी और अंधेरे, आंधी और हवा के रास्ते से गुजरते हुए पृथ्वी के आसपास एक रहस्यमयता पैदा हुई। पृथ्वी के शक्ति लेने से पहले कोई शुरुआत या अंत, रोशनी या अंधेरा, खाना या नींद, स्थिरता या गति नहीं थी। दक्षिण, उत्तर, पूर्व और पश्चिम से आती हुई हवा एक साथ एक जगह आई और उसने हवा का ऐसा दबाव बनाया कि एक छाता जैसा तन गया और पृथ्वी शक्ति में आ गई। दलितों के ब्रह्मांड विज्ञान में प्रकृति पर अद्वितीय सोच है जो इस भौतिक भूदृश्य को किसी विशेष धार्मिक विमर्श— और खासकर हिंदू धार्मिक ग्रंथों से रंगरेज नहीं करती हैं।”<sup>20</sup> गीत के बोल इस प्रकार हैं :

वहां न कोई शुरुआत थी, न अंत  
 उस लंबे बीते समय में  
 वहां न अंधेरा था, न ही रोशनी/चेतना/ज्ञान  
 उस लंबे बीते समय में  
 वहां न संख्या थी, न ही शब्द  
 उस लंबे बीते समय में  
 न ही पानी था, न ही किरण  
 चारों तरफ की हवाएं

गोल और गोल घूमते हुए  
 एक छाते की तरह  
 और पृथ्वी साकार हुई  
 न बगैर जाने पहचाने  
 धरा घटित हुई! <sup>21</sup>

दलितों के जीवन की जमीनी वास्तविकताएं उनके पर्यावरणीय वर्णनों में घुलमिल गईं जिसमें अतीत के बोझ, वर्तमान की वास्तविकताएं और भविष्य की संभावनाएं शामिल हैं। पृथ्वी में जीवन, लोग, पूर्वज, पदार्थ, धन, संपन्नता, उम्मीद और भविष्य स्थित हैं। पृथ्वी एक मौजूं मुक्तिदाता है। पृथ्वी वह है जहां भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही मुक्ति की संभावनाएं खोजी जाती हैं। अस्पृश्य वर्तमान से बाहर निकलने के लिए मानव और गैर मानव तत्वों के तालमेल से एक नया प्राकृतिक संबंध बनाया जा सकता है जो पृथ्वी पर साकार होता है। कुट्टपन बातचीत में निम्न गीत का हवाला देते हैं :

दीर्घायु और माटीपन की कामना करते हुए  
 मेरे चाचा कर रहे हैं संपत्ति की खोज  
 पृथ्वी है मां  
 पृथ्वी मुझसे होकर गुजरती है  
 और दूढ़ती है धन मेरे लिए  
 क्या मेरे चाचा उन दिशाओं से खबरदार हैं!  
 पांच तत्वों से निर्मित मेरा ईश्वर समृद्ध हो,  
 पृथ्वी समृद्ध हो  
 स्थल समृद्ध हो  
 आओ, ओ मेरे पिता और पूर्वज!  
 पृथ्वी के साथ आओ!<sup>22</sup>

दलितों के प्रकृति लेखन में जाति और अस्पृश्यता का प्रायः उल्लेख है। वास्तव में, अस्पृश्यता का मुद्दा केंद्रीय है। यहां प्रकृति का चित्रण कुरूप है, जैसे तीरों से तार तार आसमान, और जाति प्रदूषण से गंदला पानी। प्रकृति के अनुभवों पर इसे हासिल करने के संघर्षों और चुनौतियों का ग्रहण लगा हुआ है। यहां तक कि गैर मानव प्रकृति—मछली, जानवर, हवा—को बाधक के तौर पर देखा गया है जो एक व्यापक सामाजिक पर्यावरण के संदर्भ में अप्रिय और कष्टप्रद होते हैं। दलित अपने अंदर इन सवालियों से जूझ रहे हैं कि प्रकृति में बाधा बनने वाली जाति और इससे संबंधित मानवीय संस्थानों को पलटकर प्रकृति के साथ संबंधों में परिवर्तन लाया जा सकता है। कुट्टपन मानव और गैर मानव प्राकृतिक पर्यावरण के बारे में नकारात्मक बोध की बात करते हैं जो सदियों के दलित दमन का नतीजा है। वह कहते हैं : “पानी के गीत अस्पृश्यता की धिनीनी प्रथा के भी गीत हैं जो इस प्रथा की समाप्ति के विचारपूर्ण तर्क भी प्रस्तुत करते हैं। मछलियों से भरे जलस्रोत हमें इस दुखद वास्तविकता की भी याद दिलाते हैं कि यहां पानी पी नहीं सकते या इनमें स्नान नहीं कर सकते। हम उन नदी किनारों और घाटों से भी पानी नहीं पी सकते हैं जिनमें काफी लोग स्नान करते हैं। शांत नदी की नीचे बहती हुई धार वैसे ही अकेली और व्याकुल है जैसे कि हम अस्पृश्य जिन्हें न कोई स्पर्श करता है और न ही पानी देता है। आसमान को तीरों से छेदा जा सकता है, नमक अंकुरित होकर खेतों में फैल सकता है, पर पानी जाति के बंधन को कभी भी तोड़ नहीं सकता है और हम तक निर्बंध नहीं पहुंच सकता है।”<sup>23</sup>

गीत इस प्रकार है :

हे भगवान! ये कैसा प्रदूषण है।  
हमें कांटा चुभने से रक्त निकलता है,  
तुम्हें भी कांटा चुभने से रक्त ही निकलता है  
हे भगवान, फिर क्यों किया है,  
ऐसे विभेद का निर्माण?  
क्या है इस अशुद्धि का रंग, काला या सफेद?  
हे ब्राह्मण, कितना लंबा और बड़ा है ये प्रदूषण?  
बेहतर है, हट जाओ, हट जाओ तुम।  
दूर जाओ, दूर जाओ, तुम !<sup>24</sup>

यहां प्रकृति, जाति, अस्पृश्यता और श्रम का एक अजीब मिश्रण है। दलितों के पर्यावरण अनुभव उनके रोजाना के श्रम के जरिए जाहिर होते हैं। दलित खेत मजदूर भूमि के साथ मानवीय संबंधों पर जाति और अस्पृश्यता के दुखते असर की विस्तृत और वृहद अभिव्यक्ति करते हैं। कुट्टपन बताते हैं : “दलित स्त्री मजदूर खेतों में धान की बुआई करते हुए कई गीत गाती हैं। वो उनके खेत नहीं हैं, पर वे अपनी मजदूरी और खाद्य के लिए खेतों की खुदाई, बुआई, सिंचाई, संरक्षण— सब कुछ करती हैं। आप कैसा महसूस करोगे जब भूमि पर हाड़तोड़ मेहनत आपका मुख्य पर्यावरण अनुभव बन जाए? कैसा लगेगा जब आपका श्रम जाति और अस्पृश्यता के इतिहासों से समासित हो? क्या नतीजा निकलेगा जब श्रम और जाति आपके जीवन पर छाई हुई हो और वही पर्यावरण समेत सब कुछ पर आपकी जीवनदृष्टि बनाने में मुख्य भूमिका निभाती हो?”<sup>25</sup>

इसके साथ ही साथ, दलितों के पर्यावरण अनुभवों की कई जटिल परतें हैं। श्रम का शोषण और इससे मुक्ति की आकांक्षा, दोनों एक साथ सांस ले सकते हैं। जाति का दमन प्रकृति के साथ सृजनात्मक संबंधों की संभावनाएं समाप्त नहीं कर देता है। यहां प्रकृति को सृजन, उत्पादन, उर्वरता, पोषण, संपन्नता के नजरिए से भी देखा जाता है। इसलिए कुट्टपन के संकलन में यह गीत भी है :

फलो, फलो, फलो, फलो  
जमीन फलो, दुनिया फलो  
हमारी छतें फलो, हमारे आंगन फलो,  
सुनहले सोलह साल की तरह फलो  
तीस पौधों के रोपण में  
केवल तीन फलदार पेड़ फलो।  
तुम्हें सूई चुभाओ तो वही खून  
हमें सूई चुभाओ तो वही!  
फिर क्यों तुम ऊंची जाति?  
फिर क्यों जाति और छुआछूत?”

ऐसी अभिव्यक्तियों में पर्यावरण का अनुनाद है। दलितों के गीतों के सांस्कृतिक ऐतिहासिक अध्ययन से कुट्टपन यह दिखाते हैं कि अस्पृश्य किस प्रकार बंधुआ मजदूरी, कृषि श्रम, कठोरता, प्रकृति के संबंधों में निहित जातीयता से गुजरते और जीवन बसर करते थे जिसे प्राकृतिक और अंतहीन बताया जाता था। किसी सामाजिक राष्ट्रीय निकटता के अभाव में ये गीत पृथ्वी, प्राकृतिक संसाधनों और गैर मानवीय तत्वों के प्रति दलितों की पर्यावरणीय निकटता जाहिर करते हैं। प्रकृति पर कोई एक, एकरूप, इकहरा दलित नजरिया नहीं है। दलित लोक साहित्य के विविध स्वर, अनेक

विचार, विभिन्न क्षेत्रीय संदर्भ और सामाजिक स्थल की बानगी देते हैं जो प्रकृति के बारे में अलग अलग पीढ़ियों, विचार पद्धतियों और उप जातियों से निकलते हैं। शायद इन सबके बीच मिलन बिंदु है प्राकृतिक दुनिया में दलितों के जुड़ाव की अशांत खोज।

### वासुदेव सुनानी : पृथ्वी के उत्सव

प्रसिद्ध उड़िया दलित लेखक डा. वासुदेव सुनानी भुवनेश्वर, उड़ीसा, में रहते हैं और पेशे से पशु चिकित्सक हैं। साहित्य और सामाजिक विज्ञान में गहरी दिलचस्पी वाले वासुदेव ने कविताओं, उपन्यासों और लेखों की सत्रह किताबें प्रकाशित की हैं। उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण और चर्चित किताब है 'दलित सांस्कृतिक इतिहास' जो दस सालों के शोध के बाद 2009 में खुद उनके द्वारा प्रकाशित हुई। उनके बचपन की दो जीवन स्थितियां उल्लेखनीय हैं जिसने पर्यावरण के साथ उनके संबंध को गहरे प्रभावित किया। एक छोटे गांव मनीगुडा के निवासी वासुदेव को बचपन में अपने स्कूल जाने के लिए तीन किलोमीटर का पैदल रास्ता तय करना होता था जो जंगलों और नदी नालों से गुजरता था। और वह रात में कई बार अपने पिता के साथ खेत जाते थे और वहीं मचान पर सोते हुए पिता से प्रकृति तथा देवताओं की कहानियां, गीत और बातें सुनते थे।

वासुदेव पश्चिमी उड़ीसा के रहने वाले हैं। कोशल क्षेत्र के नाम से जाने जानेवाले इस इलाके में बोलांगीर, बारगढ़, बोद्ध, देवगढ़, झारसुगड़ा, कालाहांडी, नवपाड़ा, संभलपुर, सोनपुर और सुंदरगढ़ प्रमुख हैं। पहाड़ पर्वत, नदी, घाटी से भरेपूरे इस क्षेत्र में सघन वन हैं जिनमें केंदु पत्ता, बांस, लकड़ी, जलावन आदि भरपूर हैं। इसी क्षेत्र में महानदी और ब्राह्मणी नदियां और उसकी कई धाराएं प्रभावित होती हैं। प्राकृतिक संसाधनों, खनिजों, रत्नों से संपन्न यह क्षेत्र 'रत्नगर्भ महारण्य' के रूप में भी याद किया जाता है। यह क्षेत्र मुख्यतः कृषि आधारित है और खासकर गरीब और दलित अपनी आजीविका के लिए कृषि और वन संसाधनों पर निर्भर हैं। बोलांगीर, खैरियार और नवपाड़ा के बीरटिया, परधनिया और घोगिया जातियों पर अपने लंबे शोध के आधार पर वासुदेव का कहना है कि दलितों का सांस्कृतिक इतिहास प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के साथ उनके गहरे और जटिल संबंध बताता है। यहां पृथ्वी एक महान पवित्र स्थल है जहां महान आत्मा और महान पूर्वजों को महसूस और स्पर्श किया जा सकता है। फसल, फूल, पत्ते, सब्जी—सब कुछ इस पृथ्वी के सुंदर उपादान हैं जिनका मनुष्य और प्रकृति के साथ अभिन्न संबंध है। प्रकृति में आनंद और आश्चर्य के भाव निहित हैं। प्राकृतिक संसाधनों— जमीन, जल, जंगल, कृषि में जीवन की विविधता और सृजनात्मकता है जिसमें एक आंतरिक और बाह्य खुशी का अहसास होता है। यह खुशी नियमित समारोहों और त्योहारों में व्यक्त होती है। यह उल्लेखनीय है कि संगीत और गीत— मूरी बाजा (तुरही के बगैर संगीत), सींघ बाजा (तुरही के साथ संगीत) और धाप बाजा— और संगीत के उपकरण— निशान, माहुरी, ढोल, ताशा और घोलघोला— इन त्योहारों के मुख्य वाहक हैं।

दलितों के कई वर्णों में पृथ्वी पर उनके पूर्वजों की आत्मा के जीवंत वास की चर्चा है। यहां पृथ्वी एक सजीव और शक्तिशाली हस्ती है जिसे सम्मान और संरक्षण देना चाहिए। हर दलित के घर में माटी का एक पवित्र स्थल है जहां उनका पूर्वज 'दूमा' बसता है। 'दूमा' की नियमित पूजा होती है। यह मान्यता है कि 'दूमा' अतीत में एक आम इंसान था/थी जिसने आम लोगों के लिए प्रकृति के रहस्यों और सारे पदार्थों का उद्घाटन अन्वेषण किया। दलित अपने पूर्वजों को 'दूमा' कहते हैं और उनके अन्वेषण के लिए अपनी श्रद्धा अर्पित करते हैं। पूर्वज दूमा देवी देवता के रूप में भी पहचाने जाते हैं और उन्हें खाद्य पदार्थों का पहला कौर अर्पित किया जाता है। वासुदेव लिखते हैं : "दलितों की ऐसी सांस्कृतिक अभिव्यक्तियां आर्य संस्कृति से अलग हैं। आर्य संस्कृति

में मृत्यु के बाद आत्मा स्वर्ग में वास करती है जबकि यहां आत्मा पीडर में वापस आती है और परिवार के सदस्य उसकी पूजा अर्चना करते हैं। मंदिर के विपरीत दूमा देवी/देवता की पूजा के लिए किसी पंडित की जरूरत नहीं होती है।<sup>27</sup> वासुदेव यह भी कहते हैं कि “हम किसी पाप और पुण्य, स्वर्ग और नरक की बात नहीं करते हैं।”<sup>28</sup> वह और विस्तार से बताते हैं— “हमारे पृथ्वी मंदिर और पृथ्वी देवियां, दोनों हैं। माटीगुडी पृथ्वी मंदिर है और माटी देवी पृथ्वी की देवी है : एक पवित्र देवी और स्थल जिसे हम अपनी रोजाना जिंदगी में याद करते हैं, स्पर्श करते हैं और कुछ विशेष अवसरों पर इसकी पूजा करते हैं। पृथ्वी मंदिर और देवी हमें जीवन काल में आश्रय और भोजन पानी देते हैं और मृत्यु में हम मिट्टी में समाहित होते हैं। माटी देवी घर के अंदर किसी पवित्र स्थल में स्थापित होती है जिसे पीडर कहते हैं। माटी देवी घर के बाहर भी किसी स्थल पर स्थापित होती है जिसे गुडी कहते हैं। एक पत्थर स्थापित करके भी देवी का प्रतीक बना लेते हैं। एक दलित सबेरे सबेरे धरती पर कदम रखते हुए या किसी काम के लिए गांव से बाहर जाते हुए बेहद सरल तरीके से देवी का आशीर्वाद लेता है। यह मान्यता है कि यदि माटी देवी अप्रसन्न है, तो कृषि, फसल, स्वास्थ्य और घर के लिए काफी बुरा हो सकता है।”<sup>29</sup>

विशेष दिनों और अवसरों पर पृथ्वी देवी और मंदिर हमेशा ही पूजे जाते हैं।<sup>30</sup> विवाह के मौके पर माटी अन्ना (मिट्टी लाना) एक महत्वपूर्ण अनुष्ठान है : स्त्रीसमूह मातागुडी जाते हैं, परिवार की वरिष्ठ स्त्री इस मौके के लिए खासकर आमंत्रित पुजारी से एक नई साड़ी में गुडी मिट्टी लेती है। विवाह समारोह शुरू होने से पहले इस मिट्टी से विवाह वेदी को पोता जाता है। महुआ पेड़ की दो शाखाएं— पुरुष और स्त्री, दूल्हा और दुल्हन— बतौर गवाह रखे जाते हैं। इस प्रकार माटी देवी विवाह समारोह को अपना आशीर्वाद देती है, और दलित मिट्टी और पृथ्वी के प्रति अपना सम्मान व्यक्त करते हैं। इसके बाद, जब फसल तैयार होकर घर आती है, तब भी दलित विशेष मौकों पर पृथ्वी देवी और मंदिर के लिए समारोह आयोजित करते हैं। पौष माह में पूर्ण चंद्रमा के दिन वे दो दिनों के लिए एक सालाना त्योहार पुषपुनी मनाते हैं। पहला दिन ‘पुषपुनी’ है और दूसरा दिन ‘पुषपुनीरा बसी’। दलित एक दूसरे के घर जाकर ‘चेरचेरा’ मांगते हैं— एक दूसरे को धान का उपहार देना और फिर इसे माटी देवी को चढ़ाना। बांस की टोकरी लेकर एक दूसरे के घर जाते हुए नौजवान सुर के साथ आवाज लगाते हैं : चेर...चेर...चेरा।।!! दलित स्त्रियां घर घर जाकर गाना गाती हैं : पुनिया झूनिया, दान करो धान का कटोरा, तुम हो सके तो दो धान का कटोरा, हम जाएं घर, यदि नहीं मिले दान का कटोरा।

दलित त्योहारों और अनुष्ठानों में प्रकृति की पूजा और उत्सव केंद्रीय हैं। वासुदेव के अनुसार पश्चिमी उड़ीसा में दलितों की जिंदगी में ऋतु परिवर्तन जो जमीन, कृषि और फसल से गहरे जुड़ा है, के समय कई पर्व त्योहार होते हैं। कृषि और संबंधित कर्म से जुड़ी कई साधारण, नीरस गतिविधियां प्रकृति और मनुष्य के बीच आपसी संबंधों की अभिव्यक्ति का रोचक माध्यम बन जाती हैं। कई त्योहार हैं जो प्रकृति के साथ नजदीकी संबंधों, प्रकृति के उत्पादन और संरक्षण मूल्यों से जुड़े हैं, जैसे, नुआखाई। नई फसल तैयार करने और खाने का त्योहार, दसहरा पिथोडी जिसमें धान से चावल बनाने का समारोह होता है; करम सानी, यहां हादन पेड़ की शाखा या देवी करम सानी की पूजा होती है; असरखेना में कृषि की वंदना होती है; दाल खाई में नवयुवतियां अपने भाइयों और पर्यावरण की रक्षा के लिए देवी दाल खाई की पूजा करती हैं; पुषपुनी पौष का त्योहार है और फागुन पुनी चैत्र का त्योहार है। इन सबमें पारस्परिकता और अर्पण का काफी महत्व है जिसमें धार्मिक रंग कम हैं और मुख्यतः प्रकृति के महान उपहारों और देनों के प्रति कृतज्ञ भाव है। जैसे नुआखाई एक कृषि त्योहार है जिसमें मौसम की पहली फसल— धान, गेहूं, गुरजी, महुआ, आम,



कद्दू, केला आदि— खुद खाने से पहले पूर्वजों को भोग लगाया जाता है। यह त्योहार सितंबर के आसपास जब धान की फसल तैयार होने लगती है, बेहद जतन से संपन्न होता है। सबसे पहले घर की वरिष्ठ महिला परिवार के अन्य सदस्यों के साथ पीडर पर जाकर त्योहार की शुरुआत करती है। एक एक करके फसल का अर्पण और फिर परिवार के सारे सदस्य मिलकर पहली फसल का खाना बनाते हैं और साथ साथ खाते हैं। वहां खाना खाने के लिए किसी धातु के बर्तन नहीं बल्कि पवित्र माने जाने वाले पत्ते— कुरई, भालिया या महुआ बिछाए जाते हैं। कुरई पत्ते का विशेष महत्व है— इसके नए पत्ते वसंत में आते हैं और साल, पलसा, सहज या भेलुआ के पत्तों की तुलना में ये पत्ते मुलायम होते हैं। दलितों का विश्वास है कि उनके पूर्वजों या देवी देवताओं ने उनके जीवन और कल्याण के लिए हर तरह के खाद्य पदार्थ— प्राकृतिक या उत्पादित— सृजित किए हैं। इसलिए हर कृषि मौसम में हर समय किसी भी फसल का उपयोग करने से पहले उसे अपने पूर्वजों या देवी देवताओं को भेंट करना चाहिए जिससे पूर्वजों का आशीर्वाद हमेशा कायम रहे। नुआखाई वह दिन है जब नुआखाई उपासा पडी या उपहार अपने संबंधियों, ग्राम रक्षी (गांव की सुरक्षा के लिए जिम्मेवार व्यक्ति) और लोहार को दिए जाते हैं। नुआखाई की तरह एक और त्योहार है 'फगुन पुनी तिहार' जिसमें पिडार में दूमा बने अपने पूर्वजों को आम, महुआ और चनरा चढ़ाकर प्रकृति का उल्लास मनाया जाता है। दलितों की मान्यता है कि हर तरह के प्राकृतिक उत्पाद— फल और कंदमूल, पत्ते और शाखाएं— पूर्वजों की हजारों सालों की हाड़तोड़ मेहनत और अन्वेषण से अस्तित्व में आए हैं। इसलिए उन्हें सबसे पहले दूमा के सामने प्रस्तुत करना चाहिए। ये त्योहार कुछ विशेष अनुष्ठानों के साथ शुरू होते हैं, जैसे घर में उपवास रखना, शाम में स्नान करना, चावल से कुछ मूर्तियां बनाना, दीप जलाना और कुछ गीतों के साथ फल फूल की भेंट चढ़ाना।

जब मौसम बदलते हैं, तब कृषि, जमीन, मिट्टी, फसल से जुड़े हुए दलितों के कई त्योहार नजर आते हैं। ये त्योहार क्षेत्र विशेष की जैव संपन्नता और पौधे, पत्ते, जानवर, प्रकृति के बारे में दलितों की गहरी जानकारी दर्शाते हैं। आषाढ़ के महीने में अमावास्या के दिन 'असरखेना' नाम से एक कृषि त्योहार होता है। इस दिन दलित मजदूर महुआ पेड़ की एक शाखा लाते हैं और इसे किसी कृषि भूमि के बीचोंबीच गाड़ देते हैं। फसलों पर कीड़े और बीमारियां आती हैं और यह माना जाता है कि 'असरखेना' फसल की रक्षा करती है। एक अन्य त्योहार है 'पितोडी जात्रा' या चौलधुआ जिसे कातिक माह में पूर्ण चंद्रमा के दिन चावल के भूसे की सफाई के लिए आयोजित किया जाता है। चावल ज्यादातर कातिक माह में तैयार होता है और लोग बगैर उसना चावल खाना शुरू कर देते हैं। यह त्योहार सुनिश्चित करता है कि जब तक 'पितोडी जात्रा' नहीं हो जाए, लोग नए चावल से भात पकाना शुरू नहीं करें और धान चावल की सफाई का पूरा ख्याल रखें। इस जात्रा के दौरान नया चावल पूर्वजों और अग्रजों को चढ़ाया जाता है। नए धान से तैयार चावल की धुलाई होती है, चावल और विरी या काली दाल मिलाकर खीरी पकाया जाता है, चावल की मूर्तियां बनाई जाती हैं और दीप जलाए जाते हैं। पुरुष और स्त्री उपवास रखते हैं और अंत में पीडर में पूर्वजों को खीरी दिया जाता है। यहां भी यही मान्यता है कि नई फसल खुद उपभोग करने से पहले अपने पूर्वजों को भेंट करनी चाहिए। ऐसे त्योहारों से गांव और समुदाय को ज्यादा समृद्धि और शांति मिलती है। दलित बीजों का त्योहार मनाते हैं। चैत के महीने में पूर्ण चंद्रमा के दिन या उसके एकदम पहले खेती की जमीन पर बीज छिड़कने का त्योहार होता है। चार दिनों के त्योहार में घर के अंदर और बाहर, गांव के प्रवेश या पहाड़ी पर बीज छिड़के जाते हैं। पश्चिमी उड़ीसा में इस त्योहार के अलग अलग रूप मिलते हैं, पर सब जगह बेहद खुशी और धूमधाम के साथ बीज के त्योहार दिखते हैं।

दालखाई देवी पत्तों से जुड़ी हुई देवी है। पश्चिमी उड़ीसा की दलित नवयुवतियां इस देवी की विशेष पूजा करती हैं जो उनके जीवन में नए पत्तों, फसल, पेड़, फल, फूल के गहरे असर के बारे में बताता है। दालखाई देवी आमतौर पर गांव के बाहर स्थित होती है और गांववासी गांव से बाहर या अंदर आते जाते देवी के प्रतीकचिह्न पर कुछ पत्ते चढ़ा जाते हैं। दालखाई का मतलब है पत्तों से जुड़ा हुआ और दलितों का विश्वास है कि दालखाई देवी पत्तों का संरक्षण करती है और पत्तों के बीच में रहना चाहती है। इस त्योहार में दलित नवयुवतियां दिन भर उपवास करती हैं, खीरे का प्रतीकात्मक बलिदान करके देवी की पूजा करती हैं और भाई को धागा बांधती हैं—जीवन और प्रकृति की रक्षा तथा संबर्द्धन के लिए। दालखाई के अनुष्ठान काफी समय तक और विस्तृत चलते हैं— इनमें पानी, पोखर, नदी, बालू, बीज, पेड़, खाद्य, संगीत, नृत्य, प्रकाश और रंगों के काफी पुट रहते हैं। कुछ पेड़ों, पत्तियों और पहाड़ों पर खासकर अनुष्ठान होते हैं। जैसे, भादों माह में ग्यारहवें दिन हादना या करमा सानी के पेड़ की एक शाखा काटकर उसे दलित गांव के बीच में प्रतिस्थापित किया जाता है, उपवास रखा जाता है और दीप, अगरबत्ती, दारू, नृत्य और संगीत के साथ समारोह संपन्न होता है। बुद्धा, डांगर और सीकरपाट जैसे पहाड़ों को सारा गांव मिलकर पूजता है क्योंकि ये पहाड़ खाद्य पदार्थों और जलावन की लकड़ियों के स्रोत माने जाते हैं। यह भी मान्यता है कि पहाड़ों में दलितों के पूर्वज और देवी देवता बसते हैं जो जरूरत के समय गांववालों की देखभाल करते हैं। इन पहाड़ों में बुद्धाराजा नाम के एक लोकप्रिय देवता का वास मानते हैं।

ये उदाहरण बताते हैं कि पश्चिमी उड़ीसा के दलितों में पर्यावरण की गहरी जमीनी जानकारी है और वे अपनी रोजाना जिंदगी में पर्यावरण की विविधता और संपन्नता का उत्सव मनाते हैं। यह क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों से भरापूरा है और दलितों का इन संसाधनों से गहरा निजी रिश्ता है, इसलिए यहां प्रकृति संबंधी लोककथाएं, उत्सव, अनुष्ठान जीवंत हैं। प्रकृति के इर्दगिर्द दलितों के बिंब, भाषा और शब्दावली से जैव विविधता, प्राकृतिक परिदृश्य, पृथ्वी, मिट्टी, पौधे, पत्तियां, पानी, पशु आदि का एक रंगबिरंगा चित्र प्रस्तुत होता है जो प्रकृति के साथ उनके अलग, विशिष्ट संबंध भी जाहिर करता है। पृथ्वी और उसके अवयवों के अलग अलग अर्थ और असर हैं : वे हमारे लिए आजीविका के स्रोत हैं, हमारे जीवन के अभिन्न अंग हैं, हमारे अतीत और वर्तमान के वाहक हैं। पर्यावरण के ज्ञान के साथ जुड़े देवी देवता, अनुष्ठान और आस्था एक अपनी ज्ञान पद्धति और व्यवहार बुनते हैं। दलितों के अपने जीवन संसार और घर बाहर में इस सबकी अविभाज्य और स्थायी जगह है। वासुदेव सुनानी विभिन्न बिंदुओं को जोड़ते हुए दलितों की पर्यावरण दुनिया की एक ऐसी खूबसूरत तस्वीर उकेरते हैं जिसमें दलित और प्रकृति के करीबी पारंपरिक संबंध और प्रकृति के उत्सव, रोजाना की जिंदगी में पौधे, फसल और खेती के महत्व, दलित भक्ति और आध्यात्मिकता, व्यावहारिक बुनियादी पर्यावरण जरूरतों, आदि का अद्भुत उद्घाटन होता है।

## दलित और पर्यावरण के प्रतीक

दलित पर्यावरणवाद के समृद्ध उदाहरण हैं उनके विविध पर्यावरण प्रतीक। अध्याय के इस हिस्से में हम कई प्रकाशित स्रोतों के आधार पर उनके प्रतीकों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उनके देवी देवताओं, पशुओं और खाद्य पदार्थों के विहंगम उदाहरणों से पता चलता है कि दलित विमर्श और व्यवहार इनके जरिए नए पर्यावरणीय अर्थ गढ़ते हैं।

## देवी देवता

कंचा इलाही ने दक्षिण भारत के उन अनेक दलित बहुजन देवी देवताओं का विस्तृत हवाला दिया है जो प्राकृतिक संसाधनों और पर्यावरण से संबंधित दलित बहुजनों की उत्पादक संस्कृति और जीवन की अभिव्यक्ति हैं। ऐसी कई छवियां दलितों के मानवीय अस्तित्व के केंद्र में हैं और उत्पादक शक्तियों और प्रकृति के बीच के संबंधों का आधार कायम करती हैं : *“एक कट्टामयअम्मा तालाब पद्धति की अन्वेषक है, एक पोचम्मा जड़ी बूटी से चिकित्सा की जनक है, एक वीरप्पा सर्वप्रथम जानवरों की संरक्षक है, एक पोट्टाराजू खेत का रखवाला है, एक यनादी इस्यात विशेषज्ञ है।”*<sup>32</sup>

एक दलित बहुजन स्त्री कट्टामयअम्मा जलदेवी है जिसकी प्रतिमा(पत्थर का एक छोटा टुकड़ा) गांव के तालाब के बांध पर रखी जाती है। वह सुनिश्चित करती है कि तालाब में पानी अच्छी तरह भरा हो, जल संसाधन का नियमन हो, तालाब के पास के खेतों की फसल हरीभरी हो और फसल, बुआई से लेकर कटाई तक, भलीभांति संरक्षित और सुरक्षित रहे। जलदेवी के नाम पर कई महत्वपूर्ण त्योहार और समारोह हैं। खेती और फसल के लिए एक जाने माने देवता हैं पोट्टाराजू— खेतों के बीच पत्थर का एक टुकड़ा जिस पर सफेद रंग और हल्दी चढ़ी है। यह मान्यता है कि पोट्टाराजू जंगली जानवरों और चोरों से खेत और फसल की रक्षा करते हैं; यहां तक कि उनकी छवि के सामने चोर नतमस्तक हो जाते हैं और किसान अपनी फसल के प्रति पूरी तरह सुरक्षित महसूस करते हैं। फसल तैयार हो जाने के बाद पोट्टाराजू की प्रतिमा के सामने एक मुर्गे की बलि दी जाती है। कंचा इलाही हमें आंध्र प्रदेश की एक बेहद लोकप्रिय दलित बहुजन देवी पोचम्मा के बारे में विस्तार से बताते हैं जो ‘प्रकृति, उत्पादन और प्रजनन’ से संबंधित है और गांव में हर इंसान की देखभाल करती है और उन्हें बीमारियों, बुराइयों से बचाती है : *“हर गांव के नजदीक एक छोटा पोचम्मा मंदिर है। इस देवी के मंदिर की अवधारणा एकदम अलग है। देवी मंदिर में रहती है, पर मंदिर में कोई नियमित पूजा नहीं होती है। पोचम्मा रोजाना पूजा की देवी नहीं है। साल में एक बार गांव के सारे लोग(इसमें ब्राह्मण और बनिया को छोड़कर सभी जाति के लोग शामिल हैं) बोनालू के साथ (एक बर्तन जिसमें मीठा चावल बना होता है) मंदिर जाते हैं, देवी की प्रतिमा— पत्थर—थोते हैं, मंदिर और उसके आसपास की सफाई करते हैं...वे कहते हैं; मां, हमने खेत की बुआई कर दी है; अब तुम हमारे लिए अच्छी फसल सुनिश्चित करो, हमारा एक बच्चा बीमार है, यह तुम्हारा कर्तव्य है कि उसे स्वस्थ बनाओ।”*<sup>42</sup>

आंध्र प्रदेश के समुद्री तटवर्ती क्षेत्रों में दलित देवी देवता जैसे गोनथेम्मा, माराम्मा, ननचरम्मा और अनकलम्मा कृषि, जमीन और जल से संबंधित हैं। तमिलनाडु की गैर ब्राह्मण जातियों में पवित्र जंगलों की पूजा अर्चना के लिए विशेष देवी देवता हैं। दक्षिणी भारत के अन्य क्षेत्रों में दलितों ने पवित्र जंगलों के अंदर और बाहर अपने देवी देवता स्थापित किए हैं। एलिजा केंट पवित्र जंगलों पर अपने गहरे अध्ययन में ऐसे कई उदाहरण देती हैं। जैसे, पांडिचेरी के दक्षिण में कुडलोर जिले के कुजहानदायकुप्पम गांव के बाहर 1.5 हेक्टेयर के पवित्र जंगल में दलितों का अपना कडावाडी वीरन— जंगलों का रक्षक है। यह कडावाडी वीरन मुख्य वीरन और उसके स्थल से अलग है जहां दलितों का प्रवेश निषेध है। अन्य गांवों में ब्राह्मण और दलित पवित्र जंगलों के देवी देवताओं की व्याख्या अलग अलग करते हैं। केंट तमिलनाडु के विल्लुपुरम जिले के उरनी पवित्र जंगल के श्री सेलीयम्मन मंदिर का रोचक उदाहरण देती हैं। गांव और जंगल के रक्षक के बतौर सेलीयम्मन की भूमिका है गांव को बाहरी तत्वों : भूत पिशाच, बीमारी, अकाल या चोरों के खतरे से बचाना। केंट टिप्पणी करती हैं : *“गांव के अभिजात लोगों के नजरिए से इन कहानियों में देवियां नीची जातियों को खतरा मानती हैं और इस प्रकार सामाजिक वर्चस्व का पुनर्स्थापन करती हैं। पर भारती नगर*

के दलित निवासी भी इस देवी से अपना नाता जोड़ते हैं और दावा करते हैं कि जब उन्हें कई पीढ़ी पहले दास बनाया गया, तब उन्हें अपनी देवी (कुलदेव्यम) से जबरदस्ती अलग कर दिया गया। इस प्रकार श्री सेलीयमन एक ऐसा केंद्रबिंदु बन गया है जिसके इर्दगिर्द गांव के पारंपरिक सत्ताधारियों और शिक्षा और स्थानीय चुनावी राजनीति से सशक्त अग्रगामी दलितों के बीच सत्ता संबंधों की रसाकसी चलती है।<sup>44</sup>

पवित्र जंगलों और झुरमुटों की बजाय सामान्य जंगलों में दलितों के देवी देवता वास करते हैं और उनके बारे में दलितों के अपने खास विवरण विश्लेषण हैं। सिद्दालिंगैया, एक प्रमुख कन्नड़ दलित कवि, दलित संघर्ष समिति के संस्थापक और 'ग्रामदेवथेगाल' के लेखक जिसमें कर्नाटक के ग्रामीण देवी देवताओं की विशद विवेचना की गई है, एक बातचीत में कहते हैं : "कुछ भक्त मुझे जंगल में एक ऐसी देवी का दर्शन कराने के लिए ले गए जिसके पास अपार शक्ति है। उन्होंने मुझे एक गोल पत्थर दिखाया जिस पर हल्दी और कुमकुम लगा था। मैंने पूछा, 'यह इतनी शक्तिशाली देवी है। आप लोगों ने इसके ऊपर कोई मंदिर क्यों नहीं बनाया है।' उनका जवाब था, 'हमने मंदिर निर्माण की कोशिश की। पर देवी ने हमें ऐसा करने से मना किया।' कुछ लोगों का बेहद जोर था कि मंदिर जरूर बनना चाहिए और उन्होंने मंदिर बनाने का काम शुरू किया। देवी ने उन लोगों को मंदिर बनाने से मना किया। उन्होंने देवी से इसका कारण जानना चाहा। देवी ने कहा, 'क्या तुम सबके पास घर है?' एक ने जवाब दिया, नहीं। तब देवी ने कहा, 'देखो, इसके पास कोई घर नहीं है और तुम मुझे अपने घर के लिए कर रहे हो। नहीं, मैं तब तक अपना घर नहीं बना सकती जब तक तुम सबके पास घर न हों, मेरे लिए कोई घर नहीं बनाओ'।"<sup>45</sup>

सिद्दालिंगैया बंगलूर और उसके आसपास एक अन्य देवी बिसीलम्मा का संदर्भ देते हैं जो 'सूरज में जलना, ठंड में कंपनी और बारिश में भीगना चाहती है।' देवी या तो प्रकृति से अंतरंग होना चाहती है या खुद उसकी मुश्किलें झेलना चाहती है। प्रकृति को झेलना और अंगीकार करना मानव सभ्यता के उस इतिहास और नजरिए से अलग है जो प्रकृति पर विजय हासिल करने की कोशिश करता है और प्रकृति की विपदाओं से हमेशा अपना बचाव करता है। कर्नाटक राज्य के अन्य हिस्से में, एक दलित लेखक के अनुसार, मडिगाओं (एक दलित समुदाय) का एक ऋषि बकाला होता था जिसके बारे में यह मान्यता है कि उसने अपने दो बेटों का बलिदान देकर पानी से जमीन सृजित की।<sup>46</sup> कर्नाटक के दलितों ने अपनी कई पुरानी परंपराओं, जैसे मंतेस्वामी, मलेमादेश्वरा और जंजप्पा और विलुप्त देवी देवताओं जैसे धरगे दोदाभूर (पृथ्वी के पूर्वज) की खोज की है जिसने भूमिहीनों को भूमि ग्रहण कराई है।<sup>47</sup>

दक्षिण बिहार में भी दलित कृषि मजदूरों की प्राकृतिक दुनिया में उनके अपने देवी देवता हैं। गया जिले के भूईयाओं के अपने दिव्य व्यक्तित्व 'वीर' हैं जो कृषि, सिंचाई, जंगल, श्रम और उत्पादन के प्रतीक हैं। अतीत में और आज भी रिखमीनिया की कहानी (इसे रिखमन और रिखअन भी कहते हैं) जिसे तुलसी वीर<sup>48</sup> के रूप में पहचाना जाता है, काफी प्रचलित है। 1906 में वर्णित कहानी का पाठ इस प्रकार है : "बाढ़ में एक बांध टूट गया था और कोई भी उसकी मरम्मत और फसलों की सुरक्षा नहीं कर पा रहा था। तभी रिखमीनिया अपने चार भाइयों के साथ आया और एक रात में बांध की मरम्मत कर दी। इस कार्य के लिए उसे भूईया यानी भूमि के रक्षक का नाम दिया गया। यह उपाधि शुरू में कतई अपमानजनक नहीं थी। फिर एक नदी देवता ने बांध की मरम्मत करने का प्रतिशोध लेने के लिए भूईया को एक गंदे जानवर का मांस खिला दिया। इसके बाद ही रिखअन और उनके पूर्वज निम्न और धिनौनी जाति करार हो गए।"<sup>49</sup>

इतिहासकार ज्ञान प्रकाश ने 1980 के दशक तक बंधुआ मजदूरों के बीच इस कहानी के

भिन्न भिन्न संस्करणों को खोज की है। उन्होंने बेहतर सशक्त रूप से यह दिखाया है कि भूईया, अपने वीरों के जरिए, खेती, सिंचाई और कृषि उत्पादन में अपने श्रम के केंद्रीय महत्व की स्थापना करते हैं। प्रकाश का निष्कर्ष है कि 'किस प्रकार सिंचाई कार्यों के निर्माण और मरम्मत में भूईया की भागीदारी उनके पूर्वजों की स्मृति के जरिए एक बेहद शानदार और अविस्मरणीय घटना बन जाती है।'<sup>50</sup>

फूले ने बली राजा<sup>51</sup> के योगदान पर खासा जोर दिया है जो किसानों और उनके स्वर्णिम युग के प्रतीक थे। मराठी में प्रसिद्ध लोकोक्ति है : 'सारे दुखों का पार हो, बली राजा का राज हो।' फूले वामन के बारे में बताते हैं : "यदि उस राक्षस ने सारी पृथ्वी और आकाश को अपने दो डग से पूरा माप लिया, कितने ही ग्रामीण उसके पैरों तले कुचल गए होंगे। यदि वह वास्तव में अपना दूसरा पैर आकाश पर डाल देता है, तो आकाश कितना संकुल हो जाएगा और कितने तारे एक दूसरे में टकराकर धूल में समा जाएंगे।"<sup>52</sup>

## दलित और पशु

दलित सामान्यतः पशुओं के साथ जीते रहे हैं और अपने खाद्य, श्रम, आजीविका और जीवन यापन के लिए पशुओं पर खासा निर्भर भी रहे हैं। दलित लेखन में भी हमें पशुओं के साथ उनके संबंधों के बारे में संदर्भ मिलते हैं—यहां कृषि, वन्य जीव, पालतू पशु, पारिवारिक लगाव आदि के क्षेत्रों में पशुओं की अनेक चर्चा होती है। एक अलग संदर्भ में दलित जीवन की तुलना प्रायः जानवरों के साथ होती है—उन्हें इंसानों की बजाय जानवरों की तरह या उनसे भी बदतर जीवन जीते हुए बताया जाता है। कुछ प्रमुख हिंदू धार्मिक ग्रंथों में दलितों को 'कुत्ता' और 'कुत्ताखोर' करार किया गया है।<sup>53</sup> इसलिए यह सवाल लाजिमी है कि दलितों की पशु दुनिया— जो उनके जीवन, आजीविका और पर्यावरण से गहरे तौर पर जुड़ी रहती है— आखिरकार कैसी है? दलित अपने जीवन और अर्थव्यवस्था में पशुओं का क्या प्रभाव देखते हैं? दलित पशु, पशुपालन, पशु उत्पाद और व्यवहारों पर क्या क्रिया प्रतिक्रिया करते हैं?

यह कहा गया है कि 'वे दलित और शूद्र लड़के हैं जो जानवरों को चारे के लिए ले जाते हैं और दिन भर उनकी देखरेख करते हैं... झुग्गी झोपड़ियों में लोग अपने घरों में आवारा कुत्ते बिल्ली को जगह देते हैं।'<sup>54</sup> यह सही है कि दलित अपने प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण में जानवरों के साथ सामंजस्यपूर्ण रहते और काम करते हैं। जैसे, जब बिहार के विश्वप्रसिद्ध मिथिला मधुबनी चित्रों के दलित कलाकारों ने— मुख्यतः चमार और दुसाध— काम करना शुरू किया तो उन्होंने 'गोबर' और 'गोदना' चित्रों की अपनी विशिष्ट शैली विकसित की। इस शैली में दलितों के रोजाना के जीवनानुभवों से जंगली और पालतू पशुओं की कई छवियां प्रमुख तौर पर शामिल हुईं : चमार मृत गाय को निबटा रहा है, या एक सांप धान के खेत में तेजी से निकल रहा है, या एक हाथी लोगों को कुचल रहा है। उत्तर बिहार में चमारों की मुख्य जीविका है जूते चप्पल बनाना, खेत मजदूरी और किसानी। उनकी पारंपरिक जीविका रही है मृत पशुओं का निबटारा करना और मृत पशुओं के चमड़े से कई प्रकार के सामान बनाना। इस इलाके में दुसाध कृषि मजदूरी और खेती के अन्य कामों के लिए बेहतर मेहनती जाति मानी जाती है। वे जानवर और सुअर चराते हैं और काफी कुछ खेती और मजदूरी पर निर्भर रहते हैं।<sup>55</sup>

दलित प्रायः पशुओं और उससे संबंधित पर्यावरणीय परिवेश के बारे में अपने तर्क और पसंदगी पेश करते हैं। बिहार के गंगाई मैदानी इलाके में मुसहरों पर हुए एक अध्ययन से पता चलता है कि किस प्रकार गया में सलेमपुर टोला (बहोरा बिगहा) के स्कूली बच्चों के बीच पशुओं

के बारे में भिन्न भिन्न विचार हैं। यहां ब्राह्मण और सवर्ण बच्चे गाय पसंद करते हैं और सुअर को गंदा और अनुपयोगी मानते हैं। मुसहर/भूईया बच्चे सुअर पसंद करते हैं क्योंकि उनके पास न तो अपना कोई पक्का घर है और न ही खेती के लिए अपनी कोई जमीन है। उनके परिवार गाय के लिए कोई अलग गौशाला नहीं बना सकते और न ही चारे का इंतजाम कर सकते हैं। उनकी समझ में गाय पालन महंगा काम है जबकि सुअर पालन में कम खर्चा है। इसके अलावा वे सुअर पालन को कोई गंदा या प्रदूषित काम नहीं मानते हैं। मुसहर सुअरों को अपना सहज सामाजिक और आर्थिक सहचर मानते हैं। एक अध्ययन के अनुसार : “सुअर का हवाला आते ही अनिवार्य तौर पर मुसहरों का सवाल उठता है। सुअर मुसहरों की खुद की पहचान बनाता है। समाज की नजरों में मुसहर और समाज के बीच का रिश्ता निर्धारित करने में सुअर का केंद्रीय महत्व है। मुसहर समाज के हीरो दशरथ मांझी इस मर्म को इन शब्दों में बेहद खूबसूरती से बयान करते हैं, ‘यह जानवर अस्सी चीजें/फायदे देता है, यहां तक कि इसके बाल भी बिकते हैं। अन्य जानवरों के बाल नहीं बिकते। इसके अलावा तबेलों की हर रोज सफाई करनी होती है और वहां रोजाना शाम को दीया जलाना होता है। पर क्या सुअरघर की सफाई करनी होती है? ऐसा नहीं। क्या केवल बदबू और अशुद्धि की बात होगी? जानवरों के घरों की रोजाना शाम पूजा का अनुष्ठान होता है, पर क्या आपने सुअरघर के बारे में कभी ऐसा सुना है। बालों की अच्छी कीमत लगती है, एक किलो के साठ रुपए। यह मंगलवार या बुधवार बाजार में आसानी से मिलता नहीं है’।”<sup>56</sup>

दलितों के लिए भैंस बेहद महत्वपूर्ण जानवर है—दूध और मांस के लिए। यह भी उल्लेखनीय है कि प्रकृति, राष्ट्रवाद, पर्यावरणवाद, हिंदू धर्म और संस्कृति पर दलित विमर्श में भैंस का काफी उल्लेख रहा है। दलित गाय से कहीं ज्यादा भैंस से जुड़े हैं। दलित लेखकों और बुद्धिजीवियों के अनुसार हिंदुत्व राष्ट्रवादी राजनीति गाय को—श्वेत विशेषताओं वाला जानवर—ब्राह्मणवादी परंपरा और वर्चस्व के लिए भी इस्तेमाल करते हैं। और इस प्रक्रिया में भैंस—एक अश्वेत स्वदेशी पशु—दरकिनार किया गया है। एक विचारोत्तेजक अवधारणा में ‘भैंस राष्ट्रवाद’ की प्रस्थापना करते यह कहा गया है : “भारतीय दलित बहुजन ने न केवल इसे पालतू बनाया बल्कि दूध देने वाले और सेवक जानवर के रूप में भी संक्रमित किया। भारत का पचहत्तर प्रतिशत दूध देश की भैंस आबादी से मिलता है। यह अजीब है कि हिंदू साहित्य गाय के दूध, भारतीय खाद्य संस्कृति और विरासत में इसके योगदान और इसकी महान पवित्रता की विस्तृत चर्चा करता है, पर भैंसों के इसी प्रकार के महान योगदान की कोई चर्चा या मान्यता नहीं मिलती है। जबकि ज्यादातर भारतीय बच्चे भैंस के दूध के बगैर जीवित नहीं रहते। भैंस का अपवित्र दूध कभी भी लिखने योग्य विषय नहीं माना गया।”<sup>57</sup>

जानवरों के रंग और रूप, उत्पत्ति और स्थल के वर्णनों में जाति और धर्म का बार बार हवाला आता है। एक जाने माने दलित कवि और लेखक अरविंद मालागट्टी ने अपने आधुनिक कन्नड़ ग्रंथ ‘गवर्नमेंट ब्राह्मण’ में यह सवाल पूछा है कि क्यों कौआ, उल्लू, गधा, भेड़ और भैंस ऋषि विश्वामित्र की उत्पत्ति हैं जबकि कबूतर, घोड़ा और गाय ऋषि वशिष्ठ की पैदावार माने जाते हैं? वह आगे कहते हैं : “ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मण ऋषि वशिष्ठ केवल शुद्ध, श्वेत, मृदुभाषी, सौम्य मृदु मानस, सुंदर जानवर और पक्षी को जन्म देते हैं। और ऋषि विश्वामित्र केवल इसके विपरीत गुणवाले जानवर सृजित करते हैं। खुद एक बार राजा होने के बावजूद गैर ब्राह्मण ऋषि विश्वामित्र अपनी कठिन तपस्या के बाद भी कभी ब्रह्म ऋषि (वशिष्ठ जैसे सर्वोच्च ऋषि) का दर्जा हासिल नहीं कर सके।”<sup>58</sup>

दलितों ने पशु कल्याण से जुड़ी पर्यावरण राजनीति और इसके ब्राह्मणवादी हिंदुत्व और अभिजात चरित्र की कई बार आलोचनाएं की हैं। हाल के अतीत में, पशुओं के संरक्षण का मुद्दा दलित राजनीति, राज्य और हिंदुत्व ताकतों के बीच विवाद, विरोध और संघर्ष का मैदान बन गया है। जब 2000 की शुरुआत में तमिलनाडु के मंदिरों में जानवरों के बलिदान पर बंदिश लगाई गई, तब कोडई त्योहार और लोक देवी के मंदिर प्रवेश के मौकों पर सदियों से जानवरों का बलिदान देने का अनुष्ठान करने वाले दलितों ने राज्यभर में इस बंदिश का विरोध और बलिदान देने का बेहद सक्रिय आंदोलन छेड़ा था।<sup>59</sup>

## दलित और भोजन

मैं गाय मांस खाया और गाय बन गया,  
नाचते, मैं जंगल और पहाड़ घूम आया,  
पर्वत और घाटी और मैदान  
अपने आपमें अडिग,  
पूछ उठाते हुए मैं इंद्रधनुष पर बरस आया,  
बादलों को चीरते हुए मैंने रेगिस्तान को हरा बनाया,

एन.के.हनुमनतैया, एक कन्नड़ दलित कवि <sup>60</sup>

दलित, भोजन और पर्यावरण के अंतर्संबंधों के विविध आयाम हैं। पृथ्वी, भोजन और पर्यावरण के बारे में दलितों के अपने अलग आख्यान और अफसाने हैं। हमारे भोजन और पृथ्वी के संसाधनों के साथ इसके संबंधों के अलग अलग पहलुओं की जटिलताओं की बानगी हमें दलित अनुभवों से मिलती है। हमें दलित विवरणों से यह भी पता चलता है कि हमारे भोजन के पसंद की क्या क्या विभिन्नताएं हैं, उसके सामाजिक सांस्कृतिक आयाम क्या हैं और इससे हमारे समाज में उत्पादन और उपयोग की कैसी कैसी अलग धाराएं निकलती हैं? एक दलित थाली पर नजर डालिए— वे क्या खाते हैं और अपने खाने पर उनका क्या नजरिया है— तो हम अपने भोजन और पर्यावरण की दुनिया के बारे में कई बार एक नई अंतर्दृष्टि पाते हैं।

एक प्रतिकूल प्राकृतिक और सामाजिक माहौल में भोजन कभी भी दलितों के लिए सहज और सुलभ नहीं रहा है। उनके लिए सबसे पहली सच्चाई है भोजन की उपलब्धता, सहजता, समर्थता; और भोजन के लिए हर रोज की मारामारी। भोजन और पर्यावरण के बारे में दलित विवरणों में हमें मुख्यतः दो मुद्दे प्रभावी दिखते हैं : पहला, गांव, जंगल, जमीन या नदी या किसी भी प्रकार से अपनी भूख मिटाने की उत्कट चाह और जरूरत। दूसरा, अपने अभाव पर पार पाने के लिए भोजन और पर्यावरण का रंगारंग त्योहार। उदाहरण के लिए, मुसहरों को चूहा (मूस) पकड़नेवाला या मारनेवाला जाना जाने लगा। 'भारत के लोग' परियोजना के प्रणेता और प्रसिद्ध मानव विज्ञानी कुमार सुरेश सिंह के अनुसार मुसहर घने जंगलों में विविध पेड़ पौधों के बीच रहते थे और उन्हें अपने भोजन के लिए चूहे, चिड़िया और जानवर मारने होते थे। मुसहर खेतों में पकी हुई या तैयार फसल और चूहों के बिलों से भी अनाज जमा करते थे। प्राकृतिक परिवेश ऐसा था कि अतीत में मुसहरों को अनाज जमा करने या चूहे मारने/खाने की जरूरी जिम्मेवारी उठानी पड़ी।<sup>61</sup> दलितों का खानपान हमें पृथ्वी, आसमान और प्रकृति के गहरे अर्थ बताता है। एक महार दलित की प्रसिद्ध आत्मकथा जो खासकर भोजन की विस्तृत चर्चा करती है, याद करती है :  
“भाखरी उतना बड़ा है जितना आदमी। यह आसमान जैसा विशाल, सूरज जैसा चमत्कार है। भूख आदमी से बड़ी है। भूख नरक के सात चक्करों से कहीं ज्यादा मुश्किल है...एक अकेला पेट सारी

पृथ्वी के बराबर है। भूख आपकी खुली हथेलियों से ज्यादा बड़ी नहीं लगती है, पर यह सारी दुनिया को निगल और डकार सकती है।<sup>62</sup>

राजस्थान के गांवों में अनाज से जुड़े मिथ, गाने और कहानियों में भोजन हासिल करने में विषमता और सामाजिक आर्थिक वर्गीकरण की काफी चर्चा है। अन्ना गोल्ड जिन्होंने राजस्थानी कथाओं का उल्लेखनीय अध्ययन किया है, कहती हैं कि अनाज को लेकर दलितों के मिथकों और कहानियों में अन्नदेव, सूर्य और चांद, गंध और मक्खी और ऐसे ही अनेक बिम्ब हैं। ऐसी कथा कहानियों में, उनके अनुसार : “लोग और समूह अनाज के उत्पादन और संग्रह पर उनकी पहुंच और पकड़ के आधार पर पहचाने और मूल्यांकित किए जाते हैं। ग्रहण जैसे खतरनाक समय के दौरान भूमिहीन हरिजन किसानों से अनाज के लिए फरियाद करते हैं। भूमिहीन भील ‘जंगल के लोग’ हैं, पर वे भी अनाज खाना चाहते हैं, और दूसरों की फसली जमीन से अनाज बीनते हैं। माली लोग जमीन के छोटे छोटे टुकड़ों की हाड़तोड़ मेहनत करके लगातार कुछ अनाज जमा करते हैं, पर ये अनाज उन्हें अपनी सब्जियों के एवज में मिलता है और तभी मिलता है जब वे घूम घूमकर फेरीवाले की तरह झुककर काम करते हैं।”<sup>63</sup>

उत्तर प्रदेश में दलितों की कड़वी ऐतिहासिक स्मृतियां हैं जब उन्हें एक सवर्ण व्यक्ति के लिए ‘प्रदूषित’ भोजन बनाने और परोसने के लिए मौत के घाट उतार दिया गया था। आगरा का एक जाटव करण सिंह 1920 के दशक में इस अपराध के लिए मार दिया गया। और दलितों के कड़े संघर्ष और असहयोग के बाद वह जाटवों की सामाजिक स्मृति में एक शहीद के रूप में बस गया।<sup>64</sup>

हिंदू ब्राह्मणों और सवर्णों से अलग, दलितों ने अपनी अर्थव्यवस्था में समाज, स्वास्थ्य, पोषण की जरूरत और पर्यावरण के आधारों पर अपनी विभिन्न विविध खाद्य पसंद व्यक्त की है। उन्होंने सवर्ण जाति के आग्रहों के आधार पर भोजन की संवेदनशीलता और आदतों का एकरूपीकरण करने की तीखी आलोचना की है। 2002 में हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय में दलित स्टूडेंट्स यूनियन ने मांस खाने के विवाद के संदर्भ में यह तर्क दिया था : “भारतीय खाद्य संवेदनाओं की अवधारणा में सेक्युलर और अखिल भारतीय परंपरा के नाम पर शाकाहारी भोजन का प्रभुत्व है। इसका परिणाम यह है कि अमीर सवर्ण ऐसा भोजन हासिल कर सकते हैं, वे पर्याप्त पोषण के लिए विभिन्न सब्जियां और दूध पदार्थ खरीद सकते हैं, लेकिन निम्न जातिवालों को केवल अन्न मिलेगा और वे मांस से वंचित रहते हैं जो उनके पोषण का एक स्रोत हो सकता था।”<sup>65</sup>

प्रसिद्ध बुद्धिजीवी गोपाल गुरु महाराष्ट्र के दलित स्त्रियों के बीच प्रचलित एक लोकगीत का उदाहरण देकर बताते हैं कि किस प्रकार भोजन को लेकर दो परस्पर विरोधी अवधारणाएं एक दूसरे से टकराती हैं। दलित स्त्री इस लोकगीत में मांसाहारी भोजन (बीफ) की श्रेष्ठता जताते हुए यह दिखाती है कि किस प्रकार एक टोकरी भर लड्डू भी एक चौथाई बीफ के प्लेट की बराबरी नहीं कर सकता है।<sup>66</sup> गोपाल गुरु विवेचना करते हैं : “दलित समुदाय बीफ पसंद करता है क्योंकि यह सस्ता है; पर इस पसंद की वजह यह भी है कि दलित इस भोजन से अपने कामकाजी शरीर, न कि उपयोग करने वाले शरीर, का पोषण करता है। साथ ही, दलित बीफ का पक्षधर इसलिए भी है क्योंकि यह मांस खुरदुरा और सख्त है जो कि अन्य प्रकार के मांस में नहीं मिलता है। दलितों के लिए लाल मांस के सेवन के पीछे पोषण का भी ध्यान है।”<sup>67</sup>

दिवंगत बुद्धिजीवी और स्त्री लेखिका शर्मिला रेगे ने पुणे, महाराष्ट्र के बौद्ध, मतंग, वाल्मिकि और पिंजरी जातियों के दस दलित पुरुष और स्त्रियों के साथ कार्यशालाएं और विचार विमर्श करके दलित घरों में भोजन और भोजन बनाने के अवयवों पर वर्तमान और अतीत की यादों और



पद्धतियों को एक साथ बटोरा है। वह कई प्रकार के विशिष्ट भोजनों की चर्चा करती हैं। इन भोज्य पदार्थों के विभिन्न अवयव सामान्यतः दलितों के प्राकृतिक पर्यावरण में उपलब्ध होते हैं। वे आमतौर पर सस्ते और आर्थिक रूप से आसान होते हैं, साथ ही साथ दलितों की पसंद और पोषण के लिए उपयुक्त भी। दलित, जैसे मेहतर, अपनी रोजाना की गंदगी और गंध भरी जिंदगी, साथ ही साथ रोज रोज की बोरियत से मुक्ति के एक रास्ते के लिए अपने खानपान और इसकी तैयारी में कई तरह के मसाले और स्वाद भरते हैं। पर उनके लिए पीली दाल खाना मुश्किल होता है क्योंकि उन्हें अपने रोजाना की गंदगी साफ करने की चीज सामने आती है।<sup>68</sup> अलग अलग समय और जगह पर दलित भोज उत्सव आयोजित होते हैं जहां उनके भोजन, संस्कृति और पहचान पर सकारात्मक जोर रहता है : *“यहां सूअर का कोमल मांस केवल पानी, नमक और काली मिर्च के साथ, मुर्गी केवल बिअर के साथ, भेड़ का मांस केवल रम के साथ पकाया गया— शाकाहारी भोजन भी बनाया गया, पर दलित तरीके से।”*<sup>69</sup>

पिछले कुछ दशकों से दलितों ने भोजन और स्वाद के वर्चस्वशाली आग्रहों पर सवाल उठाए हैं और गैर शाकाहारी व्यंजनों, खासकर गाय के मांस के लिए अपनी पसंद का सार्वजनिक प्रदर्शन किया है। दलितों के संकल्प, आजादी, आंदोलन, सामाजिक परिवर्तन, नागरिकता और लोकतंत्र की आवाज के लिए कई बार बीफ और उसका उपयोग एक प्रतीक बन गए हैं।<sup>70</sup> दलित बीफ और गैर शाकाहारी भोजन के पक्ष में कई तर्क देते हैं। ये तर्क स्वास्थ्य, पोषण, अर्थव्यवस्था, सुगमता, सस्तापन आदि पर आधारित हैं जो प्रकृति और पर्यावरण से गहरे जुड़े हैं। एक पत्रकार के अनुसार : *“भारत में बीफ का आमतौर पर मतलब है कि भैंसे का मांस। इसमें प्रोटीन की भारी मात्रा और सस्तेपन के कारण यह गरीब लोगों का मुख्य खाद्य है।”*<sup>71</sup> यह भी कहा गया है कि हमारे कुपोषण की बहुत सारी समस्याएं आसानी से दूर हो सकती हैं यदि हम अपने खाने के टेबुल पर बीफ रखें। नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूट्रिशन, हैदराबाद, ने अपने एक प्रकाशन में बीफ को प्रथम श्रेणी के प्रोटीनयुक्त खाने— 70 प्रतिशत तक प्रोटीन— में शामिल किया है। एक ग्रामीण, कृषि या औद्योगिक अर्थव्यवस्था में बीफ दृमांस शाकाहारी खाद्य के उत्पादन और उपयोग और इसमें खपत या हासिल होने वाली ऊर्जा के अंतर्संबंधों की भी चर्चा की गई है। साथ ही साथ, यह भी विस्तृत चर्चा की गई है।<sup>72</sup>

## पर्यावरण दृष्टि के रास्तों पर

प्राकृतिक संसाधनों पर अपनी आजीविका निर्भरता और कई अन्य कारणों से दलितों का पर्यावरण पर काफी ज्यादा दांव पर है। गण्यमान्य दलित बुद्धिजीवी और जातिविरोधी विचारक पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं पर नजर डाल रहे हैं, साथ ही साथ उनके अपने वैज्ञानिक, तकनीकी और तार्किक ज्ञान विधाओं में भी पर्यावरण पुट है। इस लेख के अंतिम हिस्से में मैं विभिन्न जाति विरोधी नेताओं और आंदोलनों के लेखन और प्रकाशन में प्रकृति की विविध अवधारणाओं का उल्लेख करता हूं। मैंने एक अलग लेख में आंबेडकर के पर्यावरण दृष्टि पर विस्तृत चर्चा की है, इसलिए यहां मैं उन्नीसवीं सदी के अंत और बीसवीं सदी के प्रारंभ के महान जातिविरोधी नेता— जोतिराव फूले के पर्यावरण विचारों की संक्षिप्त चर्चा करूंगा।

मेरा उद्देश्य ऐसे लेखन के पर्यावरण डोरों को पकड़ना है जो सामाजिक बदलाव और प्रकृति के साथ मनुष्य के बदलते बनते रिश्तों की पड़ताल करते हैं। मेरा तर्क है कि पारंपरिक समझ के विपरीत जातिविरोधी नेता और आंदोलन पर्यावरण मूल्यों के प्रति अचेतन नहीं रहे हैं। सच्चाई यह

है कि उनके लेखन और कार्य में दलित पर्यावरण दृष्टि की एक जीवंत परंपरा झलकती है। फुले और पेरियार, दोनों ही इस तथ्य पर गहरी नजर डालते हैं कि किस प्रकार दासता और जाति दमन प्राकृतिक संसाधनों के साथ दलित संबंधों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है। वे दोनों ही आमतौर पर प्रकृति के साथ मानवीय संबंधों के बारे में रोचक और गहरी अंतर्दृष्टि देते हैं। कई प्रकार से फुले और पेरियार जाति विरोधी नेताओं और आंदोलनों में प्रचलित एक व्यापक प्रवृत्ति और प्रकृति और पर्यावरण दर्शन की बिखरी बिखरी अभिव्यक्तियों के प्रतीक हैं। उदाहरण के लिए, पंजाब में आदी धर्म आंदोलन के नेता मंगू राम ने ईश्वरत्व का ऐसा गैर आस्तिक विचार प्रतिपादित किया जो निम्न जाति के विश्वासों के करीब था। यहां प्रकृति को ही ईश्वर के रूप में देखा जाता है : प्रकृति (कुदरत का मेला) ने मूल स्रोत (आदी) से इंसान को तब सृजित किया जब वह पृथ्वी पर अन्य प्राणियों की संरचना कर रहा था। उसी समय प्रकृति ने नैतिक प्रवृत्तियों (कर्म धर्म) का ज्ञान दिया। प्रकृति ने इंसान को जानवरों से बेहतर बनाया। पर इंसानों के बीच सारे समान थे... सभी उस एक धर्म में विश्वास करते थे जो प्रकृति ने उन्हें बुद्धि और ज्ञान के जरिए दिया था।<sup>73</sup>

इसी प्रकार द्रविड़ परंपरा के नेताओं और विचारकों ने सिंधु घाटी सभ्यता के प्रतिमानों पर सवाल उठाया है और वर्चस्वशाली सभ्यता के दायरे के बाहर— पर्वतवासियों, शिकारियों, मछुआरों, आदि के प्राकृतिक और सामाजिक जीवन— के अतीत और उससे जुड़ी यादों को पुनर्जीवित किया।<sup>74</sup> उत्तर भारत में दलितों के असंतोष और आंदोलन को अभिव्यक्ति देने वाले कई लोकप्रिय प्रकाशनों में कई बार ‘पृथ्वी माता’ का संदर्भ आता है जो हम सबको असीम सुंदरता, अनाज, संपत्ति, तकनीक, शक्ति और सम्मान देती है जिससे हमें अपनी सदियों की वेदनाओं से राहत मिले।<sup>75</sup> आंबेडकरवाद के दौर में कई दलित प्रकाशनों ने बौद्ध परंपरा का संदर्भ देते हुए बुद्ध के जीवन, शिक्षण और कार्यों के जरिए प्रकृति के साथ मनुष्य के तत्कालीन संबंधों और इसकी सामयिक प्रासंगिकता पर काम किया है। रोहिणी नदी की चर्चा की गई है जिसने कथित तौर पर सिद्धार्थ को अपना घर और प्राकृतिक संसाधनों पर युद्ध की राजनीति, दोनों ही त्यागने के लिए प्रेरित किया। इससे भी ज्यादा, गौतम की जिंदगी अपने आपमें प्राकृतिक तत्वों— जंगल, वन्यजीव, फल फूल, पेड़ आदि— से आच्छादित है जो दलितों के जीवन में प्रकृति की महत्ता जताते हैं। बौद्ध ग्रंथ ‘मिलिंद प्रसन्ना’ का हवाला देकर दलितों की पेड़ों और जानवरों के बारे में गहरी समझदारी का उदाहरण दिया जाता है। जातक कथाओं के जरिए बताया जाता है कि दलितों के सामाजिक विश्व में जानवरों और पेड़ों की कितनी अहमियत है। कुल मिलाकर दलित यह दर्शाते हैं कि बुद्ध और बौद्ध परंपरा में पर्यावरण संरक्षण और सामाजिक व्यवस्था के रूपांतरण की संभावनाएं साथ साथ बसती हैं।<sup>76</sup>

### जोतिराव फुले : कृषि और पर्यावरण

जोतिराव फुले (1827-1890) को एक ‘क्रांतिकारी’, ‘एक कृषि मूलक परिवर्तनकारी’, ‘देश का एक महान समाज सुधारक’, ‘सामाजिक क्रांति का जनक’ और ‘भारत में जाति का पहला सुसंगत सिद्धांतवादी’ कहा गया है।<sup>77</sup> जाने माने लेखक और नाटककार जी.पी.देशपांडे जिन्होंने फुले की जिंदगी पर एक चर्चित नाटक लिखा है, कहते हैं : “फुले का फलक व्यापक था, उनका प्रभाव क्षेत्र भव्य। उन्होंने अपने समय के सबसे महत्वपूर्ण सवालों— धर्म, वर्ण व्यवस्था, अनुष्ठान, भाषा, साहित्य, ब्रिटिश राज, मिथ, लिंग के सवाल, कृषि उत्पादन की स्थिति, किसानों का हाल आदि— की पहचान की और उन्हें सैद्धांतिक जामा पहनाया।”<sup>78</sup>

यह भी कहा गया है कि ‘जोतिराव फुले के साथ भारत में निम्न जाति, अनार्य, किसान

जन की संचेतना शुरू हुई... फुले सामाजिक क्रांति की विचारधारा के शुरुआती रूप के पुरोधा थे जिसका एक जाति विरोधी और किसान परिप्रेक्ष्य था।<sup>79</sup>

निस्संदेह, जाति व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष में फुले एक केंद्रीय व्यक्तित्व थे जिन्होंने निम्न जातियों, वंचितों और स्त्रियों की स्वाधीनता के लिए आंदोलन छेड़े। अपने प्रारंभिक दिनों से ही फुले उन कई विचारों और कार्यक्रमों के प्रवक्ता थे जिनसे खेती, किसान, उत्पादन व्यवस्था में बदलाव लाया जा सकता था— इन सबसे फुले की एक पर्यावरण विरासत बनती है। यह स्वीकार किया गया है : “फुले ऐसे पहले सामाजिक कार्यकर्ता थे जिन्होंने कृषि और उत्पादन की स्थितियों को अपना मुख्य सरोकार बनाया... जाति और वर्ण पर फुले का लेखन तो जानामाना है, पर कृषि के बारे में उनकी समझदारी पर बेहद कम लिखा गया है।”<sup>80</sup>

फुले के विचारों और विश्लेषण में पर्यावरण संवेदनशीलता की खोज करते हुए और उनके कुछ प्रमुख लेखन जैसे ‘गुलामगिरी’ और ‘शेतकरयाचा असुड’ (किसान बटी डोरी) के अध्ययन से पता चलता है कि दासता और वर्गीकृत सामाजिक व्यवस्था के तहत दलितों की जिंदगी का प्राकृतिक और पर्यावरणीय बोझ कितना ज्यादा होता है, साथ ही प्राकृतिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करने और उसे बदलने के क्या रास्ते होते हैं। जाति व्यवस्था में असमानता प्राकृतिक हो जाती है— करमा, संस्कृति, परंपरा, प्राकृतिक संसाधनों और धार्मिक विश्वासों के आधारों पर। इस योजना में प्राकृतिक और सामाजिक व्यवस्था समरूप हो जाती है। सारी पृथ्वी एक जाति विशिष्ट पर्यावरण व्यवस्था के रूप में देखी जाती है जिसमें मनुष्य की पर्या भूमिका भी पूर्व निश्चित होती है। जाति व्यवस्था की कुंजी है लोगों को उनके ‘प्राकृतिक जगह’ में स्थापित पुनर्स्थापित करना। पर फुले ने प्राकृतिक और सामाजिक व्यवस्था के इस प्रकट संयोग और एकजुटता पर सवाल उठाए— ऐसी सामाजिक पहचान और सामूहिकता जो अंततः एक अन्यायपूर्ण मानव समाज और राजनीति का मध्यस्थ बन जाता है। प्रसिद्ध शोधकर्मी और लेखिका रोसलीन ओ हैनलॉन का तर्क है : “फुले ने ईश्वर की अवधारणा केवल एक और विशिष्ट जीव के रूप में की जो सभी वर्तमान पदार्थों का सृष्टिकर्ता और मानवीय समाज के लिए नैतिक नियमों का स्रोत है। प्राकृतिक और सामाजिक विश्व, और ईश्वरीय और पवित्र ताकतों के बीच एक स्पष्ट विभाजन किया गया था। प्राकृतिक विश्व, किसी भी प्रकार के मायिक महत्व से रिक्त, हर प्रकार के प्रायोगिक, वैज्ञानिक और सांस्थानिक अनुसंधान और सेक्युलर तर्क से परखने के लिए खुला था।”<sup>81</sup>

रोसलीन प्रकृति और समाज के पुनर्संबंधों में ऐसे वैचारिक बदलाव की महान संभावनाओं पर जोर देती हैं : “यदि एक व्यक्ति यह विश्वास करता है कि उसकी वर्तमान सामाजिक अवस्था, जैसे एक खेत जोतने वाले की स्थिति, एक ऐसी तार्किक योजना का हिस्सा है जिसमें उसकी वर्तमान जिंदगी केवल एक छोटा हिस्सा है; तो एक निश्चित काम के बारे में धार्मिक अवधारणा की पकड़ अपनी ताकत खो देती है।”<sup>82</sup>

फुले के प्राकृतिक और सामाजिक विश्व में कृषि परिदृश्य— भूमि, किसान, खेती— का विशेष महत्व था। उन्होंने किसानों को बलीराजा— जमीन के स्वामी— के रूप में चित्रित किया और किसान (बली) और किसान संस्कृति के महत्व पर जोर दिया। दास समाज का विस्तृत ऐतिहासिक और समकालीन जायजा लेते हुए फुले के विवरणों में निम्न जातियों के जमीन के रिश्तों में दमन और शोषण के प्रभावों पर गहरी अंतर्दृष्टि मिलती है। जमीन, खेती और किसानों के बारे में विभिन्न छवियां और संवाद सामाजिक व्यवस्था की कटु वास्तविकता बताते हैं और इसके साथ अंतर्निहित होती हैं प्राकृतिक व्यवस्था में बदलाव से पैदा होने वाली नई प्रगतिशील सामाजिक स्थितियां। प्राकृतिक संसाधनों के बीचोबीच मौजूद गरीबी और अन्याय संसाधनों के मान, मूल्य और उसमें

अंतर्निहित गुणवत्ता का अवमूल्यन करते हैं। जाति असमानता और अन्याय न केवल किसानों और मजदूरों को शारीरिक तौर पर नष्ट करता है, बल्कि इसमें प्राकृतिक परिदृश्य का अर्थ और इसके साथ किसानों के सामाजिक और नैतिक संबंध भी क्षरित होते हैं।

फुले की 'किसान बटी डोरी' में, जिसे 'बहुसंख्यक भारतीय जो कृषक हैं, के दुख और गरीबी का एक सशक्त और प्रतिनिधित्व वर्णन' कहा गया है, विविध अंतर्वस्तु है : *"क्योंकि ब्राह्मण लोग सरकार के सभी विभागों में प्रभावी थे, उनके स्वार्थी रिश्तेदारों, भट्ट और ब्राह्मणों ने मिलकर निर्दोष किसानों का धर्म के नाम पर शोषण किया..."*

*खेती की स्थिति, और उसके साथ किसानों की भी...आर्य भट्ट ब्राह्मणों का शूद्र किसानों के लिए सुझाव, और यह भी कि सरकार को क्या उपाय करने चाहिए।"*<sup>84</sup>

निम्न जातियों के शोषण का हवाला देते हुए फुले प्रायः पर्यावरणीय बिंबों और अलंकारों का प्रयोग करते हैं : *"जैसे अश्वेत सारे दुख झेलते हैं, वैसे ही— कोई कम नहीं बल्कि ज्यादा— शूद्र और अतिशूद्र ब्राह्मणों के हाथों पीड़ित हुए हैं। उनकी पीड़ा की कहानियों से न केवल कठोरतम हृदय से आंसू निकल आएंगे बल्कि पृथ्वी की सबसे सख्त चट्टान भी पिघल जाएगी और उसके आंसूओं में सारी दुनिया डूब जाएगी। इससे कुछ ब्राह्मण, जो अपने पहले के निर्वयी पूर्वजों की तुलना में मुलायम हृदय वाले हैं, यह अनुमान लगाएंगे कि दुनिया का अंत आ गया।"*<sup>85</sup>

फुले के अनुसार पर्यावरण परिदृश्य सभ्यताओं के निर्माण और परिवर्तन के स्रोत रहे हैं और प्रजातियां और पीढ़ियां कुछ निश्चित प्राकृतिक परिस्थिति में उत्पन्न और विकसित हुई हैं। वर्तमान 'ब्राह्मण प्रजाति' का मूल उदय 'शुष्क, बालुई और पर्वतीय क्षेत्र' में हुआ था जिसे अन्य उर्वरक क्षेत्रों में फलने फूलने की जरूरत थी। फुले तर्क देते हैं : *"भारत की मिट्टी की बेहतरीन उर्वरता, इसका प्रचुर उत्पादन, यहां के लोगों की लौकिक समृद्धि, अनगिनत वरदान यहां की जमीन को हासिल है।"*<sup>86</sup>

फुले द्वारा दिये गये। बली राजा के संदर्भ भी पेड़ों और पत्तियों से गहरे जुड़े हुए थे; वह उन्हें स्वर्ण के बराबर मानते थे। प्रकृति का उत्सव मनाते हुए फुले जमीन से सृजित देवताओं को भूसंरक्षक मानते थे। फुले कई बार प्रकृति के जरिए जातियों का इतिहास और शूद्रों के लिए इसका सामाजिक और आर्थिक मतलब समझते समझाते थे। उनका तर्क था कि जाति की तरह ही प्रकृति निरंतर संघर्ष और समझौते से गुजरती रही है। उनकी यह भी मान्यता थी कि वर्ण व्यवस्था का इतिहास शुरू से ही गांव, जमीन और प्राकृतिक संसाधनों से जुड़ा रहा है। जाति ने गांवों में जमीन, पानी, कुआं, जंगल और समुदाय का खास खास परिदृश्य बनाया। वर्ण के इतिहास ने कई प्रकार से जमीन, जल और जंगल का इतिहास रचा। वर्ण और ब्राह्मण ने पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों की व्याख्या अपनी जरूरत के मुताबिक करते हुए एक विशिष्ट शोषण व्यवस्था बनाई।

फुले के पास प्रकृति, समानता और स्वायत्तता के मूल्यों के आधार पर कृषि, भूमि, जल और जंगल में सुधारों की एक रूपरेखा थी जिससे उन्होंने ब्राह्मण और सरकार से विरासत में मिली कृषि व्यवस्था के बुनियादी आर्थिक और सामाजिक मान्यताओं को बदलने की कोशिश की। जी.पी. देशपांडे ने अशोक चौसलकर के शोध के आधार पर फुले की कृषि संबंधी अवधारणाओं और कार्यक्रमों का एक सार संक्षेप प्रस्तुत किया है : गाय और बैलों के सही प्रजनन पर ध्यान क्योंकि वे कृषि के मुख्य उपादान हैं; छोटे बांध और नहर निर्माण कार्य जिससे वर्षा का पानी और प्राकृतिक उर्वरक पानी में बहकर बर्बाद न हों; किसानों के खेतों में पानी की नियमित देखरेख; पानी की पकड़ के लिए कुओं का निर्माण; हर गांव के जल संसाधनों का अंकण; वन भूमि किसानों को सौंपना; कृषि विद्यालयों की स्थापना; किसानों के बच्चों को पेशेवर प्रशिक्षण; कृषि के विकास में

राज्य की निश्चित भूमिका आदि। ये कई सारे सुझाव फुले के पर्यावरणीय कृषिवाद के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पहलुओं की झांकी देते हैं।

## निष्कर्ष

‘दलित’ कोई एकरूप भौगोलिक अवधारणा नहीं है, इसके अलग अलग सामाजिक और सांस्कृतिक स्वर हैं। अपनी बहुलता और विभिन्नता में दलित आवाज और दृष्टिकोण में वो सब समाहित हैं जो ब्राह्मणवादी क्षेत्र से बाहर हैं और कलंक, बहिष्कार और भेदभाव के शिकार हैं। साथ ही साथ, इन दो अलग अलग मानव समाजों के बीच कई प्रकार से नजदीकी सह निवास और आदान प्रदान होता रहा है जिससे उनके पर्यावरणीय जीवन का विकास भी प्रभावित हुआ है। इस लेख के विभिन्न विवरण बताते हैं कि जाति के तहत प्रकृति पर बरपी हिंसा विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक स्तरों पर दलितों के जीवन को प्रभावित, प्रतिबिम्बित और आंदोलित करती रही है। यहां श्रम एक जीवंत कारक है और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियां एक सशक्त मध्यस्थ पहलू। पृथ्वी असमान है क्योंकि प्राकृतिक संसाधनों का असंतुलित विनियोजन है और इसके प्रति दलित अपने लेखन, वाणी, गीत, मिथ में असंतोष और असहमति व्यक्त करते हैं।

इस लेख से यह बात उभरती है कि दलित धारणाओं के बीच भिन्नता है, खासकर अस्पष्ट या अनेकार्थी ‘लोक’ अभिव्यक्तियां और दलित विचारकों और बुद्धिजीवियों के अपेक्षाकृत स्पष्ट और विश्लेषणात्मक, प्रतिरोधी टिप्पणियों के बीच, यद्यपि ये दोनों कई बार एक दूसरे से मिलते जुलते हैं। दलित स्मृतियों, गीतों और मिथकों में भी काफी भिन्नता है। कुछ के लिए भूमि उनकी आत्मा, जीवंत और शक्तिशाली है, जबकि दूसरों के लिए भूमि एक पीड़ादायक स्मृति है जिसके साथ दासता जुड़ी है। कुछ अन्य भूमि को अपने परिश्रम और उसके फलों के त्योहार के रूप में देखते हैं। कुछ मानते हैं कि जानवरों का नियमित संदर्भ उनकी अमानवीय और बदहाल जिंदगी का प्रतीक है, जबकि कुछ अन्य सोचते हैं कि जानवर उनकी जिंदगी के एक मुख्य और प्राकृतिक किरदार हैं जिनके साथ वे अपने श्रम और रोजाना के काम साझा कर सकते हैं। जाति के अपने इतिहास, जगह और स्थानों के सामाजिक चरित्र, प्राकृतिक संसाधनों के अधिकार में गहरी असमानता, सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक सत्ता का चरित्र, वंचित समुदायों की सामाजिक और सांस्कृतिक धरोहर, द्वंद्व, संघर्ष और सहकार का मिला जुला भाव— ये सारे विविध, जटिल तत्व दलितों के पर्यावरण संबंध रेखांकित करते हैं। जाति वर्चस्व और शोषण का इतिहास सवर्णों और दलितों की मिलीजुली प्रतिक्रियाओं का भी इतिहास है, इसलिए हमें दोनों में कुछ सामान्यता भी मिलती है। पर भारत में ब्राह्मणी पर्यावरणवाद की पकड़ और पहुंच इस तथ्य से भी उजागर होती है कि दलितों के पर्या अनुभव और अभिव्यक्ति हमारे मुख्यधारा के पर्यावरण विमर्श में शामिल नहीं हैं। इस लेख में हमने हाशिये के दलित लेखकों और उनकी पर्यावरण लेखनी, प्रकृति के विविध पहलुओं, और कुछ अग्रणी दलित विचारकों के जरिए दलित पर्यावरण समझने की कोशिश की है। इन सबको साथ लाया जाए, तो ये मुक्तलिफ उदाहरण बताते हैं कि दलित प्राकृतिक दुनिया में अपने तरीकों से चीजों को देखते, समझते और बदलने की कोशिश करते हैं जिनकी जड़ें उनके श्रम और संस्कृति में हैं। उनके पर्यावरणीय संवेदनाओं की अपनी विश्वसनीयता है जो उनकी सामाजिक संस्कृति से उपजी है। जाति समाज में कोई पर्यावरण सार्वभौमिकता नहीं है, क्योंकि यहां पर्यावरण जिंदगी और श्रम के साथ गुथ्यमगुथ्या है। चाहे ग्रामीण या कृषि परिवेश हो, या उनका जाति विरोधी संघर्ष हो, या जातिविरोधी विचारकों की जिजीविषा हो, दलित प्रकृति का रूपांतर करते हैं, पर कोई जरूरी नहीं है कि यह कोई सुविचारित पर्यावरण विमर्श हो। पर्यावरण के क्षेत्र

में दलित आवाजों और दृष्टियों की खोज के लिए हमें अपने स्रोतों— पुस्तकों, प्रकाशनों, साहित्य, सामग्री, शोध के तौर तरीकों आदि— को विस्तृत करने की जरूरत है। यह उपक्रम और सायास कोशिश दलित बुद्धिजीवियों, लेखकों और कलाकारों ने शुरू की है, और यह केवल हाशिये के लोगों तक सीमित नहीं है। आधुनिक भारत के अग्रणी दलित नेता आंबेडकर पर्यावरण परिप्रेक्ष्य और संवेदना से अछूते नहीं थे। बल्कि, उन्होंने जाति और प्रकृति के बीच एक विभाजक रेखा खींचने में अग्रणी भूमिका निभाई।

## संदर्भ

1. K.K.S. Das, 'Black Dance', trans. K.M.Krishnan and T.M.Yesudasan, in K. Satyanarayana and Susie Tharu (eds.), *No Alphabet in sight : New Dalit Writings from South India*, Penguin Books, New Delhi, 2011, p. 415. उदाहरण के लिए, तमिल दलित लेखिका बामा के अनुसार दलित अवधारणा का मतलब है 'मिट्टी में बसा हुआ', Manoj Nair 'Recognition for the Language of My People is the Biggest Award I can Win', Interview with Bama, *Outlook*, [http://www.outlookindia.com/article/recognition-for-the-language-of-my-people-is-the-biggest-award-i-can-win/211431, accessed on 15 june2015]. विस्तार के लिए : Anil Agarwal, Darryl d' Monte, Ujwala Samarth, *The Fight for Survival : People's Action for Environment*, Center for Science & Environment, New Delhi, 1987; 4. विस्तार के लिए : National Dalit Watch of National Campaign on Dalit Human Rights & Society for Promotion of Wasteland Development, *Impact of Climate Change on Life & Livelihood of Dalits: An exploratory study from disaster risk reduction lens*, New Delhi, December 2013. 5. Center for People's Forestry, *National Conference on Dalit Concerns in Forestry*, Hyderabad, 14-16 December 2004, [www.cpf-india.org](http://www.cpf-india.org). 6. Eliza F. Kent, *Sacred Groves and Local Gods: Religion and Environmentalism in South India*, Oxford University Press, New York, 2013, p. 117. 7. Mahesh Rangarajan (ed.), *Environmental Issues in India: A Reader*, Pearson, New Delhi, 2007. 8. Kancha Ilaiah, *Why I am not a Hindu : A Sudra Critique of Hindutva Philosophy, Culture and Political Economy*, Samya, Calcutta, 1996, pp. 152-3. 9. Kancha Ilaiah, 'Dalitism vs Brahmanism: The Epistemological Conflict in History', in Ghanshyam Shah (ed.), *Dalit Identity and Politics: Cultural Subordination and the Dalit Challenge*, Sage, New Delhi, 2001, pp. 111-2. 10. Kancha Ilaiah, *Why I am not a Hindu*, p. 123. 11. K. Satyanarayana and Susie Tharu (eds.), *No Alphabet in sight : New Dalit Writings from South India*, Penguin Books, New Delhi, 2011, pp. 60-1. 12. विस्तार के लिए : G. Oommen, 'Dalit conversion and social protest in Travancore, 1854-1890', *Bangalore Theological Forum*, XXXVII (3&4), September-December 1996, pp. 69-84. 13. K. T. Rammohan, *Tales of Rice: Kuttanad, Southwest India*, Center for Development Studies, Thiruvananthapuram, 2006, pp.23-4. 14. उद्धृत है : Rustom Bharucha, *Rajasthan an Oral History: Conversation with Komal Kothari*, Penguin Books, Delhi, 2003, pp. 32-3. 15. Gopal Guru, Public Lecture on 'Moral Significance of Justice: Foregrounding environmentalism in India', Nehru Memorial Museum and Library, New Delhi, 26 September 2013. 16. Ramnarayan S. Rawat, *Reconsidering Untouchability: Chamars and Dalit History in North India*, Permanent Black, Ranikhet, 2012, pp. 83-4. 17. David L. Szanton, 'Mithila Painting: The Dalit Intervention', in Gary Michael Tartakov (ed.), *Dalit Art and Visual Imagery*, Oxford University Press, New Delhi, 2012, p. 233. 18. Mukul Sharma (ed.), *Unquiet Worlds: Dalit Voices and Visions*, Heinrich Boll Foundation-India, New Delhi, 2004, p. 140. 19. Satyanarayana and Tharu (eds.), *No Alphabet in sighth*, p.40. 20. सी.जे. कुट्टपन से साक्षात्कार, दिल्ली, 10 सितंबर 2003। 21. Sharma (ed.), *Unquiet Worlds*, p. 12. मलयालम से अंग्रेजी अनुवाद : Hima S., PhD Scholar, Jawaharlal University, 8 May 2015. 22. सी.जे. कुट्टपन से साक्षात्कार। साजा रॉय अब्राहम ने भी इसका वर्णन किया है : Saja

Roy Abraham, *Singing Women: Gender and Ecology*, <https://inter-disciplinary.net/wp-content/uploads/2011/08/abrahamgpaper.pdf>, accessed on 9May 2015. 23. सी.जे. कुट्टपन से साक्षात्कार, दिल्ली 12 दिसंबर, 2005. 24. Sharma (ed.), *Unquiet Worlds*, p. 12. 25. सी.जे. कुट्टपन से साक्षात्कार। 26. बासुदेव सुन्नानी के साथ साक्षात्कार, भुवनेश्वर, 28 जून 2015. मैंने बासुदेव सुन्नानी के साथ लंबी बातचीत की और अंग्रेजी में प्रकाशित उनके लेखों का भी हवाला लिया है। साथ ही, उनकी उड़ीया में प्रकाशित बहु प्रशंसित पुस्तक 'दलित सांस्कृतिक इतिहास' से भी मैंने कई संदर्भ लिए हैं। इस पुस्तक के कुछ हिस्सों का अंग्रेजी में अनुवाद जाने माने लेखक और संस्कृतिकर्मी कपिलेश ने किया है। 27. Basudev Sunani, 'Dalit Culture, Its Interpretation and Identity', in Basudev Sunani (ed.), *Buddhism and Dalit Vision of Modern India*, Kaliga Mahasagha Trust, Odisha, November 2014, pp.51-2. 28. बासुदेव सुन्नानी के साथ साक्षात्कार, 29. वही, 30. कई दलित क्षेत्रों और परंपराओं में पृथ्वी की पूजा की विभिन्न परंपराएं हैं। 31. विस्तार के लिए : Basudev Sunani, 'Cultural History of Dalit & Their Relationship with Natural Resources', Lokaratna, V&VI, 2013, pp.10-2. 41. Ilaiah, *Why I am Not a Hindu*, p. 62. 42. वही, पृष्ठ 91-4. 43. D.V. Rao & P. Lakshmi, *Dalits and Environment: A Critical Analysis*, Sunrise Publications, New Delhi, 2008, p.14. 44. Kent, *Sacred Groves*, pp. 103-4. 45. 'Village Deities', Siddalingaiah in conversation with Chandan Gowda, *Seminar*, 612, 2010, <http://www.india-seminar.com/cd8899.html>, accessed on 19 August 2015. 46. प्रसिद्ध दलित लेखक के.बी. सिद्धैया ने अपनी लंबी कविता 'बकाला' में यह बयान किया है। विस्तार के लिए : K. Satyanarayana and Susie Tharu (eds), *Steel nibs are sprouting : New Dalit Writing from South India*, Harper Collins, India, 2013, p. 141. 47. वही, पृष्ठ 427. 48. Hemant Joshi and Snjay Kumar (eds), *Asserting Voices: Changing Culture, Identity and Livelihood of the Musahars in the Gangetic Plains*, Deshkal Publication, Delhi, 2002, pp. xiii-xxiii. 49. L. S. S. O'Malley, Bengal District Gazetteers: Gaya, Logos Press reprinted, New Delhi, 2007 [1906], p. 93. 50. Gyan Prakash, *Bonded Histories: Genealogies of Labor Servitude in Colonial India*, Cambridge University Press, Cambridge, 1990, p. 53. मैंने इस अध्याय से विस्तार लिया है। 51. विस्तार के लिए : अगला हिस्सा। 52. उद्धृत : Deshpande, *Selected Writings*, p. 62. 53. Wendy Doniger, *On Hinduism*, ALEPH, New Delhi, 2013, p. 488. 54. Dunkin Jalki, 'Animal Rights and minority rights', *the Dalit*, March-April 2003, p. 28. 55. विस्तार के लिए : Neel Rekha, 'Salhesa Iconography in Madhubani Paintings : A Case of Harijan Assertion', *Folklore and Folklorists*, 4 (2), December 2011, pp. 1-28. 56. Joshi and Kumar (eds), *Asserting Voices*, pp. 121-2. 57. Kancha Ilaiah, *Buffalo Nationalism: A Critique of Spiritual Fascism*, Samya, Kolkata, 2007, pp. xxv-xxvi. 58. Aravinda Malagatti, 'The she-buffalo on heat and the he-buffalo that followed her', *the Dalit*, March-April 2003, p. 48. 59. विस्तार के लिए : S. Viswanathan, *Dalits in Darvidian Land: Frontline Reports on Anti-Dalit Violence in Tamil nadu (1995-2004)*, Navayana, New Delhi, 2007, pp. 282-90. 60. N. K. Hanumanthaiah, 'Eating cow, becoming one', English Transcreation by Nanjundan, *the Dalit*, March-April 2003, p. 31. 61. विस्तार के लिए : Kumar Suresh Singh, 'Musahar: Community, Context and Equality', Joshi and Kumar (eds), *Asserting Voices*, pp. 134-42. 62. Sharankumar Limbale, *The Outcast*, Oxford University Press, New Delhi, 2003, p.50. 63. Anna Grodzins Gold, 'Grains of Truth: Shifting Hierarchies of Food and Grace in Three Rajasthani Tales', *History of Religions*, 38 (2), November 1998, p. 170. 64. Owen M. Lynch, *The Politics of Untouchability: Social Mobility and Social Change in a city of India*, Columbia University Press, New York, 1969, p. 82. 65. Sharmila Rege, Deepa Tak, Sangita Thosar, Tina Aranha (eds.), *Isn't This Plate Indian? : Dalit Histories and Memories of Food*, Krantijyoti Savitribai Phule Women's Studies Center, Pune, 2009, p. 63. 66. Gopal Guru, 'Dalit Cultural Politics in Maharashtra', in Ghanshyam Shah (ed.), *Political Identity of Dalits*, Sage, New Delhi, 2000. 67. Gopal Guru, Food as a Metaphor for Cultural Hierarchies, CASI Working Paper Series, No. 09-01, University of Pennsylvania,

Philadelphia, 2009, pp. 16-7. **68.** विस्तार के लिए : Bhasha Singh, *Unseen: The Truth about India's Manual Scavengers*, Penguin Books, New Delhi, 2012, p. xxxii. **69.** Chandrabhan Prasad, 'A Dalit food festival', *the Dalit*, March-April 2003, p.29. **70.** इस बारे में कई लेख और रिपोर्ट हैं। कुछ का संदर्भ है : Sambaiiah Gundimeda, 'Democratisation of the Public Sphere: The Beef Stall Case in Hyderabad's *Sukoon* Festival', *South Asia Research*, 29 (2), 2009, pp. 127-49; Anuradha Raman, 'The Majority is Hungry', *Outlook*, 25 August 2014, pp. 84-5. **71.** Anuradha Raman, 'Put My View on the Table', *Outlook*, 14 May, 2012, p. 22. **72.** विस्तार के लिए : Kancha Ilaiah, 'Indian Counter Culture', in Sukhadeo Thorat and Aryama (eds), *Ambedkar in Retrospect: Essays on Economics, Politics & Society*, Rawat Publication, Jaipur, 2007, pp. 301-14. **73.** Mark Juergensmeyer, *Religious Rebels in the Punjab: The Ad Dharm Challenge to Caste*, Navayana, New Delhi, 2009, p.51. **74.** विस्तार के लिए : M. S. S. Pandian, *Brahmin & Non-Brahmin: Genealogies of the Tamil Political Present*, Permanent Black, Delhi, 2007, pp. 242-3. **75.** विस्तार के लिए : G. P. Prashant, 'Mool Vansha Katha', in Badri Narayan and A. R. Misra (eds), *Multiple Marginalities: An Anthology of Identified Dalit Writings*, Manohar, Delhi, 2004, pp. 74-5. **76.** विस्तार के लिए : Banwari Lal Suman & Manju Suman, *Krishi, Van-Vriksh, Paryavaran aur Bauddh Dhamma*, Samyak Prakashan, New Delhi, 2010, pp. 7-14. **77.** फुले पर कई किताबें और लेख हैं। कुछ प्रमुख हैं : osalind O'Hanlon, *Caste, Conflict and Ideology: Mahatma Jotirao Phule and Low Caste Protest in Nineteenth-Century Western India*, Permanent Black, Ranikhet, 2002; Dhananjay Keer, *Mahatma Jotirao Phule: Father of the Indian Social Revolution*, Popular Prakashan, Mumbai, 2013; **78.** Deshpande, *Selected Writings*, p. 20. **79.** Gail Omvedt, *Jotirao Phule & the Ideology of Social Revolution in India*, Critical Quest, New Delhi, 2004, p. 5. **80.** Deshpande, *Selected Writings*, p. 14. **81.** O'Hanlon, *Caste, Conflict and Ideology*, p. 128. **82.** वही, पृष्ठ 130. **83.** Guha, *Makers of Modern India*, p. 85. **84.** Deshpande, *Selected Writings*, pp. 115-16. **85.** वही, पृष्ठ 40. **86.** Jotirao Phuley, *Slavery*, Critical Quest, New Delhi, 2008, pp. 3-4. **87.** विस्तार के लिए : Deshpande, *Selected Writings*, pp. 12-14.



# महाभारत की हिंदी परंपरा

राजकुमार

ब्रह्म गुह्य है इसलिए कहता हूं कि मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है।

मैं दोनों हाथ ऊपर उठाकर पुकार पुकार कर कह रहा हूं, पर कोई सुनता ही नहीं, कि धर्म से अर्थ, काम और किस अर्थ की सिद्धि नहीं होती।

महाभारत

महाभारत और रामायण का वर्तमान स्वरूप धीरे धीरे विकसित हुआ और फिर वह रूप स्थिर हुआ जिससे आज इनकी पहचान की जाती है। भारतीय साहित्य की परंपरा में इन्हें उपजीव्य महाकाव्य कहा जाता है। अधिकतर परवर्ती महाकाव्य इन्हीं दो महाकाव्यों के किसी आख्यान, कथा या प्रसंग पर आधारित हैं। यह सिलसिला बीसवीं सदी तक किसी न किसी रूप में चलता रहा। यह जरूर है कि बीसवीं सदी में काव्य और नाटक के अतिरिक्त उपन्यासों, फिल्मों, टीवी सीरियल्स और अन्य आधुनिक माध्यमों में भी इनका उपयोग किया गया।

रामायण और महाभारत भारतीय सभ्यता के महाआख्यान के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनकी प्रतिष्ठा इतनी व्यापक और गहरी है कि सारे भारतीय पंथों, मतों, संप्रदायों— जो इनसे सहमत या असहमत भी हैं— को इनका उपयोग करना पड़ा। जैन परंपरा की अपनी रामायण और महाभारत है तो बौद्ध परंपरा भी इनसे अछूती नहीं है। भारतीय इस्लामिक परंपरा में रामायण और महाभारत के आख्यानो का उपयोग प्रायः नहीं किया गया है, बल्कि इनसे बचने की कोशिश की गई है। इसके बजाय उन्होंने लोक प्रचलित आख्यानो को आधार बनाकर अपनी बात कहने की कोशिश की है। कुछेक अपवादों को छोड़ दें तो इन महाकाव्यों का प्रभाव शास्त्रीय ही नहीं, लोक परंपरा तक फैला

हुआ है। अनेक लोककथाओं, लोकगीतों में इन आख्यानों को अपने ढंग से रचा गया है। यहां तक कि आदिवासियों के बीच प्रचलित गाथाओं में भी इनका सर्वथा नये रूप में प्रयोग किया गया है। जैसे छत्तीसगढ़ के सतनामी पंथी रामायण की कथा का और 'पंडवानी' गाने वाले कलाकार महाभारत की कथा का उपयोग करते हैं। हरियाणा और राजस्थान के मेवात क्षेत्र के मेवों के बीच इन दोनों महाकाव्यों रामायण और महाभारत की कथाएं गाई जाती हैं। मेवातियों के बीच प्रचलित महाभारत को 'पंडून कौ कड़ा' कहा जाता है, गुजरात के भीलों के बीच 'भीलों का भारथ' के रूप में महाभारत का आख्यान प्रचलित है। राजस्थान में 'राजस्थानी लोक महाभारत' लोकप्रिय रहा है। उत्तराखंड के आदिवासी इलाके में 'पांडव लीला' के रूप में महाभारत की कथा का प्रदर्शन होता है। हिमाचल प्रदेश के मनाली में हिडिंबा का मंदिर है जो कुल्लू राजवंश की कुल देवी और काली के अवतार के रूप में पूजा जाती हैं। मनाली में दशहरा की शुरुआत हिडिंबा की पूजा से होती है।

ग्वालियर के कवि विष्णुदास कृत 'पांडव चरित', हरियाणा राजस्थान के मेवातियों के बीच प्रचलित 'पंडून कौ कड़ा', छत्तीसगढ़ के पंडवानी गायकों की लोक परंपरा, गुजरात राजस्थान के सरहद पर बसे डूंगरी 'भीलों का भारथ', 'राजस्थानी लोक महाभारत', उत्तराखंड के आदिवासी क्षेत्रों के समीप प्रचलित 'पांडवलीला' और हिमाचल प्रदेश के मनाली में हिडिंबा देवी और उनसे जुड़े उत्सवों में पांडवों की कथा मुख्य और कृष्ण का महाभारत में प्रतिष्ठित दैवीय रूप गौण है। इन महाभारतों के नायक अर्जुन नहीं, भीम हैं।

हां यह अवश्य है कि अठारहवीं सदी में रचित सबल सिंह चौहान के महाभारत में कृष्ण की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है। इसके साथ ही, सबल सिंह चौहान के महाभारत में पांडवों द्वारा क्षात्र धर्म के अनुपालन और ब्राह्मणों की रक्षा एवं सेवा का भाव बार बार आता है। किंतु उपर्युक्त किसी भी महाभारत में ऐसा भाव नहीं है। कह सकते हैं कि लोक परंपरा में विकसित होने वाले महाभारतों में कृष्ण और ब्राह्मणों की भूमिका एवं उनका महत्त्व प्रायः नगण्य है।

यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि कृष्ण को आज जिस रूप में हम जानते हैं, वह रूप अनेक कृष्णों के योग से बना है। महाभारत और कृष्ण संबंधी विविध परंपराओं को समझने की दृष्टि से हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह कथन दृष्टव्य है : *“जान पड़ता है कि महाभारत ने जिन दिनों वर्तमान रूप धारण किया था उन दिनों भागवत मत का प्राबल्य था। इस भागवत मत में श्रीकृष्ण परम दैवत के रूप में स्वीकार किये गए थे। यह दूसरी बात है कि द्वारका के राजा श्रीकृष्ण (जो महाभारत में अपनी कूटनीति के लिए प्रसिद्ध हैं) और भागवतों के परम दैवत श्रीकृष्ण मूलतः एक ही व्यक्ति न हों और बाद में चलकर मिल गए हों; पर इस बात में कोई संदेह नहीं कि वर्तमान महाभारत में सबसे अद्भुत और विशिष्ट चरित्र श्रीकृष्ण का है।”* (2005 : 158)

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी दूसरी पुस्तक 'सूर साहित्य' में भी इस प्रसंग की चर्चा करते हुए लिखा है कि *“यह बात सर्वसम्मत है कि कृष्ण का वर्तमान रूप नाना वैदिक अवैदिक, आर्य अनार्य धाराओं के मिश्रण से बना है।”* (2008 : 25)।

'पांडव चरित' के अतिरिक्त हिंदी में महाभारत लिखने की परंपरा प्रायः किसी एक पर्व पर आधारित रही है। जैसे कुलपति मिश्र ने 1676 ई. में महाभारत के द्रोण पर्व को आधार बनाकर 'संग्राम सार' नामक ग्रंथ लिखा। इसी प्रकार का प्रयोग राजस्थान के प्रसिद्ध डिंगल कवि स्वामी गणेशपुरी ने किया। उन्होंने कर्ण पर्व के आधार पर अपना प्रसिद्ध काव्यग्रंथ 'वीर विनोद' रचा। अठारहवीं सदी में सबल सिंह चौहान के महाभारत में अवश्य महाभारत की समूची कथा प्रस्तुत की गई है। संपूर्ण महाभारत को हिंदी में रूपांतरित करने का पहला वृहद् प्रयास काशी नरेश के निर्देशन में संभव हुआ। गोपीनाथ गोकुलनाथ और मणिदेव के अथक परिश्रम से संपूर्ण महाभारत

को भाषा में लाने का उद्यम किया गया। इस कार्य को पूरा करने में 50 से अधिक वर्ष लग गए। यह ग्रंथ 'महाभारत दर्पण' नाम से विख्यात है। 19वीं सदी में नवल किशोर प्रेस द्वारा इसे प्रकाशित भी किया गया था। दो हजार से भी अधिक पृष्ठों में समूचे संस्कृत महाभारत को भाषा में लाने का ये प्रयास, इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है, कि पहली बार संस्कृत महाभारत में कोई उल्लेखनीय बदलाव किये बिना, उसे हिंदी में ढालने की कोशिश की गई। एक तरह से जिसे अंग्रेजी में ट्रांसलेशन और हिंदी में अनुवाद कहते हैं, उस ढंग का भाषा में किया गया संभवतः यह पहला अनुवाद है। इससे पहले जो भी महाभारत रचे गए, वे महाभारत का अनुवाद नहीं थे। उन्हें महाभारत पर आधारित नई रचना कहना ज्यादा सही होगा। 'महाभारत दर्पण' की भाषा वैसे तो ब्रजभाषा है, लेकिन यह ब्रजभाषा रीतिकालीन शृंगारिक काव्यों में प्रयुक्त होने वाली ब्रजभाषा से काफी भिन्न है।

हरिहर निवास द्विवेदी ने लिखा है कि लंबे समय तक विष्णुदास द्वारा रचित 'पांडवचरित' काफी लोकप्रिय था। ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनसे यह पता चलता है कि 'पांडव चरित' को अनेक अवसरों पर गाया जाता था। लेकिन सबल सिंह चौहान का महाभारत आ जाने के बाद इसकी लोकप्रियता कम हो गई। कालांतर में सबल सिंह चौहान का महाभारत समूचे हिंदी क्षेत्र में लोकप्रिय हो गया; इतना लोकप्रिय हुआ कि विष्णुदास के पांडव चरित को लोग भूल ही गए। सबल सिंह चौहान के महाभारत के बाद स्वामी स्वरूपदास देथा कृत 'पांडव यशेंदु चंद्रिका' नामक ग्रंथ वर्ष 1835 ई. में लिखा गया। इसमें तीन हजार छंदों में समूचे महाभारत की कथा को समेट लिया गया है। यह महाभारत राजस्थान और उसके आसपास के क्षेत्रों में बहुत लोकप्रिय रहा, किंतु उसके बाहर इसकी ख्याति नहीं पहुंची।

महाभारत के बारे में इस तरह की मान्यताएं प्रचलित रही हैं कि इसे घर में रखने से, इसका पाठ करने से, कलह होती है। इसके बावजूद ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत की कथा काफी लोकप्रिय रही होगी। महाभारत की जितनी पांडुलिपियों का उल्लेख मिलता है, उससे इस अनुमान की पुष्टि होती है। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' के द्वितीय भाग में पृष्ठ 141 से पृष्ठ 146 तक महाभारत संबंधी पांडुलिपियों की सूची दर्ज की गई है। इस सूची में 'महाभारत दर्पण' के अतिरिक्त 'महाभारत (भाषा)' का भी उल्लेख है। महाभारत (भाषा) के प्रंद्रह पर्वों का अनुवाद अनेक कवियों ने मिलकर किया। 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' के अनुसार ये पांडुलिपियां महाराजा बनारस के पुस्तकालय में मौजूद हैं। 'महाभारत (भाषा)' की पांडुलिपियां देखने का अवसर तो नहीं मिला, लेकिन नवल किशोर प्रेस से प्रकाशित 'महाभारत दर्पण' को देख पाना हुआ। 'महाभारत दर्पण' की स्कैन कॉपी अब हमारे पास उपलब्ध है और उसे भविष्य में संपादित कर नये सिरे से प्रकाशित किया जाएगा। बीसवीं सदी में जब हिंदी क्षेत्र में नौटंकी लोकप्रिय हुई तो 'सांगीत महाभारत' नाम से महाभारत संबंधी कथाओं के नौटंकी शैली में संस्करण तैयार किये गए। नौटंकी के ढंग पर लिखी गई महाभारत कथाओं के अनेक प्रकाशित संस्करण संयोग से आज भी सुलभ हैं, और भविष्य में इन्हें भी दोबारा प्रकाशित करने की योजना है।

उपर्युक्त तथ्यों से इस बात की पुष्टि होती है कि भले ही महाभारत के साथ किसी प्रकार की धार्मिकता न जुड़ी हो, फिर भी महाभारत कथा के प्रति लोगों की उत्सुकता में कोई कमी नहीं दिखाई देती। संभवतः प्रिंटिंग प्रेस आ जाने के बाद महाभारत कथा की लोकप्रियता और भी बढ़ गई। वैसे जब प्रिंटिंग प्रेस नहीं था, और जब ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियां तैयार की जाती थीं, तब भी महाभारत की लोकप्रियता कम न थी।

(2)

महाभारत की कथा लिखित और वाचिक दोनों परंपराओं में विकसित होती है। प्रदर्शनकारी कलाओं में भी महाभारत की कथा का उपयोग किया जाता है। लेकिन ये भी सही है कि समूचे हिंदी क्षेत्र में महाभारत का प्रभाव मुख्यधारा वाले समाज में प्रायः नहीं दिखाई देता। इसके बजाय उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश और विंध्य अरावली के आदिवासी क्षेत्रों के आसपास महाभारत की परंपरा फलती फूलती है। जैसे छत्तीसगढ़ के आदिवासी बहुल इलाकों में लोकप्रिय पंडवानी की परंपरा। पंडवानी की गाथा उस क्षेत्र के 'प्रधान' नामक आदिवासियों के बीच काफी पहले से प्रचलित थी। यह कथा संस्कृत महाभारत की कथा से कई मामलों में बहुत ही अलग है। इस कथा के नायक अर्जुन या कृष्ण नहीं, बल्कि भीम हैं। भीम की पूजा वो अपने कुल देवता के रूप में करते हैं। पंडवानी की परंपरा का भी धीरे धीरे विकास हुआ। पहले यह कथा सिर्फ कही जाती थी, फिर इसके साथ गायन और अभिनय भी जुड़ गया। पहले पंडवानी की कथा लोक में प्रचलित महाभारत पर आधारित होती थी। फिर उसके साथ एक दूसरी परंपरा जुड़ गई, जिसे वेदमती परंपरा कहते हैं। वेदमती परंपरा में सबल सिंह चौहान के महाभारत का प्रयोग आधारग्रंथ के रूप में होता है। ये दिलचस्प है कि कहा भले ही जाता हो कि सबल सिंह चौहान के महाभारत को आधार के रूप में उपयोग किया जा रहा है, लेकिन वास्तव में ये कथा, जिस तरह से कही जाती है, वह कई मामलों में, सबल सिंह चौहान के महाभारत से ज्यादा, विष्णुदास के पांडवचरित के नजदीक पड़ती है।

संस्कृत में भी महाभारत का कोई एक निश्चित रूप नहीं है। बीसवीं सदी में पूना के 'भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट' में महाभारत का एक प्रामाणिक रूप तैयार करने की कोशिश की गई। लेकिन इसके बावजूद सच्चाई ये है कि संस्कृत परंपरा में भी महाभारत के कई रूप प्रचलित हैं और ये निश्चित कर पाना लगभग असंभव है कि इनमें कौन सा रूप प्रामाणिक है। सच तो ये है कि भारतीय परंपरा में महाभारत जैसे ग्रंथों का कोई प्रामाणिक रूप तय करने की कभी कोशिश नहीं की गई। किसी साहित्यिक ग्रंथ का कोई प्रामाणिक रूप तय करने की सार्थकता पर ही लोगों को संदेह था। संभवतः यही कारण है कि रामायण, महाभारत जैसे ग्रंथों के संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं और वाचिक परंपरा में अनेक रूप मिलते हैं। यदि भारतीय परंपरा में इनका एक रूप स्थिर कर दिये जाने पर जोर दिया गया होता तो इनके इतने विविध रूप नहीं बन सकते थे। इसलिए ये कहना अनुचित नहीं होगा कि महाभारत की परंपरा प्रारंभ से ही बहुवचनात्मक रही है।

दूसरी सहस्राब्दी में जब आधुनिक भारतीय भाषाओं में साहित्य लेखन की शुरुआत हुई तो महाभारत और रामायण को भी अलग अलग क्षेत्रों में अपने अपने ढंग से नाना रूपों में लिखा गया। यही नहीं, चूंकि महाभारत को गाया भी जाता है, इसलिए वाचिक परंपरा में भी महाभारत के अलग अलग क्षेत्रों में अनेक रूप बनते चले गए। यह कहना तो उचित नहीं होगा कि महाभारत का कोई एक रूप बन गया और फिर उसका अलग अलग क्षेत्रों में विस्तार हुआ; संभवतः महाभारत कथा के कई रूप रहे होंगे और उन रूपों से छांटकर संस्कृत महाभारत का रूप निर्धारित किया गया होगा। लोक परंपरा में चलने वाले महाभारतों को संस्कृत में मौजूद महाभारत की परंपरा के समानांतर रखकर देखना चाहिए। लोक परंपरा में उपलब्ध महाभारतों का कथानक संस्कृत महाभारत के कथानक से कई प्रसंगों में गुणात्मक रूप से भिन्न है। यदि ये संस्कृत महाभारत के रूपांतरण होते तो उनके कथानक में इतनी भिन्नता न होती।

हिंदी क्षेत्र में लोकभाषा में महाभारत लिखने की परंपरा की शुरुआत ग्वालियर के विष्णुदास द्वारा रचित 'पांडवचरित' से होती है। इसलिए महाभारत की हिंदी परंपरा का अध्ययन 'पांडव

चरित' को छोड़कर नहीं किया जाना चाहिए। 'पांडव चरित' के अतिरिक्त मेवाती महाभारत 'पंडून को कड़' 'भीलों का भारथ' और 'राजस्थानी लोक महाभारत' हिंदी क्षेत्र में महाभारत की परंपरा का अध्ययन करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं। वैसे तो छत्तीसगढ़ में प्रचलित पंडवानी और उत्तराखंड की पांडवलीला की लोक परंपराएं भी महत्वपूर्ण हैं लेकिन फिलहाल इस लेख में हम उपर्युक्त ग्रंथों की ही चर्चा करेंगे। इन ग्रंथों का सम्यक् अध्ययन कर पाना तो एक लेख में संभव नहीं होगा, अतः हिंदी में महाभारत की बहुवचनात्मक परंपरा और विविधता के अध्ययन हेतु हम भीम और हिडिंबा प्रकरण को तुलनात्मक दृष्टि से समझने की कोशिश करेंगे। एक ही प्रकरण की प्रस्तुति अलग अलग ग्रंथों में भिन्न भिन्न रूपों में हुई है।

इन सभी महाभारतों की कहानी गुणात्मक रूप से भिन्न है। इससे महाभारत की हिंदी परंपरा की बहुलता एवं विविधता का अंदाजा लगता है। आख्यान कला की विविधतापूर्ण समृद्धि को समझने की दृष्टि से इन महाभारतों का अध्ययन बहुत ही महत्वपूर्ण है। हिंदी साहित्य इतिहास लेखन की विडंबना यह रही है कि समूचे मध्यकालीन या आरंभिक आधुनिक कालीन साहित्य का अध्ययन काव्य को ध्यान में रखकर किया गया। यहां तक कि प्रबंधकाव्यों एवं महाकाव्यों के अध्ययन में भी सिर्फ काव्यत्व का विवेचन हुआ। इनमें अंतर्निहित आख्यान का अध्ययन करने की कोई उल्लेखनीय कोशिश नहीं की गई। जबकि सच्चाई ये है कि कवित्व प्रबंधकाव्यों और महाकाव्यों के आख्यान के अंदर है, किंतु आख्यान को छोड़कर सिर्फ कवित्व का अध्ययन किया जाता रहा। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि आरंभिक आधुनिककालीन आख्यान कला का कोई सम्यक् अध्ययन नहीं हुआ। यहां तक कि उसके बारे में आज भी व्यवस्थित और सिलसिलेवार जानकारी किसी पुस्तक में उपलब्ध नहीं है। जरूरत इस बात की है कि इस साहित्य में मौजूद आख्यानकला का अध्ययन कर उसकी वैविध्यपूर्ण समृद्धि का सम्यक् निरूपण किया जाए।

हिंदी क्षेत्र में ग्वालियर के विष्णुदास का 'पांडवचरित' अभी तक ज्ञात महाभारत की परंपरा का सबसे पुराना ग्रंथ है। ये 1435 ई. में लिखा गया था। ब्रज भाषा का उपलब्ध सबसे पुराना उल्लेखनीय ग्रंथ भी यही है। यद्यपि इस ग्रंथ की भाषा को ब्रजभाषा माना जाता है लेकिन सच्चाई ये है कि इसकी भाषा परवर्ती ब्रजभाषा से काफी भिन्न है। इसमें अवधी का प्रयोग भी बहुतायत में मिलता है। अवधी के अतिरिक्त बुंदेलखंडी के प्रयोग भी चिन्हित किये जा सकते हैं। यही नहीं, अपभ्रंश के कुछ अवशेष भी 'पांडवचरित' की भाषा में बचे रह गए हैं। इसलिए 'पांडवचरित' की भाषा को पूरी तरह ब्रजभाषा कहना सही नहीं है। इसमें ब्रज, अवधी, बुंदेलखंडी इस तरह घुली मिली हैं कि उनकी अलग पहचान की कल्पना भी उचित प्रतीत नहीं होती। यहां यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि 'पांडवचरित' के रचना समय तक भक्ति आंदोलन का प्रभाव ग्वालियर क्षेत्र तक नहीं पहुंचा था। ये रचना भक्ति आंदोलन से पहले की है। ये कोई अचरज की बात नहीं कि इसके नायक अर्जुन नहीं, भीम हैं, और इसमें कृष्ण की भूमिका प्रायः नगण्य है। ध्यातव्य है कि विष्णुदास स्वयं को नाथपंथी बताते हैं। 'पांडवचरित' के साक्ष्य से यह भी समझ में आता है कि लोकभाषाओं में साहित्य लिखने की परंपरा भक्ति आंदोलन से पहले प्रारंभ हो चुकी थी। भक्ति आंदोलन ने इस प्रक्रिया को और तीव्र किया, लेकिन ये मानना कि भक्ति आंदोलन के साथ भाषा में साहित्य लिखने की परंपरा की शुरुआत हुई, गलत है।

विष्णुदास के 'पांडवचरित' में स्वयं इस प्रकार के साक्ष्य मौजूद हैं जिनसे ये प्रमाणित होता है कि पांडवचरित के गायन की परंपरा पहले से चली आ रही थी। स्वयं विष्णुदास महाभारत गायन की परंपरा से वाकिफ थे। विष्णुदास ने ग्वालियर के शासक राजा डूंगरेंद्र सिंह तोमर को यह गाथा गाकर सुनाई थी। कालांतर में भी 'पांडवचरित' की गायन परंपरा चलती रही। ऐसा प्रतीत होता

है कि सबल सिंह चौहान का महाभारत लिखे जाने तक पांडवचरित की लोकप्रियता बरकरार रही। हरिहर निवास द्विवेदी ने लिखा है कि “इसके अध्ययन से अनेक बातें स्पष्ट होती हैं। उस समय दतिया में इंद्रजीत बुंदेला राज्य कर रहा था। श्री पंडित चतुर्भुज चौबे उन्हें पुराणों की कथा सुनाते थे। उनके पठनार्थ चौबेजी ने यह प्रति तैयार की थी। पहले पांच पर्व विष्णुदास की रचना से ले लिए और अंतिम अंश सबल सिंह चौहान कृत महाभारत से लेकर संपूर्ण महाभारत प्रस्तुत कर दिया। इससे यह बात निस्संदेह कही जा सकती है कि विष्णुदास का महाभारत अपने रचनाकाल के तीन सौ वर्ष तक अत्यधिक लोकप्रिय था। भाषा में महाभारत सुनाने वाले पंडित उसका उपयोग करते थे। (1973 : 26, 27)।

छत्तीसगढ़ में पंडवानी गाने वाली वेदमती शाखा के कलाकार सबल सिंह चौहान के महाभारत का आधारग्रंथ के रूप में उल्लेख करते हैं, लेकिन उन्हें ध्यान से सुनने पर यह बात समझ में आती है कि उनकी कथावस्तु, सबल सिंह चौहान के महाभारत के बजाय विष्णुदास के ‘पांडवचरित’ से ज्यादा मिलती जुलती है।

‘पंडून कौ कड़ा’ का एक संस्करण अनिल जोशी ने 1972 में प्रकाशित कर दिया है। अनिल जोशी के अनुसार ‘पंडून कौ कड़ा’ के मूल रचनाकार ‘सादल्लाह’ हैं, सादल्लाह ग्राम आंकेड़ा जिला गुड़गांव के रहने वाले थे। ‘पंडून कौ कड़ा’ के दो खंडों (1) ‘विराड़ की लड़ाई’ व (2) ‘भीम कौ कड़ा’ की रचना सादल्लाह द्वारा बताई गई है। ‘पंडून कौ कड़ा’ के संबंध में ऐसा बताया कहा है कि ग्राम आंकेड़ा के एक मेव चौरी सांवला ने एक नया कुंआ खुदवाने का कार्य प्रारंभ किया था। उस खुदाई के दौरान तांबे के पत्तर मिले जिन पर कुछ लिखा हुआ था। सांवला मेव ने यह पत्तर सादल्लाह को दे दिये। सादल्लाह ने इनका गहन अध्ययन किया और पाया कि इन पत्तों पर पांडवों का जीवन परिचय लिखा है। अतः उन्होंने इन पत्तों की सहायता से ‘पंडून कौ कड़ा’ को जन्म दिया और सन् 1665 ई. में इसे पूरा किया। (1992 : 4)। ‘पंडून कौ कड़ा’ का तीसरा खंड सादल्लाह के शिष्य नबी खां द्वारा रचा गया, जो ‘कुरुक्षेत्र की लड़ाई’ के नाम से पहचाना जाता है। इस भाग को नबी खां ने ‘कुरुक्षेत्र की लड़ाई’ के अतिरिक्त ‘चकाबोई का किला’ व ‘बब्बरा बाण कौ कड़ा’ के रूप में विभाजित कर इसके तीन खंड बना दिये हैं। नबी खां द्वारा रचित दोहे से पता चलता है कि शायर द्वारा यह कार्य विक्रमी संवत् 1837 अर्थात् सन् 1779 ई. में पूर्ण किया जा चुका था। (1992 : 4, 5)

‘पंडून कौ कड़ा’ का संबंध इस्लामी और शाक्त दोनों परंपराओं से है। ‘पंडून कौ कड़ा’ पूर्व औपनिवेशिक दौर में हिंदू मुस्लिम संबंध को समझने की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। वास्तव में हिंदू और मुसलमान की अवधारणा से, जिस रूप में आज हम परिचित हैं, वो 19वीं सदी के दौरान गढ़ी गई। असल में औपनिवेशिक राज्य शासन का संचालन मूलतः अपने नौकरशाहों के द्वारा करता था। प्रशासन को ठीक से संचालित करने के लिए मानकीकरण और सीमांकन बहुत जरूरी हो जाता है। मानकीकरण और सीमांकन स्पष्ट अवधारणाएं निर्मित किए बिना संभव नहीं हो सकते। ये अकारण नहीं है कि इस दौर में अलग अलग क्षेत्रों की सीमाएं निर्धारित की जाने लगीं। प्रत्येक क्षेत्र को एक भाषा के साथ जोड़ा जाने लगा और आचार विचार को पृथक पृथक सामाजिक समूहों के साथ संबद्धकर अलग किया जाने लगा। प्रशासन की जरूरतों के अनुरूप जिस प्रकार का ज्ञान निर्मित किया गया उसे अस्मिताओं की भिन्नता और द्विधारी विरोधी अवधारणाओं के सहारे खड़ा किया गया। विभिन्न अनुशासनों द्वारा भिन्नता को न केवल गढ़ा गया बल्कि उसे सत्य के रूप में प्रचारित भी किया गया। इस तरह धार्मिक समुदायों, भाषाओं और क्षेत्रों की पृथक अस्मिताएं गढ़ी गईं; और इस प्रक्रिया में पारस्परिक संबंध के साक्ष्यों को दरकिनार कर दिया गया।

‘पंडून कौ कड़ा’ के प्रारंभ में गोरखनाथ अपने शिष्य अघोरनाथ के साथ प्रकट होते हैं। गोरखनाथ का वर्णन यहां एक फकीर के रूप में किया गया है। शैल मायाराम ने लिखा है कि “भेवाती महाभारत में गोरखनाथ का चरित्र जटिल और दोहरे रूप में, जोगी और फकीर के रूप में, अर्थात् हिंदू जोगी और मुस्लिम फकीर के रूप में चित्रित किया गया है। (7 : 103) कुंती और गांधारी दोनों बांझ थीं, गोरखनाथ ने उन्हें जौ खाने को दिया। जौ खाने से उनका बांझपन जाता रहा और उन्होंने पांडवों और कौरवों को जन्म दिया।”

गोरखनाथ के शिष्य अघोरनाथ ये बताते हैं कि ईश्वर, गुरु और सभी मनुष्यों का जन्म वेश्या की कोख से हुआ है। उपर्युक्त बातों से अनुमान लगाया जा सकता है कि ‘पंडून कौ कड़ा’ की कहानी संस्कृत महाभारत की कथा से कितनी भिन्न है। ‘पंडून कौ कड़ा’ को गाने वाले मिरासी अपने आराध्य देवी को भवानी कहते हैं और द्रौपदी का उल्लेख हमेशा देवी के रूप में करते हैं। द्रौपदी रात के अंधेरे की तरह काली हैं और अपने पतियों को जीवन या मृत्यु देने की सामर्थ्य रखती हैं। अर्जुन द्रौपदी की शक्ति को जानते हैं। अर्जुन की दृष्टि में द्रौपदी रानी के रूप में साक्षात् मृत्यु का मानवी रूप हैं और उन्हीं की वजह से उनके पांचों पतियों की मृत्यु होगी।

इधर के शोधों से यह बात खुलकर सामने आ रही है कि नाथ जोगियों और सूफियों के बीच बहुत गहरे संबंध थे। वास्तव में नाथ योगी उस चौराहे पर अवस्थित लगते हैं, जहां एक ओर उनका संबंध बौद्ध और इस्लामी परंपरा से बनता है और दूसरी तरफ आदिवासियों, किसानों, अछूतों और निम्नजातियों के बीच प्रचलित परंपराओं से इनके सूत्र जुड़ते हैं। इसलिए यह अस्वाभाविक नहीं है कि ‘पंडून कौ कड़ा’ में गोरखनाथ और अघोरनाथ की ऐसी केंद्रीय उपस्थित दिखाई देती है। ये उल्लेखनीय है कि मेवातियों को लंबे समय तक राजपूत होने और साथ ही मुसलमान होने पर गर्व था; और वे हिंदू मुस्लिम दोनों परंपराओं का निर्वाह करते थे। ऐसा करना उन्हें अनुचित नहीं प्रतीत होता था। शैल मायाराम ने सही लिखा है कि ‘पंडून कौ कड़ा’ का संबंध शाक्त और इस्लामी दोनों परंपराओं से है।

लोक परंपरा में विकसित होने वाली महाभारतकथा का संबंध प्रायः उन समुदायों से रहा है, जिन्हें आज की भाषा में निम्नवर्गीय या हाशिये का समाज कहा जाता है। इसलिए इनमें कृष्ण की भूमिका बहुत कम है और इन्हें वर्चस्वशाली वैष्णव परंपरा के साथ जोड़कर देख पाना मुश्किल है।

यहां ये दर्ज कर देना उचित होगा कि सबल सिंह चौहान के महाभारत में कृष्ण की भूमिका बढ़ जाती है क्योंकि इसका संबंध कहीं न कहीं वैष्णव परंपरा से जुड़ता है। इस ग्रंथ की रचना सन् 1661 ई. से 1724 ई. के बीच हुई है।

### (3)

महाभारत की कथा जब अपनी पारंपरिक भूमि को छोड़कर नितांत भिन्न परिवेश में पहुंचती है तो उसके नये नये रूपों का विकास होता है। ‘भीलों का भारथ’ में कौरव पांडव युद्ध सात दिन में ही समाप्त हो जाता है, जबकि व्यास के महाभारत में युद्ध अठारह दिन चलता है और इसका वर्णन चार पर्वों में पूरा होता है। इस युद्ध में पांडवों की तरफ से केवल अभिमन्यु लड़ते हैं और कौरवों की ओर से सौ के बजाय अठहत्तर भाई। भीम इस युद्ध में सातवें दिन शामिल होते हैं। सातवें दिन कृष्ण अपने भांजे अभिमन्यु की हत्या कर देते हैं क्योंकि अभिमन्यु वास्तव में सुभद्रा के गर्भ से पैदा होने वाला दानव है। ये दानव कृष्ण को मारने के इरादे से सुभद्रा के गर्भ में प्रवेश कर गया था। वह अपने पिता की हत्या का बदला लेना चाहता था। कृष्ण ने उसके पिता भैंसा

दानव की हत्या कर दी थी।

जब ये युद्ध चल रहा था, तब अर्जुन पाताल लोक में नागराज वासुकि के यहां गए हुए थे। यहां अर्जुन की हत्या उनका पुत्र नेप जी कर देता है। जब नेप जी की मां अर्थात् अर्जुन की पत्नी हीरापथ को, जो नागराज वासुकि की बेटी है, अर्जुन के मारे जाने की खबर मिलती है, तो वह अर्जुन को दोबारा जीवित कर देती है। अर्जुन जब हस्तिनापुर वापस आते हैं, तब तक महाभारत का युद्ध समाप्त हो चुका होता है।

‘भीलों का भारथ’ की कथा महाभारत के प्रचलित आख्यान से काफी भिन्न है। इस भिन्नता की विस्तार से चर्चा करना तो फिलहाल उपयुक्त नहीं होगा, लेकिन नमूने के तौर पर नागराज वासुकि और द्रौपदी से संबंधित कथा का यहां जिक्र किया जाता है : नागराज वासुकि सो रहे होते हैं, तभी उनके ऊपर सुनहला बाल गिरता है। बाल के भार से विचलित होकर वह उठ खड़े होते हैं। उन्हें लगता है कि यह किसी स्त्री का बाल है। उस स्त्री की तलाश में वे धरती पर आ जाते हैं। यहां उन्हें वह रनिवास मिल जाता है जहां द्रौपदी रहती है। द्रौपदी के पास पहुंचकर वे उसके साथ प्रेमालाप करने लगते हैं। विरोध करने पर अर्जुन को अपने मूँठ के बाल से बांधकर खूँटी पर लटका देते हैं। सुबह जाते समय अपनी तलवार से बाल काट देते हैं तो अर्जुन धड़ाम से नीचे गिर पड़ते हैं। उनके गिरने से बड़ी तेज आवाज होती है। जाते जाते वासुकि द्रौपदी से कहते हैं कि अब मैं रोज शाम को आऊंगा और तड़के जाऊंगा। वासुकि के चले जाने पर अर्जुन द्रौपदी से कहते हैं, ‘रानी यह तो रोज की बात हो गई, तेरे लिए तो अच्छा है मगर मेरी हड्डियां टूट जाती हैं। कितना दुःख सहन करना पड़ेगा? आज आए तो दुश्मन को मारने का उपाय उससे ही जान लेना।’ द्रौपदी कहती है कि आज शाम को उसे आने दो...राजा (वासुकि) पलंग पर विराजता है और रानी (द्रौपदी) बत्तीस प्रकार का भोजन बनाती है। सोने के थाल में परोसकर पलंग पर आती है। सोये हुए राजा के मुंह में निवाला देती है। वासुकि सोये सोये ही खाता है और बातें करता है : ‘रानी पांडवों की तो मेरे सामने क्या हिम्मत है? पांडवों से तो डरता नहीं हूं मगर कर्ण से अवश्य डरता हूं। कर्ण से बहुत डर लगता है।’

ध्यातव्य है कि अर्जुन को इस बात से कोई दिक्कत नहीं होती कि द्रौपदी उनकी आंखों के सामने वासुकि के साथ सहवास करती हैं। एक अन्य प्रसंग में कृष्ण के चले जाने के बाद राधा का संबंध चूड़ी बेचने वाले सुंदर युवक से हो जाता है और उसके प्रेम में वह इस कदर डूब जाती है कि कृष्ण का चित्र उठाकर घर से बाहर फेंक देती है। वस्तुतः ‘भीलों का भारथ’ आदिवासी समाज के जीवनमूल्यों के अनुरूप वर्जनामुक्त संस्कृति का आदर्श प्रस्तुत करता है।

राजस्थान के प्रसिद्ध महापुरुषों बाबा रामदेव और सिद्धाचार्य जसनाथ जी के अनुयायियों के द्वारा ‘राजस्थानी लोक महाभारत’ गाया जाता है। इन अनुयायियों को कामड़िया और सिद्ध कहा जाता है। संभवतः लोक परंपरा में प्रचलित ये अकेला ऐसा महाभारत है जिसका गायन इन दो संप्रदायों के अनुयायी धार्मिक ग्रंथ के रूप में करते हैं।

‘राजस्थानी लोक महाभारत’ की कथा महाभारत के प्रचलित आख्यान से काफी अलग है। शुरुआत इस तरह से होती है : एक श्रेष्ठी गंगा नहाने के लिए बैलगाड़ी से जा रहा था। रास्ते में एक बैल इतना थक गया कि भरसक कोशिश करने के बावजूद आगे नहीं बढ़ा। श्रेष्ठी ने सांड से प्रार्थना की कि गाड़ी को वह गंगातट तक पहुंचा दे। सांड तैयार तो हो गया लेकिन उसने यह शर्त रख दी कि गंगा से मिलने वाले पुण्य में श्रेष्ठी उसे भी भागीदार बनाएगा। श्रेष्ठी ने अपना वचन नहीं निभाया। सांड ने शाप दे दिया। उसके शाप से श्रेष्ठी सियार बन गया। एक दिन सियार आधी रात के वक्त गंगा की धारा में घुस गया। गंगा ने नाराज होकर उसे टूट बना दिया। सनकादि



ऋषियों ने इस टूठ के सहारे तपस्या की और प्रसन्न होकर इसे दोबारा आदमी बना दिया। आदमी बनने पर ऋषियों ने जब उसकी अभिलाषा जाननी चाही तो उसने गंगा के साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की। इस बेतुके आग्रह से कुपित होकर ऋषियों ने उसका नाम शैतान रख दिया। किंतु इसके साथ ही यह भी बता दिया कि गंगा से विवाह करने की उसकी इच्छा शिव की कृपा से पूरी हो सकती है। शैतान ने शिव की तपस्या की। शिव के वरदान से उसका विवाह गंगा से हो गया। इस तरह उसने गंगा को ही नहीं, हस्तिनापुर का राज्य भी प्राप्त कर लिया। यही शैतान महाभारत के शांतनु और पांडवों का मूल पुरुष है।

‘राजस्थानी लोक महाभारत’ के अनुसार पांडु की दूसरी पत्नी माद्री एक हिरणी के गर्भ से उत्पन्न बालिका थीं। कुंती ने उसका बेटी की तरह लालन पालन किया था। किंतु माद्री के रूप लावण्य से आकर्षित होकर पांडु ने उसे अपनी पत्नी बना लिया। पांडु के इस कृत्य से उनके शरीर में कोढ़ फूट पड़ा और इसी रोग से उनकी मृत्यु हुई। माद्री के गर्भ से नकुल पैदा हुए। सहदेव समेत बाकी चारों पांडव कुंती से हुए।

संस्कृत महाभारत के अनुसार पांडवों के वनवास का मुख्य कारण राजा युधिष्ठिर का जुए में सब कुछ हार जाना है। लेकिन ‘राजस्थानी लोक महाभारत’ में द्यूतक्रीड़ा का कोई उल्लेख नहीं है; और न ही दुर्योधन द्वारा पांडवों को देश से निकाले जाने का जिक्र है। पांडवों के देश निकाले का प्रमुख कारण भीम द्वारा कौरवों की सामूहिक हत्या है। इस हत्या के दंड स्वरूप कृष्ण पांडवों को देश निकाला देते हैं। वैसे तो कृष्ण पांडवों को देश निकाला देना नहीं चाहते थे, लेकिन वह ईष्यालु नारद के बहकावे में ऐसा कर बैठे।

ये सिर्फ एक बानगी थी। इससे महाभारत की हिंदी परंपरा के आख्यान वैविध्य का अंदाजा लगाया जा सकता है। इस आलेख के अगले हिस्से में हम इस आख्यान वैविध्य और रचनात्मक समृद्धि को हिडिंबा भीम प्रसंग के सहारे समझने की कोशिश करेंगे।

#### (4)

संस्कृत महाभारत में हिडिंबा भीम प्रसंग की मुख्य बातें इस प्रकार हैं—

1. भीम और हिडिंबा के रूप का स्पष्ट चित्र खींचा गया है। इन दोनों चित्रों के द्वारा राक्षस और मनुष्य के स्वरूप के अंतर को स्पष्ट देख सकते हैं।

2. हिडिंबा भीम के देवोपम स्वरूप पर मोहित होती है, इसलिए वह एक मनोहर स्त्री का रूप धारणकर उनके सम्मुख जाती है। हिडिंबा यह भी कहती है कि यद्यपि उसका भाई हिडिंब बहुत शक्तिशाली है फिर भी वह कुंती और पांडवों की रक्षा करने का सामर्थ्य रखती है।

3. युधिष्ठिर हिडिंबा भीम को विवाह की अनुमति देने के साथ ही हिडिंबा से कहते हैं कि दिन में भीम उसके साथ रहेंगे लेकिन सूर्यास्त के बाद उसे भीम को पांडवों के पास रहने की छूट देनी होगी।

4. भीम कहते हैं कि वह हिडिंबा से विवाह करेंगे लेकिन एक पुत्र होने के बाद वह हिडिंबा को छोड़कर जाने के लिए स्वतंत्र होंगे।

5. भीम हिडिंबा का पुत्र घटोत्कच कुंती और पांडवों को आवश्यकता पड़ने पर सहायता करने का वचन देता है।

यदि इस प्रसंग की तुलना ‘पांडवचरित’ के हिडिंबा भीम प्रसंग से करें तो निम्नलिखित अंतर दिखाई पड़ते हैं :

1. हिडिंबा, भीम के सम्मुख भयंकर गर्जना करते हुए राक्षसी के रूप में प्रकट होती है और

भीम को शांत, स्थिर और निर्भीक देखकर उन पर मोहित हो जाती है और मनोहर स्त्री का रूप धारण कर लेती है।

2. संस्कृत महाभारत में हिडिंबा को अपनी शक्ति पर भरोसा था। इसलिए वह भीम को पांडवों की रक्षा का आश्वासन देती है, जबकि 'पांडवचरित' में वह इस तरह का कोई आश्वासन नहीं देती। बल्कि उसे भीम की शक्ति पर पूरा भरोसा है कि वह हिडिंब को मार सकते हैं।

3. न तो युधिष्ठिर हिडिंबा से सूर्यास्त के पश्चात भीम को पांडवों के पास रहने की छूट देने का आग्रह करते हैं और न ही भीम पुत्र होने के पश्चात पांडवों के पास लौटने की शर्त शादी करने से पहले रखते हैं।

4. 'पांडवचरित' में घटोत्कच का इस प्रसंग में कोई जिक्र नहीं है।

5. 'पांडवचरित' में युधिष्ठिर की जगह कुंती विवाह की अनुमति देती हैं।

स्पष्ट है कि पांडव चरित की हिडिंबा को संस्कृत महाभारत की हिडिंबा की तरह अपनी शक्ति पर भरोसा नहीं है, बल्कि उसे भीम की शक्ति पर भरोसा है। यहां न तो युधिष्ठिर को और ना ही भीम को शादी से पहले उन शर्तों का जिक्र करने की जरूरत पड़ती है, जिनका उल्लेख संस्कृत महाभारत में मिलता है। इसका मतलब संभवतः यह है कि संस्कृत महाभारत की तुलना में 'पांडवचरित' की हिडिंबा का चरित्र कमजोर है। यहां भीम को हिडिंबा से छूट लेने की जरूरत महसूस नहीं होती है। मानो शादी के बाद हिडिंबा से जैसा चाहें, वैसा बर्ताव कर सकते हैं।

मुख्य धारा से बाहर पड़ने वाले और अपनी स्वायत्तता को कायम रखने के लिए संघर्ष करने वाले समुदायों का जिक्र प्रायः क्रूर, निर्मम, भयानक और नरभक्षी के रूप में किया गया है। हजारी प्रसाद द्विवेदी को प्रमाण मानें तो इसका प्रमुख कारण यह है : *“आर्यों का लिखा हुआ साहित्य ही हमारे पास बचा है। उसमें सब कुछ आर्य दृष्टिकोण से ही देखा गया है।”* (2008 : 12)

पंद्रहवीं सदी तक आते आते मुख्यधारा और मुख्यधारा से बाहर पड़ने वाले समुदायों के बीच विलयन की प्रक्रिया गाढ़ी हो गई थी, और संघर्ष मंद पड़ गया था। इसलिए 'पांडवचरित' के 'हिडिंबा भीम प्रसंग' में संस्कृत महाभारत की तरह उनके विवाह से पहले शर्तों के उल्लेख की जरूरत नहीं पड़ती है। अठारहवीं सदी के सबल सिंह चौहान कृत महाभारत में तो यह प्रसंग ही पूरी तरह से गायब है। इससे पता चलता है कि उनके समय तक विलयन की प्रक्रिया और भी बढ़ गई थी। ये कहना सही नहीं है कि असुर, राक्षस आदि की परिकल्पना अठारहवीं सदी तक आते आते पूरी तरह अप्रासंगिक हो गई, क्योंकि स्वयं सबल सिंह चौहान के महाभारत में 'बकासुर प्रसंग' मौजूद है।

मेवातियों के महाभारत 'पंडून कौ कड़ा' में हिडिंबा को रानी हिडिंबा कहा गया है। दुर्योधन के निर्देश पर रानी हिडिंबा के पिता भूरेसर दाना ने भीम को छोड़कर बाकी पांडवों और कुंती द्रौपदी को पर्वत की गुफा में बंद कर दिया था। जब भीम पानी लेकर लौटे तो वहां पांडव, कुंती, द्रौपदी कोई नहीं मिला। वह इधर उधर उन्हें ढूंढने लगे। ढूंढते ढूंढते वे एक बगीचे में पहुंचे, जहां रानी हिडिंबा झूला झूल रही थीं। रानी हिडिंबा ने भीम को झूला झूलाने को कहा। भीम ने झूला झूलाने से पहले शर्त रखी कि झुलाने के बाद तुम मुझे कुंती और पांडवों का पता बताओगी। भीम ने झूला झुलाया। झूला तेज गति से झूलने लगा। रानी हिडिंबा ने भीम से झूला से उतारने की विनती की। भीम ने रानी हिडिंबा को नीचे उतारा। रानी हिडिंबा ने कुंती और पांडवों का पता बता दिया। भीम गुफा की ओर दौड़े। दुर्योधन के निर्देश पर भूरेसर दाना भी पांडवों को मारने के लिए वहां पहुंच गया। भीम और भूरेसर दाना आपस में भिड़ गए। भीम ने भूरेसर दाना को मारकर कुंती और पांडवों को छुड़ा लिया। फिर रानी हिडिंबा से विवाह किया।

‘पंडून कौ कड़ा’ में हिडिंबा भीम प्रसंग में आए निम्नलिखित परिवर्तनों पर ध्यान देने की जरूरत है।

1. सबसे पहले तो यही कि यहां हिडिंबा का उल्लेख एक रानी के रूप में किया गया है।  
2. हिडिंबा का चित्रण एक युवती के रूप में है, जो झूला झूल रही है। राक्षसी के रूप में हिडिंबा का चित्रण यहां नहीं है। हिडिंबा के भाई हिडिंब का भी कोई उल्लेख नहीं है। हिडिंब के बजाय भूरेसर दाना भी नरभक्षी नहीं है, बल्कि वह एक ऐसा शासक है जिसने कौरवों की तरफ से पांडवों को खत्म करने का बीड़ा उठाया है। तत्कालीन सत्ता संघर्ष में वह भी एक खिलाड़ी है, राक्षस या नरभक्षी नहीं। ‘पंडून कौ कड़ा’ में भीम हिडिंबा विवाह के प्रसंग में कुंती, युधिष्ठिर और परिवार के किसी अन्य सदस्य की भूमिका का कोई उल्लेख नहीं है।

‘पंडून कौ कड़ा’ और विष्णुदास कृत ‘पांडवचरित’ में पात्रों का नाम तद्भव रूप में मिलता है और इन तद्भव रूपों में जबर्दस्त समानता है। ऐसी समानता क्यों है? विष्णुदास ने ग्वालियर के तोमरवंशी शासकों के सुनाने के लिए ‘पांडवचरित’ की रचना की थी। मेवाती साहित्य अकादमी, अलवर के अध्यक्ष डॉ. मुंशी खान के अनुसार मेवाती समुदाय 12 पालों में विभक्त है। इनमें पांच पालें तोमरवंशी मानी जाती हैं। ‘पंडून कौ कड़ा’ इन तोमरवंशी मेवातियों के बीच प्रचलित रहा है। इन तोमरवंशी मेवातियों की महाभारत में संभवतः इसीलिए पात्रों के नामों में ऐसी समानता दिखती है।

‘भीलों का भारत’ में हिडिंबा का ‘अरमा’ और ‘हिडिंबा’ के रूप में वर्णन किया गया है। भारत हिडिंबा सिंदुरिया बड़ पर झूला झूल रही है। उसके पैर के घुंघरू बज रहे हैं। भीम उन घुंघरूओं की खनक सुनते सुनते वहां पहुंच जाते हैं। हिडिंबा भीम से मार्ग का दान मांगती है और भीम से कहती है कि यदि तुम मार्ग का दान नहीं दोगे तो मैं तुम्हें शाप दे दूंगी, जिससे तुम्हारे काम में विघ्न पड़ जाएगा और वह पूरा नहीं होगा। इससे पता चलता है कि हिडिंबा की प्रतिष्ठा देवी के रूप में न सही, किंतु धार्मिक या आध्यात्मिक शक्ति से संपन्न ऐसी स्त्री के रूप में की गई है जिसे दान लेने का अधिकार है। इसलिए वह कहती है कि बिना दान दिये जाओगे तो मैं शाप दे दूंगी और तुम्हारे काम में विघ्न पड़ जाएगा।

भीम के पास दान देने के लिए कुछ भी नहीं था। हिडिंबा दान के रूप में झूला झुलाने को कहती है। भीम झूला झुलाते हैं। वह झूला ऊपर सूरज के रथ में पहुंच जाता है और हिडिंबा डरने लगती है। वह भीम से कहती है कि जब झूला नीचे आए तो उसे वह रोक ले। नीचे आने पर भीम झूला रोक लेते हैं। इस दौरान दोनों की आंखें मिल जाती हैं। हिडिंबा मूर्च्छित हो जाती है और उसको गर्भ रह जाता है। घड़ी भर में ही उसको पुत्र उत्पन्न हो जाता है। इसलिए उसका नाम घटोत्कच रखती है। हिडिंबा उसे भीम के पीछे जाने को कहती है। घटोत्कच भीम के पीछे पीछे जाने लगता है। भीम के कहने पर वह अपना परिचय देता है। भीम उससे पूछते हैं कि युद्ध में तुम किसके पक्ष से लड़ोगे। घटोत्कच कहता है कि वह हारने वाले के पक्ष में रहेगा। संस्कृत महाभारत में घटोत्कच पांडवों को, कभी भी, जरूरत पड़ने पर, सहायता करने का वचन देता है। जबकि यहां वह पराजित पक्ष की ओर से लड़ने की बात कहता है। यह सुनते ही भीम उसे पाताल लोक भेज देते हैं। ‘भीलों के भारत’ के इस प्रसंग में न तो हिडिंबा के भाई पिता और न ही भीम के अतिरिक्त किसी पांडव या कुंती का वर्णन मिलता है। यहां हिडिंबा की छवि साक्षात् देवी जैसी भले न हो, लेकिन देवी से मिलती जुलती जरूर है।

अभी तक हमने संस्कृत महाभारत, विष्णुदास कृत ‘पांडवचरित’ ‘पंडून कौ कड़ा’ और ‘भीलों के भारत’ में हिडिंबा के चरित्र और हिडिंबा भीम प्रसंग के बदलते स्वरूप को समझने की कोशिश

की। सूत्र रूप में कहें तो संस्कृत महाभारत की हिडिंबा में आत्मशक्ति पर भरोसा है तो 'पांडवचरित' की हिडिंबा को भीम की शक्ति पर। इन दोनों महाभारतों में हिडिंबा का राक्षसी के रूप में चित्रण है, जबकि लोकपरंपरा के महाभारत 'पंडून कौ कड़' और 'भीलो के भारथ' में वह मानवीय और देवी रूप में वर्णित है।

हिमाचल प्रदेश के मनाली में व्यास नदी के किनारे हिडिंबा का मंदिर है। इसी प्रांगण में भीम और घटोत्कच के भी छोटे मंदिर हैं। कूल्लु का राजवंश हिडिंबा को अपनी कुलदेवी मानता है। ऐसी मान्यता है कि सन् 1553 ई. में इस मंदिर का निर्माण कूल्लु के तत्कालीन महाराजा बहादुर सिंह ने कराया था। यहां हिडिंबा को काली का अवतार माना जाता है। मंदिर के प्रांगण में दुर्गा की भी मूर्ति स्थापित है। हिडिंबा मनाली के ऊझी क्षेत्र की अधिष्ठात्री देवी के रूप में पूजी जाती हैं। ऊझी क्षेत्र के वासी हिडिंबा की प्रजा माने जाते हैं और साल में एक बार कौर (कर) अदा करते हैं। ये प्रथा अभी कुछ वर्ष पहले ही समाप्त हुई है। ज्येष्ठ की संक्राति के दिन ढूंगरी क्षेत्र में हिडिंबा देवी का मेला लगता है। कूल्लु क्षेत्र का दशहरा विश्वप्रसिद्ध है। इस दशहरे में देवी देवताओं की शोभायात्रा तब तक आरंभ नहीं होती, जब तक इस शोभायात्रा के नेतृत्व के लिए हिडिंबा देवी का रथ सबसे पहले और आगे नहीं निकाला जाता। उल्लेखनीय है कि मनाली क्षेत्र का हिडिंबा संबंधी यह आख्यान 'भीलों के भारथ' के हिडिंबा प्रसंग से मिलता जुलता है। 'भीलों के भारथ' में भी हिडिंबा भीम से मार्ग का दान देने की मांग करती है।

लोक परंपरा के विभिन्न महाभारत और मनाली में प्रचलित हिडिंबा संबंधी कथा में हिडिंबा का चरित या तो एक युवती के रूप में या एक देवी के रूप में मिलता है। जबकि संस्कृत महाभारत और पांडव चरित में कुछ अंतर के बावजूद हिडिंबा का उल्लेख एक राक्षसी के रूप में किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मुख्यधारा का समाज, मुख्यधारा से बाहर पड़ने वाले समुदायों के आत्मसातीकरण के दौरान उनकी एक नकारात्मक छवि गढ़ता है। राक्षस, दानव, दैत्य, असुर आदि समुदायों की नकारात्मक छवि के बारे में हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं "पुराने जमाने में आर्य लोगों को अनेक जातियों से निपटना पड़ा था। जो गर्वीली थीं, हार मानने को प्रस्तुत नहीं थीं, परवर्ती साहित्य में उनका स्मरण घृणा के साथ किया गया और जो सहज ही मित्र बन गईं उनके प्रति अवज्ञा और उपेक्षा का भाव नहीं रहा। असुर, राक्षस, दानव और दैत्य पहली श्रेणी में तथा यक्ष, गंधर्व, किन्नर, सिद्ध, विद्याधर, वानर, भालू आदि दूसरी श्रेणी में आते हैं।" (2008 : 12 13)।

वासुदेवशरण अग्रवाल ने राक्षस शब्द की उत्पत्ति के विषय में लिखा है— "रामायण के अनुसार प्रजापति ने जल का निर्माण किया। (आप्तः सलिल संभवाः)। उनकी रक्षा के लिए कुछ सत्वों का निर्माण किया गया। उन्होंने ब्रह्मा से पूछा 'हम क्या करें? ब्रह्मा ने कहा 'रक्षध्वम्'। उत्तर में कुछ ने कहा 'यक्षामः'। 'रक्षामः' कहने वाले राक्षस हुए और 'यक्षामः' कहने वाले यक्ष।" (2012 : 503)

हिंदी क्षेत्र में रामायण पर आधारित कई श्रेष्ठ रचनाएं लिखी गईं। लेकिन कोई ऐसा महाभारत नहीं लिखा गया जिसे साहित्यिक और वैचारिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रचना कहा जा सके। यह दिलचस्प है कि अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में महाभारत पर आधारित श्रेष्ठ रचनाएं लिखी गईं। हिंदी क्षेत्र में जो भी उल्लेखनीय महाभारत मिलते हैं, उनमें से ज्यादातर का संबंध वाचिक परंपरा से रहा है। इन्हें या तो गाया जाता था या इनका पाठ किया जाता था। चाहे 'पंडून कौ कड़' हो, चाहे 'भीलो का भारथ' हो, चाहे 'राजस्थानी लोक महाभारत' ही क्यों न हो, ये सभी लोक महाकाव्य हैं। कालांतर में किसी व्यक्ति ने सुनकर उन्हें लिपिबद्ध किया। इन महाभारतों की

समृद्धि का बुनियादी आधार इनकी कथात्मक भिन्नता है। कथात्मक नवोन्मेष ही इन्हें महत्त्वपूर्ण बनाता है। खोजने पर इनमें कवित्व भी मिल जाएगा, लेकिन इनका अध्ययन कवित्व की दृष्टि से करने पर वो चीज हाथ नहीं लगेगी जो इन महाकाव्यों की समृद्धि का मूल आधार है। जैसा कि इस लेख में पहले भी कहा जा चुका है, आधुनिक युग में हिंदी साहित्य का अध्ययन प्रायः कविता को केंद्र में रखकर किया गया है। यहां तक कि आरंभिक आधुनिककालीन प्रबंध काव्यों में सिर्फ कवित्व खोजा जाता रहा, जबकि इन प्रबंध/महाकाव्यों में कवित्व आख्यान में अंतर्निहित है। जरूरत इस बात की थी कि कवित्व के साथ साथ आख्यान कला का भी सम्यक् अध्ययन किया जाता। लोक महाकाव्यों का अध्ययन तो आख्यान कला और वैचारिक भिन्नता को दरकिनार कर किया ही नहीं जा सकता।

(5)

जिसे शेल्डन पोलक ने भारत का 'वर्नाकुलर मिलेनियम' कहा है, उस वर्नाकुलर मिलेनियम में संस्कृत ग्रंथों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद नहीं किया जाता, बल्कि संस्कृत ग्रंथों के सहारे नये ग्रंथ लिख लिए जाते हैं। इस प्रसंग में ए.के. रामानुजन के विचार महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने ओरियंटलिस्ट विद्वानों द्वारा गढ़ी गई इस परिकल्पना को अस्वीकार किया कि महाभारत और रामायण का कोई केंद्रीय और मौलिक स्वरूप है; और इस परंपरा में आने वाली परवर्ती रचनाएं मूल महाभारत और रामायण का रूपांतरण हैं। धारवाड़कर ने रामानुजन को उद्धृत करते हुए लिखा है इस विविधता में महाकाव्य का एक स्वतंत्र (निर्धारित) रचना के रूप में वजूद शेष नहीं रह जाता बल्कि वह एक विधा या परंपरा का रूप ले लेता है, जहां रचना वृक्ष के किसी एक या अन्य रूप के इर्दगिर्द अनुवादों की एक शृंखला निर्मित होती है। इनमें से कोई भी रचना मौलिक नहीं है। कोई भी कथा किसी पूर्व कथा की यथावत प्रस्तुति नहीं है। इसकी कहानी कहीं समाप्त नहीं होती, भले ही रचना में ऐसा प्रतीत हो कि कहानी पूरी हो गई। केंद्रोन्मुखी रामायण और महाभारत ग्रंथ दो परस्पर विरोधी दिशाओं में संचरण करते हैं। एक केंद्रापसारी दिशा है और दूसरी केंद्रोन्मुखी। केंद्रापसारी दिशा में आमूलचूल बदलाव के कारण फैलाव और बिखराव बहुत ज्यादा है जो उसे किसी निर्धारित और विमर्शात्मक सत्व से दूर ले जाता है। इसके संचरण की दूसरी दिशा केंद्राभिमुखी है। केंद्राभिमुखी दिशा में संवृद्धि एक संरचनात्मक केंद्र के इर्दगिर्द संचयी पुनरावृत्ति के द्वारा अर्जित की जाती है। (1999 : 128) इसलिए महाभारत और देश भाषाओं में इनके रूपांतरण की प्रक्रिया को मूल और अनुवाद के रूप में देखना उचित नहीं है। महाभारत को एक ग्रंथ के रूप में नहीं बल्कि अनवरत विकसनशील परंपरा के रूप में देखना चाहिए।

इसके बजाय इस प्रक्रिया को इंटरटेक्सट्युएलिटी की अवधारणा के सहारे बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। परवर्ती आधुनिक भारतीय भाषाओं में लिखे गए महाभारतों के वैशिष्ट्य का उल्लेख करते हुए रामानुजन लिखते हैं कि आधुनिक भारतीय भाषाओं में लिखे गए ये ग्रंथ स्फटिक की तरह हैं। ये वास्तव में नये ग्रंथ हैं। इनकी बनावट विलक्षण है और इनका संदर्भ नया है। (1999 : 128) परवर्ती महाभारत आधारित ग्रंथों की विलक्षणता को स्पष्ट करते हुए रामानुजन आगे लिखते हैं कि हम कंबन को पढ़ने के लिए कंबन को पढ़ते हैं, और हम उसका मूल्यांकन उसी की शर्तों पर करते हैं न कि इस आधार पर कि वो बाल्मीकि रामायण से कितनी मिलती जुलती है। असल में हम ये देखते हैं कि कंबन की रामायण किस सीमा तक बाल्मीकि रामायण से भिन्न है। (1999 : 157)

भारत में प्राचीन ग्रंथों से प्रेरणा प्राप्त कर नये ग्रंथ रचने की परंपरा बहुत पुरानी है। पुराने

ग्रंथों को स्रोत ग्रंथ कहा जाता था। जब लोकभाषाओं में ग्रंथ लिखे जाने लगे, तब भी यह परंपरा चलती रही। पुराने ग्रंथों का अनुवाद करने के बजाय उनसे प्रेरणा लेते हुए नये ग्रंथ लिखे जाते रहे। इसीलिए भारत में एक नहीं अनेक महाभारत और रामायण की परंपरा मिलती है। ये महाभारत और रामायण सिर्फ साहित्यिक परंपरा में ही नहीं, बल्कि लोक परंपरा में भी मौजूद हैं। शैलडन पोलक ने सही लक्ष्य किया है कि लोकभाषीकरण के दौरान इस तरह के ग्रंथ प्रायः सभी क्षेत्रों में लिखे गए। ये ग्रंथ पुराने ग्रंथों के अनुवाद नहीं थे। वास्तव में अलग अलग क्षेत्रों में इन ग्रंथों की भूमिका कथित मूलग्रंथों से भी ज्यादा महत्वपूर्ण साबित हुई, जैसे महाराष्ट्र में संत ज्ञानेश्वर की ज्ञानेश्वरी और हिंदीक्षेत्र में तुलसीदास का रामचरितमानस। इन ग्रंथों की ऐसी प्रतिष्ठा हुई कि इनके सामने संस्कृत ग्रंथों की चमक फीकी पड़ गई। इनमें वर्णित स्थल नये तीर्थस्थल के रूप में विख्यात हो गए। जैसे महाराष्ट्र में पंडरपुर और हिंदी क्षेत्र में मथुरा, वृंदावन, अयोध्या, काशी, प्रयाग। इसका परिणाम ये हुआ कि कुछ देवताओं का महत्व कम हो गया और कुछ नये देवताओं की हैसियत बढ़ गई। यही नहीं, कुछ नये व्यक्तित्वों ने देवत्व जैसी प्रतिष्ठा पा ली। कहने की जरूरत नहीं कि इन नई प्रवृत्तियों के उभार के साथ एक नये ढंग का सांस्कृतिक धार्मिक रूपांतरण संभव हुआ। इस समूची प्रक्रिया को अनुवाद की अवधारणा के सहारे व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। अंग्रेजी शब्द ट्रांसलेशन के अनुवाद के रूप में, अनुवाद शब्द के चलन का उन्नीसवीं सदी के पहले कोई साक्ष्य नहीं मिलता। इसलिए जैसा कि पहले कहा गया कि अनुवाद के बजाय इंटरटेक्सच्युएलटी की अवधारणा के सहारे लोकभाषाओं में संस्कृत ग्रंथों के रूपांतरण की प्रक्रिया को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।

महाभारत संबंधी लोक महाकाव्यों के अध्ययन से ये बात स्पष्ट हो जाती है कि लोक महाभारत की परंपरा संस्कृत महाभारत के समानांतर स्वतंत्र रूप से चलती है। हिल्ट बीटल ने लिखा है कि 'दक्षिण एशिया में महाभारत की एक वाचिक अदृश्य लोक परंपरा थी, जो संस्कृत महाभारत के समानांतर और उससे स्वतंत्र रूप से चलती है।' (1999) अगर हिल्ट बीटल की बात सही है तो फिर संस्कृत महाभारत और गैर संस्कृत महाभारत की परंपराओं को स्वीकार करना पड़ेगा। संस्कृत महाभारत में सार्वभौमिकता पर जोर है, जबकि लोक महाभारतों में स्थानीयता महत्वपूर्ण है। लोक महाभारतों की व्याख्या सबाल्टन की वैचारिकी के सहारे ज्यादा अच्छे ढंग से की जा सकती है। इन लोक महाभारतों की स्थानीय दृष्टि नवीन अंतर्दृष्टियों को उद्घाटित करती है। लोक महाकाव्यों का संबंध प्रायः एक ऐसी प्रतिसंस्कृति से बनता है, जिसकी मूल्यदृष्टि और आस्थाएं मुख्यधारा के समाज से काफी भिन्न हैं। लोक परंपरा के इन महाभारतों का संबंध प्रायः आदिवासी, दलित और हाशिए के समाजों से रहा है। इसलिए इनकी व्याख्या सिर्फ संस्कृत परंपरा के सहारे नहीं की जा सकती। वस्तुतः शास्त्रीय परंपरा के महाभारतों एवं लोक परंपरा के महाभारतों के बीच कोई सीधा संबंध खोजना व्यर्थ है। ये संबंध ज्यादा जटिल और अप्रत्यक्ष रहा है।

कोमल कोठारी के अनुसार संस्कृत महाभारत और लोक परंपरा के महाभारतों के बीच समानता से अधिक भिन्नता के तत्त्व दिखाई देते हैं। लोक महाभारत ऐसी विश्वास प्रणालियों और सामूहिक अस्मिताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनका संबंध प्रायः निम्न जातियों से रहा है। इसलिए लोकमहाकाव्यों का उत्स संस्कृत महाभारत में खोजना उचित नहीं प्रतीत होता। (1989 : 115, 117-119)

'पांडवचरित' का संबंध किसी आदिवासी दलित या हाशिए के समाज से नहीं है। विष्णुदास ने पांडवचरित तोमर वंश के दरबार में रहते हुए लिखा था। राजा झंगरेन्द्र सिंह तोमर ने मुबारक शाह को पराजित करने के बाद विष्णुदास से महाभारत लिखने का आग्रह किया था। असल में

तैमूर के आक्रमण के फलस्वरूप सल्तनत का साम्राज्य बिखर गया। इस बिखराव के कारण स्थानीय सत्ताओं को अपना शासन कायम करने का अवकाश मिल गया। 'पांडव चरित' के लिखे जाने की व्याख्या इस ऐतिहासिक संदर्भ में की जा सकती है। वास्तव में ये सभी महाभारत अपनी स्थानीय और सामयिक आवश्यकता के अनुरूप महाभारत को नये सिरे से गढ़ते हैं। लोक परंपरा के वाचिक महाभारत अक्सर एक ऐसी क्षेत्रीय प्रति संस्कृति रचते हैं जो प्रायः वर्ण व्यवस्था और साम्राज्य विरोधी प्रतीत है।

## संदर्भ

1. कल्याण कुमार चक्रवर्ती (2009) : 'टेक्स्ट ऐंड वैरियेशन ऑफ द महाभारत' मुंशी राम मनोहर लाल, दिल्ली।
2. भगवान दास पटेल (संकलनकर्ता) (2000) : 'भीलों का भारत', साहित्य अकादमी (आदिवासी भाषा साहित्य प्रकाश्य), नई दिल्ली, 110001।
3. अनिल जोशी (1992) : 'पंडून कौ कड़ा', कैलाश प्रकाशन, महावीर मार्ग, अलवर, राजस्थान।
4. मूलचंद 'प्राणेश' (2000) : 'राजस्थानी लोक महाभारत', भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर, राजस्थान।
5. 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' (1964) : भाग 2, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. 2021 वि.।
6. एच. स्टूअर्ट ब्लैकबर्न इत्यादि (1989) : 'ओरल एपिक इन इंडिया', द यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया।
7. सबल सिंह चौहान : 'महाभारत', दुर्गा पुस्तक भंडार, इलाहाबाद।
8. विनय धारवडकर (1999) : 'द कलेक्टेड एसेज ऑफ ए. के. रामानुजन', आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली।
9. हरिहर निवास द्विवेदी (1973) : 'पांडवचरित', ग्वालियर विद्या मंदिर प्रकाशन।
10. हजारी प्रसाद द्विवेदी (2015) : 'हिंदी साहित्य की भूमिका', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. (2008) : 'अशोक के फूल', राजकमल प्रकाशन, न्यू दिल्ली।
12. (2008) : 'सूर साहित्य', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
13. ज्यायस बर्काल्टर फ्ल्यूस कीगर (1996) : 'जेंडर ऐंड जेनर इन द फोलकोर ऑफ मिडिल इंडिया, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।
14. अल्फ हील्ट बीटेल (1999) : 'इंडियाज ओरल एंड क्लासिकल ऐपिक्स', यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो।
15. वासुदेव शरण अग्रवाल (2012) : 'रचना संचयन', साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।
16. शैल मायाराम (2009) : टेक्स्ट ऐंड वैरियेशन ऑफ महाभारत, कल्याण कुमार चक्रवर्ती की पुस्तक में संकलित लेख 'एपिक ऐंड इमेजिनेशन डिस्कंटीन्यूटीज।'
17. शैल मायाराम : 'म्योज ऑफ मेवात', मानुषी अंक 103 में प्रकाशित।
18. निरंजन महावर (2014) : 'पंडवानी', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
19. शेल्डन पोलक (1998) : 'इंडिया इन वर्नाकुलर मिलेनियम, डेडलस, 127
20. स्टूअर्ट ब्लैकबर्न, इत्यादि : 'ओरल ऐपिक्स ऑफ इंडिया', युनिवर्सिटी कैलीफोर्निया प्रेस, बर्कले।
21. कोमल कोठारी (1989) : 'ओरल ऐपिक्स इन इंडिया', संपा। स्टूअर्ट एच. ब्लैकबर्न इत्यादि में संकलित लेख परफामर्स, गॉड्स, एंड हीरोज इन द ओरल ऐपिक्स ऑफ राजस्थान।

## धनु

### प्रचंड प्रवीर

पेशे से इंजीनियर प्रचंड प्रवीर को 'बहुमुखी प्रतिभा' नहीं तो क्या कहा जाए; सिनेमा, कहानी, उपन्यास, दर्शन जैसे अनेक क्षेत्र उनकी रचनात्मकता के दायरे में आते हैं। किशोर और युवा समय के बीच का जीवन यथार्थ उनके कथा लेखन का केंद्र है। उपन्यास 'अल्पाहारी गृहत्यागी' और सिनेमा पर उनकी किताब 'अभिनव सिनेमा' चर्चित है।

*तत्रागारं धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीयं दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन।*

उत्तरमेघ, मेघदूत, कालिदास

(उस अलका में कुबेर के भवन से उत्तर की ओर मेरा घर है, जो सुरपति के धनु के समान चारु तोरण से दूर से पहचाना जाता है।)

### मूल : पहला चरण

*रहे न रहे हम महका करेंगे, बन के कली, बन के सबा, बाग ए वफा में*

मुंहअंधेरे उठकर उदय नहा धोकर आंगन की तुलसी के साथ घर के दरवाजे के पास लगाए फूलों के पौधों में नियमित पानी डाला करता था। इसके बाद शुरू होती थी उसके सारे दिन की मारामारी। साढ़े पांच बजे छह बजे तक चौक बाजार पहुंचकर अखबार उठाना। फिर साइकिल से छोटे बड़े घरों में एक एक करके अखबार डालना। उसके बाद घर आकर झटपट तैयार होकर स्कूल जाना। दिन भर के स्कूल के बाद शाम में सेवासदन पुस्तकालय जाना। अंधेरा होने से पहले वापस घर आकर रोजमर्रा का सामान ले आना, घर के कामकाज में अम्मा का थोड़ा बहुत हाथ बंटाना।



आठवीं कक्षा में पढ़ रहा उदय पढ़ने लिखने में बहुत होशियार था, ऐसा लोग कहा करते थे। वजह ये थी कि इतने संघर्ष के बाद भी सालाना इम्तिहान में वह हमेशा दूसरे तीसरे स्थान पर रहता था। लेकिन उदय इससे बहुत प्रसन्न नहीं था। नेतरहाट विद्यालय के छठी के दाखिले के इम्तिहान में उसका चयन नहीं हुआ था। जबकि उसके साथ पढ़ने वाले सव्यसाची इम्तिहान और साक्षात्कार दोनों में सफल होकर अब नेतरहाट में पढ़ रहा था। उदय के शब्दों में दोनों में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा थी। लेकिन जब उसका दोस्त ही साथ नहीं रहा, तो संदलपुर में वह किससे मुकाबला करे? विद्यालय में पहला स्थान भी मिल जाए तो कौन सी बड़ी बात हो जाएगी?

कुछ साल पहले उदय के पिताजी ऐसे ही एक दिन मुंहअंधेरे उठकर घर छोड़कर चले गए थे। दादा दादी, चाचा चाची, मां और बहुत से लोग ने उन्हें ढूंढने की बहुत कोशिश की लेकिन कोई फायदा न हुआ। कभी कोई खबर दे जाता कि किसी ने उन्हें हरिद्वार में देखा है। चार लोग उठकर हरिद्वार चले जाते और पंद्रह दिन बाद खाली हाथ लौटते। कभी सूचना मिलती कि बनारस में मुलाकात हुई, घर वालों की खैरियत पूछी और घर वापस लौटने से इंकार कर दिया। महीना दिन तक काशी की गलियों में खोजाहट होती रही, लेकिन खरगोश की सींग की तरह उदय के पिताजी का वहां कोई पता न चला। दादा की छोटी सी किराने की दुकान थी। चाचा बैंक में चपरासी थे। कम उम्र से ही उदय दादा के साथ दुकान पर बैठा करता। बिना बाप का बेटा जैसे बड़ा होता है, उसी तरह कम खा कर, कम में गुजारा करते हुए, सस्ते पुराने कपड़े पहनने वाला उदय बेहद दुबला पतला और कमजोर हुआ। सहपाठियों के बीच उसकी कमजोरी और फटी कमीज का मजाक उड़ता रहता, जिसे वह नजरअंदाज कर दिया करता क्योंकि हाथी जब बाजार में चलता है, आवारा कुत्ते भौंकते ही हैं। एक दिन स्कूल में बातों बातों में समझ आया कि इस मनहूस गरीबी से निकलना है और दुनिया में कुछ इज्जत का काम करना है तो पढ़ाई लिखाई ही एकमात्र जरिया है जिससे कुछ किया जा सकता है। इसलिए जब बाट तौले का हिसाब करना ठीक से आ गया, उसी दिन उदय ने तय किया कि किराने का काम छोड़कर अब वह पढ़ाई लिखाई से जुड़ा काम करेगा। इसलिए उसने पहले अखबार बांटने का काम पकड़ा। और साथ ही संदलपुर के सरकारी पुस्तकालय 'सेवासदन' की सदस्यता ले ली।

उदय को अंग्रेजी ठीक से नहीं आती थी। पर सीखने के लिए वह रोज अंग्रेजी अखबार और अंग्रेजी हिंदी शब्दकोश लेकर बैठा करता। आद्योपांत एक हिंदी अखबार पूरा पढ़ना और अंग्रेजी अखबार के बीच का पन्ना पूरा पढ़ना, ये दो उसके नियम थे। इन नियमों के पीछे उसकी महत्वाकांक्षाएं थीं। इसके अलावा उदय को फूलों से बहुत प्यार था। इस शौक का अजीब कारण था। गंगा के पास बसा उसका मोहल्ला 'मौलश्री तल्ले' के नाम से मशहूर था। अब मौलश्री का पेड़ तो वहां था नहीं, कहते हैं कि सौ साल पहले उस इलाके में केवल मौलश्री के फूल महका करते थे। पूरा इलाका फूलों का बाग था। उदय ने सोचा था कि अगर वह बड़ा आदमी बना तो फिर से पूरे इलाके को वह फिर से फूलों के पौधों से सजा देगा। हर घर खरीद लिया जाएगा। अगर खरीदा नहीं जाएगा, और अगर वह कलक्टर बना तो हुक्म जारी करेगा कि इस इलाके के हर घर में फूल के पौधे होने चाहिए। सड़क के किनारे कनेर के पेड़ होंगे या गुलमोहर के। हर रास्ते के किनारे गेंदा और जूही के पौधे लगवाये जाएंगे। पौधों के चारों तरफ बाड़ लगवाया जाएगा ताकि आवारा बकरी, घूमती गाय या भैंस उसको खा न जाएं। इसी सिलसिले में उसने अपने घर के आंगन में हरसिंगार का पेड़ लगा रखा था। साथ ही डहेलिया के चार पौधों में रोज पानी डाला जाता था। अगर मोहल्ला फूलों से सजा सुंदर दिखता तो क्या उसके पिताजी शहर को छोड़कर कहीं जा पाते?

यहां तरह तरह के फूल के पेड़ लगते ही जाते, उनकी मालाएं भी बनतीं, यहां तक कि संदलपुर पूरे बिहार का सबसे बड़ा फूल उत्पादक जिला बन जाता, गेहूं की जगह गुलाब की खेती चालू हो जाती अगर उस दिन सेवासदन पुस्तकालय में उदयशंकर ने 'महान वैज्ञानिकों का बचपन' नाम की पुस्तक न उठा ली होती। उस दिन शाम के चार बजे थे। स्कूल से छुट्टी होने के ठीक बाद उदय 'सेवासदन' पहुंच गया था। अंग्रेजी का अखबार पलटने के क्रम में उसने राशिफल पर नजर डाली। यह गौर किया गया कि सूर्य अब धनु राशि में प्रवेश कर चुके हैं। उसके ठीक बाद यूं ही किताबों की अलमारियां टटोलते उसकी नजर 'महान वैज्ञानिकों का बचपन' नाम की किताब पर पड़ी।

न जाने उस सस्ती किताब के बैंगनी आवरण पर बने वैज्ञानिकों के रेखाचित्रों में कौन सा आकर्षण था कि किताब ईशु कराने के बाद अगले तीन दिन तक उदय उसे बार बार देखता और पन्ने पलट पलटकर पढ़ता रहता। इन दिनों उसने डहेलिया के पौधों की सुध भी लेना ठीक न समझा। जब उसकी अम्मा ने उसे याद दिलाया तब लाल इमली का भूरा शाल ओढ़े उदय ने संजीदगी से जवाब दिया, "सर्दी का मौसम है। पौधों को भी ठंड लग रही होगी। ठंडा पानी देना ठीक नहीं होगा। जगदीश बसु ने दुनिया को दिखा दिया था कि पौधों में भी जान होती है। जानती हो अम्मा, दुनिया में हर पढ़ा लिखा इंसान जगदीश बसु को जानता है।"

बाहर आकर डहेलिया के पौधों को देखते हुए उदय गुनगुनाया, 'रहे न रहे हम, महका करेंगे, बन के कली, बन के सबा, बाग ए वफा में'।

## दूसरा चरण

*ठंडी हवा ये चांदनी सुहानी, ऐ मेरे दिल सुना कोई कहानी*

सत्या को रात में उठने की कभी ऐसी आदत न थी लेकिन उस सर्दी की रात न जाने क्या हुआ कि अचानक उसकी नींद खुल गई। बाल्कनी में चांदनी छिटक रही थी। सत्या घर के पहले मंजिले पर कोने वाले कमरे में रहता था। घर में सभी लोग सो रहे होंगे, इसका खयाल करके सत्या धीरे से बाल्कनी में खड़ा होकर चांद को देखने लगा। कृष्णपक्ष का चांद पूरब में चढ़ा ही था। नींद नहीं आने के कारण सत्या ने सोचा कि चुपके से छत पर जाकर अच्छे से चांद को देखा जाए। घर में किसी की नींद न खुले, इसका ध्यान रखना होगा। दबे पांव सत्या जब कमरे से बाहर आया, सामने बिल्ली दिखी जो सत्या को भांपकर झट से भागी। सत्या चुपचाप सीढ़ियों से ऊपर जा पहुंचा और धीरे से किवाड़ खोलकर छत पर आ गया। अब हल्की ठंड हो चुकी थी। पतले स्वेटर और शॉल से काम नहीं चल रहा था। सत्या ने देखा कि ओरायन तारामंडल बहुत ऊपर चढ़कर सर पर आ चुका था। ओरायन उगते हुए देखना उसे उतना ही खुश करता जितना पूर्णिमा के दिन चंद्रोदय देखना। कृष्ण पक्ष का पीला, आधा कटे पपीते के रंग में रंगा चांद सामने ताड़ के पेड़ों के झुरमुट से निकलकर ऊपर आ गया था। सामने अहाते में से रातरानी की खुशबू के झोंके ने उसे गुदगुदा दिया।

छठी कक्षा में आने के बाद सत्या अजब सी उलझन में पड़ गया था। अब तक उसकी जिंदगी बड़ी मजेदार थी। पिताजी के साथ छोटी सी बगिया में मालती, रातरानी, चमेली और पांच किस्म के गेंदा के फूल लगाना, सूरजमुखी के फूल पर कभी आ बैठे तोते को देखना, दिन में रंगबिरंगी तितलियों को गिनना यही उसके काम धंधे थे। इसके अलावा उसने सभी पौधों में पानी जाने के

लिए छोटी नहरें भी बनाई थीं। बगीचे के चापाकल से निकला पानी पहले गेंदा के पौधे में जाएगा, फिर मालती और फिर रातरानी, इस तरह। पढ़ाई में वह किसी तरह पास हो जाया करता। स्कूल में सब कुछ बोर जान पड़ता। इसके अलावा उसे पढ़ाई से इसलिए भी चिढ़ होती कि उससे उसके अंदर जलन भर आती। कोई पढ़ाई में अव्वल आए, यह उसे नहीं सुहाता। कोई दौड़ में सबसे आगे निकलकर ट्रॉफी जीते, उससे सत्या को कोई मतलब नहीं होता। कहीं कोई चित्र बना ले, कोई गणित में शाबासी पाए, यह सब देखकर सत्या को ठीक नहीं लगता। सत्या यह भी समझता था कि ऐसे जलना ठीक बात नहीं है। इसलिए वह यह सोचकर दिलासा देता कि बचपन में पढ़ाई में समय देना बेवकूफी है। उसने अखबार में एक सर्वेक्षण में पढ़ा था कि अधिकतर सफल लोग स्कूल में पढ़ाई में साधारण या बेकार थे। अतः सत्या कुछ भी करता जो उसे सुहाता।

सत्या को ध्यान आया कि उसका बड़ा भाई सव्यसाची कुछ दिन बाद सर्दी की छुट्टियों में घर आने वाला है। इस बार वह रात में जगकर भाई का स्वागत करेगा। इस बार बहुत सी बातें बतानी हैं। जैसे कि उसने भी चित्र बनाना शुरू किया है और तस्वीरों में वाटर कलर से रंग भरना शुरू किया है। यह बात आगे की है कि वह सव्यसाची से भी आगे निकल जाएगा और महान पेंटर कहलाएगा। यह बात बताने की नहीं है, बल्कि समय की नाव पर छोड़ देने के लिए है। इस कश्ती को मंजिल तक अपना सफर खुद ही पूरा करना होगा।

छठी में आने के बाद दो चीजें और हुईं। एक तो हाई स्कूल में आ जाने के बाद उसने स्कूल के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में ध्यान देना शुरू किया। दूसरा उसकी दोस्त झुनकी इस स्कूल को छोड़कर गर्ल्स स्कूल में चली गई। अब झुनकी के बारे में कुछ भी पक्का सा नहीं था। कहा जाय तो झुनकी उसकी दोस्त थी क्योंकि पूरे क्लास में वह लड़कों में केवल उसी से बात करती थी। शायद इतनी अच्छी दोस्त भी नहीं थी क्योंकि जाते वक्त उसने अलग से बात भी नहीं की। जब उसने यह खबर सुनी कि झुनकी दूसरे स्कूल में नाम लिखाने जा रही है, तब वह थोड़ा दुखी हुआ। पर जब झुनकी उससे बिना बात किए चली गई, उसे बहुत बुरा लगा। वैसे उसकी और भी दोस्त थीं, पर सत्या यह चाहता था कि दोस्ती बहुत दिनों तक चले। महीनों तक, सालों तक...ऐसी दोस्ती कि दोस्त को सब पता हो कि किस क्लास में कैसे नंबर आए, कब वह कहां घूमने गया। चूंकि उसका दिल बहुत बड़ा था उसने झुनकी की गलती को माफ कर दिया। शायद झिझक से नहीं बताया होगा या मौका नहीं मिला होगा।

सत्या ने छत से नीचे उड़हुल के पेड़ को देखा। इसमें सुबह फूल खिल जाएंगे, उसने सोचा। समय पर सारे काम होते हैं। क्यों नहीं झुनकी को एक पोस्टकार्ड लिखकर अपनी नाराजगी जताई जाय। शिष्टाचार तो यही कहता है कि मित्र को चिट्ठी का जवाब देना चाहिए। बातचीत करते रहने से ही दोस्ती बनी रहती है। झुनकी लाल दरवाजा में रहती है। उसके पिताजी कॉलेज में केमेस्ट्री के प्रोफेसर हैं। भव्या को उसका पता मालूम होगा। वह छोटी केलाबाड़ी में रहती है और झुनकी की दोस्त भी है। उससे पता पूछकर झुनकी को पोस्टकार्ड लिखा जाएगा। पता नहीं अब कब मिलना हो। जवाब नहीं भी आया तो कोई बात नहीं।

ऐसे सोचता सत्या छत पर एक दो घंटे इधर उधर टहलता रहा। ठंडी हवा ये चांदनी सुहानी गाना गुनगुनाता रहा। सोचता रहा कि अगर इस रात में 'बेलन बाजार' मोहल्ले से उठकर पास गंगा के घाट पर जाकर बहती नदी में चांद की हिलती परछाई देखता तो कैसा लगता।

सुबह उठने पर उसका बदन बुखार से तड़प रहा था। अगले दो दिन तक वह बिस्तर पर पड़ा दवाई लेता रहा।

सव्यसाची के आने का दिन आ गया। ठीक होने की जल्दी में उस दिन सत्या किसी तरह

स्कूल भी हो आया। शाम में सत्या ने मां से ज़िद की वह रात को जगकर सव्यसाची का स्वागत करेगा। पर रात के खाने के बाद दवाईयां लेते ही उसे ऐसी भयंकर नींद आई कि वह साढ़े आठ बजे ही नरम गरम रजाई में जा घुसा।

## तीसरा चरण

*याद किया दिल ने कहां हो तुम, झूमती बहार है कहां हो तुम*

सव्यसाची के पिताजी ने सुबह सुबह पुराने टेपरिकार्डर पर 'पतिता' फिल्म का गीत 'याद किया दिल ने कहां हो तुम' चला दिया। जिसकी आवाज से सोये हुए सव्यसाची की आंख खुली और उसने तेज आवाज में सत्या को आवाज लगाई, "सत्या, गाना का वॉल्यूम कम करो।" सत्या सुबह उठकर भाई के उठने का इंतजार कर रहा था। इस तरह सव्यसाची का डांटकर बोलना उसे पसंद नहीं आया। सो आवाज मद्धिम करने के बाद वह सव्यसाची के पास आकर बोला, "रात में पापा और तुम कब आए? हम सो गए थे।"

सव्यसाची ने आंखें बंद किए हुए ही कहा, "अढ़ाई बजे आ गए थे। सुने कि तुमको बुखार है।"

"था, अब उतर गया है। कल तो हम स्कूल भी गए थे। हम अब नहाने जा रहे हैं।" सत्या ने कहा और वहीं इस आशा में खड़ा रहा कि सव्यसाची उठकर कुछ बात करेगा। लेकिन जब दो घड़ी तक सव्यसाची बिस्तर में हिला भी नहीं तब वह चुपचाप रूम से निकल आया।

नीचे रसोई में मां पिताजी से सफर के बारे में और सव्यसाची के स्कूल के बारे में पूछ रही थी। पिताजी बता रहे थे कि नेतरहाट तक पहुंचने का रास्ता बहुत खूबसूरत है। पहाड़ियां हैं। रास्ते में कैक्टस की झाड़ियों में फूल लगे रहते हैं। तरह तरह के पेड़ पौधों की तीखी सुगंध से वातावरण सुवासित रहता है। आवासीय विद्यालय में पलाश, गुलमोहर और बोगनवेलिया के पेड़ लगे हैं। शीशम, सागवान, अशोक और यूकैलिप्टस के पेड़ भी हैं। सत्या इन सबको अनसुना करता नहाने चला गया।

सव्यसाची की नींद खुल चुकी थी। वह नाराजगी से सीढ़ियां उतरकर नीचे आ गया। उसने मां पिताजी की बातचीत में खलल डालकर कहा, "आप खुद रात भर नहीं सोये और सुबह से उठ गए हैं। क्या जरूरत थी आपको गाना चलाने की?"

पिताजी मुस्कराकर बोले, "आदमी को इंसान बनने के लिए खूब सवेरे उठना चाहिए। चलो, तुम भी नहा धो लो। फिर नाश्ता करके सो जाना। छुट्टी का दिन है, आराम करना।" आटा सानती मां ने बताया, "उठो तुम। तुम्हारा दोस्त उदय दो बार पूछकर गया है कि कब आ रहे हो। 'मौलश्री तल्ले' से इधर दो बार आ चुका है। हम बताए हैं कि आज आने वाले हो। देखना दोपहर होते होते वह आ धमकेगा। गजब लड़का है। दुकान पर बैठेगा, अखबार बाटेगा और पढ़ने में भी अच्छा है। अच्छा हम तुम्हारे लिए पिट्टा बनाए हैं। मुंह धो लो तो देते हैं।"

सव्यसाची ने रोष से कहा, "हमको पिट्टा नहीं पसंद है।" उसके नखरे सुन के मां मुस्करा दी। दोपहर के खाने के बाद बगीचे में बैठा सव्यसाची सत्या से बातें कर ही रहा था कि साइकिल चलाता उदय आ पहुंचा। साइकिल खड़ी करके उदय सव्यसाची के पास आकर बैठ गया, "अरे सत्या, तुम भी चित्र बनाने लगे?" उदय के इस तरह पूछने से सत्या झोंप गया और उसने सव्यसाची से कहा, "मां बहुत दिनों से डाकघर से लिफाफा और अंतर्देशीय लाने को कह रही है। हम जाकर

ले आते हैं। तुम लोग बात करो।”

सब्यसाची बोला, “अभी कहां जाओगे? बैठो, बाद में ले आना।”

“नहीं, हम अभी जाएंगे। बाद में जाना है तो फिर तुम्हीं लाना। हम नहीं जाएंगे फिर।” सत्या ने तुनककर जवाब दिया तो सब्यसाची ने हारकर कहा, “हम तो बस इसलिए बोले कि उदय आया था तुम भी बात करते।”

सत्या घर के अंदर जाते हुए बोला, “हम आ रहे हैं आधा घंटा में।” मां से पैसे लेकर सत्या झट से बाहर निकल गया।

सब्यसाची अंदर से उदय के लिए प्लेट में पिट्ठा लेकर आया और बोला, “बहुत अच्छा पिट्ठा है। लो खाओ।” उदय को नमकीन पिट्ठा बहुत पसंद आया। सब्यसाची ने पूछा, “कैसा चल रहा है यहां सब कुछ? सुने हैं कि टाउन स्कूल में तुम ही टॉप कर रहे हो।”

“अंधों में काना राजा।” उदय ने फीकी हंसी हंसकर कहा, “वैसे हम क्लास में तीसरा चौथा ही आते हैं। यहां टॉप करके भी क्या करेंगे। तुमसे होड़ लगाने में मजा भी था। बाकी यहां किसी को कुछ आता नहीं है। टीचर के यहां जाकर ट्यूशन पढ़ता है और मंगनी का नंबर लाता है। इसमें कोई टॉप भी करे तो राम जी उसका भला करें। हम आजकल सेवासदन पुस्तकालय की सदस्यता ले लिए हैं। वहां से खूब किताब लाकर पढ़ रहे हैं।”

“कौन कौन सा किताब पढ़े?”

“अलिफ लैला, चंद्रकांता, चंद्रकांता संतति...एक बहुत अच्छा किताब मेरे हाथ लगा है—महान वैज्ञानिकों का बचपन। हमको बहुत पसंद आया। हमको लगा तुम पढ़ोगे इसलिए साथ झोला में लेकर आए हैं।” उदय साइकिल से अपना झोला निकालकर लाया और उसमें से किताब निकालकर दिखाया।

“हम पढ़े जगदीश चंद्र बसु और निकोला टेसला के बारे में, थामस अल्वा एडीसन और बेंजामिन फ्रैंकलिन के बारे में, और तो और माइकल फैराडे के बारे में। इनमें कोई बहुत अमीर आदमी नहीं था। मेरी तरह सभी साधारण गरीब घर के थे। हमलोग की उम्र में माइकल फैराडे जिल्दसाज था। बाद में हमफ्रे डेवी के यहां नौकरी करने लगा और इतना बड़ा वैज्ञानिक बना। इसी उम्र में बेंजामिन फ्रैंकलिन प्रिंटर के यहां काम करते थे। निकोला टेसला की स्मरणशक्ति इतनी जबरदस्त थी कि क्या कहने। इस किताब में लिखा है कि स्मरणशक्ति और विश्लेषण क्षमता जन्मजात मिलती है। क्लास में नंबर लाने से या टॉप करने से नहीं।”

सब्यसाची किताब के पन्ने पलट के देखता रहा, “ठीक है। हम पढ़ते हैं। तुम सुनाओ, इसके अलावा क्या सोच रहे हो?”

“हम सोच रहे हैं कि दसवां का तैयारी अभी से शुरू कर दें। निकोला टेसला चार साल का पढ़ाई तीन साल में कर लिया था। दुनिया में कुछ बड़ा करना है तो अपने आप को साबित करना पड़ेगा। तुम तो नेतरहाट चले गए। वहां से आगे बढ़ना आसान है। हम यहां कुछ ऐसा करेंगे कि दुनिया याद करेगी।” उदय के पिचके गालों पर लाली और मुरझायी आंखों में सहसा चमक सी आ गई।

“सेवासदन में पाठ्य पुस्तक तो नहीं मिलेगा। तुम इंतजाम किए हो नवां और दसवां का किताब के लिए?” सब्यसाची ने पूछा।

“आज करेंगे। मेरा दोस्त चित्रसेन का बड़ा भाई इस साल दसवीं का इम्तिहान दिया है। उससे जाकर ले आएंगे। तुम सुनाओ। तुम क्या कर रहे हो?”

सब्यसाची अंदर घर से अपने सामान में से एक कॉपी निकाल लाया, “ये देखो।” उदय

ने सव्यसाची की कॉपी पलटनी शुरू की, “तुम तो चित्रकारी करते थे। ये कार्टून कब से बनाना शुरू कर दिए?”

“कार्टून नहीं। कॉमिक्स स्ट्रिप है। हम एक्शन हीरो का कॉमिक्स बना रहे हैं। सुपरमैन, स्पाइडरमैन का नाम सुने हो?” उदय ने हां में सर हिलाया।

“जान लो, मेरा एक्शन हीरो सुपरमैन, स्पाइडर मैन से भी ज्यादा पावरफुल है।”

“ऐसा क्या है इसमें?”

“देखो। बाकी एक्शन हीरो अपने शारीरिक बल या मानसिक बल का सहारा लेते हैं। मेरा एक्शन हीरो सीधे ऊर्जा का सहारा लेगा और बदमाशों को धूल चटा देगा।”

“बल और ऊर्जा में क्या अंतर है?” उदय ने पूछा। सुनकर सव्यसाची तान से बोला, “नर्वी दसवीं की किताब पढ़ने से पहले आठवीं की किताबें पूरी पढ़ लेना।” उदय ने चिढ़कर कहा, “जो आता है वो बता दो, ऐसे ताना क्यों देते हो?” सव्यसाची ने मनाते हुए कहा, “तुम तो बुरा मान गए। चलो इसको देखो पहले।”

जब दोनों ने कॉमिक्स स्ट्रिप को साथ में मुआयना कर लिया, तब उदय ने सुझाव दिया, “इसको तुम थोड़ा और बड़ा बनाओ। ऐसा कि एक पूरा सचमुच का कॉमिक्स बन जाए।”

तब तक सत्या डाकघर से वापस आ गया।

सव्यसाची ने झिड़का, “इतनी देर लगा दी। लिफाफा लाने गए थे कि वहीं किसी को चिट्ठी लिखने बैठ गए थे?” सत्या ने कुछ न कहा और चुपचाप अंदर चला गया।

## चौथा चरण

*ठंडी हवाएं, लहरा के आएँ, रुत है जवाँ, तुमको यहाँ, कैसे बुलाएँ*

अचानक से ही रुनकी झुनकी की नानी का आना हुआ। नानी ने आते ही अपना सूटकेस खोला और दोनों बहनों के लिए तोहफे निकालकर दिखाये। शुद्ध ऊन से बुने स्वेटर और स्कार्फ दोनों के लिए। इसके अलावा नया टू इन वन। झुनकी इतनी खुश हुई की नानी से लिपटकर फिर उतरने का नाम न ले। जब मां ने डांट लगाई तब दोनों बहनें दौड़कर छत पर धूप सेंकने चली गईं।

रुनकी झुनकी से दो साल बड़ी थी। दोनों ही गर्ल्स स्कूल में पढ़ती थीं। रुनकी खेलकूद में अव्वल थी। बहुत देर तक बैडमिंटन खेलती और कोई उससे फुर्ती में जीत नहीं पाता। झुनकी को लूडो खेलना पसंद था। दौड़ना धूपना उसे नहीं भाता था। नानी जब मां के साथ छत पर आई तो पहला सवाल दागा, “तुम लोगों ने घर के सामने ही केवड़े की झाड़ी लगा दी? पता है उसमें सांप आकर बसते हैं। छोटी छोटी बच्ची हैं। तुमको सोचना चाहिए।”

मां सकुचाकर बोली, “हमको मालूम नहीं था कि ये केवड़े का पेड़ है। माली लगा गया था। बहुत सुगंधित फूल है इसका।”

“केवड़ा का इत्र बनता है। उड़ीसा में बहुत होता है। तुमको कुछ पता है भी या नहीं? दो बच्चों की मां हो, दुनिया जहाँ के बारे में कुछ मालूम रखा करो। कचनार का पेड़ अच्छा लगाई हो। बहुत फायदेमंद है। नीम और बबूल भी लगा लो। बच्ची नीम का दातुन करेगी। दोनों का दांत मजबूत रहेगा। बगीचा में उड़हुल कहीं नजर नहीं आ रहा है? देवी जी को लाल फूल चढ़ता है। उड़हुल लगवा लो।”

नानी जब मां को ऐसे डांट रही थी, तब झुनकी को बड़ा मजा आ रहा था। उसकी मुस्कुराहट

देखकर रुनकी ने झुनकी को आंखों आंखों में डांटा।

मां नानी से कह रही थी, “पांचवीं के बाद लड़कियों को गर्ल्स स्कूल में नाम लिखा दिए हैं। रुनकी को खेल बहुत प्यारा है। झुनकी न जाने कहां खोई रहती है। खैर, लड़की का क्या है। बड़ी होते ही शादी कर देंगे।”

नानी बोली, “एक तो तुम कुछ पढ़ी नहीं। डॉक्टर बन सकती थी। अब बेटी को भी मत पढ़ाओ। छोटे शहर में रहते रहते एक नंबर की दकियानूस हो गई हो। मेहमान क्या बोलते हैं? बेटी को नहीं पढ़ाना है क्या?”

उलाहना सुनकर मां सहमकर बोली, “तुम नहीं समझती हो मां। यह दरभंगा पटना नहीं है। संदलपुर में लड़की पालने में कितना दिक्कत होता है, तुमको क्या पता? इतना खराब इलाका है कि यहां लड़की किडनैप कर लेते हैं। रुनकी झुनकी कितनी खूबसूरत हैं और यही खूबसूरती नीच लोगों की आंखों में चुभती है। दूध जैसी गोरी है दोनों और अगर अब पढ़ने में भी अच्छी होगी सुबह शाम चिट्ठी पत्री आता रहेगा। उसके बाद स्कूल कॉलेज कौन रोज रोज छोड़ने लाने जाएगा? जब तक दसवीं है यहां पढ़ लें। उसके बाद पटना भेज देंगे।” यह सुनकर नानी कुछ नहीं बोली।

रुनकी झुनकी उन दोनों को अकेला छोड़कर नीचे उतर आई। झुनकी ने रुनकी से पूछा, “चिट्ठी पत्री का मतलब?”

“लव लेटर!” रुनकी ने कहा। पहले तो यह सुनकर झुनकी एकदम से घबरा गई। फिर उसने आश्चर्य से पूछा, “लेकिन जब दोनों तरफ से प्यार होगा तभी तो कोई चिट्ठी लिखेगा? अभी तो हमलोग का उम्र ही क्या है।” रुनकी ने झुनकी को डांटा, “तुम कुछ नहीं समझती हो। बस, तुमको कोई लड़का कुछ बोले, तंग करे तो हमको बोलना। हम देख लेंगे।”

रात में नानी के पास बैठी रुनकी झुनकी उनसे बातें करती रहीं। अंग्रेज बहादुर के बारे में, उनके जमाने के कॉलेज के बारे में, फैशन के बारे में, मधुबाला और मीना कुमारी के बारे में। नानी के पिताजी यानी मां के नाना जी बहुत बड़े अफसर थे। नानी ने घुड़सवारी सीखी थी। हाथी की सवारी भी की थी। कभी कभी सिनेमाहॉल में जाकर फिल्म भी देखती थीं। उन्होंने जिद करके शहर में सबसे पहले रेडियो खरीदा था, फिर ग्रामोफोन भी आया, बाद में टीवी भी लिया गया। नानी कम्प्यूटर लेने के बारे में सोच रही हैं। पढ़ने में भी नानी बेहतरीन थीं। बाद में स्कूल की प्रिंसिपल बनकर रिटायर कीं। नाना जी पटना में बहुत बड़े डॉक्टर थे। शादी के बाद भी नानी ने अपना भारत भ्रमण जारी रखा। कितने हिल स्टेशन, कितने मंदिर, कितने शहर घूम चुकी थीं कि उन्हें भी नहीं याद। नानी ने मां के बारे में ज्यादा कुछ नहीं बताया। झुनकी ने सोचा जरूर, नानी मां के हाउसवाइफ बन जाने से खुश नहीं हुई होंगी।

बहुत पूछने पर नानी ने बताया उनकी पसंदीदा अभिनेत्री थी : नलिनी जयवंत, अभिनेताओं में : अशोक कुमार। बचपन से आज तक मां सुनाती आई थीं कि नानी बहुत अच्छा गाती थीं। इसलिए रुनकी ने जिद की, तब रजाई में बैठी नानी ने दोनों बहनों को एक गाना गाकर सुनाया—

चांद और तारे, हंसते नजारे  
मिल के सभी, दिल में सखी, जादू जगाए  
ठंडी हवाएं, लहरा के आए,  
रुत है जवां,  
तुमको यहां, कैसे बुलाएं  
ठंडी हवाएं...

झुनकी ने ये गाना कभी नहीं सुना था। रुनकी ने भी नानी के साथ बोल और सुर मिलाने की कोशिश की। झुनकी ने मन ही मन सोचा कि अब रुनकी 'अंताक्षरी' खेलने के लिए कहेगी और उसको फिर हारना पड़ेगा। ठीक यही हुआ जब मां उनके कमरे में आई तो रुनकी ने सबसे अंताक्षरी खेलने के लिए कहा। उसी समय पिताजी बाहर से आए और नानी उनसे बात करने चली गई।

विस्तर में लेटी लेटी झुनकी बार बार सोचती रही कि क्या वह कभी नानी जैसी बहादुर बन पाएगी? क्या वो भी बेरोकटोक पूरा हिंदुस्तान घूमेगी? पिताजी के पास पुराने कैसेट्स में वह गाना कहीं न कहीं होगा। वह यह गाना याद करेगी और अच्छे से गाएगी।

अगले दिन दोपहर में नानी, मां, रुनकी और झुनकी सारे छत पर बैठकर सूखते गेहूं और चावल की निगरानी कर रहे थे। तभी डाकिया की आवाज आई। झुनकी दौड़कर नीचे गई। डाकिए ने उसका नाम लेकर पूछा, "क्या कुमारी सुश्री यहीं रहती है?"

उसी समय केवड़े की झाड़ी में सरसराहट से हुई। झुनकी डर गई कि कहीं सांप तो नहीं। डाकिए ने फिर वही सवाल पूछा तो झुनकी ने कौतुहल में हां में सर हिलाया। डाकिया उसके हाथ में एक पोस्टकार्ड पकड़ाकर अपनी साइकिल पर चढ़कर आगे चला गया। झुनकी ने देखा कि पुराने स्कूल के सहपाठी सत्या ने उसे चिट्ठी भेजी है।

झुनकी सन्न रह गई।

उधर रुनकी ने छत पर से आवाज लगाई, "किसकी चिट्ठी है?" झुनकी झट से पोस्टकार्ड अपने पीछे छुपाकर मुड़कर जोर से चिल्लायी, "चिट्ठी नहीं है। डाकिया किसी का पता पूछ रहा था। आती हूँ ऊपर।"

झुनकी ने आनन फानन में पोस्टकार्ड अखबार के ढेर में छुपाया और ऊपर छत पर चली गई। बाद में फिर पोस्टकार्ड कहीं और छुपाकर रख दिया। अगले दो दिन तक झुनकी ने उस पोस्टकार्ड की तरफ झांका तक नहीं। उसे सत्या पर बहुत गुस्सा आया। वह सत्या को अच्छा लड़का समझती थी। ये कोई उम्र है चिट्ठी पत्री करने की?

## पूर्वाषाढ़ा पहला चरण

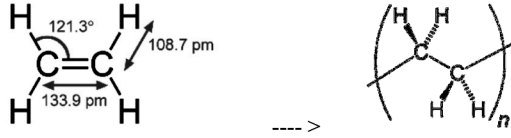
उदय में साहस में कोई कमी न थी। आजकल विज्ञान का युग है, इसलिए उदय ने विज्ञान की किताबों से अपनी मुहिम शुरू की। कुछ दिनों में उसने नवीं और दसवीं की विज्ञान की किताबें पढ़ डालीं। पढ़ने का उसका अपना फॉर्मूला था कि किसी किताब को अगर दस बार पढ़ डालो तो वह याद हो जाती है। इसलिए उदय को न दिन सूझा, न रात। किताब के पन्ने पन्ने चाटने लगा। नई नई बातें पता चल रही थीं। उदय को रसायन विज्ञान में बहुत मजा आ रहा था। कुछ कुछ उसे समझ आता, कुछ नहीं भी। लेकिन इससे यह हुआ कि उदय के लिए मौलश्री की खुशबू हो या डहेलिया की, सब उसे तरह तरह के 'इस्टर' (Ester) लगने लगे। दुनिया में हर कुछ एलेमिंट (तत्व), कंपाउंड (यौगिक) और मिक्सचर (मिश्रण) नजर आने लगे। दुनिया कार्बनिक और अकार्बनिक पदार्थों में बंट गई। अब उसे नमक को 'सोडियम क्लोराइड' कहने में मजा आने लगा। अंधेरे में चमकती चीजें उसे फॉस्फोरस लगतीं। घड़ी के डायलों को वह मुट्ठी में बंद करके जब देखता, तब चमकती सुइयों के किनारों पर रेडियोधर्मी रेडियम की कल्पना करता।

पर उदय का जन्म मानवता के कल्याण के लिए हुआ था। वह छोटी मोटी चीजों और पैसे

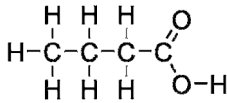


कमाने में नहीं, बल्कि भारत की दरिद्र जनता की सेवा करना चाहता था। इसलिए उसने आस पास की चीजों पर गौर करना शुरू किया। चूंकि वह इलाके को खरीदकर वहां मौलश्री, गेंदा और जूही के पेड़ लगवाता, इस काम में थोड़ी भी गंदगी बाधा लगती थी। यही वजह रही थी कि उदय को पॉलीथीन से चिढ़ हो गई।

उदय ने दसवीं की रसायन की किताब में पढ़ा कि 'इथीन' नाम के 'अक्लीन हाइड्रोकार्बन' से 'पॉलीथीन' नाम का पॉलीमर बनता है। यही प्लास्टिक है पर्यावरण का दुश्मन।



कुछ दिनों के बाद उदय को पन्ने पलटते हुए पता चला कि मक्खन कुछ और नहीं बल्कि वसा है। वसा कुछ और नहीं बल्कि कार्बोक्सिलिक एसिड (Carboxylic Acid) हैं। मक्खन में कुछ और नहीं बल्कि ब्यूटरिक एसिड (Butyric Acid) है।



अचानक उदय के मन में यह विचार कौंधा कि अगर किसी तरह इस्तेमाल किए हुए, फटे पुराने पॉलीथीन को किसी रासायनिक अभिक्रिया से ब्यूटरिक एसिड बना दिया जाय फिर संसार का कितना भला होगा। एक तो गंदगी दूर होगी, दूसरे भूखे लोगों को मक्खन खाने को मिल जाएगा। गाय भैंस को पालने पोसने के झंझट के बिना बना यह मक्खन एकदम सस्ता मिलेगा। यह क्रांतिकारी विचार आते ही उदय ने कंबल झट से फेंका। शॉल को फेंककर वह झट से घर से बाहर आ गया। सर्दी मानों उसे लग ही न रही थी। सारे रास्तों में जैसे मौलश्री के बड़े वृक्ष लग गए हों और उनमें सुगंधित सफेद फूल आ गए हों।

उदय मुस्कुरा उठा।

अहाते में जाकर सत्या ने धूप सेंकते सब्यसाची को अपने बनाए हुए चित्र एक एक करके दिखाये। सब्यसाची ने उन्हें देखकर कुछ सुझाव दिए। मसला यह था कि सेवासदन पुस्तकालय के प्रांगण में छह दिनों बाद एक चित्रकारी प्रतियोगिता आयोजित की जा रही थी। "उसका विषय क्या होगा?" सब्यसाची ने पूछा।

"वे लोग वहीं बताएंगे। दो घंटा का समय देंगे। चित्र बनाने का और फिर रंगने का। मेरे स्कूल से संतोष सिन्हा भाग लेगा। वो बहुत सुंदर चित्रकारी करता है।" सत्या ने बताया।

"अच्छा। हमको लगता है कि हम देखे हैं उसका चित्र। तुम्हारे स्कूल में घुसने के साथ ही दीवार पर जो पेंटिंग लगा है वो उसका बनाया हुआ है न?"

सत्या ने उत्साहित होकर कहा, "हां, तुमको कैसा लगा?" सब्यसाची ने ना में सर हिलाया, "ठीक है। कोई बहुत अच्छा नहीं है। तुम लोग को पेंटिंग का समझ नहीं है। चित्रकला में, हम कहेंगे हर कला में, जो आम लोग को पसंद आए और लोग उसका वाहवाही करें, समझ लेना कि

वही बेकार है। क्योंकि अच्छी कला समझने के लिए बहुत मेहनत करनी होती है। मेरे टीचर बताते हैं कि एक बार कला प्रदर्शनी लगी। आम जनता आकर एक शेर का चित्र बहुत पसंद कर रही थी। लेकिन जब निर्णायक मंडल ने पुरस्कार दिया, वह किसी बेकार से लगने वाले चित्र को दिया। जो बाघ का चित्र लोग को पसंद आ रहा था, उनकी दृष्टि में एकदम मामूली था। तुम अभी मेहनत करो, फिर धीरे धीरे समझ आएगा।”

सत्या सकुचाकर रह गया। फिर उसने कहा, “मुनने में आया है कि पिछली बार उन्होंने किसी महापुरुष का चित्र बनाने को कहा था। इस बार भी शायद वही आए। हम सोच रहे हैं कि ‘भगत सिंह’ के चेहरे का प्रैक्टिस करके जाएं।”

“कुछ नया सोचो। लोगों से हटकर बनाओ।” सव्यसाची ने कहा।

“बाकी लोग महात्मा गांधी, सुभाष चंद्र बोस और पंडित नेहरू का बनाते हैं। हम ही अलग कर रहे हैं।”

सव्यसाची बोला, “हम राजेंद्र प्रसाद का तस्वीर बना के रखे हैं। मेरे अल्युमिनियम वाला बक्सा में एक फाइल में होगा। तुम वैसा बनाने का प्रैक्टिस कर लो। आसान हो जाएगा।”

सत्या ने सोचा कि यह विचार अच्छा है। इससे उसे पूरे नगर में प्रसिद्धि मिल जाएगी। संतोष सिन्हा की बादशाहत को चुनौती देने वाला उसी के क्लास का सत्या होगा। पहले चित्रकला में, बाद में पढ़ाई में नंबर एक स्थान से भी उसको हटा दिया जाएगा।

सत्या के जाते ही सव्यसाची अपने कॉमिक्स के विचार में डूब गया। उसने चौंसठ पेज का एक कॉमिक्स का आरूप बना रखा था। उसने चौंसठ पेज की कहानी की रूपरेखा तैयार कर रखी थी। ऐक्शन हीरो के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है उसकी ड्रेस। वही उसकी पहचान होती है, जो बाकी हीरो से अलग करती है। बाहुबली और बलशाली तो सारे होते ही हैं। अधिकतर ऐक्शन हीरो की चड्डी नजर आती है जैसे कि सुपरमैन, बैटमैन। सव्यसाची शालीनता में विश्वास रखता था इसलिए उसे ‘स्पाइडर मैन’ पसंद था, जो ट्रैकसूट जैसा पहनावा पहनता था। अपने ऐक्शन हीरो के लिए कुछ ऐसी ही पोशाक बनानी होगी। सव्यसाची ने अपने हीरो का नाम रखा ‘शाइनिंग स्टार’। मुश्किल के वक्त शाइनिंग स्टार अचानक इतना चमकने लगता था, जैसे वेल्डिंग के समय निकली तेज रोशनी। कोई उसे नंगी आंखों से देख ले फिर उसकी आंखों में जो पानी निकलेगा कि पूछो मत। शाइनिंग स्टार की वीरता का साम्य महाभारत के योद्धाओं से किया जा सकता था। जिस तरह अर्जुन ने किरातराज वेषधारी भगवान शिव से दिव्यास्त्र लिए थे, वैसे ही शाइनिंग स्टार ने भी बहुत मारक दिव्यास्त्र प्राप्त किए थे। सबसे प्रमुख थी छोटी छोटी जहरीली सुइयां। जरूरत पड़ने दुश्मनों के बदन में सुई ऐसे चुभती मानों मच्छर के डंक। लेकिन एक मिनट के अंदर शत्रु कोबरा के जहर से सौ गुना घातक जहर से मर जाता था। शाइनिंग स्टार के इस जहर को किसी पोस्टमार्टम रिपोर्ट से भी नहीं पकड़ा जा सकता था।

गेंदे के फूल पर नजर पड़ते ही सव्यसाची दूसरी दिशा में सोचने लगा कि सारी ताकत मारने या घायल करने वाली क्यों हो? क्यों न शाइनिंग स्टार ऐसा ऐक्शन हीरो बने जो केवल ऐक्शन से बदमाशों का हृदय परिवर्तन करा दे? शाइनिंग स्टार दुखी और घायल लोग की रक्षा करेगा पर शत्रुओं को मारने से बचेगा। शाइनिंग स्टार के लिए हत्या ही सबसे बड़ा पाप होगा। शाइनिंग स्टार का ऐक्शन हिंसा नहीं होगी। यह निष्काम कर्म होगा, ऐसा कि जहां आवश्यक होगा केवल वहीं बल प्रयोग किया जाएगा। ऐसे में शाइनिंग स्टार बहुत से पापों का बोझ लेकर पश्चाताप की अग्नि में भी जलता रहेगा। यह ऐक्शन हीरो के इतिहास में सबसे अलग कदम होगा। कॉमिक्स कि दुनिया में सव्यसाची को वही मुकाम हासिल होगा जो सुपरमैन और मिकी माउस बनाने वालों को हुआ

था। इस ऐक्शन हीरो को दुनिया भर की भाषाओं में अनूदित भी किया जाएगा। इसका थीम पार्क भी बनाया जाएगा जिसमें चौदह साल से कम उम्र के बच्चों की इंटी प्री होगी। केवल बच्चों के माता पिता से पैसे लिए जाएंगे।

बगिया में सदाबहार के फूल को चुनते हुए स्लेटी स्कार्फ बांधे रुनकी ने लाल स्वेटर में लिपटी लाल होठों वाली झुनकी को बताया कि स्टेफी ग्राफ जब तेरह साल की थी, उस समय दुनिया में उसकी वर्ल्ड टेनिस में 124 रैंकिंग थी। पॉप स्टार मैडोना बहुत कम उम्र में गाने लगी थी। इंग्लैंड की गायिका केट बुश जब उन्नीस साल की थी, उसके गाने इंग्लैंड में तहलका मचा चुके थे। फूलों की डलिया लिए झुनकी ने सोचा कि केट बुश तो शोहरत कमाने में थोड़ी पीछे रह गई।

यही सब बातें जब झुनकी ने नानी को बताया, तब उसके घने काले लंबे बालों में कंधी करती बूढ़ी नानी ने बताया कि किसी जमाने में 'मास्टर मदन' नाम का मशहूर लड़का था, जिसने साढ़े तीन साल की उम्र में महफिलों में गाना शुरू कर दिया था। पूरे हिंदुस्तान में उसकी गायकी का बड़ा नाम था। चौदह साल की उम्र में उसके विरोधियों ने उसे धीमा जहर देकर मार डाला। मर जाने के बाद शोहरत उसके किस काम की? शोहरत के साथ अनचाही दुश्मनी भी आती है। जलन भी झेलना पड़ता है।

नानी ने आगे समझाया, "शोहरत किस रास्ते से चलकर आएगी, किस घड़ी आएगी, यह कोई नहीं जानता। लोगों से भूल यह हो जाती है कि काबिलियत और शोहरत को एक सिक्के के दो पहलू समझने लगते हैं। ऐसा हर हमेशा नहीं होता है, झुनकी। काबिल को जरूरी नहीं कि शोहरत की दौलत मिले। हर शोहरत वाला आदमी काबिल हो, यह भी जरूरी नहीं है।"

झुनकी ने पूछा, "शोहरत क्या खराब बात है नानी?"

"नहीं। शोहरत के पीछे दीवाना होना खराब बात है। जो आता है आने दो, जो जाता है जाने दो। उतना ही पकड़ो जितना संभल सके।"

"क्यों नानी?"

"इसलिए कि जिंदगी में शोहरत, काबिलियत के अलावा और भी बहुत से चीजें होती हैं?"

"जैसे कि?"

"जैसे केवड़े का इत्र। जैसे कि जायफल। जैसे कि कपूर। जैसे मेरी रुनकी झुनकी।" नानी झुनकी के बालों में तेल डालकर मुस्कुरा दीं। झुनकी को उस समय झुर्रियों भरी बूढ़ी नानी बहुत सुंदर लगीं। वह पलटकर नानी के गले लग गई।

अगले दिन झुनकी ने पिताजी के कैसेट्स में से ठंडी हवाएं, लहरा के आएं गाना दूढ़ निकाला और दिन रात गाने का अभ्यास करने लगी।

## दूसरा चरण

तारीख जब आई, सत्या झाइंग का सामान बस्ते में रखकर सेवासदन पुस्तकालय पहुंच गया। बहुत कोशिश के बाद भी राजेंद्र प्रसाद की तस्वीर उससे बहुत अच्छी नहीं बनी थी। रह रहकर यही खयाल उसके दिमाग में आता कि कला क्या केवल सही सही नकल कर लेना है? डॉ. राजेंद्र प्रसाद के फोटोग्राफ को हूबहू उतार देना ही कौशल है? क्या जाने, कौन सा विषय होगा चित्रकारी प्रतियोगिता में।

संतोष सिन्हा के साथ स्कूल के कुछ और धुरंधर वहां पहुंचे हुए थे। दूसरे स्कूल से भी कई लड़के लड़कियां वहां आए थे। छठी से आठवीं तक का एक ग्रुप बना दिया गया। कुछ सूट बूट

में पदाधिकारियों का परिचय दिया गया, जिनके मुंह पान और चेहरे बेशर्म हंसी से रंगे थे। आधिकारिक सूचना दी गई कि चित्रकला प्रतियोगिता का विषय है किसी महापुरुष का चित्र, समय सीमा दो घंटा।

लड़कों में कानाफूसी होने लगी : यही होने वाला था। होना यही था, यह तो सत्या भी जानता था पर उसे बेहद गुस्सा आया। यह क्या कोई होमवर्क है? कुछ दिमाग लगाकर कोई नया विषय बोलते। खैर, सत्या ने ड्राइंगशीट उठायी और लॉन में बैठकर अपने काम में जुट गया।

लॉन के किनारे गेंदा के हजारों प्रजाति के पौधे थे। सत्या याद से राजेंद्र प्रसाद की तस्वीर बनाने लगा। बगल में कोई विद्यार्थी यह पूछकर आ गया कि तस्वीर देखकर उसकी नकल बनाई जा सकती है? आयोजकों ने फौरन हां में सर हिलाया और वक्तव्य दिया कि बिना देखे कोई कैसे तस्वीर बना सकता है। किसी के पास कोई तस्वीर है तो उसका इस्तेमाल कर सकता है। सत्या ने भी यह सुनकर वह किताब निकाली जिसमें प्रथम राष्ट्रपति की फोटो थी, जिसे देखकर सव्यसाची ने तस्वीर बनाई थी। अभी सत्या तस्वीर बना ही रहा था कि उसे लगा कि उसके पीछे खड़ा कोई देख रहा था। पलट कर देखा तो चेहरा जाना पहचाना लगा।

कमर पर हाथ रखे हुए रुनकी ने पूछा, “तुम सव्यसाची के छोटे भाई हो न?” सत्या ने हां में सर हिलाया। “तुम्हारे साथ मेरी बहन झुनकी पढ़ती थी। झुनकी को जानते होगे? हम उसकी दीदी हैं।” हामी भरते हुए सत्या थोड़ा चौंका कि कहीं रुनकी उसे डांटने तो नहीं आई? चिट्ठी भेजने के बाद से उसके मन में सौ खयाल आए थे। बहुत सोच विचार के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि उसे चिट्ठी नहीं लिखनी चाहिए थी, बल्कि जाकर मिल लेना ठीक रहता। मिलने में संकोच आड़े आ रहा था, इसलिए वह भी टाल देना चाहिए था। बेखबर रुनकी ने कहा, “तुम भी अच्छी तस्वीर बना लेते हो।”

“आप यहां प्रतियोगिता में भाग ले रही हैं?” सत्या ने पूछा।

“नहीं, हम सहेलियों का हौसला बढ़ाने आए हैं। हम स्पोर्ट्स में हैं। अगले हफ्ते जो मॉडल स्कूल में जिला स्तर का सांस्कृतिक कार्यक्रम हो रहा है, तुम अपने स्कूल की तरफ से भाग ले रहे हो?”

सत्या नहीं और हां के बीच में कुछ बोला। रुनकी को किसी ने आवाज दी और वह आगे बढ़ गई।

सत्या ने बड़ी कोशिश करके जो चित्र बनाया उसे खुद पसंद नहीं आया। जब वह चित्र जमा करने जा रहा था कि संतोष सिन्हा किसी पर लांछन लगाते हुए शोर मचा रहा था, “सर, यह छात्र जो चित्र जमा कर रहा है, पहले से बनाकर लाया है। इतने कम समय में ऐसा चित्र नहीं बन सकता। आप इसके बस्ते का तलाशी लीजिये।” तलाशी ली गई। उस छात्र के बस्ते से गीले रंगों वाली वैसी तस्वीर मिली। संतोष सिन्हा के ‘सुभाष चंद्र बोस’ की तस्वीर को पहला पुरस्कार मिला। बाद में संतोष सिन्हा ने अपने दोस्तों की मंडली में कहा, “मेरा मुकाबला केवल उस लड़के से था। यहां मुझे कौन हराता?” सुनकर सत्या ने अपने बस्ते में से सव्यसाची का बनाया हुआ ‘राजेंद्र बाबू’ का चित्र निकालकर दिखाया, “यह देखो। मेरे भैया सव्यसाची ने बनाया है। वह यहां होते तो वही जीतते।”

एक पल को सकपकाये संतोष ने बनकर कहा, “वो तो नेतरहाट चले गए न! हम यहां की बात कर रहे हैं। तुम अपनी बात करो। अगले हफ्ते सांस्कृतिक कार्यक्रम होने वाला है। उसमें देखना कौन बाजी मार ले जाता है। खुला चौलेंज है कि पूरे संदलपुर में हमको कोई हरा के दिखाये।”

तेजी से साइकिल दौड़ाता उदय सव्यसाची के घर आ गया। सव्यसाची उस समय कॉमिक्स बनाने में जुटा हुआ था। उदय की आवाज सुनकर कॉमिक्स उसने अखबारों में छुपा लिया। उदय जब दरवाजे से अंदर आकर अहाते में बैठा, सव्यसाची ने पूछा, “नए साल का कुछ प्लान कर रहे हो? कहीं पिकनिक मनाने जाओगे?”

इस पर हंसते हुए उदय ने कहा, “अब हमलोग बड़े हो गए हैं। क्या काली पहाड़ी पर जाकर पिकनिक मनाएंगे।”

“कैसा चल रहा है तुम्हारा सेवासदन? अखबार का काम ठीक से चल रहा है न?”

उदय ने हां में सिर हिलाया और कहा, “एक मशवरा करना था।” सव्यसाची ने उसे प्रश्नवाचक निगाहों से देखा।

“हम समझते हैं कि बुद्धिमान आदमी से ही सलाह मशविरा करना चाहिए। इसलिए तुमसे पूछ रहे हैं। जरा सोचो, अगर कोई बड़े मंजिल पर जाना चाह रहा हो, रास्ते में कोई रुकावट आए तो क्या करना चाहिए।”

सव्यसाची ने बेफिक्री से कहा, “बहुत आसान है। रुकावट दूर कर देनी चाहिए।” उदय खिसिया कर बोला, “तुम समझे नहीं। अगर रुकावट खुद से दूर हो जाती तो कर ही लिया जाता न? यह सवाल थोड़े ही पैदा होता!”

“फिर किसी की मदद लेनी चाहिए।”

“किसकी?”

“जो मदद कर सकता हो। मदद करने के काबिल हो।” सव्यसाची ने सुझाया। “तुम ठीक कहते हो, पर रास्ता थोड़ा टेढ़ा है। सवाल यह है कि अगर मदद करने वाले की नीयत खराब हो जाए तो?” उदय ने पूछा। सव्यसाची सोच में डूबकर बोला, “तुम पहेली बुझा रहे हो। साफ साफ बोलो कि क्या बात है। हम कुछ मदद कर सकते होंगे तो कर देंगे।”

“हम तुमको एक टॉप सीक्रेट बात बताते हैं। बात इतना सीक्रेट है कि थोड़ा सा ही बताएंगे। पूरा बताने पर बहुत मुश्किल हो सकता है।” उदय ने बेहद गम्भीरता से कहा।

“अच्छा। जितना बता सकते हो बताओ।”

“हम एक नया ‘रासायनिक अभिक्रिया’ कर रहे हैं। इससे एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक उपलब्धि होने वाली है। हम आजकल उसी में लगे हुए हैं।” उदय ने रहस्य का खुलासा किया।

सव्यसाची ने उतनी ही गम्भीरता से कहा, “हम इसमें क्या मदद दे सकते हैं? हम अभी आठवां का किताब पढ़ रहे हैं। तुम नवां दसवां पढ़ लिए हो।”

“फिर संदलपुर में कोई तो होगा, जो मेरी थोड़ी मदद करने के काबिल होगा?” उदय के इस सवाल पर सव्यसाची ने कहा, “है न! याद है अपने साथ रुनकी पढ़ती थी। उसकी छोटी बहन झुनकी सत्या के साथ पढ़ती थी। रुनकी झुनकी के पापा केमेस्ट्री के प्रोफेसर हैं। वो जरूर तुम्हारी मदद कर सकते हैं।”

“हम्म.. कैसे बात करें? अच्छा विचारते हैं।...रुनकी से हमारी बातचीत थी। उसका घर भी हम देखें हैं। लाल दरवाजा में है। उसके अहाता में कचनार का बड़का पेड़ है। जा के बात करते हैं। लेकिन...?”

“लेकिन क्या?” सव्यसाची ने पूछा।

“लेकिन उन पर भरोसा किया जा सकता है?” उदय ने घबराकर पूछा, “यह महत्वपूर्ण वैज्ञानिक उपलब्धि होने वाली है। तुमको इसका अंदाजा नहीं है।” इस पर सव्यसाची बोला, “इतना तुमको जोखिम उठाना पड़ेगा। बड़ा बड़ा वैज्ञानिक बड़ा बड़ा काम किया है। बहुत संकट

उठाया। तुमको वैज्ञानिक बुद्धि के साथ साथ व्यावहारिक बुद्धि और चातुर्य भी प्रयोग में लाना होगा।” सव्यसाची के व्यंग्य को नहीं समझते हुए उदय ने कहा, “तुम ठीक कहते हो। हम इस पर सोचते हैं।”

उस शाम को बिजली अभी अभी आई। उस समय नानी, मां, रुनकी और झुनकी लिट्टी घुघनी खा रहे थीं। झुनकी झट से दौड़ी और जूठे हाथों से ही टेलीविजन चालू किया। चित्रहार का समय हो रहा था। और गाना घर में गूंज उठा—

ठंडी हवाएं, लहरा के आएँ  
रुत है जवां,  
तुमको यहां, कैसे बुलाएं  
ठंडी हवाएं...

मां, नानी और रुनकी झट से खाने की थाली लिए टेलीविजन वाले कमरे में आ गईं।

दिल के फसाने, दिल भी न जाने  
तुमको सजन, दिल की लगन, कैसे बताएं  
ठंडी हवाएं, लहरा के आएँ  
रुत है जवां,  
तुमको यहां, कैसे बुलाएं  
ठंडी हवाएं...

झुनकी ने दोनों हाथ अपने गालों पर रखे और उसके बाद नलिनी जयवंत की तरह दोनों हाथ हवा में एक साथ लहरा कर गुनगुनाने लगी : लला ला लला हम्म हम्म हम्मSS.. कैसे बुलाएं... रुनकी ने कहा, “नानी, आप अच्छा गाना सिखा दी हैं झुनकी को। झुनकी सांस्कृतिक कार्यक्रम में इस गाने पर एकल गीत गाने वाली है।” मां बोली, “हे राम। सरस्वती वंदना गाओ। ये सब गाना ठीक नहीं लगेगा।”

नानी ने झिड़का, “क्या हुआ? बच्ची है। अभी नहीं गाएगी तो कब गाएगी? हम मेहमान को बोल देंगे। तुम चिंता मत करो।” रुनकी ने सबको बताया, “आज हमको सव्यसाची का भाई सत्या मिला। वह भी सेवासदन आया था चित्रकारी करने।”

झुनकी का कलेजा धक रह गया। उसने झिझकते हुए पूछा, “क्या बोला?”

“क्या बोलेगा। शरीफ बच्चा बेचारा कोने में बैठकर चित्रकारी कर रहा था। उसका भाई सव्यसाची होता तो सारा पुरस्कार वही ले जाता। हम जाकर उससे पूछे कि हमको पहचानते हो या नहीं। बेचारा कुछ बोला नहीं। पहचान रहा था।”

झुनकी चिढ़कर बोली, “कोई बेचारा नहीं है। चालू है एक नंबर का।”

रुनकी थोड़ा अवाक् रह गई, फिर बोली, “तुम्हारे साथ पढ़ता है तो तुमको पता होगा। सव्यसाची बहुत होनहार लड़का था। पता है नानी, मेरे स्कूल से केवल वही नेतरहाट गया था।”

आखिर सव्यसाची ने अपना कॉमिक्स पूरा कर लिया। उसके कवर के लिए उसने ड्राइंग शीट पर बेहद सुंदर चित्र बनाया : महानगर के सबसे ऊंचे घंटाघर के ऊपर अकेला खड़ा शाइनिंग स्टार। उसकी चमक से चकाचौंध षडयंत्रकारी। पीछे रात का दृश्य। शाइनिंग स्टार के ठीक पीछे धनु तारामंडल, जिसमें आकाशगंगा का केंद्र है। प्रकाशपुंज का दिव्य स्रोत। जिस तरह सुपरमैन क्रिप्टन ग्रह से आया था, साबू बृहस्पति ग्रह से, उसी तरह शाइनिंग स्टार धनु तारामंडल के पूर्वाषाढा नक्षत्र के पास ‘एम 22’ गोलाकार तारा गुच्छ से आया है जो धरती से 27,000 प्रकाश वर्ष दूर है, जो 250 प्रकाशवर्ष चौड़ा है, जिसमें लाखों तारें हैं। शाइनिंग स्टार अपनी शक्ति धनु

तारामंडल से लिया करता है। इसलिए सूर्य जब धनु राशि में होते हैं, उन दिनों शाइनिंग स्टार अपनी दीप्ति और कांति में कई गुणा बढ़ जाने के कारण लगभग अजेय हो जाता है।

सव्यसाची ने सत्या को अपनी मेहनत का नतीजा दिखाया। उसने एक ही झटके में सारी कॉमिक्स पढ़कर कहा, “बहुत अच्छा है।” सव्यसाची ने पूछा, “अरे, इतना जल्दी कैसे पढ़ लिए?”

“बस पढ़ लिये।” सत्या मुस्कराकर बोला। अविश्वास से सव्यसाची ने सत्या से कॉमिक्स की कहानी पूछी। सत्या ने पूरी बता दी। सव्यसाची ने निराश होकर कहा, “हम तुम्हारी जगह होते तो बहुत वक्त देकर पढ़ते। तुम कुछ गौर नहीं किए हो कि किस तरफ किस दृष्टिकोण से चित्र बना है। किस पेज पर आधा पेज का डिजाइन है, किसमें चौथाई पेज का। जितना मेहनत से बनाया गया है, वह तुम ध्यान भी नहीं दिए होगे।”

चुप सत्या अचानक से बोला, “इतना तो कोई नहीं देखता।” सव्यसाची ने गहरी सांस लेकर कहा, “यही विडम्बना है कला के साथ। खैर, इस कॉमिक्स को दो तीन लोग को पढ़ा कर देखते हैं। पसंद आता है या नहीं।”

### तीसरा चरण

सव्यसाची की बनाई सजायी कॉमिक्स का आवरण वाटर कलर से खिल रहा था। अंदर के कुछ पृष्ठ स्केच और आयल पेस्टल से रंगे थे। शेष पृष्ठ कहीं रेखाचित्र तो कहीं पेंसिल ड्राइंग से थे। वह कॉमिक्स पहले उदय ने पढ़ी, फिर उसके मोहल्ले के दोस्त मनीष ने, फिर आशीष ने, फिर पिंटू ने, फिर चिंटू ने, फिर आमोद ने, फिर प्रमोद ने, फिर उनकी बहन नीतू ने, नीतू की सहेली मधु ने। मधु के पापा ने घर में पड़ी कॉमिक्स देख ली और पढ़ डाली। फिर उनसे उनके मित्र रामनरेश अपने घर ले गए। वहां से फिर उनके मित्र गयाप्रसाद अपने डेरे ले जाकर पढ़ने लगे। गयाप्रसाद के बेटे पिंकू ने अपने घर में पड़ी कॉमिक्स लेकर वापस सव्यसाची को पहुंचाई जो दो दिन से कॉमिक्स गुम जाने के कारण मनीष पर बहुत बिगड़ रहा था। जब तक सव्यसाची के पास उसकी कॉमिक्स वापस आई तब तक दीपक भैया, कृष्णा भैया, सोनू भैया तक भी बात पहुंची। मोनी दीदी, जिनकी शादी दो महीने में होने वाली थी, कॉमिक्स मांगने आ गई। अपने मंगेतर को दिखाकर रौब जमाना था कि ससुराल वाले कितने प्रतिभाशाली हैं। सव्यसाची मोनी दीदी को कैसे मना करता? फिर मनीषा दीदी, उसके बाद गुड्डू, बबू, अनिल, सुनील, गुड़िया सब ने एक एक करके कॉमिक्स पढ़ ली।

नतीजा ये हुआ कि सव्यसाची के मां पिता जी तक भी बात पहुंची। पिताजी बाहर से घूमकर जब आए, तो उन्होंने सव्यसाची को आवाज दी, “ऐ सव्यसाची, ये शाइनिंग स्टार क्या है?” सव्यसाची के होश फाख्ता। अब क्या कहा जाए? पिताजी ने फिर पूछा, “अरे, कॉमिक्स बनाई है तो हमें भी पढ़ाओ। पूरे मोहल्ले में हंगामा मचा हुआ है।” सव्यसाची चुपचाप सुनता रहा, तब तक सत्या भी वहां आ गया। सोफे पर पसरकर पिताजी ने मां को आवाज लगाई, “सुनती हो..टेलीफोन विभाग वाले इंद्रदेव जी मिले। वो बता रहे थे कि आपका बेटा बड़ा तीरंदाज है। पढ़ने में तो होशियार है ही, क्या कॉमिक्स बनाता है।”

सव्यसाची ने सोचा कि पिताजी से तारीफ मिलने ही वाली है। तभी उसके पिताजी ने कहा, “कॉमिक्स बनाना कोई बड़ा काम नहीं है। अल्जेब्रा समझ में आए तो हमसे बात करना। यह सब मन बहलाने के लिए है। होशियारी तो इसमें है कि गणित में सौ में सौ लाकर दिखाओ। दुनिया में ताली बजाने वाले बहुत मिल जाएंगे, चुनौती देने वाला जब मिलेगा तो ताली बजाने वाले गायब

हो जाएंगे। तालियों पर मत जाओ।”

ऐसा सुनकर सब्यसाची का चेहरा कुम्हला गया। सत्या भी मायूस हो गया। दोनों भाई बैठक से बाहर निकलकर अहाते में आ गए। सत्या ने कहा, “पिताजी ने कॉमिक्स देखी नहीं, पहले ही कहने लगे।”

“वो ठीक कहते होंगे।” सब्यसाची ने शांति से कहा।

“लेकिन भैया, तुमको पता ही होगा। पूरे मोहल्ले में कैसी आग फैली हुई है। सोचो अगर कॉमिक्स छप जाए तो क्या होगा? सुपरमैन जैसे बिकेगी। पूरे भारतवर्ष में छा जाएगी।” सत्या ने जोश में कहा।

“हो सकता है।” सब्यसाची अहाते में सूरजमुखी के पौधे के पत्तों पर से धूल हटाने में जुट गया। “ऐसा ही होगा। तुम कॉमिक्स छपवाओ तो?”

“सोचते हैं,” सब्यसाची ने कहा, “हम कल रात शाइनिंग स्टार का स्टीकर बनाए हैं। जहां किताबें रखी हैं, वहीं पर रखा हुआ है। तुम उसके पीछे गोंद लगाकर कहीं चिपका दो। कॉमिक्स छपाने के लिए कुछ करना पड़ेगा।”

“कहां से छपवाओगे?” सत्या पूछा।

“जनता प्रेस, घोसीटोला में है न।” सब्यसाची बोला।

छुट्टी के दिन में रुनकी और झुनकी साइकिल चलाकर स्कूल पहुंचीं। सांस्कृतिक कार्यक्रम में भाग लेने वाली लड़कियां और एक टीचर ही स्कूल आई थीं। झुनकी को ऐसे स्कूल आना बहुत अच्छा लगा, मानों आजादी मिल गई हो। कोई टीचर टोकने वाली नहीं कि कक्षा में जाओ, या इधर मत दौड़ो उधर मत खेलो। यह सोचते ही झुनकी के चेहरे पर मुस्कान दौड़ गई। रुनकी अपनी सहेलियों से मिलकर कार्यक्रम की रूपरेखा पर चर्चा करने लगी। झुनकी अपने क्लास की लड़कियों के पास पहुंची। उसने ‘ए’ सेक्शन वाली लड़कियों से कहा, “हम सोलो गाना गाना चाहते हैं। ये ग्रुप डांस हमसे नहीं होगा।” सी सेक्शन वाली लड़कियां अपने सेक्शन की किसी लड़की से गाना गंवाना चाहती थी। फिर मौलश्री के पेड़ के नीचे बैठी आठवीं क्लास की लड़कियों के पास यह मुद्दा गया। रुनकी ने कहा, “मेरी बहन है तो क्या हुआ। तुम लोग भला बुरा जांच लो। हम इसमें कुछ नहीं बोलने वाले।” रुनकी की सहेलियों ने झुनकी को गवा कर देखा। झुनकी का मधुर गला देखकर उन्होंने तय किया कि स्कूल की तरफ से झुनकी ही सोलो गाना गाएंगी। रुनकी की दोस्त एकता बोली, “झुनकी, ये फिल्मी गाना मत गाना। कोई देशभक्ति गाना गाओगी तो ही प्राइज मिलेगा।”

झुनकी का चेहरा लाल हो गया। उसने तेज आवाज में कहा, “गाना तो गाना होता है। फिल्मी है तो क्या हुआ, सुरीला गाना है।”

यह सुनकर एकता तपाक से बोली, “हम तो तुमको प्राइज जीतने का उपाय बता रहे थे। बाकी तुम्हारी मर्जी, जो गाना है वो गाओ। प्राइज मिलेगा तो स्कूल का नाम होगा। सुनो, गाने की प्रैक्टिस अच्छे से कर लो। परसों रिहर्सल के लिए ‘मॉडल स्कूल’ पहुंच जाना। जो गाना गाओगी, वह हमको लिखा दो। वहां म्यूजिक के लिए पहले बताना पड़ता है। रिहर्सल में एक बार अच्छे से परफॉर्म कर लेना।” झुनकी ने हां में सिर हिलाया तो लाल रिबन से बंधी उसकी दोनों चोटियां हिल गईं।

अगले दिन सुबह झुनकी अहाते में झाड़ू दे रही थी, कि दरवाजे पर घंटी बजी। झुनकी ने देखा कि कोई अखबारवाला लड़का आया है। झुनकी उसके पास जाकर बोली, “हमारे यहां दूसरा अखबारवाला अखबार दे जाता है।”



झंपते हुए उदय ने कहा, “हम अखबार देने नहीं आए हैं। हम रुनकी के दोस्त हैं। उसको बुला दोगी?” झुनकी अचकचायी, फिर उसका नाम पूछकर अंदर चली गई। रुनकी हंसते हुए बाहर आकर बोली, “उदय, तुम कैसे आए? सॉरी, मेरी बहन कुछ और समझ ली।” उदय जो अभी तक साइकिल पर ही बैठा था, उतरकर साइकिल लगाते हुए बोला, “कोई बात नहीं। हम तो एक काम से आए हैं। पर तुमसे नहीं, तुम्हारे पापा से काम हैं। वो फुर्सत में होंगे क्या? हमको दो चार मिनट जरूरी बात करनी थी।”

“क्या काम है उनसे? तुम तो कॉलेज में भी नहीं पढ़ते। कॉलेज वालों को उनसे काम पड़ता है।” रुनकी पूछी।

“हम ऐसे नहीं बता सकते हैं रुनकी। बहुत टॉप सीक्रेट है। समझो कि ऐसा है कि जिससे दुनिया का बहुत फायदा हो सकता है। तुम पिताजी से पूछ के तो आओ।”

“अच्छा, तुम ठहरो। हम पापा से पूछकर आते हैं।” रुनकी अंदर चली गई। झुनकी अपने काम में व्यवधान पाकर थोड़ी नाराज थी। रुनकी ने थोड़ी देर में बाहर आकर कहा, “चलो, अंदर जाकर बैठो। पापा आ रहे हैं।”

उदय रुनकी झुनकी के ड्राइंग रूम में जाकर बैठा। थोड़ी देर बाद उसके रौबदार पिताजी कुर्ता पजामा पहने, पश्मीना शॉल ओढ़े बैठक में आए। उदय ने फौरन पांव छूकर प्रणाम किया।

“खुश रहिए। कहिए, कैसे आना हुआ?”

उदय की हिम्मत दो पल के लिए जवाब दे गई। फिर उसने जी कड़ा करके पूछा, “एक बात पूछनी थी।”

“हमम..” रुनकी के पापा ने काले मोटे चश्मे के फ्रेम से उसे घूरकर देखा। उदय का जी ढीला हो गया। फिर साहस करके उसने पूछा, “अगर कोई आविष्कार करे तो दुनिया को कैसे पता चलता है?”

“मतलब?”

“मतलब कि कोई नया खोज हो, नया चीज का पता चले तो क्या सीधे अखबार में इतला दी जाती है क्या?”

रुनकी के पापा थोड़ा मुस्कराए, “ये खोज, ये नई चीज किस बारे में है? कोई गड़ा खजाना मिला है क्या?”

“ये खोज केमिस्ट्री से जुड़ी है। एक नए रासायनिक अभिक्रिया के बारे में।” उदय ने खुलासा किया। उसके साथ ही मन में सोचने लगा कि कुछ भी हो जाए टॉप सीक्रेट नहीं बताना है। रुनकी होती तो और बात थी, रुनकी दोस्त है। उसपे भरोसा किया जा सकता था। उसके पापा दुनियादार आदमी हैं। उसका आइडिया चुराकर अपने नाम से पेटेंट करा लेंगे। खुद अरबपति बन जाएंगे, जनकल्याण के बारे में सोचेंगे भी नहीं। फिर मौलश्री के पेड़ उसके मोहल्ले में नहीं लग पाएंगे। जूही के पौधे संदलपुर की सड़कों के किनारे नहीं लगेंगे। होने वाली सुंदरता नष्ट हो जाएगी। उसके पिताजी घर वापस नहीं आएंगे। कुछ भी हो, इस सत्य की रक्षा करनी होगी। कुछ नहीं बताना होगा। एक शब्द नहीं।”

“...आप मेरी बात सुन रहे हैं?” रुनकी के पापा की आवाज सुनकर उदय की तंद्रा टूटी। “जी...जी...”

“क्या हुआ? बड़े नर्वस लग रहे हो। पानी पी लो।” रुनकी के पिताजी ने पानी से भरा शीशे का गिलास आगे बढ़ाया।

यह सुनते ही उदय ने सोचा कहीं यह नशीला पानी तो नहीं? उसको बेहोश करके रुनकी

के पिताजी कहीं उससे टॉप सीक्रेट नहीं उगलवा लें। उसने संयत होते हुए कहा, “सुबह सुबह अखबार बांटते हुए कभी कभी ऐसे पसीना आ जाता है। आप क्या कह रहे थे?”

गिलास वापस टेबल पर रखते हुए उन्होंने कहा, “देखो बेटा, ऐसा है कि जब भी केमेस्ट्री में ऐसी कोई नई खोज होती है तो साइंटिफिक जर्नल में सूचित किया जाता है। जैसा तुम बता रहे हो कि कोई नई रासायनिक अभिक्रिया है, उस स्थिति में रिएजेंट या अभिकर्मक, उस अभिक्रिया का तापमान, दबाव, कैटालिस्ट (उत्प्रेरक) और बनने वाला उत्पाद बताना होता है। पहले इस खोज की बकायदा जांच की जाती है। लोग ऐसा करके देखते हैं कि दावा ठीक है या नहीं। अगर खोज सफल रही तो उसे जर्नल में छपा जाता है, कॉन्फ्रेंस में चर्चा की जाती है, और अगर उस अभिक्रिया का कोई किफायती व्यावसायिक पहलू है तो फिर उसे बाजार में लाया जाता है।”

“किफायती और व्यावसायिक पहलू तो है...” उदय कहते कहते रुक गया।

“क्या हुआ? तुम इतना घबरा क्यों रहे हो?” रुनकी के पापा ने झुंझलाकर पूछा।

“तापमान और दबाव कैसे नापते हैं?” उदय ने थूक निगलते हुए पूछा।

“सबके यंत्र आते हैं। अरे, क्या हुआ तुम्हें? कुछ बताओ भी?” रुनकी के पापा ने घबरा के पूछा, तब तक उदय चक्कर खाकर सोफे के किनारे झुक गया था। जब रुनकी के पापा ने पानी पिलाया, तब उदय की मरी मरी आवाज आई, “मैं ठीक हूँ। मैं एकदम ठीक हूँ। कभी कभी सुबह ऐसा हो जाता है। अब मैं चलता हूँ।” रुनकी के पापा ने हैरान होते हुए पूछा, “तुम्हें यह नई रासायनिक अभिक्रिया के बारे में कैसे पता चला?” दुबला पतला उदय यह सुनकर फिर से पीला पड़ गया। झट से उठकर बैठक से बाहर निकलते हुए उसने कहा, “मैं जल्दी ही आपसे मिलकर आपको सब बताउंगा। अभी मेरा जाना बेहद जरूरी है।” कहते हुए वह लगभग दौड़ते हुए घर से बाहर निकला। साइकिल उठायी और वहां से सरपट रवाना हो गया।

रिहर्सल के दिन मॉडल स्कूल पहुंचकर सत्या ने वहां के संयोजक टीचर को जाकर प्रणाम किया, “नमस्ते सर, मेरा नाम सत्या है। हम भी सांस्कृतिक कार्यक्रम का हिस्सा बनना चाहते हैं।” उसके टीचर ने उसके स्कूल का बैज देखकर कहा, “तुम्हारे स्कूल से लोग भाग ले ही रहे हैं। तुम उनके साथ नहीं हो क्या?”

सत्या ने सकुचाकर कहा, “वे नाच गाने में भाग ले रहे हैं। हम कुछ और करना चाहते हैं।”

“और क्या करना चाहते हो? जो प्रतियोगिता होगा उसी में तो भाग लोगे।” टीचर ने आश्चर्य से कहा।

“हम उद्घोषक बनना चाहते हैं। कार्यक्रम के संयोजन में आपका मदद करना चाहते हैं।” यह सुनकर टीचर ने कहा, “कायदे से तो यह मेरे स्कूल के लड़कों को करना चाहिए। लेकिन इस लड़कों के स्कूल में कोई इसमें रुचि ही नहीं दिखाता। गर्ल्स स्कूल होता तो वहां इस काम के लिए दस लड़कियां लड़ रही होतीं। हमें बहुत खुशी है कि तुम इसके लिए आगे आए। तुमको देखकर किसी का याद आ रहा है। कुछ साल पहले यहां एक लड़का गाना गाकर प्राइज जीता था। बड़ा होनहार लड़का था।”

“सव्यसाची?”

टीचर ने खुश होकर कहा, “हां, हां, यही नाम था। तुम उसको जानते हो?”

“हम उसके छोटे भाई हैं।”

“ओह अच्छा।” सुखद आश्चर्य से भरकर टीचर ने कहा, “तुम्हारा भैया कहां है आजकल?”

“नेतरहाट में पढ़ता है।” सत्या ने बताया, “छुट्टी में आया हुआ है।” टीचर ने खुश होकर कहा, “अरे वाह! हमारे शहर का लड़का नेतरहाट पहुंच रहा है। उसको बुलाना यहां के कार्यक्रम

में।” फिर सत्या ने कार्यक्रम की रूपरेखा और सभी प्रतियोगियों का नाम देखा। झुनकी का नाम देखकर उसे सिहरन सी हुई। टीचर ने कहा, “आज रिहर्सल है। पूरे दिन बैठकर सबको देखो। कोई परेशानी कोई चिंता हो, हमको बताना। हम यहीं आसपास तुमको मिल जाएंगे। कल कार्यक्रम में हम पूरे समय तुम्हारे साथ रहेंगे।”

थोड़ी देर में संतोष सिन्हा और उसकी मित्र मंडली आ गई। संतोष सिन्हा को जब मालूम चला कि सत्या वहां उदघोषणा करेगा, उसने आकर सत्या को बधाई दी। कुछ ही देर में गर्ल्स स्कूल की लड़कियां भी रिहर्सल को आ गईं। रुनकी ने जब सत्या को देखा तो मुस्कुरा दी। सत्या की निगाहें तो किसी और को ढूंढ रही थीं। आखिर कुछ देर बाद वह नजर आ गई। लंबा चेहरा, बड़ी आंखें, लाल होंठ, लाल रिबन से गुंथी दो चोटियां, खिलखिलाती दूध सी गोरी उसकी दोस्त झुनकी। सत्या का मन हुआ कि झट से जाकर उससे मिले और पूछे कि उसका पोस्टकार्ड उसे मिला या नहीं। पर उसने सोचा कि झुनकी से जब नजर मिलेगी तब उसके पास जाएगा। झुनकी म्यूजिक देने वालों से बात कर रही थी। जब वह घूमी उसकी नजर दूर खड़े सत्या पर पड़ी। सत्या को देखते ही झुनकी की हंसी गायब हो गई। उसका चेहरा कठोर हो गया और वह तेज कदमों से वापस अपनी सहेलियों की तरफ चली गई।

यह देखकर सत्या का दिल एंठ गया। झुनकी ने उसकी दोस्ती को गलत समझा। एक तो इतने दिनों बाद दिखी और वह भी इतनी बेरुखी से। कैसे वह उसकी दोस्ती भूल गई। ठीक है, अगर झुनकी को बुरा लगता है तो वह भी झुनकी से बात नहीं करेगा। यह सोचकर वह भी अपने स्कूल के दोस्तों के पास जाकर बेमन से उनकी प्रैक्टिस देखने लगा।

### चौथा चरण

उस दिन सुबह से ही झुनकी घबरायी सी थी। सारे काम उल्टे पुल्टे हो रहे थे। रसोई में मां पुकारती तो सुनती ही नहीं। कभी रुनकी कुछ कहती तो जैसे झुनकी ने कुछ सुना ही नहीं। रह रहकर अजब सी बेचैनी सी उठती थी। नसों में मीठा दर्द सा उठता था। जब वह नानी के पास गई, नानी ने उसके बालों में तेल लगाने के लिए पास बिठाया, “क्या बात है झुनकी? बहुत घबरायी सी हो!”

“नानी, डर लग रहा है।” बाल खोली झुनकी ने आहिस्ते से बताया।

“धतू पगली! क्यों डर लग रहा है?” नानी हंसी।

“अगर हमको प्राइज नहीं मिला तो? फर्स्ट कोई और कर गया तो?”

“तो कोई और करेगा। इसमें डरने की क्या बात है?” झुनकी यह सुनकर रोआंसी हो गई, “तुम भी नानी...ये नहीं कि बोलो कि झुनकी ही जीतेगी। कोई और जीतेगा और लोग झुनकी पर हंसेंगे।”

“कोई नहीं हंसेगा। डरने की कौन सी बात है? कल मम्मी ने तुम्हारे लिए नई लाल फ्रॉक ली न? उसके लिए खुश हो जाओ। शैंपू करके नहाना। तुम्हारे खुले बालों में नलिनी जयवंत जैसा एक रिबन लगा देंगे।”

झुनकी मुस्कुराकर बोली, “हां नानी। फ्रॉक बहुत सुंदर है। लेकिन अगर हम नहीं जीते तो हम उस फ्रॉक को फिर कैसे पहन सकेंगे? जब जब यह फ्रॉक दिखेगा, हमको आज का दिन याद आएगा।”

“तुम तो ऐसे कह रही हो जैसे आज तुम हार ही जाओगी।” रुनकी आकर दोनों के पास

बैठ गई और उलाहना दिया, “इतना डरती हो तो फिर तुम शायद ही जीतो।” यह सुनकर झुनकी ने रुनकी को जीभ दिखाया।

जब झुनकी तैयार होकर जाने लगी, तब मां ने कहा, “झुनकी, पूजा रूम जाकर भगवान से प्रार्थना कर लो। सुनो, हारने जीतने के लिए भाग नहीं लिया जाता है। अच्छे से गाना।”

दोपहर तीन बजे से शाम आठ बजे तक का कार्यक्रम था।

शुरू में ग्रुप डांस की प्रविष्टियां थीं। शहर के नामीगिरामी छह विद्यालयों से प्रतिभागिता थी। झुनकी बार बार अपने गाने की प्रैक्टिस कर रही थी। साढ़े पांच बजे जब एकल गायन का कार्यक्रम शुरू हुआ, सत्या की आवाज माइक पर गूंजी, “अब एकल गान की प्रविष्टियां पेश की जा रही हैं। सबसे पहले आ रही हैं गर्ल्स स्कूल की कक्षा छह की ‘कुमारी सुश्री’। जोरदार तालियों से इनका स्वागत कीजिये।” रुनकी और उसकी सहेलियों ने जमकर तालियां बजाईं।

अपना नाम सुनकर झुनकी स्टेज पर आई और उसने माइक थाम कर गाना शुरू किया,

ठंडी हवाएं, लहरा के आएँ  
रुत है जवाँ,  
तुमको यहां, कैसे बुलाएँ  
ठंडी हवाएं...

कहा भी न जाए, रहा भी न जाए  
तुमसे अगर, मिले भी नजर, हम झेंप जाए  
ठंडी हवाएं, लहरा के आएँ  
रुत है जवाँ,  
तुमको यहां, कैसे बुलाएँ  
ठंडी हवाएं...

सत्या की नजर गाती हुई झुनकी से मिली और वह झेंप गया। सामने चार सौ लोगों की भीड़ को देखकर झुनकी अंदर से घबरा रही थी। सत्या उसकी घबराहट को सुरों में महसूस कर रहा था। अंतिम पैरा गाते गाते झुनकी रौ में आ गई। मानों उसका लाल फ्रॉक हवा के झोंके में उसके गाने के साथ लहरा रहा हो। अगल बगल गुलाब के फूल से लदी झाड़ियां मद्धिम मद्धिम हिल रही हों। लाल गुलाब की खुशबू जैसे सबको गुदगुदा रही हो। ‘कैसे बुलाएँ’ गाते समय उसके चेहरे पर गुलाबी मुस्कुराहट बिजली की तरह दौड़ गई, क्योंकि अब सामने की भीड़ उसके साथ गुनगुनाने लगी थी।

लला ला लला हमम हम हमम...कैसे बुलाएँ...

सव्यसाची यह सोचकर घर से निकला था कि मॉडल स्कूल के सांस्कृतिक कार्यक्रम को देखने समय पर पहुंच जाएगा। रास्ते में घोसीटोला के जनता प्रेस को देखकर वह ठिठक गया। बहुत दिनों से जो वह सोच रहा था, उसे क्रियारूप में लाने का समय आ गया था। बत्तीस पेज की एक कॉमिक्स तीन रुपये की मिलती है, और चौंसठ पेज वाली कॉमिक्स छह और बहुत मोटी ढाई सौ पेज वाली कॉमिक्स बीस रुपये में मिल जाती है। इस हिसाब से अगर बीस कॉपियां भी छपवाकर बेची जायं, तो कुछ मुनाफा का अंदाजा लगेगा। इस तरह से छोटामोटा बिजनेस किया ही जा सकता है। कुछ कॉपियां मोहल्ले में बेच दी जाएंगी। उससे जो पैसा आएगा, उससे और कॉपियां छपवाकर बुकस्टॉल में रखवा दी जाएंगी। इसके बाद रेलवे स्टेशन पर भी बात की जा सकती है। अगर यह चल गया, फिर पूरे देश में सप्लाई किया जा सकता है। संदलपुर में बेचने के लिए उदय ही काफी

है। हर घर जाकर बेच आएगा। यहां के उभरते लड़कों ने यह कॉमिक्स लिखी है, यही सुनकर हजारों लोग कॉमिक्स खरीद लेंगे।

जनता प्रेस का दरवाजा खटखटाने से लुंगी पहना एक अधेड़ आदमी बाहर आया, “क्या काम है?” उसने रुखाई से पूछा। सव्यसाची ने कहा, “मुझे जनता प्रेस के मालिक से बात करनी है।”

“काम तो बताओ?”

“आप ही मालिक हैं क्या?” सव्यसाची ने पूछा। “नहीं, लेकिन हम ही यहां सब कुछ देखते हैं। क्या छपवाना है? शादी का कार्ड? मुंडन का कार्ड?” उसने पूछा।

सव्यसाची ने पूछा, “आप कॉमिक्स छाप सकते हैं?”

सुनकर वह अचकचाया। “कॉमिक्स?”

“कॉमिक्स नहीं देखे हैं? चाचा चौधरी, सुपरमैन, स्पाइडरमैन?” सव्यसाची ने पूछा। “हां, देखे हैं। चाचा चौधरी पढ़ते भी हैं। आज तक कोई हमसे कॉमिक्स छपवाने नहीं आया। तुम अंदर बैठो। बैठकर बात करत हैं।” कहकर वह अंदर अपने रूम में चला गया।

सव्यसाची प्रेस का मुआयना करने लगा। वहां दीवार पर ‘मुंडन का कार्ड’, ‘शादी का कार्ड’ आदि के रेट टंगे हुए थे। सव्यसाची उन्हें देख ही रहा था कि अंदर से वह आदमी शर्ट पैंट पहनकर बाहर आया और ठीक से बैठ गया, “अब बताओ। कितना पेज का है? कितना कॉपी छपवाना है? कौन बनाया है कॉमिक्स?”

सव्यसाची बोला, “हम बनाए हैं। हाथ से। मेरे मोहल्ला में अभी तक सौ से ज्यादा लोग उसको पढ़ चुके हैं। इतने लोगों के हाथ में जाते जाते पन्ना खराब हो रहा है। इसलिए हम सोच रहे हैं कि इसको छपवा लें।”

“कलर छपवाओगे?”

“हां। बिना कलर के कॉमिक्स कहीं अच्छा लगेगा?” सव्यसाची ने पूछा, “आप बताइए कितना पैसा लगेगा?”

“कितना कॉपी छपवाओगे?” उसने अपना गंजा सिर खुजाया।

“एक!” सव्यसाची ने कहा, “पहले एक ही छपवाएं। अगर अच्छा रहा तो रिपीट आर्डर देंगे। कितना लगेगा?”

“एक ही छपवाओगे?” गंजे ने हंसकर कहा। सव्यसाची को उसको हंसता हुआ देखकर गुस्सा आया। उसने कहा, “पैसा तो बताइए? कितना लीजिएगा?”

गंजे ने कहा, “दस हजार रुपये।”

यह सुनकर सव्यसाची खड़ा होकर चीखा, “दस हजार रुपये? एक कॉमिक्स के?”

“हां।” गंजे ने कुर्सी की तरफ इशारा करके कहा, “बैठ जाओ।”

सव्यसाची ने आश्चर्य से कहा, “आज की तारीख में बत्तीस पेज की एक रंगीन कॉमिक्स बाजार में तीन रुपये में मिलती है। आप कितना भी मुनाफा रखिएगा, दस बीस रुपये से ज्यादा दाम नहीं होना चाहिए।”

गंजे ने पूछा, “आप क्या करते हैं?”

“हम आठवीं कक्षा में पढ़ते हैं।” सव्यसाची ने कहा। गंजे ने दो सेकेंड इधर उधर देखकर कहा, “आप कभी बाजार से रोटी खरीदे हैं?”

“नहीं। हम क्यों खरीदेंगे।”

“उदाहरण दे रहे हैं। जरा समझिये। ठेला पर कोई रोटी सब्जी बेचता है तो केवल एक रोटी

और चार चम्मच सब्जी बनाकर नहीं बेचता है। बहुत से लोग का खाना बनाता है। अब अगर उसको एक ही रोटी बनाने का आर्डर मिले तो वो क्या करेगा? पहले जाकर एक गैस सिलिंडर खरीदेगा या स्टोव खरीदेगा। गैस सिलिंडर एक रोटी के लिए छोटा तो नहीं हो जाएगा न? सस्ता में काम चलाया तो एक स्टोव तो लेना ही होगा। बाजार से आटा खरीदने जाएगा। आटा कोई एक मुट्ठी नहीं बेचेगा न? कम से कम पाव भर या आधा किलो तो खरीदना होगा। इसी तरह आलू, प्याज, हरी सब्जी, हल्दी, धनिया, मसाला और बाकी छोटा छोटा चीज का दाम लगाकर एक रोटी और चार चम्मच सब्जी जो आठ आना में मिलना चाहिए, उसका दाम तीन सौ रुपया हो जाएगा। अब आप समझें !”

यह सुनकर सव्यसाची चुप हो गया। मन ही मन उसने सोचा कि यह गंजा उसको बेवकूफ बना रहा है क्योंकि यह कलर कॉमिक्स छाप ही नहीं सकता। अपनी इज्जत बचाने के लिए उसे गुमराह कर रहा है। लेकिन वह अधेड़ गंजा बहुत दुनियादार आदमी था। उसने फौरन सव्यसाची के चेहरे पर उभरती शंका को समझ लिया और बोला, “आप चाहें तो कहीं और भी बात कर लीजिये। बाजार खुला है। हर कोई यही कहेगा। लेकिन हमारी तरह कोई आपको बिठा कर समझाएगा नहीं। आप कॉमिक्स साथ लेकर आए हैं? आपका कॉमिक्स हम देख सकते हैं क्या?”

सव्यसाची ने अपने झोले में से कॉमिक्स निकालकर उसको देखने को दिया। अधेड़ ने उसको देखकर पढ़ना शुरू किया। सव्यसाची को ऐसे देखते देखकर वह बोला, “हमको दस मिनट दीजिये हम अभी पढ़कर आपको वापस करते हैं।”

दस मिनट बाद उसने सव्यसाची को कॉमिक्स वापस करके कहा, “आप तो बहुत अच्छे चित्रकार हैं। बहुत अच्छा कॉमिक्स बनाए हैं।”

“आप इसको छापिएगा?” सव्यसाची ने एकबार फिर पूछा।

“आप मेरी बात नहीं समझे। हमको छापने में क्या है? एक कॉपी छपवाइये या पांच सौ कॉपी। दस हजार रुपये लगेंगे। कम से कम पांच सौ कॉपी छपवाना पड़ेगा।”

सव्यसाची निराश हो गया। उसको मायूस देखकर प्रेस वाले ने कहा, “आप बहुत प्रतिभाशाली हैं। हम एक बात कहें आपको?”

“जी?” सव्यसाची ने हैरानी से कहा।

“अभी आपकी उम्र ऐसे बिजनेस सोचने की नहीं है। अभी आप पढ़िये। क्या पता आप कल साइंटिस्ट बन जाइए। इन बातों में बहुत कुछ नहीं रखा है। हम आपको हतोत्साह नहीं कर रहे हैं। हम केवल इतना कह रहे हैं कि पढ़ाई पूरी कर लेने के बाद भी आपको ऐसे कॉमिक्स बनाने का विचार हो तो हमारे पास आइएगा। अभी सही समय नहीं है।” सव्यसाची उठकर जाने को हुआ। जाते जाते उसने प्रेस वाले से पूछा, “आप कितना पढ़े हैं?”

प्रेसवाले ने हंसकर कहा, “हम दसवीं के बाद नहीं पढ़ पाए। हम टाउन स्कूल से पढ़े थे। पूरे जिला में टॉप किए थे। उसी साल मेरे पिताजी का देहांत हो गया। तब से हम छोटा मोटा नौकरी करके घर चला रहे हैं। आपको पढ़ाई का मौका मिला है। जी भर के पढ़िए। सबको पढ़ने का मौका कहां मिलता है।”

सव्यसाची सुनकर चुपचाप मॉडल स्कूल की ओर बढ़ चला।

सत्या मंच के पास से संतोष सिन्हा के एकल गायन की घोषणा की। उसने सव्यसाची को आकर हॉल में पिछली सीट पर बैठते देखा। संतोष सिन्हा ने माइक थाम कर गाना शुरू किया, *भारत हमारी मां है, माता का रूप प्यारा। करना इसी का रक्षा, कर्तव्य है हमारा।* सत्या के बाकी सहपाठी पीछे खड़े को होकर ताल देने लगे। सत्या के लिए विचित्र स्थिति पैदा हो गई। अगर उसे

किसी एक का साथ देना पड़े तो किसका दे? झुनकी, जिसे वह अपना दोस्त समझता है और वह उसे अपना दोस्त नहीं समझती, उसका दे? या संतोष सिन्हा जो उसके साथ पढ़ता है, उसका साथ दे? झुनकी अब गर्ल्स स्कूल में पढ़ती है, उसका साथ देना स्वार्थ होगा। संतोष सिन्हा भले ही उसके साथ पढ़ता है पर वह उसका मित्र नहीं है। इस अजब पसोपेश में वह पड़ा रहा। संतोष सिन्हा के गाने के बाद जबरदस्त तालियां बजीं। कार्यक्रम में जब परिणाम आने वाले थे, तब सत्या अपनी सीट छोड़कर सव्यसाची के पास आया। सव्यसाची उस समय हंसकर रुनकी से बात कर रहा था। रुनकी ने उसे देखकर कहा, “सव्यसाची, तुम्हारे भाई को हम चित्रकारी प्रतियोगिता में देखे थे। आज अच्छा बोल रहे थे तुम सत्या।”

सव्यसाची ने पूछा, “किसको पुरस्कार मिलेगा?” सत्या ने कहा, “पता नहीं।”

रुनकी बोली, “जिसको मिलेगा, उसको मिलेगा। तुम दिल से बोलो, किसका गाना सबसे अच्छा था।”

“झुनकी मेरी दोस्त है।” सत्या कुछ कहने को हुआ पर रुनकी ने टोक दिया, “दोस्त वोस्त छोड़ो। सबसे अच्छा किसने गाया?”

सत्या बोला, “हमको झुनकी का गाना सबसे अच्छा लगा।” रुनकी सव्यसाची से बोली, “तुम देखना। यहां प्राइज संतोष सिन्हा को मिलेगा।”

सव्यसाची बोला, “हमको उसका गाना पसंद नहीं आया। तुमको पसंद आया?”

“अरे नहीं। यहां का नियम है कि देशभक्ति वाले गाना को ही प्राइज मिलेगा। हम झुनकी को समझाये थे कि वंदे मातरम गाओ, पर वो कहां मानी। अगर यहां भक्ति गाना गाने दिया जाता, फिर भजन एंड्री ही हमेशा प्रतियोगिता जीतता।”

“झुनकी क्या गाई?” सव्यसाची ने पूछा। “फिल्मी गाना गाई थी : ठंडी हवाएं लहरा के आए।” सत्या ने कहा।

“फिर तो नहीं जीतेगी।” सव्यसाची ने हंसकर कहा। “क्यों?” सत्या ने आश्चर्य किया।

“अच्छा गाए या खराब। यहां प्राइज केवल देशभक्ति के गाने को ही मिलता है।” सव्यसाची ने कहा, “ये कोई गाने का प्रतियोगिता थोड़े ही है। विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने के लिए कार्यक्रम करते हैं।”

“उससे क्या फायदा?” सत्या ने पूछा। रुनकी ने कहा, “दरअसल ये सब जो निर्णायक हैं न, हम सबको जरूरत से ज्यादा बच्चा समझते हैं। हमको अब झुनकी को समझाना होगा। बेचारी बहुत मायूस हो जाएगी। अब हम चलते हैं। सव्यसाची, तुम कभी घर पर आना।” कहकर रुनकी चली गई।

सत्या वापस मंच के पास गया। पुरस्कार की जब घोषणा हुई, संतोष सिन्हा और उसके दोस्तों को ग्रुप डांस के लिए, साथ ही संतोष सिन्हा को एकल गायन के लिए पुरस्कार देने की घोषणा की गई। सत्या ने देखा कि तीसरी पंक्ति में रुनकी की बगल में बैठी झुनकी एकदम से मायूस हो गई। जैसे चांद को ग्रहण लग गया हो। सत्या को दिल हुआ कि जाकर झुनकी को समझाये और बताए कि वह बहुत अच्छा गाती है। उसे गाने की प्रैक्टिस जारी रखनी चाहिए। पुरस्कार जीतने के लिए देशभक्ति गाना जरूरी नहीं है।

सत्या को मौका मिला जब कार्यक्रम के बाद बाहर जाते हुए गुलाब की खुशबू से दमकती झुनकी उसके करीब से गुजरी। “झुनकी...” उसने आवाज दी। झुनकी झट घूमकर बोली, “हां बोलो सत्या?”

“तुम मुझसे नाराज हो?”

“नहीं तो?”

“मुझे लगा कि नाराज होगी।” सत्या ने झिझकते हुए कहा।

“क्यों नाराज होऊंगी।” झुनकी ने थोड़ी सख्ती से कहा। यह देखकर सत्या का रंग उड़ गया। उसने नजरें नीची करके कहा, “वो मैंने तुम्हें एक पोस्टकार्ड...”

“मालूम है तो पूछते क्यों हो?” झुनकी ने कड़ी आवाज में कहा। सत्या का दिल बैठ गया। शर्म से जैसे वह जमीन में गड़ गया, “तुमने वह पढ़ा...”

“नहीं.. फाड़कर फेंक दिया। तुम्हें शर्म नहीं आती चिट्ठी लिखते हुए।” झुनकी सत्या को झिड़क कर आगे बढ़ गई।

सत्या के कान लाल हो गए। मायूस चेहरे पे कोई हंसी नहीं आई, जब लोग उसे बधाई दे रहे थे। मॉडल स्कूल के टीचर ने उसे एक छोटा मेडल और कार्यक्रम में भाग लेने का प्रमाणपत्र दिया। सत्या वह लिए लिए गेट से बाहर निकला और घर की तरफ निकल पड़ा। सव्यसाची उसे वहां दूँढ़ता रहा, पर वह नहीं मिला।

घर आकर सव्यसाची ने बिना बताए घर चले आने पर डांट लगाई, पर सव्यसाची ने कुछ न कहा। वह तो रो भी नहीं सकता था।

सुबह अखबार बांट लेने के बाद उदय अपना झोला साइकिल पर टांगकर ‘मौलश्री तल्ले’ मोहल्ले से निकलकर गंगा घाट की तरफ निकल पड़ा। उसके पीछे पीछे मोहल्ले का कुत्ता भूंकता दुम हिलाता उसकी साइकिल के पीछे पीछे चल रहा था। झोले में उसने करीने से पुराने पॉलीथीन जमा कर रखे थे। साथ में कुछ और भी सामान था। रास्ते में उसे सव्यसाची साइकिल पर घूमता नजर आ गया, “उदय, इधर किधर?”

“तुम क्या कर रहे हो इधर?” उदय ने उल्टा सवाल किया। सव्यसाची ने कहा, “मां ने गंगा मिट्टी मंगाई थी। वही लेकर घाट से लौट रहे हैं। तुम? ऐसे तैयार हो जैसे हवन करने जा रहे हो? तुम्हारे रासायनिक अभिक्रिया का क्या हुआ? रुनकी बता रही थी कि तुम उसके पिताजी से मिलने गए और बीच बातचीत में ही भाग आए।”

“तुम रुनकी से कैसे मिल लिए?” उदय को आश्चर्य हुआ। सव्यसाची ने बताया कि किस तरह सत्या के सांस्कृतिक कार्यक्रम में वह गया था और रुनकी से बात हुई। उदय ने कहा, “केकुले नाम का एक रसायनशास्त्री था। उसको सपना आया था कि बेंजीन की संरचना कैसे है। जानते हो सपने में क्या देखा था? छः सांप गोल घेरे में एक दूसरे की पूंछ पकड़े हैं। इसी से बेंजीन की संरचना का आविष्कार हुआ। सो ऐसा है कि हमको भी कुछ ऐसा ही सपना आया है। आजकल हम वही दरियाफ्त कर रहे हैं।”

“अगर सही नहीं हुआ तो?” सव्यसाची ने पूछा।

“चार्ल्स गुडइयर का नाम सुने हो? मेहनत करते करते संयोग से उसको पता चला कि रबर में सल्फर मिलाने से रबड़ सख्त होता है। संयोग बहुत बड़ी बात होता है। सही हुआ तो संयोग, नहीं तो जै राम जी की। बम भोले बम भोले करके हम बाबाधाम हो जाएंगे। अब हम चलते हैं।”

“सुनो, हम छुट्टी पर आए हुए हैं। समय है तो चलो गंगा जी में नौका विहार पर चलते हैं। कष्टहरिणी घाट पर मिलोगे कल?” सव्यसाची के सवाल पर उदय ने कहा, “हम तुमको बताते हैं। अभी मुहुर्त निकला जा रहा है।”

गंगा के घाट पर एक सदियों पुराना टूटा फूटा मंदिर था, जहां अब पूजा बंद हो चुकी थी। उदय अपनी साइकिल लगाकर मंदिर के पीछे जाकर बैठ गया। उसके पीछे पीछे कुत्ता भी आ गया था। एक जगह थोड़ा साफ करके चार ईंट रखकर उदय वहीं कुछ सूखा लकड़ी रखा। फिर झोले



में से किरासन तेल, टीन का डिब्बा, पॉलीथीन, साथ में सिंदूर की पुड़िया, कपूर, नमक, नौशादर जैसा कुछ कुछ सामान निकालकर रखा।

आग लगाकर सबसे पहले उसने टीन के डिब्बे में पॉलीथीन के टुकड़े और एक चुटकी सिंदूर निकालकर गर्म करना शुरू किया। बड़ी तीखी दुर्गंध आने लगी। उदय बड़बड़ाया, “पॉलीथीन ही अभिकर्मक है। सिंदूर ही उत्प्रेरक है। सामान्य ताप दाब पर अगर यह ब्यूटरिक एसिड बन जाए, तो मेरा प्रयोग सफल हो जाएगा।”

टीन के डिब्बे से ऐसे जानलेवा दुर्गंध आने लगी कि उदय ने फौरन लकड़ी के दो टुकड़ों से पकड़कर डिब्बे को आग से हटाया। उदय ने सोचा, “अगर यह ब्यूटरिक एसिड बन गया है तो इसकी परीक्षा करनी चाहिए। इसका रासायनिक परीक्षण भले न हो, भौतिक परीक्षण करके देखते हैं। क्यों न यह गरम गरम मक्खन इस कुत्ते को चटाकर देखा जाय।”

यह सोचकर उसने लकड़ी का टुकड़ा टीन के डिब्बे में डुबोया और उसे कुत्ते की लपलपाती जीभ पर रखा। उसके बाद काला कुत्ते बिलबिला कर भौं भौं करके भूंकने लगा। उदय दोबारा उसके नजदीक गया, तब कुत्ते ने गुर्गुरा कर जो झपट्टा मारा कि उदय के होश उड़ गए। उसने सोचा, “लगता है मक्खन नहीं बना है अभी तक। हो सकता है बन गया हो, लेकिन मक्खन गरम होगा और कुत्ते की जीभ जल गई होगी। क्या पता मक्खन कड़कड़ा कर शुद्ध घी बन गया हो!”

अभी उदय यह सब सोच ही रहा था कि एक शर्ट पैंट पहने आदमी मफलर लगाए उधर से गुजरा और फिर उदय की तरफ आने लगा, “क्या जी तांत्रिक हो क्या? क्या कर रहे हो यहां घाट पर आग जला के?”

उदय सकपका गया, “हम वैज्ञानिक प्रयोग कर रहे हैं।”

“ऐसे प्रयोग होता है? प्रयोग होता है प्रयोगशाला में। क्या प्लास्टिक जला रहे हो? भागो यहां से।” उदय पहले तो सकपकाया फिर चढ़ के बोला, “आप हमको भगाने वाले होते कौन हैं?”

यह सुनकर मफलरधारी और गरम हो गया, “एक तो प्लास्टिक जला के पर्यावरण प्रदूषित कर रहे हो ऊपर से सवाल पूछ रहे हो। हम कासिम बाजार थाना में सिपाही हैं। अब जाओगे कि हाथ पैर बांध के अंदर कर दें तुमको?”

यह सुनकर उदय की सिट्टीपिट्टी गुम। उसने चुपचाप अपना झोला उठाया। साइकिल पर झोला टांगकर घर की ओर चल दिया। पैडल मारते हुए उसने सोचा,—विज्ञान अमीरों के लिए है। गरीब छात्र को दुनिया आगे नहीं बढ़ने देना चाहती। एक मेहनतकश विद्यार्थी के सपनों को कुचला जा रहा है। वही हमारे बाबू जी अगर अभी होते, हमारे लिए प्रयोगशाला का व्यवस्था कर दिए होते। अगर हम दिल्ली पटना में पढ़ रहे होते, यही एक्सपेरिमेंट करके अभी दुनिया को नया मक्खन दिला देते। अगर हम फेल हो रहे हैं तो यह दुनिया का दुर्भाग्य है। मेरा नहीं।

## उत्तराषाढ़ा

### पहला चरण

सव्यसाची की छुट्टियां खत्म होने को आईं। एक दिन अच्छी धूप खिली और उदय घर आ गया। सव्यसाची ने सत्या को भी नौका विहार पर चलने के लिए कहा, लेकिन सत्या सांस्कृतिक कार्यक्रम के दिन से ही चुप्पी साधकर बैठा था। सव्यसाची को समझ नहीं आया कि जब सत्या ने किसी प्रतियोगी कार्यक्रम में भाग नहीं लिया, फिर किस बात से मायूस है?

क्या सत्या संतोष सिन्हा के पुरस्कार जीतने से जलता है?

नहीं जलता है।

फिर चित्रकारी प्रतियोगिता में पुरस्कार नहीं जीतने की टीस सताती है।

पता नहीं।

कोई एक दिन में चित्रकारी थोड़े ही सीख जाता है। मेहनत करनी पड़ती है।

मालूम है।

फिर, उदास क्यों है सत्या? जाओ, सव्यसाची के साथ तुम भी हो आओ। बार बार उदय थोड़े ही आएगा। यही तो दिन है कि घूम फिर लगे। बीता समय वापस थोड़े ही आता है।

हमको नहीं जाना है।

क्यों? क्या हुआ? सव्यसाची से झगड़ा है या उदय से कुछ कहासुनी हो गया है?

नहीं।

फिर?

कुछ नहीं, कुछ नहीं।

सव्यसाची और उदय दोनों नौका विहार के लिए निकल गए। दोपहर का समय था। कष्टहरिणी घाट पर कुछ और लोग भी नाव की सवारी कर रहे थे। घाट पर जलकुंभी में फूल लग गए थे। उदय ने जलकुंभी से आसमानी रंग का फूल तोड़ा और सत्या के साथ एक नाव पर बैठकर देखते ही देखते बीच गंगा में जा पहुंचा। उदय ने सव्यसाची से पूछा, “तुम अपना कॉमिक्स छपवा रहे हो?” सव्यसाची ने कहा, “नहीं, उसमें बहुत पैसा लगेगा। कम से कम पांच सौ कॉपी छपवाना होगा। इसके लिए कम से कम दस हजार रुपया लगेगा।”

“दस हजार..!” सुनकर उदय हड़बड़ा गया।

“हां। हम सोचे हैं कि इसको सहेजकर रखा लिया जाए। जब हम कमाने लगेंगे, तब इसको छपवाया जाएगा।” सव्यसाची की बात सुनकर उदय बोला, “हम तुम्हारा मदद कर देते, अगर मेरा प्रयोग सफल हो जाता तो।”

“कौन सा प्रयोग?”

“देखो, हम तुमको टॉप सीक्रेट बता देते हैं। तुम अपने तक ही रखना। सत्या को भी मत बताना।”

“बताओ तो?” सव्यसाची ने उदय के हाथ से जलकुंभी का फूल छीनकर देखने लगा।

“हम प्लास्टिक से मक्खन बनाने वाले हैं। जो रद्दी पॉलीथीन वातावरण प्रदूषित करता है, उसी का इस्तेमाल करके हम ‘ब्यूटरिक एसिड’ बनाने वाले हैं।”

“अच्छा। कैसे?”

“हम क्या बताएं तुमको। इसी सिलसिले में हम रुनकी के पापा से भी मिले। उनकी तरफ से सहयोग नहीं मिला। मेरे पास ऐसा ऐसा आइडिया है कि हम ब्रह्मांड बदल दें। हम तुमको बताते हैं, दरअसल विज्ञान अमीर आदमी के लिए हैं। जिसके पास प्रयोग करने के लिए प्रयोगशाला है, वही तो कुछ एक्सपेरिमेंट करेगा। हम ऐसा रासायनिक अभिक्रिया सोचे, लेकिन हमारे पास संसाधन नहीं है।”

सव्यसाची बोला, “केमिस्ट्री के बारे में तुम ठीक बोलते हो। लेकिन विज्ञान की हर शाखा में ऐसा नहीं है। गणित को देख लो। उसमें केवल कॉपी पेन चाहिए और दिमाग। हम कल एक प्रश्न बनाएं। एक रूम में कुछ लोग हैं। सारे एक दूसरे से हाथ मिलाते हैं। अगर कुल 66 बार हाथ मिलाया गया है तो बताओ, रूम में कितने आदमी हैं?”

उदय सोच में डूब गया। “यह बीजगणित का प्रश्न है। हम ऐसे ही बना दिए। आज कल

हम गणित में भिड़े हैं।” सव्यसाची बोला।

“हम सेवासदन से कालिदास का ‘मेघदूत’ ले आए हैं। कल रात से उसको पढ़ने बैठे। बहुत सुंदर काव्य है।” उदय कहते कहते रुक गया और पूछ बैठा, “सत्या को क्या हुआ है? तुम्हारा भाई है, तुम कुछ सिखाते नहीं उसको? पढ़ने में साधारण है। नाच गान वाले कार्यक्रम में चला गया था।”

“वहां उद्घोषक बन गया था। नाचना गाना नहीं आता है उसको। उसकी मर्जी है। समय के साथ सीखेगा।” सव्यसाची ने कहा।

“तुम्हारा कॉमिक्स मजेदार था। उसका अगला भाग कब निकालोगे?”

सव्यसाची बोला, “हम इसके बारे में सोचे ही नहीं हैं। देखते हैं। पहले हम दसवां तक का सारा हिसाब बना लेते हैं, उसके बाद तय करेंगे।”

“हम कल दसवां के बोर्ड के इम्तिहान का पेपर देखे। कुछ रखा ही नहीं है। मेघदूत के बाद हम सोच रहे हैं कि अंग्रेजी ग्रामर पर काम किया जाए।”

सव्यसाची ने हां में सर हिलाया और दोनों दोस्त नदी के ओर छोर को निहारने लगे। उदय को सोच में डूबा देखकर सव्यसाची ने पूछा, “ऐसे क्या सोच रहे हो?”

“संजोग है कि जब भी पिताजी के बारे में कोई खबर मिलती है, सुनने में आता है किसी गंगा किनारे के शहर में गुमनामी में रहते हैं। ये जो पानी बह के आ रहा है, क्या पता मेरे पिताजी ने उसे छुआ होगा।” सुनकर सव्यसाची एकदम से चुप हो गया।

पूर्णिमा की संध्या में उदय के सौजन्य से सव्यसाची दोनों हाथों में जलकुंभी के फूल लिए घर लौटा।

मां ने पूछा क्यों लाए?

सबको दिखाने के लिए।

सत्या को फूलों से बेहद लगाव था इसलिए वह झट से ताजा फूलों को उलट पलटकर देखने लगा। “हमारे घर में अगर तालाब होता हम भी जलकुंभी लगाते।” सत्या की इस बात पर पिताजी हंसने लगे, “जलकुंभी से निजात पाया जाता है। लगाया नहीं जाता। पोखर में लगाना ही है तो कमल या कुमुदिनी लगाओ। हमारे गांव में पोखर में कमल लगते थे। सफेद, पीले, नीले...अभी भी लगते हैं।”

“यहां संदलपुर में कमल नहीं खिलते?” सत्या ने कौतूहल से पूछा।

“हां। लगते हैं न? अंग्रेजों ने जो कंपनी गार्डन बनाया था, उसमें एक पोखर है। कष्टहरिणी घाट के पास जाओगे, तो देख सकते हो। लेकिन सुबह सुबह जाना होगा। सुबह जाओगे रात में खिली कुमुदिनी और सुबह खिलने वाला कमल दोनों दीख जाएगा।”

“हम कल जाते हैं।” सत्या ने कहा और सव्यसाची की ओर चोर निगाहों से देखा। सव्यसाची ने उसकी मंशा भांपकर कहा, “हमसे सुबह नहीं उठा जाएगा। और हम क्यों जाएंगे? तुमको आज बोलते रहे कि चलो नौका विहार पर। तुम गए थे?”

पिताजी ने कहा, “तुम छोटे भाई को इतना डांटते रहोगे तो कैसे काम चलेगा?”

सव्यसाची बोला, “हम डांट कहां रहे हैं। इस सर्दी में कौन सुबह छह बजे उठेगा? कोहरा हुआ तो जाना मुश्किल। वसंत में जाकर देख लेना पोखर में कमल।” सत्या ने कोई जवाब नहीं दिया।

रात में शॉल ओढ़कर सत्या देर तक छत पर टहलता उदासी से पूर्णिमा के चांद को निहारता रहा।

झुनकी का रो रोकर बुरा हाल था। नानी समझाती, झुनकी नहीं मानती। मां कभी गुस्सा करती, रुनकी कभी चिढ़ाती। पापा की दुलार का, या मां की फटकार का : किसी बात का झुनकी पर कोई असर नहीं होता। कोई टेपरिकॉर्डर पर गाना बजाए तो झुनकी बंद कर देती। पापा रेडियो सुनने लगते तो झुनकी रेडियो की बैट्री निकालकर फेंक देती। मुंह फुलाकर घंटों छत पर बैठी रहती। रुनकी को मौका मिल गया था। जितना झुनकी चिढ़ती, वह उतना ही 'ठंडी हवाएं लहरा के आए' गाती रहती।

ऐसे में नानी छत पर बैठी झुनकी के पास जा बैठीं। झुनकी नानी को देखकर गले लग कर सुबकने लगी। नानी बोली, "अरे। ऐसे छोटी मोटी बातों पर रोती रहोगी तो कैसे काम चलेगा? इतनी बड़ी दुनिया में एक छोटा सा शहर है। छोटे से शहर में छोटा सा प्रोग्राम था, उसके लिए क्या रोना?"

"नानी, छोटे शहर का छोटा प्रोग्राम में भी हम फर्स्ट नहीं किए, फिर हम गिनती में ही कहाँ हैं?" झुनकी रोते रोते बोली।

"अरे। रोते नहीं।" नानी ने आंसू पोछे, "यह तो पहला प्रयास था। अभी ऐसे बहुत से मौके आएंगे।"

बिसूरती हुई झुनकी ने कहा, "सी सेक्शन की लड़कियाँ हमको हार जाने पर ताना मार रही थीं। बोली कि रुनकी की बहन होने के कारण हमको गाने का मौका दिया गया। और हम गाने में गड़बड़ भी गए थोड़ा सा।"

"बताओ क्या गड़बड़ हुई?"

"हम गा ठीक रहे थे। मेरे पुराने स्कूल का एक दोस्त नजर आ गया। हम उसको देखकर लड़खड़ा गए। अगर वो नहीं होता तो हमको ही प्राइज मिलता।" झुनकी बोली।

नानी हंसने लगी, "अच्छा। यहां तो तुम्हारा गलती है। किसी के होने नहीं होने से तुम गाने में गड़बड़ कर दोगी? यह सब बहाना है। प्राइज का मत सोचो। तुम्हारी मां से कहे हैं। पहले तुम अच्छे से शास्त्रीय संगीत सीखो। अच्छे से गाना सीख लो, फिर स्टेज पर गाना। ये उमर सीखने का है।"

"नानी, तुम ही बता रही थी कि मास्टर मदन साढ़े तीन साल में गाता था।" झुनकी ने आंसू पोछकर कहा।

"अच्छा ये बात है।" नानी बोली, "पगली, वो मास्टर मदन था। सबका सबसे तुलना है? मेरी उमर में इंदिरा गांधी भारत की प्रधानमंत्री थीं। अब इसके लिए हम रोते रहें कि हम प्रधानमंत्री नहीं बने, यह ठीक बात थोड़े ही होगी? चलो, तुम साइकिल चलाना सीख रही थी न?"

"हमको आ गया है साइकिल चलाना।" झुनकी इतराकर बोली।

"अच्छा, सुबह सुबह साइकिल चलाओ। सेहत के लिए अच्छा रहता है। रुनकी के साथ तुम भी जाना कल सुबह साइकिल चलाने।" नानी ने झुनकी के लंबे बाल खोले और उसकी सर में मालिश करने लगी।

रात में झुनकी ने सत्या का भेजा पोस्टकार्ड ढूंढ निकाला और पूर्णिमा की चांदनी में छत पर अकेले में पढ़ने लगी।

झुनकी,

कैसी हो तुम? तुम जब से इस स्कूल छोड़कर गर्ल्स स्कूल में गई हो, यहां मेरा मन नहीं लगता है। क्लास की लड़कियों में सिर्फ तुमसे ही बात होती थी। हम सोचें कि तुमको चिट्ठी लिखकर बताएं। हम पत्र मित्र बन सकते हैं न? तुम्हारा पता भव्या से पूछकर हम चिट्ठी लिख

रहे हैं। सुना है तुम्हारे यहां टेलीफोन है, पर हमारे घर में फोन नहीं है इसलिए हमको पोस्टकार्ड लिखना पड़ रहा है।

इस महीने मॉडल स्कूल में सांस्कृतिक कार्यक्रम हो रहा है। तुम वहां प्रतियोगिता में जरूर भाग लेना। तुम अच्छा गा लेती हो। कोई गाना गाओगी तो अच्छा रहेगा।

हम यह भी सोच रहे हैं कि कहीं तुम चिट्ठी का बुरा न मान जाओ। फिर हम सोचते हैं कि तुम बुरा क्यों मानोगी? तुम तो मेरी दोस्त हो। एक दोस्त दूसरे दोस्त को समझता है। इस बार हम मेहनत करेंगे और सोचे हैं कि क्लास में पहले तीन में आ जाएं। करना मुश्किल है, लेकिन हम ऐसा सोचकर रखे हैं।

शायद तुम यह पोस्टकार्ड नहीं पढ़ोगी।

नया साल आने वाला है। आने वाला साल तुम्हारे लिए मंगलमय हो।

तुम्हारा दोस्त,

सत्या

झुनकी को सत्या की चिट्ठी अजीब लगी। अच्छा किया जो उसने सत्या को डांट दिया। स्कूल बदल गया तो दोस्ती खत्म हो गई। इतनी दोस्ती भी कहां थी। झुनकी ने सत्या का पोस्टकार्ड दो टुकड़ों में फाड़ा, फिर न जाने क्या सोचकर उसे अपने कपड़ों की बक्से में सहेजकर रख लिया।

अगले दिन सुबह सुबह सत्या अकेले ही कंपनी गार्डन के बड़े पोखर के पास जा पहुंचा। पूर्णिमा का चंद्रमा अभी पश्चिम में अस्त होने ही वाला था। नीले शांत समंदर में स्थिर चमकते नारंगी का विशाल विलक्षण फल। सर्दी में सिहरते हुए सत्या ने सारंग का प्रतिबिम्ब सरोवर में डूबते उतरते देखा। पतलून को नीचे से खूब मोड़कर सत्या पोखर में उतरा और धीमे धीमे कदम जमाते हुए पीले कमल के फूल के पास जा पहुंचा। इससे पहले कि सुबह का चंद्रमा निस्तेज हो जाए, उसने कमल के डंठल को तोड़ लिया। उसी समय उसकी नजर सामने दूर जा पड़ी। यह क्या?

पोखर के दूसरे किनारे साइकिल रोके झुनकी अकेली खड़ी थी। सत्या ने उसे दूर से ही पहचान लिया। सर्दी से या फिर डर से या फिर पुलक से उसके रोंगटे खड़े हो गए। झुनकी आ गई है। क्या यह स्वप्न है? देखते ही देखते झुनकी सरोवर के किनारे साइकिल चलाती हुई सत्या की खड़ी साइकिल के पास आकर खड़ी हो गई। सत्या की नसों में बर्फीली सिहरन दौड़ गई। झुनकी को अनदेखा करते हुए गुमसुम सत्या ने पोखर से चार कमल के फूल तोड़े और मुड़े हुए पतलून के भीगने की परवाह न करता ठिठुरता हुआ पोखर से बाहर आ गया। वहीं चुपचाप खड़ी झुनकी सत्या को ऐसे देखकर कुछ न बोली। सहमे हुए सत्या ने झुनकी के पास आकर उसे एक कमल का फूल बढ़ाकर कहा, “ये लो तुम्हारे लिए।” कुछ नाराज सी झुनकी ने, जैसे अहसान जताया हो, बिना कुछ कहे कमल ले लिया और दूसरी तरफ देखने लगी।

सत्या बचे कमल के फूल लिए हाथ में लिए साइकिल पर सवार होकर घर की ओर चल दिया। झुनकी उसे जाता देखती रही।

इतिश्री!

# हिंदी साहित्येतिहास संबंधी आरंभिक लेखन और औपनिवेशिक परियोजना

योगेश प्रताप शेखर

योगेश प्रताप शेखर के लेख, समीक्षाएं आदि आलोचना, वाक्य, पाखी जैसी उल्लेखनीय पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। बतौर आलोचक साहित्येतिहास, मध्यकालीन हिंदी साहित्य और उपन्यास के परिसर में काम करना प्रिय। संप्रति दक्षिण बिहार केंद्रीय वि.वि., गया में सहायक प्राध्यापक।

यह विचित्र किंतु सच है कि हिंदी साहित्य का पहला इतिहास एक फ्रांसीसी व्यक्ति गार्सा द तासी द्वारा फ्रांसीसी भाषा में लिखा गया। इस विचित्र सच की प्रक्रिया का विश्लेषण किया जाना जरूरी है। क्या इस सच का एक सिरा भारत जैसे देशों में इतिहास की अवधारणा से तो दूसरा सिरा उपनिवेशवाद से नहीं जुड़ता? आखिर क्या वजह रही होगी कि एक व्यक्ति जो कभी भारत नहीं आया वह भारत की भाषाओं के साहित्य का इतिहास लिखे? वह भी पेरिस में रहकर! गार्सा द तासी ने *इस्त्वार द ल लितरेत्यूर ऐंड्रै ऐ ऐंदूस्तानी* किताब लिखी जो पहली बार दो भागों में क्रमशः 1839 ई. और 1847 ई. में प्रकाशित हुई। इस किताब का परिवर्धित संस्करण तीन भागों में 1871 ई. में छपा था— इस किताब पर विचार करने से पहले यूरोप खासकर अंग्रेजों की भारतीय भाषाओं और साहित्य में रुचि का जायजा लेना ठीक होगा।

दरअसल वारेन हेस्टिंग्स (भारत में गवर्नर जनरल के रूप में 1772 ई. से 1785 ई. तक) के जमाने से भारत के अतीत के प्रति अंग्रेजों की दिलचस्पी शुरू हुई। ऐसा इसलिए था कि अंग्रेजों को यह लग रहा था कि बिना भारत को जाने यहां शासन करना संभव नहीं। इसी उद्देश्य ने इस पूरी परियोजना, जिसे 'प्राच्यवाद' (Orientalism) कहा जाता है, को संचालित किया। चूंकि इसका उद्देश्य ही शासन की प्रभुता और नियंत्रण<sup>1</sup> से जुड़ा था इसलिए इस परियोजना में उन्हीं

बातों पर ध्यान दिया गया। पर ऐसा नहीं था कि यूरोप की भारत में रुचि की यह पहली स्थिति थी; आखिर कोलंबस और वास्कोडिगामा की भारत को खोजने की प्रक्रिया इससे पुरानी ही है। भारतीय भाषाओं और साहित्य में यूरोप की दिलचस्पी का इतिहास भी पुराना है। इटली के पादरी रॉबर्टो दि ऑबिलि (Jesuit Roberto Di Obilii) पहले यूरोपीय थे जिन्होंने संस्कृत पर अधिकार किया।<sup>1</sup> यहां तक कि वे ब्राह्मणों की वेशभूषा में भारत में रहते थे।<sup>2</sup> ठीक इसी प्रकार फादर थॉमस स्टीवेंस (Father Thomas Stevens) पहले अंग्रेज थे जो 1579 ई. में भारत में गोवा में आए। वे तीस साल यहां रहे। उन्होंने पुर्तगाली भाषा में कोंकणी का व्याकरण लिखा जो किसी भी भारतीय भाषा का किसी भी यूरोपीय जबान में लिखा पहला व्याकरण है।<sup>3</sup> फादर पॉलिनस (Father Paulinus) 1774 ई. में भारत आए और 14 साल रहे। उन्होंने 1790 ई. और 1804 ई. में संस्कृत व्याकरण लिखे जो रोम में प्रकाशित हुए। फादर पॉलिनस ने संस्कृत के प्रसिद्ध कोश *अमरकोष* का अनुवाद लैटिन में किया। इन्होंने पूरे यूरोप का ध्यान संस्कृत और भारतीय भाषाओं की तरफ खींचा।<sup>4</sup> इन तथ्यों से स्पष्ट है कि भारतीय भाषा और साहित्य में यूरोप की रुचि बहुत पहले से चली आ रही थी।

25 सितंबर 1783 ई. को विलियम जॉस (1746-1794 ई.) नामक एक अंग्रेज कनिष्ठ न्यायाधीश (Pusine Judge Of The Supreme Court Of Judicature At Fort William In Bengal) के रूप में सालाना छह हजार पाउंड के वेतन<sup>5</sup> पर कलकत्ता (अब कोलकाता) आए। विलियम जोन्स ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से पढ़े लिखे थे। कॉलेज की पढ़ाई के दौरान ही विलियम जोन्स की रुचि भारतीय और एशियाई भाषाओं में हो गई थी। विलियम जॉस सही मायने में एक बहुभाषाविद थे; वे लगभग 28 भाषाएं जानते थे। वे जब 'क्रोकोडाइल' (Crocodile) युद्धपोत से भारत आने की यात्रा कर रहे थे तब उन्होंने 12 जुलाई 1783 ई. को भारत आकर किए जाने वाले कामों की एक सूची बनाई। उनमें एक काम एशियाई संगीत, कविता, वक्तुत्व और नैतिकता (Asiatic Music, Poetry, Rhetoric And Morality) की जानकारी एकत्र करना भी था।<sup>6</sup> विलियम जोन्स के प्रयासों से 15 जनवरी 1784 ई. को 'एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' की स्थापना हुई; सर रॉबर्ट चैंबर्स (Sir Robert Chambers) तीस सदस्यों की इस बैठक के अध्यक्ष थे; जिसमें यह प्रस्ताव पारित किया गया कि 'एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' के अध्यक्ष गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स हों; पर वारेन हेस्टिंग्स ने अपनी व्यस्तता की वजह से इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया। 5 फरवरी 1784 ई. को सदस्यों की फिर एक बैठक बुलाई गई जिसमें वारेन हेस्टिंग्स की उक्त चिट्ठी पढ़ी गई और विलियम जॉस को 'सोसायटी' का अध्यक्ष बनाया गया। यहां से बाकायदा भारत के अतीत की खोज शुरू होती है।

विलियम जॉस ने संस्कृत, लैटिन, ग्रीक, गॉथिक, केल्टिक और पुरानी फारसी भाषाओं के एक ही परिवार के होने की बात की। इस भाषा परिवार का नाम 'भारोपीय भाषा परिवार' रखा गया। इसके पीछे यह सिद्धांत काम कर रहा था कि दुनिया की सबसे महत्वपूर्ण नस्ल आर्यों की रही है और जिसकी प्राचीनता भारत और एशिया में भी खोजी जा सकती है। विलियम जॉस ने 2 फरवरी, 1786 ई. को एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की तीसरी वर्षगांठ पर एक व्याख्यान कलकत्ता में दिया था जिसमें उन्होंने इन भाषाओं के शब्दों की तुलना कर यह सिद्ध करने की कोशिश की थी कि ये भाषाएं एक ही परिवार की हैं।<sup>7</sup> हालांकि यह भी ध्यान देने की बात है कि विलियम जॉस के कलकत्ता आने से पहले भी भारतीय भाषाओं के साहित्य और व्याकरण का अध्ययन किया गया था। उदाहरण के लिए गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स के करीबी नैथैनियल हॉलहेड (Nathaniel Halhed) ने 1778 ई. में बंगला भाषा का व्याकरण लिखा था। फ्रांसिस

ग्लैडविन(Francis Gladwin) ने अंग्रेजी फारसी शब्दकोश का निर्माण किया था जो मालदा से 1780 ई. में छपा था। ग्लैडविन एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल के संस्थापक सदस्यों में से एक थे। इन्होंने अबुल फजल की प्रसिद्ध किताब *आईन ए अकबरी* का अनुवाद अंग्रेजी में दो भागों में किया था। एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल के एक दूसरे संस्थापक सदस्य चार्ल्स विलकिन्स (Charles Wilkins) ने गीता का अंग्रेजी में अनुवाद 1785 ई. में किया था। चार्ल्स विलकिन्स के दौर से ही पश्चिम ने भारत और इसकी संस्कृति को महत्त्व देना शुरू किया। ओ. पी. केजरीवाल ने अपनी किताब *द एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल एंड द डिस्कवरी ऑफ इंडियाज पास्ट* (The Asiatic Society Of Bengal And The Discovery Of India's Past) में यह बताया है कि पश्चिमी दुनिया की भारत में रुचि के तीन चरण हैं। पहला चरण जिसमें बल भारत की विचित्रता और रहस्यमयता पर था। दूसरा चरण जिसमें भारत को समझने में केवल कुछ निहित स्वार्थ शामिल थे। तीसरे चरण में भारत से कुछ सीखने के लिए भारत को जाना समझा जाने लगा। इसी बीच विलियम जॉस ने कालिदास के नाटक *अभिज्ञानशाकुंतलम्* का अपने द्वारा किए गए अनुवाद को 8 अक्टूबर 1789 ई. को प्रकाशित कराया। इस अनुवाद की समीक्षा प्रसिद्ध नारीवादी चिंतक मेरी वोल्स्टनक्राफ्ट (Mary Wollstonecraft) ने 1790 ई. में की। इस समीक्षा में उन्होंने *अभिज्ञानशाकुंतलम्* में व्याप्त सुकुमारता, सुरुचि की परिष्कृति और पवित्र नैतिकता को रेखांकित किया जिसे विलियम जॉस हिंदू संस्कृति की प्रस्तुति में उभारना चाहते थे! इस 'पवित्र नैतिकता' को भी रेखांकित किया जाना चाहिए क्योंकि इसने आधुनिक हिंदी साहित्य और मध्यकालीन हिंदी साहित्य के संबंध को प्रभावित किया। इसी नैतिकताबोध के कारण हिंदी के रीतिकाल का साहित्य उपेक्षित रहा। यह सूचना भी रोचक है कि माइकल जे. फ्रैंकलिन (Michael J- Franklin) ने विलियम जॉस पर लिखी अपनी किताब *ओरियंटलिस्ट जॉस* (Orientalist Jones) में *अभिज्ञानशाकुंतलम्* के इस अनुवाद को महत्त्व देते हुए अध्याय का शीर्षक ही रखा है यूरोप फाल्स इन लव विद शकुंतला (Europe Falls In Love With Sakuntala)। विलियम जॉस ने इससे पहले फारसी का व्याकरण 1771 ई. में लिखा था जिसका फ्रांसीसी में अनुवाद गार्सा द तासी ने किया था। 1845 ई. में इस अनुवाद का दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ था।

1798 ई. में लॉर्ड वेलेजली भारत के गवर्नर जनरल बने। उन्हें यह बात शिद्दत से महसूस हुई कि कर्मचारियों की शिक्षा, योग्यता और अनुशासन का कोई प्रबंध नहीं है। बहुत कम आयु में ही इंग्लैंड से कर्मचारी भारत भेज दिए जाते थे। भारत आने पर उन्हें ऐसे देश के शासन में व्यस्त कर दिया जाता था जहां की भाषिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विशेषताओं से वे बिल्कुल ही अपरिचित रहते थे। इसलिए अंग्रेज कर्मचारियों की शिक्षा के लिए एक कॉलेज खोलने का निर्णय लिया गया। लॉर्ड वेलेजली से पहले 1783 ई. में जॉन बौथविक गिलक्राइस्ट (1759-1841 ई.) ईस्ट इंडिया कंपनी में सहायक सर्जन होकर भारत आए। यों तो राजनीतिक कारणों से कंपनी 1837 ई. तक फारसी का इस्तेमाल राजकाज के लिए करती रही। पर गिलक्राइस्ट को लगा कि अब देश की परिस्थिति बदल गई है और फारसी का प्रचलन घट गया है। दिल्ली के दरबार में भी फारसी का प्रयोग कम हो गया था और उसकी जगह हिंदुस्तानी का प्रचलन हो गया था। इस कारण उन्होंने हिंदुस्तानी सीखना शुरू कर दिया। इतना ही नहीं 4 जून 1787 ई. को उन्होंने कलकत्ते के तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड कार्नवालिस को एक चिट्ठी लिखी। इस पत्र में उन्होंने लिखा था कि *इन पिछले तीन वर्ष से मैं जिस ग्रंथ (इंग्लिश हिंदुस्तानी डिक्शनरी) की रचना करने में लगा हुआ था उसके प्रथम भाग की पांडुलिपि समाप्त हो गई है। आप की आज्ञा से अब मैं दूसरे और तीसरे भागों की रचना करना चाहता हूं।...अपने अध्ययन की सुविधा और कार्य में*



सहायता मिलने की दृष्टि से मैं श्रीमान् से बनारस की जमींदारी में, और आवश्यकता हुई तो सूबा अवध में, जाने की आज्ञा चाहता हूं। मुझे पूर्ण आशा है कि सरकार की जैसी कृपादृष्टि अब तक मुझ पर बनी रही है वैसी ही इस कार्य के समाप्त होने तक बनी रहेगी। इससे न केवल मुझे वरन् साधारण रूप से सबको लाभ पहुंचेगा। इस देश में इतने बड़े ग्रंथ की छपाई में व्यय अधिक होने की आशंका से आर्थिक लाभ होने की कम संभावना है। इसलिए साथ ही मैं श्रीमान् से यह प्रार्थना करने का लोभ संवरण नहीं कर सकता कि मुझे वहां नील की खेती करने की आज्ञा दी जाए। वेस्टइंडीज में कुछ वर्ष रहने से मैं यह काम अच्छी तरह जानता हूं और पूर्ण आशा है कि मैं अपना पारिश्रमिक उससे निकाल लूंगा; विशेष रूप से यदि सौभाग्यवश श्रीमान् की यह सम्मति हो कि इस देश में नील की खेती से ऑनरेबुल कंपनी को अंत में अत्यधिक लाभ पहुंचेगा। मैं मन, वचन और कर्म से वर्तमान शासन की दीर्घायु और अपने ऊपर उसकी छाया की सदैव कामना करता रहूंगा। अब मैं अत्यंत विनम्रता के साथ यह प्रार्थना करने का साहस करता हूं और आशा करता हूं कि श्रीमान् और बोर्ड इसे स्वीकार करेंगे?''<sup>10</sup> बाद में गिलक्राइस्ट अफीम की खेती करने भी लगे। इससे यह पता चलता है कि उपनिवेशवादी दौर में ज्ञान और संसाधनों पर किस प्रकार वर्चस्व कायम किया जा रहा था। नील और अफीम की खेती ने भारत की पारंपरिक खेती की रीढ़ ही तोड़ दी थी। गिलक्राइस्ट धीरे धीरे अपनी परियोजना में आगे बढ़ते हुए हिंदुस्तानी को कंपनी के लिए फायदेमंद सिद्ध कर पाए।

लॉर्ड वेलेजली ने गिलक्राइस्ट के प्रयासों की सराहना की और यह व्यवस्था की कि कर्मचारी भारत आए तो साल भर गिलक्राइस्ट के पास हिंदुस्तानी और फारसी सीखें। कलकत्ते के राइटर्स बिल्डिंग का एक कमरा भी इस काम के लिए गिलक्राइस्ट को दे दिया गया। लक्ष्मीसागर वाष्ण्य ने अपनी किताब *फोर्ट विलियम कॉलेज* में यह बताया है कि वेलेजली ने 21 दिसंबर 1798 ई. को एक सरकारी सूचना निकाली जिसके अनुसार बंगाल में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन की सफलता के लिए यह जरूरी है कि आगे उत्तरदायित्व के पदों पर वैसे ही लोग नियुक्त हों जिन्हें देश की एक या उससे अधिक भाषाएं आती हों। इतना ही नहीं अलग अलग जगहों पर न्याय, माल और व्यापार विभागों के लिए अलग अलग भाषाओं का ज्ञान जरूरी समझा गया। जैसे, बंगाल, बिहार, उड़ीसा या बनारस में न्याय विभाग के अफसरों के लिए हिंदुस्तानी और फारसी भाषाएं, बंगाल या उड़ीसा प्रांत के मालगुजारी इकट्ठा करनेवालों कलक्टरों, या चुंगी के या व्यापार के, या नमक के एजेंटों के लिए बांग्ला भाषा और बनारस या बिहार प्रांत में मालगुजारी इकट्ठा करनेवाले कलक्टरों, या चुंगी के या व्यापार के, या अफीम के एजेंटों के लिए हिंदुस्तानी भाषा?''<sup>11</sup> जाहिर है कि ऐसी परिस्थिति में बड़े पैमाने पर भारतीय भाषाओं को सिखाने की व्यवस्था करनी पड़ती—इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर वेलेजली ने एक कॉलेज खोलने का निर्णय कर लिया।

फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना 1800 ई. में हुई। इसकी स्थापना में ईस्ट इंडिया कंपनी के हितों और यश के संरक्षण का भाव छुपा था। जूनियर सिविल कर्मचारियों को ब्रिटिश राज्य के सुशासन के लिए साहित्य, विज्ञान और ज्ञान की उचित शिक्षा के लिए इस कॉलेज की स्थापना हुई। इसमें हिंदुस्तानी भाषा विभाग भी स्थापित किया गया जिसके अध्यक्ष गिलक्राइस्ट थे। यहां एक बात स्मरणीय है कि भले भारत या पूर्वी ज्ञान की जानकारी देना कॉलेज का उद्देश्य था पर कर्मचारियों और प्रोफेसरों को ईसाइयत तथा ब्रिटिश संविधान के प्रति निष्ठावान बने रहने की कसम भी खानी पड़ती थी। ईसाई धर्म, इंग्लैंड के चर्च, ब्रिटिश संविधान और कॉलेज के परिनियमों के खिलाफ निजी या सामाजिक तौर पर विरोध नहीं करने की शर्त भी उक्त कसम में शामिल थी?''<sup>12</sup> इस कॉलेज से ही हिंदी और उर्दू का विवाद भी शुरू हुआ; कहीं न कहीं यहीं से यह बात

निकली कि हिंदी हिंदुओं की भाषा है और उर्दू या हिंदुस्तानी मुसलमानों की भाषा है? <sup>13</sup> यही कारण है कि इन दोनों भाषाओं में अलग अलग पाठ्य पुस्तकें तैयार कराई गईं। इन पुस्तकों के निर्माताओं को 'मुंशी' या 'पंडित' कहा गया। उदाहरण के लिए 'भाखा मुंशी' के रूप में लल्लूलाल की नियुक्ति हुई तो मीर अम्न को उर्दू में किताबें तैयार करने को कहा गया। इससे पहले दो भाषाओं की बात नहीं थी और न ही यह था कि हिंदी हिंदुओं की भाषा है और उर्दू मुसलमानों की। यहीं से उर्दू गद्य और खड़ी बोली हिंदी गद्य की शुरुआत होती है। हिंदी और उर्दू के बीच यह भेद किस प्रकार पैदा हुआ और इसकी क्या जटिलताएं रहीं इसे पाकिस्तान के प्रोफेसर तारिक रहमान (Tariq Rahman) की महत्वपूर्ण किताब *फ्रॉम हिंदी टू उर्दू अ सोशल एंड पॉलिटिकल हिस्ट्री* (From Hindi To Urdu A Social And Political History) में विस्तार से देखा जा सकता है। प्रोफेसर तारिक ने यह लक्षित किया है कि किस प्रकार इन दोनों भाषाओं की पहचान बनाई गई! किस तरह से इन दोनों भाषाओं के मानक तय किए गए? इसी से एक सांप्रदायिक राजनीति की शुरुआत भी भारत में हुई? <sup>14</sup>

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से यह स्पष्ट हो गया होगा कि गार्सा द तासी के 'इतिहास लेखन' के पहले की परिस्थितियां क्या थीं? इन परिस्थितियों का असर गार्सा द तासी के लेखन पर दिखता है। गार्सा द तासी (1794-1878 ई.) का पूरा नाम जाजेफ एलीदोर साजेस्स वैत्यू गार्सा द तासी था। गार्सा उनके पिता का और तासी उनकी मां का उपनाम था। बीस साल की उम्र में उन्होंने बोलचाल की अरबी एक मिस्रदेशीय गैबराइल और रैफलद मोनाची से सीख ली? <sup>15</sup> बाद में फारसी और तुर्की भी पढ़ी। वे 1817 ई. में पेरिस आते हैं और प्रसिद्ध 'प्राच्यविद' (Orientalist) सिलवेत्र द सेसी (Silvestre De Sacy) के निर्देशन में अरबी, फारसी और तुर्की पढ़ते हैं। 1822 ई. में पेरिस में 'सोसायती एशियातिक' की स्थापना भी होती है और वहीं से एक पत्रिका *जर्नल एशियातिक* (Journal Asiatique) भी निकलनी शुरू होती है। तासी इस संस्था के संस्थापक सदस्य बनते हैं और फिर सहायक सचिव और पुस्तकालयाध्यक्ष भी। बहुत बाद में यानी 1876 ई. में तासी इसके अध्यक्ष (President) भी बनते हैं। 1822 ई. में ही तासी 'कॉलेज डे फ्रांस' में अपने गुरु सिलवेत्र द सेसी के कार्यालय में सचिव की हैसियत से काम करने लगे। सिलवेत्र द सेसी ने उन्हें हिंदुस्तानी सीखने के लिए प्रेरित किया। हिंदुस्तानी यूरोप में उर्दू का एक दूसरा नाम था। <sup>16</sup> तासी ने अपने गुरु की सलाह मानकर स्वाध्याय कर यह भाषा सीख ली। सिलवेत्र द सेसी हिंदुस्तानी के महत्त्व से परिचित थे इसलिए उन्होंने तासी के काम को सुचारु रूप से चलाने के लिए फ्रांसीसी सरकार को एक याचिका दी जिसमें यह मांग की गई थी कि फ्रांस में हिंदुस्तानी पढ़ाने के लिए एक 'चेयर' की स्थापना हो। पर पी. एल. डु. चौमे (P. L. Du. Chaume) नामक एक व्यक्ति ने इसका विरोध किया। 1828 ई. में उन्होंने एक पत्र एक पत्रिका के संपादक को लिखा। इसे उन्होंने अलग से *पम्फलेट* (Pamphlet) के रूप में भी वितरित किया था। इसमें उन्होंने 'हिंदुस्तानी' नाम पर ही आपत्ति दर्ज की थी। उनका कहना था कि 'हिंदुस्तानी' का मतलब 'हिंदुस्तान की भाषाएं' होता है। उन्होंने तीन प्रकार की 'हिंदुस्तानी' की चर्चा की। पहले को उन्होंने 'हिंदी', 'उर्दू जबान' और 'रेख्ता' कहा जो 'अरबी अक्षरों' (Arabi Character) में लिखी जाती है। दूसरी को उन्होंने 'हिंदवी' कहा जो नागरी अक्षरों में लिखी जाती है और जिसमें अरबी फारसी के बदले भारतीय शब्दों का इस्तेमाल होता है। तीसरी को उन्होंने 'मूर और मौर' कहा जो यूरोपियों के द्वारा बंबई (अब मुंबई) एवं कलकत्ता (अब कोलकाता) में अपने नौकरों को समझाने के लिए बोली जाती है। चौमे ने अत्यंत सरलीकरण करते हुए हिंदवी के साहित्य को संस्कृत साहित्य का अनुवाद और हिंदुस्तानी के साहित्य को अरबी फारसी के साहित्य का अनुवाद बताया? <sup>17</sup> उन्होंने

हिंदुस्तानी को मुसलमानों की भाषा करार दिया। उन्होंने एक और तर्क प्रस्तुत किया कि ब्रिटिश लोगों ने इसे इसलिए सीखा कि उनके प्रशासनिक कर्मचारी ज्यादातर मुसलमान थे। इन सब तर्कों के बाद भी 29 मई 1828 ई. को हिंदुस्तानी का 'चेयर' बना और गार्सा द तासी उसके पहले पदाधिकारी नियुक्त हुए।

1829 ई. में तासी ने Rudimens de la Langue Hindoustanie लिखा; यह हिंदुस्तानी का व्याकरण था। उनके कोर्स को काफी लोकप्रियता मिली और 1830 ई. में उनका पद स्थायी कर दिया गया। यहां हिंदुस्तानी का अर्थ उर्दू है क्योंकि बाद में उन्होंने हिंदी और दूसरी भारतीय भाषाओं में रुचि ली। उनका यह 'चेयर' भी उर्दू के लिए ही बना था। 1847 ई. में तासी ने Rudimens de la Langue Hindouie लिखा जो हिंदी का व्याकरण था। इन सबके साथ साथ तासी 1850 ई. से 1877 ई. तक (बीच में 1857 ई. में विद्रोह के कारण एक साल छोड़कर) लगातार हर साल उर्दू भाषा और साहित्य पर व्याख्यान देते रहे। इसमें साल भर में उर्दू भाषा और साहित्य की हुई प्रगति का जायजा और महत्त्वपूर्ण साहित्यिकों की मृत्यु का समाचार रहता था। लगभग 100 पृष्ठों का एक भाषण होता था। यह प्रायः शोध आलेख के रूप में लिखा होता था।

गार्सा द तासी का 'इतिहास' इस्त्वार द ल लितरेत्यूर ऐंड्रै ऐ ऐंड्रैस्तानी ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड की कमिटी ऑफ ओरियंटल ट्रांसलेशंस की सहायता से प्रकाशित हुआ था। 1828 ई. में लंदन में ओरियंटल ट्रांसलेशंस फंड की स्थापना हुई थी; इसी फंड से इस किताब के प्रकाशन में सहायता मिली। इसकी छपाई पेरिस के सरकारी प्रेस में हुई थी। यद्यपि इस कमिटी के नियम इसके प्रकाशन के अनुकूल नहीं थे पर सर गोर आउजले ने इन नियमों के बावजूद इसका प्रकाशन कराया।<sup>18</sup> यही कारण है कि पेरिस में लिखे जाने के बाद भी यह ग्रंथ इंग्लैंड की महारानी विक्टोरिया को समर्पित है। महारानी विक्टोरिया की खुद की दिलचस्पी हिंदुस्तानी में थी। बाद में उन्होंने अपने लिए मुंशी अब्दुल करीम को भारतीय शिक्षक के रूप में नियुक्त किया था। तासी इस समर्पण में लिखते हैं।

ग्रेट ब्रिटेन की सम्राज्ञी को

देवि,

यह नितांत स्वाभाविक ही है कि मैं सम्राज्ञी से एक ऐसा ग्रंथ समर्पित करने का सम्मान प्राप्त करने की प्रार्थना करूं जिसका संबंध भारतवर्ष, आपके राजदंड के अंतर्गत आए हुए इस विस्तृत और सुंदर देश, और जो इतना खुशहाल कभी नहीं था जितना कि वह इंग्लैंड के आश्रित होने पर है, के साहित्य के एक भाग से है। यह तथ्य सर्वमान्य है; और, इसके अतिरिक्त, हिंदुस्तानी लेखक इस बात का प्रमाण देते हैं। जिस ब्रिटिश शासन के अंतर्गत न तो लूट का भय है और न ही देशी सरकारों का अत्याचार है, उसका उनकी रचनाओं में यश गान हुआ है।

हिंदुस्तान के प्राचीन शासकों में, एक महिला ही थी जिसने अपने व्यक्तिगत गुणों के कारण ही संभवतः अत्यधिक ख्याति प्राप्त कर ली थी। कृपालु सम्राज्ञी की भांति गुणों से विभूषित राजकुमारी के मंगल सिंहासनारूढ़ होने का समाचार सुनकर, देशवासियों को अपनी प्रिय सुल्ताना रजिया का स्मरण करना पड़ा। वास्तव में, विक्टोरिया रानी में उन्होंने रजिया का तारुण्य और उसके अलभ्य गुण फिर पाए हैं; और केवल यही बात उनका उस देश के साथ संबंध और भी दृढ़ बना सकती है जिसके उनका अधीन होना ईश्वरेच्छा थी।

मैं हूं, अत्यधिक आदर सहित,

देवि,

सम्राज्ञी,

अत्यंत तुच्छ और अत्यंत आज्ञाकारी दास,

पेरिस, 15 अप्रैल 1839

गार्सा द तासी<sup>9</sup>

तासी के इस समर्पण का विश्लेषण किया जाए तो यह पता चलता है कि वे औपनिवेशिक मानसिकता से बहुत गहराई तक प्रभावित थे। उनका यह कहना कि भारत इंग्लैंड के आश्रित होने के पहले कभी उतना खुशहाल नहीं था, आज सही नहीं लगता है। एक दो तथ्य ही पर्याप्त होंगे। अंग्रेजी राज में भारत को ज्ञान, इतिहास, शासन व्यवस्था के पैमाने पर सदा हीन साबित करने का प्रयास होता रहा। संसाधनों पर कब्जा जमाने की कोशिशें बढ़ती गईं। देश के उद्योग और शिल्प को नष्ट किया गया। इतना ही नहीं देश को केवल खेती पर निर्भर बनाने का प्रयास किया जाने लगा। तासी के 'इतिहास' के प्रकाशन के एक साल बाद यानी 1840 ई. में माटगोमरी मार्टिन ने संसदीय जांच समिति की रिपोर्ट प्रस्तुत की; इसमें उन्होंने कहा था कि मैं यह नहीं मानता कि भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारत जितना कृषि प्रधान देश है, उतना उद्योग प्रधान भी है, और जो उसे कृषि प्रधान देश की स्थिति तक लाना चाहते हैं, वे सभ्यता के पैमाने पर उसका स्थान नीचे लाने की कोशिश करते हैं?<sup>20</sup> अंग्रेजों के शासन के पहले पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्था में भारत की हिस्सेदारी 23 प्रतिशत की थी और अंग्रेजों के जाने के बाद यह मात्र 3 प्रतिशत रह गई?<sup>21</sup> इसी तरह यह बात भी समझ में नहीं आती कि 1839 ई. में हिंदी या उर्दू के ऐसे कौन से लेखक थे जो अपनी रचनाओं में ब्रिटिश शासन का गुणगान कर रहे थे! हिंदी में कालक्रम के अनुसार उस समय 'रीतिकाल' चल रहा था। जिसके अंतिम दौर के कवि पद्माकर (1753 : 1833 ई.) का एक छंद मिलता है जिसमें ग्वालियर के राजा दौलतराव सिंधिया से 'फिरंगियों' को भगाने का निवेदन या कहना चाहिए ललकार है। पद्माकर लिखते हैं—

मीनागढ़ मुंबई सुमंद करि मंदराज बंदर कों बंद करि बंदर बसावैगो।  
कहै पद्माकर कटाकै कासमीरहू को पिंजर सो घेरिकै कलिंगर लुड़ावैगो।  
बांका नृप दौलत अलीजा महाराज कबों साजि दल दपटि फिरंगिन दबावैगो?  
दिल्ली दहपट्टि, पटनाहू कों झपट्टि करि कबहुंक लत्ता कलकत्ता को उड़ावैगो?<sup>22</sup>

ठीक इसी प्रकार उर्दू साहित्य में भी अंग्रेजी राज की तारीफ में उस समय कुछ भी नहीं मिलता। तासी एक बात और कहते हैं कि भारत की गुलामी ईश्वर की इच्छा थी। इससे यह भी ध्वनित होता है कि वे भारत में प्रचलित नियतिवाद (जिसके अनुसार सब कुछ पहले से तय होता है; संसार में जो भी घटित होता है वह ईश्वर की इच्छा का परिणाम है) का सहारा अंग्रेजी राज को मजबूत करने में ले रहे हैं। अपने आपको वे महारानी विक्टोरिया का अत्यंत तुच्छ एवं आज्ञाकारी दास कहते हैं। इससे उनकी राजभक्ति साफ साफ दिखाई पड़ रही है। राजभक्ति का यह रूप गिलक्राइस्ट द्वारा लॉर्ड कार्नवालिस को लिखे पत्र, जिसकी चर्चा ऊपर हुई है, में भी दिखता है। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि औपनिवेशिक शासन में सत्ता को बरकरार रखने की कोशिश ज्ञान की पूरी प्रक्रिया में रही है। अतः यह कहा जा सकता है कि तासी के 'इतिहास' का यह समर्पण औपनिवेशिक मानसिकता से न केवल ग्रस्त है बल्कि उसे पुष्ट करने की भी कोशिश कर रहा है।

तासी के 'इतिहास' में एक विचारणीय बात यह दिखती है कि उन्होंने 'हिंदी', 'हिंदुई' और 'हिंदुस्तानी' में अंतर किया है। प्रथम संस्करण (1839 ई.) की पहली जिल्द की भूमिका में वे लिखते हैं कि भारत के प्राचीन साम्राज्य में जिसका विकास हुआ उसे सामान्यतः 'भाषा' या 'भाखा' और विशेषतः 'हिंदवी' या 'हिंदुई' (हिंदुओं की भाषा। *langue de Hindous*)<sup>23</sup> के नाम से पुकारा जाता है?<sup>24</sup> तासी भी इसी मान्यता को मानते हैं कि हिंदुस्तानी लिखने के लिए फारसी अक्षरों का प्रयोग किया जाता है और हिंदू लोग अपने पूर्वजों की तरह देवनागरी अक्षरों का इस्तेमाल करते

हैं। वे दूसरे संस्करण की पहली जिल्द की भूमिका में अपनी इस धारणा को और पुष्ट करते हैं। वे लिखते हैं कि यद्यपि शब्दों के चुनाव में हिंदी और उर्दू एक दूसरे से भिन्न हैं, वे वास्तव में, उचित बात तो यह है कि अपनी अपनी वाक्य रचना पद्धति के अंतर्गत आंशिक दृष्टि से विभिन्न तत्त्वों से निर्मित, एक ही भाषा हैं, भाषा जिसे यूरोपियनों ने सामान्य नाम 'हिंदुस्तानी' दिया है, जिसके अंतर्गत वे हिंदुई और हिंदी, उर्दू और दक्खिनी को शामिल करते हैं; किंतु यह नाम भारतवासियों ने स्वीकार नहीं किया, क्योंकि वे देवनागरी, या अधिकतर नागरी में लिखित हिंदू बोली को 'हिंदी' शब्द से, और फारसी अक्षरों में लिखित, मुसलमानी बोली को, 'उर्दू' नाम से अलग अलग करना अधिक पसंद करते हैं। अब तो स्वयं यूरोपियन बड़ी खुशी से इन दो नामों का प्रयोग करते हैं? इसी भूमिका में तासी आगे लिखते हैं कि 1831 में, लोगों के हित के लिए, विभिन्न प्रांतों की सामान्य भाषाओं को स्थान दिया, और स्वभावतः उर्दू उत्तर तथा उत्तर पश्चिम प्रांतों के लिए अपना ली गई। यह सुंदर कार्य सबको पसंद आया, और अगले तीस वर्षों तक इस व्यवस्था को पूर्ण सफलता मिली है तथा कोई शिकायत सुनने में नहीं आई; किंतु इन पिछले वर्षों में भारत में प्राचीन जातियों से संबंधित वही आंदोलन उठ खड़ा हुआ है जिसने यूरोप को आंदोलित कर रखा है, अब मुसलमानों के अधीन न होने के कारण हिंदुओं में एक प्रतिक्रिया उत्पन्न हो गई है, अपने हाथ में शक्ति न ले सकने के बाद, वे कम से कम मुसलमानों की दासता के समय की अरुचिकर बातें दूर कर देना और स्वयं उर्दू को ही अवरुद्ध कर देना चाहते हैं, अथवा केवल उचित रूप में रखते हुए फारसी अक्षरों को जिसमें वह लिखी जाती है, जिन्हें वे मुसलमानों की छाप समझते हैं। अपनी इस प्रतिक्रियावादी अजीब बात के पक्ष में वे जो तर्क प्रस्तुत करते हैं वे बिल्कुल स्वीकार करने के योग्य नहीं हैं। बिना इस बात की ओर ध्यान दिए हुए कि जब कि हिंदी जिसे वे राष्ट्रीयता की संकीर्ण भावना से प्रेरित हो पुनर्जीवित करना चाहते हैं, अब साहित्यिक दृष्टि से लगभग लिखी ही नहीं जाती, जो हर एक गांव में, वस्तुतः प्रदेश के लोगों की तरह, बदल जाती है, जब कि उर्दू का सुंदर काव्यात्मक रचनाओं द्वारा रूप स्थिर हो चुका है, वे कहते हैं कि देश की (अर्थात् गांवों की) भाषा हिंदी है, न कि उर्दू?...स्पष्टतः यह जातिगत और धर्मगत विरोध है, यद्यपि दोनों में से कोई यह बात स्वीकार करने के लिए राजी नहीं है। यह बहुदेववाद का एकेश्वरवाद के विरुद्ध, वेदों का बाइबिल जिसके अंतर्गत मुसलमान आ जाते हैं, के विरुद्ध संघर्ष है? इस लंबे उद्धरण पर ठहरकर विचार करने की जरूरत है। तासी भाषा के विवाद को पहले धर्म तक ले जाते हैं और फिर उसे नस्ल तक। साहित्यिक धरातल पर ऐसा था ही नहीं कि उर्दू मुसलमानों की भाषा है और हिंदी हिंदुओं की। अगर ऐसा होता तो 1830 ई. में गुजर गए नजीर अकबराबादी ने कृष्ण पर कविता नहीं लिखी होती। जहां तक लिपि की बात है तो हिंदी का बहुत सारा मध्यकालीन साहित्य नागरी लिपि के साथ साथ फारसी लिपि में भी पाया जाता है। उदाहरण के लिए रामचरितमानस और घनानंद की कृतियां। बिहारी सतसई के बारे में भी यही बात है। इतना ही नहीं तासी के बाद इतिहास ग्रंथों में जिसकी गिनती होती है यानी शिवसिंह सरोज के प्रथम संस्करण में किताब का नाम फारसी लिपि में भी है। साहित्य की इन परिस्थितियों में भाषा और लिपि को निर्णयात्मक रूप से हिंदू या मुसलमान घोषित करना संभव ही नहीं है। 'फूट डालो, राज करो' की मानसिकता इसके पीछे जिम्मेदार है। उक्त उद्धरण की अंतिम पंक्ति नस्लीय टिप्पणी के साथ साथ यह प्रस्तावित करती है कि चूंकि मुसलमान और ईसाई एकेश्वरवाद को मानते हैं इसलिए हिंदुओं का विरोध दरअसल अपने बहुदेववाद से प्रेरित है। यह बात समझने की है कि भारत में बहुभाषिकता के साथ साथ बहु लिपिकता भी रही है। ऐसा नहीं होता तो दक्षिण में संस्कृत साहित्य वहां की स्थानीय भाषाओं की लिपियों में नहीं पाया जाता?

तासी के 'इतिहास' की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने कवयित्रियों पर अलग से विचार किया है। इसके लिए वे अवश्य प्रशंसा के पात्र हैं। उन्होंने 1854 ई. में 'भारत की महिला कवयित्रियां' शीर्षक लेख भी लिखा था। उनकी इस सूची में कई अलक्षित कवयित्रियां हैं। उन्होंने कई कवयित्रियों के उपनाम यानी तखल्लुस का विवेचन किया है। इन सबके साथ उन्होंने भारत में प्रचलित लोकगायन या कविता की लोकप्रसिद्ध शैलियों की भी चर्चा की है। इसका विवेचन भी उनके 'इतिहास' में सुंदर बन पड़ा है।

तासी के इस 'इतिहास' में काल विभाजन पर भी विचार है। इसमें भी वे यह तर्क देते हैं कि हिंदुई लेखकों का समय निश्चित नहीं है। उन्होंने कहा है कि यदि कालक्रम वाली पद्धति अपनाई जाती तो अनेक विभाग करने पड़ते। ऐसा इसलिए कि सबसे पहले वे लेखक आते जिनका काल अच्छी तरह ज्ञात है। फिर जिनका काल संदेहास्पद है वे और अंत में जिनका अज्ञात है वे लेखक शामिल होते; इसलिए तासी हिंदू कवि, हिंदुस्तानी कवि और दक्खिन के लेखकों का काल क्रम बनाते हैं। यह तीन प्रकार का वर्गीकरण शताब्दी के आधार पर भी है। तासी फिर लिखते हैं कि अब हमें इन लेखकों के वर्ग निर्धारित कर लेने चाहिए। सर्वप्रथम स्थापित होनेवाली विभिन्नता, जो अत्यंत स्वाभाविक प्रतीत होती है, उन्हें हिंदुओं और मुसलमानों में अलग अलग करना है, तो भी ऐसा करते समय यह देखने को मिलेगा कि किसी भी मुसलमान ने हिंदुई या हिंदी बोली में नहीं लिखा, जब कि बहुत से हिंदुओं ने चाहे उर्दू, चाहे दक्खिनी में लिखा है; साथ ही उन्होंने बहुत पहले से फारसी में लिखा था, जैसा कि सैयद अहमद ने भी उस उद्धरण में कहा है जो मैंने उनके 'आसार उस्सानादीद' से दिया है। किंतु जब कि मेरे द्वारा उल्लिखित तीन हजार भारतीय लेखकों में से दो हजार दो सौ से अधिक मुसलमान लेखक हैं; तो हिंदू लेखक आठ सौ हैं, और इन पिछलों में भी केवल दो सौ पचास के लगभग हैं जिन्होंने हिंदी में लिखा है? आश्चर्य होता है कि अपने 'इतिहास' में खुद तासी ने अमीर खुसरो, जायसी, नवाज आदि अनेक लेखकों का जिक्र किया है जो मुसलमान होकर 'हिंदुई' में लिखते हैं। तब उन्होंने ऊपर के उद्धरण में यह कैसे लिखा कि किसी भी मुसलमान ने हिंदुई या हिंदी बोली में नहीं लिखा? इससे यह भी प्रमाणित होता है कि तासी की दृष्टि एकांगी थी। पर औपनिवेशिकता से प्रभावित उनकी दृष्टि ने तथ्यों की प्रस्तुति में भी न्याय नहीं किया है। उन पर हावी औपनिवेशिक मानसिकता उनके 'इतिहास' के अनुवादक लक्ष्मीसागर वाष्ण्य पर भी शायद हावी रही कि उन्होंने केवल हिंदी के लेखकों से संबद्ध हिस्से का अनुवाद हिंदी में किया। गार्सा द तासी का यह महत्त्वपूर्ण 'इतिहास' आज तक हिंदी और अंग्रेजी में संपूर्ण अनुवाद की राह देख रहा है। अगर इसे केवल संग्रह ग्रंथ भी माना जाए तब भी इसमें 'साहित्य के इतिहास' के लिए भरपूर सामग्री है।

गार्सा द तासी के 'इतिहास' के बाद प्रायः शिवसिंह सेंगर की लिखी किताब *शिवसिंह सरोज* की चर्चा हिंदी साहित्य के इतिहास के ग्रंथ के रूप में होती है। पर भारतेंदु हरिश्चंद्र के फुफेरे भाई बाबू राधाकृष्ण दास ने 1901 ई. में नागरीप्रचारिणी सभा, बनारस की पत्रिका *नागरीप्रचारिणी पत्रिका* में एक लेख लिखा था। इस लेख में उन्होंने 1873 ई. में प्रकाशित एवं पंडित महेशदत्त शुक्ल रचित *भाषा काव्य संग्रह* की सूचना दी। इस लेख में बाबू राधाकृष्ण दास ने यह लिखा था कि इसमें संग्रहकर्ता ने पहले कुछ प्राचीन कवियों की कविता संग्रह की है, फिर उन्हीं कवियों का जीवनचरित्र तथा समय आदि संक्षेप से दिया है और अंत में कठिन शब्दों का कोश दिया है। कवियों का समय निर्णय इस ग्रंथ में जैसा किया है वैसा कहीं देखने में नहीं आता, विशेषकर अवध प्रांत के कवियों का समय। निर्णय बहुत ही निश्चय के साथ किया है— यदि इसमें दिया समय ठीक हो (जिसके ठीक न मानने का कारण हमें नहीं दिखाई पड़ता), तो बहुत से कवियों के समय। निर्णय

का मार्ग अत्यंत परिष्कृत हो जाता है?''<sup>28</sup> रामकुमार वर्मा ने अपनी किताब *हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास* में महेशदत्त शुक्ल का जिक्र किया है। महेशदत्त शुक्ल की यह पुस्तक नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से छपी थी। इसकी सूचना नवलकिशोर प्रेस पर अलराइक स्टार्क (Ulrike Stark) के अत्यंत परिश्रमपूर्ण शोध *ऐन अंपायर ऑफ बुक्स द नवल किशोर प्रेस एंड द डिफ्यूजन ऑफ द प्रिंटेड वर्ल्ड इन कोलोनियल इंडिया* (An Empire Of Books The Naval Kishore Press And The Diffusion Of The Printed World In Colonial India) से भी मिलती है। हालांकि इस किताब में महेशदत्त शुक्ल की उक्त किताब का प्रकाशन वर्ष 1874 ई. दिया गया है?''<sup>29</sup> अफसोस है कि महेशदत्त शुक्ल की यह किताब अभी तक देखने में नहीं आई।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि गार्सा द तासी के 'इतिहास' के बाद *शिवसिंह सरोज* को हिंदी साहित्य का इतिहास माना जाता है। इस किताब का पहला संस्करण 1878 ई. में प्रकाशित हुआ और 1883 ई. तक इसका तीसरा संस्करण छापना पड़ा। 1926 ई. में इसका सातवां संस्करण प्रकाशित हुआ। इससे इस किताब की लोकप्रियता का अंदाजा लगाया जा सकता है। इसकी भूमिका में शिवसिंह सेंगर ने लिखा है कि *हमने सोचा कि अब कोई ग्रंथ ऐसा बनाया चाहिए जिसमें प्राचीन औ नवीन कवि लोगों के जीवन चरित्र सहित सन् संवत् औ जाति औ निवास औ कबिताई के ग्रंथों समेत विस्तारपूर्वक होवें?...पहिले हम सोचे हुए थे कि एक छोटी सी संग्रह बनावेंगे पर धीरे धीरे ऐसा भारी ग्रंथ हुवा कि 1000 कवि लोगों के नाम सहित जीवन चरित्र इकट्ठा हो गए, जिनमें 836 की कविता हमने इस ग्रंथ में लिखी और विस्तार के भय से केवल इतने ही कवि लोगों की कविता पर लिखने पर ग्रंथ को समाप्त कर दिया। हमको इस बात के प्रगट करने में कुछ संदेह नहीं है कि ऐसी संग्रह कोई आज तक नहीं रची गई?''<sup>30</sup> शिवसिंह सेंगर ने अपनी किताब को 'इतिहास' न कहकर 'संग्रह' कहा है। इससे यह पता चलता है कि वे इतिहास के वर्तमान अर्थ से जरूर परिचित रहे होंगे। 'संग्रह' में जोर रचनाओं पर हो जाता है जबकि 'इतिहास' में बल कालक्रम, काल विभाजन और मूल्यांकन पर होता है।*

'शिवसिंह सरोज' में कवियों के परिचय के साथ उनकी रचनाएं भी संकलित की गई हैं; इस तरह के संग्रह ग्रंथों की परंपरा हिंदी में पहले से चली आ रही थी। *कालिदास हजार* (लगभग 1718 ई.), 'राग सागरोद्भव, राग कल्पद्रुम' (लगभग 1843 ई.) आदि संग्रह ग्रंथ पहले से बनते आ रहे थे। नई बात यह थी कि *शिवसिंह सरोज* में कवियों के जीवन और उनकी रचनाओं पर भी विचार था। शिवसिंह सेंगर के बारे में हिंदी के साहित्येतिहास ग्रंथों में ज्यादा जानकारी नहीं मिलती। पर इतना अवश्य पता चलता है कि उन्नाव जिले के रहने वाले थे और 'इंस्पेक्टर पुलिस' थे। इस पद पर रहते हुए वे निश्चय ही अंग्रेज अधिकारियों और उनकी ज्ञान परंपरा के संपर्क में आए होंगे।

पंडित महेशदत्त शुक्ल रचित *भाषा काव्य संग्रह* या *शिवसिंह सरोज*, इन दोनों किताबों के ढांचे पर विचार करने से यह पता चलता है कि अंग्रेजों या यूरोपियों के संपर्क में आने के बाद भारत में आज के अर्थ वाले इतिहास का प्रचार बढ़ा। भारत में 'इतिहास' का वर्तमान अर्थ कभी नहीं रहा। यों भारत में 'इतिहास' शब्द का प्रयोग अथर्ववेद, महाभारत और संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में हुआ है। यूरोपीय अर्थ में इतिहास का जोर तथ्यों पर रहा है पर यदि इतिहास का काम या क्षेत्र अतीत से संबंध की विवेचना है तो भारत में यह प्रस्तावित किया गया कि जीवन का मूल मूल्य है। कहने का मतलब यह कि भारत में इतिहास की तथ्यपरक अवधारणा नहीं रही बल्कि इसके स्थान पर मूल्यपरक इतिहास सदा रचा जाता रहा। इसीलिए भारत में 'काल' की भी अवधारणा अलग किस्म की रही है। आधुनिक इतिहास में जिस प्रकार 'काल' को 'हिगराकर'

विचार किया जाता है उस तरह से भारत में करना अच्छा नहीं माना गया। इसी से जुड़ा एक रोचक प्रसंग यह है कि एक बार प्रसिद्ध शायर फिराक गोरखपुरी ने एक व्यक्ति को अपने पास बुलाया। उन्हें आने में देर हो गई। फिराक साहब चिर परिचित अंदाज वाली अपनी झल्लाहट में बोले कि आप लोगों को समय का ध्यान ही नहीं रहता, और रहे भी कैसे, क्योंकि 'महाकाल के उपासक को खंडकाल से क्या मतलब?' हिंदी के 'पारसमणि आचार्य' हजारीप्रसाद द्विवेदी अपनी किताब 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' में भारत में प्रचलित 'इतिहासबोध' के बारे में लिखते हैं कि *वस्तुतः, इस देश में इतिहास को ठीक आधुनिक अर्थ में कभी नहीं लिया गया। बराबर ही ऐतिहासिक व्यक्ति को पौराणिक या काल्पनिक कथानायक बनाने की प्रवृत्ति रही है। कुछ में दैवी शक्ति का आरोप कर पौराणिक बना दिया गया है; जैसे राम, बुद्ध, कृष्ण आदि और कुछ में काल्पनिक रोमांस का आरोप करके निजंधरी कथाओं का आश्रय बना दिया गया है; जैसे उदयन, विक्रमादित्य और हाल। जायसी के रतनसेन, और रासो के पृथ्वीराज में तथ्य और कल्पना का—फैक्ट्स और फिक्शन का—अद्भुत योग हुआ है। कर्मफल की अनिवार्यता में, दुर्भाग्य और सौभाग्य की अद्भुत शक्ति में और मनुष्य की अपूर्व शक्ति भंडार होने में दृढ़ विश्वास ने इस देश के ऐतिहासिक तथ्यों को सदा काल्पनिक रंग में रंगा है। यही कारण है कि जब ऐतिहासिक व्यक्तियों का भी चरित्र लिखा जाने लगा, तब भी इतिहास का कार्य नहीं हुआ। अंत तक ये रचनाएं काव्य ही बन सकीं, इतिहास नहीं। फिर भी, निजंधरी कथाओं से वे इस अर्थ में भिन्न थीं कि उनमें बाह्य तथ्यात्मक जगत् से कुछ न कुछ योग अवश्य रहता था। कभी कभी मात्रा में कमी बेशी तो हुआ करती थी, पर योग रहता अवश्य था।<sup>31</sup> इन परिस्थितियों में पंडित महेशदत्त शुक्ल रचित भाषा काव्य संग्रह या शिवसिंह सरोज या दूसरे 'काव्य संग्रहों' से वर्तमान अर्थ में प्रचलित ऐतिहासिकता की उम्मीद व्यर्थ है। इसीलिए नलिनविलोचन शर्मा ने अपनी किताब *साहित्य का इतिहास दर्शन* में शिवसिंह सरोज के बारे में लिखा है कि *जहां तक साहित्येतिहास के रूप में सरोज के महत्त्व का प्रश्न है, यह ग्रंथ सही अर्थ में कविवृत्त संग्रह भी नहीं कहा जा सकता, साहित्यिक इतिहास तो दूर की बात है; क्योंकि कवियों के जन्म काल आदि के संबंध में जो विवरण हैं, वे भी अत्यंत संक्षिप्त और बहुधा अनुमान पर आश्रित हैं?*<sup>32</sup> इससे यह स्पष्ट है कि वर्तमान अर्थ इतिहास की शुरुआत भी भारत में औपनिवेशिक काल में ही होती है। इस प्रक्रिया में जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन द्वारा लिखित *द मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान (The Modern Vernacular Literature Of Hindustan)* महत्त्वपूर्ण है।*

जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन (1851-1941 ई.) मूलतः गणित के विद्यार्थी थे पर उन्होंने राबर्ट एटकिंसन से संस्कृत और मीर औलाद अली से हिंदुस्तानी सीखी थी। वे 1871 ई. में भारतीय सिविल सर्विस की परीक्षा पास कर 1873 ई. में भारत आए। बंगाल के जैसोर जिले में नियुक्त हुए। कुछ ही दिनों बाद उनकी बदली अकाल के महकमे में हो गई और बिहार भेज दिए गए; वे भारत में लगभग 24 साल रहे। 1877 ई. में उन्होंने अपना पहला लेख कालिदास पर लिखा?<sup>33</sup> 1885 ई. में ग्रियर्सन ने अपनी प्रसिद्ध किताब *बिहार पीजेंट लाइफ (Bihar Peasant Life)* लिखी; इस किताब ने उन्हें पूरे यूरोप में मशहूर कर दिया। 1886 ई. में वियना में प्राच्यवादियों का एक अंतरराष्ट्रीय सम्मलेन हुआ। इसमें ग्रियर्सन ने तुलसीदास के संदर्भ में मध्यकालीन साहित्य पर एक पर्चा पढ़ा। इसी सम्मलेन में यह भी विचार किया गया कि भारत में कुल कितनी भाषाएं हैं? अंदाजा लगभग बीस, साठ से लेकर 250 तक का था। इसी सम्मलेन में यह प्रस्ताव पास किया गया कि भारत की भाषाओं का एक सर्वेक्षण होना चाहिए। प्रस्तावकों में प्रसिद्ध प्राच्यवादी व्हूलर, मैक्समूलर, मोनियर विलियम्स और ग्रियर्सन थे?<sup>34</sup> 1898 ई. में यह सर्वेक्षण शुरू हुआ और ग्रियर्सन



को इस काम के लिए शिमला में नियुक्त किया गया। 1902 ई. में वे वापस अपने वतन लौट गए। उन्होंने 1903 ई. में भारतीय सिविल सर्विस से अवकाश प्राप्त कर लिया और अपने देश में ही रहकर भाषा सर्वेक्षण का काम करते रहे। इस सर्वेक्षण को पूरा होने में लगभग तीस साल लगे और यह भारतीय भाषाओं का एकमात्र सर्वेक्षण था। इधर जी. एन. डेवी (G. N. Devy) नामक प्रसिद्ध विद्वान ने 2016-2017 ई. में भारतीय भाषाओं का दूसरा सर्वेक्षण किया है। रामकथा पर आधिकारिक काम करनेवाले दिनेशचंद्र सेन ने ग्रियर्सन को 'द एंपरर ऑफ लर्निंग (The Emperor Of Learning)' कहा था।

ग्रियर्सन की किताब *द मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान* (The Modern Vernacular Literature Of Hindustan) पहले *जर्नल ऑफ द एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल* (Journal Of The Asiatic Society Of Bengal) में 1888 ई. में प्रकाशित हुई थी। 1889 ई. में यह पुस्तकाकार छपी। इस किताब में लक्ष्य करनेवाली पहली बात तो यही है कि यह किसी को समर्पित नहीं है। दूसरी बात यह कि इसमें बतौर आदर्श वाक्य विख्यात लेखक गेटे की दो पंक्तियां रखी गई हैं। पंक्तियां मूल जर्मन में हैं। इसका अच्छा विश्लेषण इरा सर्मा (Ira Sarma) ने हंस हार्डर (Hans Harder) द्वारा संपादित किताब *लिटरेचर एंड नेशनलिस्ट आडियोलॉजी* (Literature And Nationalist Ideology) में संकलित अपने लेख में किया है। इन पंक्तियों का मतलब यह था कि 'जो चारण को समझता है उसे चारण की भूमि भी खोजनी होगी।' इरा सर्मा ने अपने लेख में यह स्पष्ट किया है कि गेटे ने पश्चिमी पाठक और पूर्वी लेखक के संबंध को व्याख्यायित करने के संदर्भ में उपर्युक्त पंक्तियां कहीं थीं।<sup>35</sup> दरअसल ग्रियर्सन के जमाने में उस भारत को जानने की कोशिश हो रही थी जो रहस्यमयी और अज्ञात था। इस प्रक्रिया में ग्रियर्सन और उन जैसे अनेक लोगों, जिन में गेटे भी शामिल हैं, ने अपने अपने कार्यों से यह प्रस्तावित किया था कि भारत को जानने के लिए यहां की संस्कृति में रमना होगा। अकारण नहीं है कि जब ग्रियर्सन 1877 ई. में दरभंगा जिले के मधुबनी के सब डिविजनल ऑफिसर बने और वहां तीन साल रहे तब उन्होंने देशी पंडितों की सहायता से मैथिली का एक व्याकरण रचा। इस प्रक्रिया में अपने से मिलने आनेवाले पंडितों को ग्रियर्सन 'एक जोड़ा धोती और दो रुपया नकद' बतौर विदाई देते थे? <sup>36</sup> विदाई में कपड़ा और कुछ पैसा देना हिंदू ब्राह्मणों का एक रिवाज रहा है। ग्रियर्सन ऐसा करके उस रिवाज में अपनी सहमति के साथ साथ भागीदारी भी सुनिश्चित कर रहे थे?

*द मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान* (The Modern Vernacular Literature Of Hindustan) में ग्रियर्सन नाम में आए 'हिंदुस्तान' की चौहद्दी तय करते हुए स्पष्ट करते हैं कि उनके लिए हिंदुस्तान का मतलब, राजपुताना और गंगा। जमुना की घाटी जो कोशी नदी के किनारे तक फैली है, से है। वे साफ साफ कहते हैं कि इसमें वे पंजाब और बंगाल के निचले हिस्से को शामिल नहीं कर रहे हैं।<sup>37</sup> बतौर भाषा वे 'मारवाड़ी', 'हिंदी' और 'बिहारी' को इन सबकी विभिन्न 'बोलियों और उपबोलियों' के साथ अपने इस अध्ययन का विषय बनाते हैं। इरा सर्मा ने उपर्युक्त लेख में ठीक ही लक्ष्य किया है कि ग्रियर्सन के जमाने अर्थात् 1880 ई. के आसआस 'हिंदी' का वह अर्थ नहीं लिया जाता था जो बाद में यानी हिंदुस्तान के राष्ट्रवादी दौर में लिया जाने लगा। 'हिंदी' से उस समय किसी क्षेत्र विशेष का भी बोध नहीं होता था। पर यहां विचारणीय यह है कि ग्रियर्सन 'मारवाड़ी', 'हिंदी' और 'बिहारी' को किन अर्थों में इस्तेमाल कर रहे हैं? उन्होंने जिन 952 कवियों को अपनी इस किताब में जगह दी है उनमें ज्यादातर अवध या ब्रज क्षेत्र के हैं। 'हिंदी' को ग्रियर्सन एक 'संकर' और यूरोपीय लोगों द्वारा आविष्कृत भाषा मानते थे। वे यह भी साफ साफ लिखते हैं कि यह आविष्कृत भाषा 'हिंदुओं की संपर्कभाषा (lingua franca of Hindus)

बन गई क्योंकि इसका अभाव था। वे हिंदी को लेकर गार्सा द तासी की यह मान्यता भी दोहराते हैं कि 'हिंदी' कभी भी कविता की भाषा नहीं रही?<sup>38</sup>

इन बातों से पता चलता है कि ग्रियर्सन के लिए भी 'हिंदी' हिंदुओं की भाषा थी। सवाल यह है कि अगर ग्रियर्सन 'हिंदी' का अर्थ 'खड़ी बोली' कर रहे हैं तो अपनी किताब में अवधी और ब्रजभाषा के लेखकों को कैसे शामिल कर रहे हैं? ऐसा इसलिए कि 'मारवाड़ी' से राजस्थान की भाषाओं का बोध और 'बिहारी' से बिहार की भाषाओं का संकेत होता है। इतना ही नहीं उनके भाषा सर्वेक्षण के जिल्द 5 के दूसरे भाग में बिहारी और उड़िया भाषाओं को तो जिल्द 9 के भाग 1 में पश्चिमी हिंदी और पंजाबी को रखा गया है। भाषायी स्तर पर यह विसंगति तासी में भी थी और ग्रियर्सन में भी दिखाई पड़ती है। इरा सर्मा ने यह स्पष्ट किया है कि 'वर्नाक्युलर भाषाओं' के अध्ययन का उद्देश्य ही यह था कि शासित जनता पर नियंत्रण स्थापित किया जाए और विभिन्न राष्ट्रीयताओं को जन्म दिया जा सके।

ग्रियर्सन ने अपनी इस किताब को 'इतिहास' नहीं कहा है। इसका कारण बताते हुए वे कहते हैं कि उन्होंने सारी सामग्री को पढ़ा नहीं है और न ही भाष्य के अभाव में समझ सके हैं। अतः इसे भी वे 'सामग्री संग्रह' के रूप में ही मानते हैं। पर ध्यान से देखने पर यह पता चलता है कि ग्रियर्सन ने इस किताब में 'इतिहास' का आधुनिक अर्थ सामने रखा है और काल विभाजन करने की कोशिश की है। लेकिन उनके काल विभाजन में कोई एक सम्यक दृष्टि नजर नहीं आती। कभी वे साहित्यिक धरातल पर काल का नामकरण करते हैं, जैसे रीतिकाल (The Ars Poetica) तो कभी राजनैतिक सत्ता के आधार पर 'कंपनी के शासन में हिंदुस्तान' (Hindustan under The Company)। फिर सोलहवीं और सत्रहवीं सदी के भारतीय साहित्य को 'स्वर्ण युग' (Augustan Age) कहते हैं। दूसरी तरफ वे लेखक केंद्रित 'इतिहास' को भी प्रस्तावित करते हैं।

ग्रियर्सन ने जायसी और तुलसीदास को बहुत महत्त्व दिया है। उनकी इस किताब में यही दो ऐसे लेखक हैं जिन पर अलग अलग स्वतंत्र अध्याय हैं। आश्चर्य होता है कि कबीर को उन्होंने कोई महत्त्व नहीं दिया। उनके जीवन और उनके नाम पर चलने वाले ग्रंथों का उल्लेख कर छोड़ दिया है। जिन गार्सा द तासी से उन्होंने अपने लिए सामग्री लेने की बात कही है वहां भी कबीर के बारे में इनसे अधिक बातें कहीं गई हैं। ठीक इसी प्रकार ग्रियर्सन उर्दू के शायर नजीर अकबराबादी को भी इस किताब में स्थान देते हैं। इनके अलावा किसी और उर्दू शायर का उल्लेख तक नहीं है। इन तथ्यों से यह निष्कर्ष निकालना क्या उचित होगा कि ग्रियर्सन में हिंदू संस्कार कहीं न कहीं प्रबल थे? या फिर वे ऐसे मुसलमानों को बढ़ावा दे रहे थे जो हिंदू ढांचे में फिट बैठ सकें? ऐसा इसलिए कि नजीर को क्या इस कारण उन्होंने शामिल किया कि उन्होंने कृष्ण पर कविताएं रची हैं? जायसी को भी महत्त्व देने के पीछे क्या यही बात है? तुलसीदास और *रामचरितमानस* को तो वे इतना अधिक महत्त्व देते हैं कि वे लिखते हैं कि *हिंदुस्तान की पढ़ी लिखी या अनपढ़ जनता की नैतिकता का प्रतिमान रामचरितमानस ही है?*<sup>39</sup> यह वही नैतिकता है जिसका विलियम जॉस ने *अभिज्ञानशाकुंतलम्* के अपने अनुवाद में विवेचन किया था। ग्रियर्सन का यह असर रामचंद्र शुक्ल पर भी दिखता है जब वे जायसी और तुलसीदास को अपने अध्ययन के लिए चुनते हैं। वे जायसी की इस बात के लिए तारीफ करते हैं कि उन्होंने हिंदू घरों में प्रचलित कहानी को अपने काव्य का विषय बनाया। यह बात अब छुपी हुई नहीं है कि अंग्रेजों की नीति भारत में हिंदुओं और मुसलमानों के भीतर 'हिंदूपन' और 'मुसलमानत्व' को बरकरार रखने की थी ताकि वे विभेद की राजनीति जारी रख सकें। तुलसीदास द्वारा प्रस्तुत आदर्श और नैतिकता की भूरि भूरि प्रशंसा ग्रियर्सन करते हैं। यही आदर्श और नैतिकता सत्ता के पूरे स्वरूप को कायम रखती है।

ग्रियर्सन को भी परिवर्तनकामी शक्तियां पसंद नहीं थीं इसलिए वे 'महारानी विक्टोरिया के शासन में हिंदुस्तान' (Hindustan under The Queen) वाले अध्याय में लिखते हैं कि *बांग्ला पत्रकारिता को कलंकित करनेवाले राजद्रोही और कटुभाषी समसामयिकों की तुलना में हिंदी समाचारपत्र नियमतः और सामान्यतः कहीं अधिक अच्छे हैं?*<sup>40</sup>

गार्सा द तासी और जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन द्वारा प्रारंभिक 'इतिहास' का लेखन औपनिवेशिक मानसिकता से ग्रस्त था। इस मानसिकता में विभेदीकरण, सांप्रदायिक राजनीति को प्रश्रय दिया गया। चूंकि बुनियाद ही गड़बड़ हो गई इसलिए हिंदी साहित्य के इतिहास के सामने कई समस्याएं आज भी खड़ी हैं। साथ ही औपनिवेशिक इतिहास लेखन के प्रतिकार में जो राष्ट्रवादी इतिहास : लेखन की परियोजना चली उसने भी अलग तरह की समस्याएं खड़ी कीं। उदाहरण के लिए अगर हिंदी साहित्य के इतिहास में मध्यकालीन हिंदी साहित्य के अंतर्गत अवधी और ब्रजभाषा के साहित्य को स्वीकार किया जाता है तो आधुनिक काल में इनका साहित्य क्यों नहीं शामिल किया जाता? इतना ही नहीं बाकी भाषाओं जैसे बघेली, छत्तीसगढ़ी, गढ़वाली के साहित्य का उल्लेख भी हिंदी साहित्य में नहीं होता। ठीक इसी प्रकार आधुनिक हिंदी नाटक के विकास में भिखारी ठाकुर का जिक्क अब जाकर शुरू हुआ है। उर्दू को तो बहिष्कृत कर ही दिया गया। यह बात समझी ही नहीं गई कि हिंदी क्षेत्र नहीं बल्कि वह हिंदी उर्दू क्षेत्र है। शब्दों और लिपियों के बदलाव से ये दो क्षेत्रों की भाषाएं नहीं हो जातीं। भाषा की पहचान उसकी क्रिया, कारक और वाक्य संरचना से होती है। इन कसौटियों पर हिंदी उर्दू में उस तरह का भेद नहीं है जैसा कि बताया जाता है। भारत विभाजन में भाषा की इस राजनीति का बहुत गहरा योगदान रहा है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने औपनिवेशिक ज्ञान प्रक्रिया पर विचार करते हुए लिखा है कि *मौका देखकर इन्होंने दरार पर आघात किया, पहले से अलग हिंदू और मुसलमान दूर से दूरतर होते गए। मौका देखकर विदेशी राजा बन बैठे और अपूर्व अथर्वसाय और लगन के साथ दोनों जातियों को समझने की कोशिश करते गए; जितना ही उन्होंने समझा उतना ही भेदभाव को उत्तेजित किया। आज हम प्रत्येक बात को हिंदू दृष्टिकोण और मुसलमान दृष्टिकोण से देखने के आदी हो गए हैं, मानों ऐसा कोई दृष्टिकोण ही नहीं है जिससे हिंदू और मुसलमान साथ ही देख सकें!*<sup>41</sup>

औपनिवेशिक इतिहास लेखन में प्रश्न केवल भाषा की अवधारणा का ही नहीं था बल्कि साहित्यिक प्रतिमान का भी था। गार्सा द तासी 1839 ई. में 'राजभक्ति' को वांछित समझते हैं और ग्रियर्सन जायसी, तुलसी और बिहारी को श्रेष्ठ कवि के रूप में स्थापित करते हैं; मीरा पर चर्चा करते हुए ग्रियर्सन उनकी प्रेम भावना का ही उल्लेख करते हैं उनकी विद्रोह भावना का नहीं। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि औपनिवेशिक इतिहास लेखन ने साहित्य की दुनिया को किस तरह प्रभावित किया है! यह प्रभाव आगे के इतिहासकारों पर भी बना रहा। उपनिवेशवाद आज भारत का अतीत है पर यह भारत के भविष्य को लगातार प्रभावित कर रहा है।

## संदर्भ

1. कॉलोनियलिज्म एंड इट्स फॉर्म ऑफ नॉलेज (Colonialism And Its Forms Of Knowledge)—बर्नार्ड एस. कोन (Bernard S. Cohn), प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन, 1996 ई. की प्रस्तावना में निकोलस बी. डर्क्स (Nicholas B. Dirks)।
2. द एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल एंड द डिस्कवरी ऑफ इंडियाज पास्ट (The Asiatic Society Of Bengal And The Discovery Of India's Past)—ओ. पी. केजरीवाल (O. P. Kejariwal), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1988 ई., पृ. 14।
3. द पुर्तगीज इन इंडिया (The Portuguese In India)—एम. एन. पियरसन (M. N. Pearson), केंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, केंब्रिज, 2008 ई., पृ. 123।
4. द एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल एंड द डिस्कवरी ऑफ इंडियाज पास्ट, वही।
- 5.

वही, पृ. 15 । 6. ओरियंटलिस्ट जोन्स (Orientalist Jones)—माइकल जे. फ्रैंकलिन (Michael J. Franklin), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 2011 ई., पृ. 1 । 7. द लाइफ एंड द माइंड ऑफ ओरियंटल जोन्स (The Life And The Mind Of Oriental Jones)—गार्लैंड कैनन (Garland Canon), कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1990 ई., पृ. 198 । 8. द वर्क्स ऑफ सर विलियम जोन्स (The Works Of Sir William Jones) खंड 3—सं. लॉर्ड टेगनमाउथ (Lord Teignmouth), जॉन स्टॉकडले (John Stockdale) और जॉन वॉकर (John Walker) के लिए प्रकाशित, लंदन, 1807 ई., पृ. 26 । 9. ओरियंटलिस्ट जोन्स—वही, पृ. 256 । 10. फोर्ट विलियम कॉलेज—लक्ष्मीसागर वाष्णोय, हिंदी परिषद् प्रकाशन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, 1947 ई., पृ. 4 । 11. वही, पृ. 7 । 12. द कॉलेज ऑफ फोर्ट विलियम इन बंगाल (The College Of Fort William In Bengal)—टी. कैडल (T. Cadell) और डब्ल्यू. डेविस स्ट्रैंड (W. Davies Strand) के लिए छपा, लंदन, 1805 ई., पृ. 47 । 13. उर्दू का आरंभिक युग—शम्सुर्रहमान फारूकी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008 ई., पृ. 17 । 14. फ्रॉम हिंदी टू उर्दू अ सोशल एंड पॉलिटिकल हिस्ट्री (From Hindi To arduA Social And Political History)—तारिक रहमान (Tariq Rahman), ओरिएंट ब्लैकस्वान प्रा. लि., हैदराबाद, 2011 ई., पृ. 98, 99, 199 । 15. हिंदी के यूरोपीय विद्वान : व्यक्तित्व और कृतित्व—मुरलीधर श्रीवास्तव, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1973 ई., पृ. 73 । 16. द ऐन्सुअल ऑफ उर्दू स्टडीज (The Annual Of ardu Studies)—अंक (Vol.) 26, 2011 ई., पृ. 135 । 17. वही, पृ. 136 । 18. हिंदी के यूरोपीय विद्वान—वही, पृ. 77 । 19. हिंदुई साहित्य का इतिहास—गासा द तासी, अनुवादक : लक्ष्मीसागर वाष्णोय, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1953 ई., पृ. 1 । 20. भारतेंदु समग्र : सं. हेमंत शर्मा, हिंदी प्रचारक पब्लिकेशंस, बनारस, 2000 ई., पृ. 14 । 21. एन एरा ऑफ डार्कनेस द ब्रिटिश एंपायर इन इंडिया (An Era Of Darkness The British Empire In India)—शशि थरूर (Shashi Tharoor), एल्फ (Aleph) बुक कंपनी, नई दिल्ली, 2016 ई., पृ. 4 । 22. पद्माकर ग्रंथावली—सं. विश्वनाथप्रसाद मिश्र, नागरीप्रचारिणी सभा, बनारस, 1959 ई., पृ. 311 । 23. Historie De La Litterature Hindoui Et Hindoustani, Tome 1—Garcin De Tassy] The Oriental Translation Committee Of Great Britain And Ireland, Paris, 1839 ई., i- iii . 24. हिंदुई साहित्य का इतिहास—वही, पृ. 2 । 25. वही, पृ. 56, 57 । 26. वही, पृ. 58 । 27. वही, पृ. 113 । 28. राधाकृष्ण ग्रंथावली, खंड 1—सं. श्यामसुंदरदास, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, 1930 ई., पृ. 97 । 29. ऐन अंपायर ऑफ बुक्स द नवल किशोर प्रेस एंड द डिफ्यूजन ऑफ प्रिंटेड वर्ल्ड इन कोलोनियल इंडिया (An Empire Of Books The Naval Kishore Press And The Diffusion Of The Printed World In Colonial India)—अलराइक स्टार्क (Ulrike Stark), परमानेंट ब्लैक, रानीखेत, 2008 ई., पृ. 465 । 30. शिवसिंह सरोज—सं. किशोरीलाल गुप्त, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, 1970 ई., पृ. 2 । 31. हिंदी साहित्य का आदिकाल—हजारीप्रसाद द्विवेदी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1980 ई., पृ. 77 । 32. साहित्य का इतिहास : दर्शन—नलिनविलोचन शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1960 ई., पृ. 77 । 33. सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन—पी. के. गोड (P. K. Gode), एनल्स ऑफ द भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट (Annals Of The Bhandarkar Research Institute), भाग 21, संख्या 3-4, 1939 : 40 ई., पृ. 311 । 34. जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन (1851 : 1941)—सिद्धार्थ सेन, हरमथेना (Harmathena) पत्रिका, संख्या 172, ट्रिनिटी कॉलेज, डब्लिन, 2002 ई., पृ. 49 । 35. लिटरेचर एंड नेशनलिस्ट आडियोर्लाजी (Literature And Nationalist Ideology)—सं. हंस हार्डर (Hans Harder), सोशल सायंस प्रेस, नई दिल्ली, 2015 ई., पृ. 185 । 36. हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास डा. सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन वी.ए. बी. सी. एस. कृत द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान का स : टिप्पण अनुवाद—किशोरीलाल गुप्त, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1957 ई., पृ. 7 । 37. द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान (The Modern Vernacular Literature Of Hindustan)—जॉर्ज ए. ग्रियर्सन (George A. Grierson), एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, 1889 ई., पृ. viii । 38. वही, पृ. 107 । 39. वही, पृ. 43 । 40. वही, पृ. 145 । 41. कल्पलता—हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999 ई., पृ. 58

# गंगा जमुनी तहजीब की नींव

अशोक महेश्वरी

राजकमल प्रकाशन समूह के प्रबंध निदेशक अशोक महेश्वरी अपनी सूझ, समकालीनबोध और रचनात्मकता के लिए भी जाने जाते हैं। प्रस्तुत है हिंदी उर्दू की सहधर्मिता को लेकर उनकी टिप्पणी।

किसी भाषा से अनुवाद केवल इस भाषा का उस भाषा में उल्था नहीं होता। यह एक संस्कृति का दूसरी संस्कृति में प्रवेश है। एक भाषा से दूसरी भाषा और संस्कृति में रूपांतरण। यूं भी अनुवाद यदि शाब्दिक हो तो वह अच्छा नहीं माना जाता। उसमें भाव भी उतरना चाहिए। जिस भाषा में अनुवाद हो रहा है उसकी तासीर पाठ में आनी चाहिए। पढ़ते समय पाठक को लगे कि वह अपनी भाषा बोली में लिखा ही पढ़ रहा है, कुछ बाहरी नहीं। कई बार तो यह बात लाने के लिए स्थान और पात्रों के नाम बदल दिए जाते हैं; हालांकि तब इसे अनुवाद नहीं, रूपांतरण कहा जायेगा।

अनुवाद और रूपांतरण दो भाषाओं का आपसी आदान प्रदान है। अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश आदि विदेशी भाषाओं में ही नहीं— भारतीय भाषाओं जैसे कन्नड़, तमिल, हिंदी, तेलुगू, उड़िया, बांग्ला सभी में आपसी सृजनात्मक आदान प्रदान को अनुवाद ही कहा जाता है। प्रायः सभी उत्तर भारतीय भाषाओं का स्रोत संस्कृत को माना जाता है। परंतु अलग अलग भू भागों में, भिन्न परिस्थितियों में विकसित होने के कारण भाषाएं अलग अलग ध्वनियों में विकसित हुईं। भिन्न परिस्थितियों के कारण लिपियां भी अलग अलग हो गईं। कुछ भाषाओं की लिपि संस्कृत की लिपि देवनागरी से मिलती जुलती है और कुछ की अलग। दक्षिण भारत की भाषाएं द्रविड़ भाषा परिवार से हैं। इनकी ध्वनियां भी अलग हैं और लिपि भी। संस्कृत से मेलजोल और संघर्ष के कारण बहुलता में संस्कृत शब्दों को इन भाषाओं ने अपना लिया। पूजा अर्चना और बहुत से अन्य महत्वपूर्ण अवसरों पर संस्कृत मंत्रों और श्लोकों का पाठ उत्तर भारत की तरह वहां भी संस्कृत में ही होता है।

अपनी बात आपके सामने रखने की इस पूर्व पीठिका में मैं उर्दू को शामिल नहीं कर सका। और यह अनायास नहीं है। सभी तरह की एकरूपताओं और भिन्नताओं की परख करते हुए मैं उर्दू को साथ नहीं रख सका। उर्दू से हिंदी या हिंदी से उर्दू में बदलाव को मैं अनुवाद या रूपांतरण नहीं कहना चाहूंगा। यह बात मैं अपनी चर्चा को आगे बढ़ाते हुए स्पष्ट करूंगा।

उर्दू का जन्म गंगा जमुना की तलहटी में हुआ। यहीं यह पली बढ़ी। यहीं के रहवासियों ने इसे जन्म दिया और विकसित किया। लंबे अर्से तक यह शासन की भाषा रही। मुसलमान शासक अपने साथ फारसी भाषा और अरबी लिपि लाए। हिंदी उर्दू का प्रथम व्याकरण तथा शब्दकोश लिखनेवाले जे.बी. गिलक्रिस्ट के अनुसार : 'दाता' भाषाओं के शब्दों की संख्या के आधार पर, तीन प्रकार की उर्दू है। प्रथम प्रकार की उर्दू में अत्यंत कम अरबी फारसी शब्द हैं। दूसरे प्रकार में उतने ही फारसी अरबी शब्द हैं जितने देशज शब्द। तीसरे और आखिरी प्रकार में, जो कि दरबारी बोली है, अरबी तथा फारसी शब्दों का बाहुल्य होता है। गिलक्रिस्ट आगे कहते हैं— वह भाषा जिसे लंबे अर्से तक 'मूस' के नाम से, गंवारू बोली के रूप में, पदावनत किया गया परंतु वर्तमान में लोकप्रिय रूप में, हिंदुस्तानी के नाम से जाना जाता है, जिसे बहुधा हिंदी, उर्दू तथा रेखा के नाम से भी पुकारा जाता है, यह अरबी, फारसी तथा संस्कृत अथवा 'भाखा' का संयुक्तीकृत रूप है, जो प्राचीन युग में प्रकट हुई लगती है, हिंदुस्तान की वर्तमान भाषा है। (श्रीश चौधरी, 'भारत में विदेशी लोग एवं विदेशी भाषाएं', में उद्धृत गिलक्रिस्ट, जॉन बोर्थविक (1820), 'द स्ट्रेंजर्स इन्फैलिबल ईस्ट इंडिया गाइड')

जैसे जैसे बादशाहों का हिंदुस्तानीकरण होता गया, फारसी की जगह उर्दू लेती गई। पहले यह रेखा कहलाई। फारसी भाषी सैनिकों और हिंदुस्तानी सैनिकों ने पहले सैन्य शिविरों में इसका व्यवहार शुरू किया। लिपि अरबी रही। यह फारसी से एकदम अलग भाषा थी। इसकी ध्वनियां अलग थीं। इसे मध्य एशिया की भाषाओं की, जहां से मुगल शासक आए थे, अनुगामी नहीं कहा जा सकता। इसका व्याकरण अलग था। यह हिंदुस्तानी भाषा थी, एकदम देसी। दुनिया में जैसे हिंदी हिंदुस्तानी या भारतीय भाषा है वैसे ही उर्दू भी हिंदुस्तानी भाषा है।

उस समय हिंदी अथवा हिंदवी का प्रयोग, उत्तर भारत की सभी लोकप्रिय आधुनिक भाषाओं की विभिन्न क्षेत्रीय बोलियों के संदर्भ में किया जाता था। यह आज के परिप्रेक्ष्य की हिंदी को संदर्भित नहीं करता। वे सभी आम हिंदू और मुस्लिमों के द्वारा बोली जानेवाली लोकप्रिय स्थानीय भाषाएं थीं। इस भाषा का व्याकरण स्थानीय बोलियों से आया और अन्य अनेक शब्द दो मुख्य स्रोतों, फारसी अरबी और संस्कृत में से किसी से भी मुक्त रूप से लिए गए। इस प्रक्रिया में हिंदू और मुस्लिम दोनों ही समान थे, दोनों ने ही अपनी आवश्यकता और मर्जी से मुक्त रूप से दोनों स्रोतों से शब्द लिये और उनका स्थानीय भाषा के व्याकरणानुसार प्रयोग किया, भले ही नाम किसी ने जो भी दिया हो। (श्रीश चौधरी, 'भारत में विदेशी लोग और विदेशी भाषाएं', पृ. 157)

इसी तरह संस्कृत उद्गम होने पर भी देश, काल, परिस्थितियां भिन्न होने के कारण गुजराती, मराठी, बांग्ला, उड़िया आदि भाषाओं की ध्वनियां और लिपियां अलग अलग बनीं और बढ़ीं।

उर्दू के साथ ऐसा नहीं था। जहां हिंदी बढ़ रही थी, वहीं उर्दू ने जन्म लिया। कहन का तरीका जो हिंदी का था वही उर्दू का था। भावों का आरोह अवरोह एक था। बोलनेवाले लिखनेवाले एक जैसे थे जिनका रहन सहन, खान पान, जन्म मरण, सभी क्रिया व्यापार एक जैसे थे और एक साथ थे। केवल लिपि अलग थी। इसका भी तात्कालिक कारण मुझे शासक वर्ग की सहूलियत और ठसक ज्यादा लगती है। क्योंकि यह भाषा शासकों की भाषा थी और उनके साथ बाहर से आई फारसी के संस्कार ज्यादा थे इसलिए इसमें फारसी शब्द ज्यादा रहे, हिंदी संस्कृत के रास्ते से आई

थी सो उसमें संस्कृत शब्द ज्यादा रहे। इस विषय में भाषाविद् और इतिहासकार श्रीश चौधरी का यह कथन ध्यान देने लायक है : विभिन्न स्रोतों के शब्दों का एक अन्य भाषा अथवा क्षेत्र की अलग अलग भाषाओं के व्याकरणानुसार प्रयोग सत्रहवीं और अठारहवीं सदी तक जारी रहा। लिपियां बदलती रहीं, जायसी ने अरबी का प्रयोग किया, तुलसी ने देवनागरी का तथा कई ने अपनी इच्छानुसार अन्य लिपियों का प्रयोग किया। (श्रीश चौधरी, 'भारत में विदेशी लोग और विदेशी भाषाएं', पृ. 173)

अपनी बात को आगे स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं : उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ तक, उर्दू/हिंदी ने स्वयं को 'एक विशाल देश हिंदुस्तान' की एकमात्र संपर्क भाषा के रूप में स्थापित कर लिया। शायद ही कोई ऐसा मुसलमान था जो इस भाषा को अपने वर्ग, शिक्षा तथा उम्र के अनुसार विविध कोटि के परिमार्जन के साथ नहीं समझता और बोलता था। ऐसा ही प्रत्येक हिंदू के साथ था, जिन्हें कम से कम इसका प्रारंभिक ज्ञान तो अवश्य ही था। उस काल तक, यह भाषा 'सामान्यतः देशज तथा हिंदुस्तान में बसे विभिन्न विदेशी मूल के अनेक लोगों के मध्य संवाद तथा संपर्क का उभयनिष्ठ माध्यम बन गई थी...' विभिन्न राष्ट्रीयता वाले सभी यूरोपीय आपस में संवाद के लिए भी अपनी भाषा की बजाय इसी भाषा का प्रयोग करते थे। ऐसा ही देश की सभी सेनाएं भी करती थीं। उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में लिखनेवाले गिलक्रिस्ट का आकलन है कि शायद ही कोई व्यक्ति होगा जिसे अपने घर से हिंदी उर्दू का कम से कम प्रारंभिक ज्ञान नहीं मिलता होगा। अन्यथा विभिन्न जातियों, धर्मों तथा क्षेत्रों से संबद्ध भारत के निवासियों के लिए आपस में संवाद स्थापित करना अत्यंत मुश्किल होता। गिलक्रिस्ट जोर देते हुए कहते हैं कि भारत में अगर किसी को एक भाषा सीखनी हो तो उसे 'हिंदुस्तानी' सीखनी चाहिए। यदि किसी ने 'हिंदुस्तानी' सीखी है तो वह फारसी अधिक बेहतर ढंग से तथा आसानी से सीख सकेगा। (श्रीश चौधरी, 'भारत में विदेशी लोग और विदेशी भाषाएं', पृ. 177)

दुनिया में ऐसा दूसरा उदाहरण मुश्किल है, जहां दो बड़ी पूर्ण विकसित भाषाएं जिनमें विपुल श्रेष्ठ साहित्य रचा गया हो और रचा जा रहा हो, एक साथ एक ही मैदान में बनी बड़ी हों, जिनकी अभिव्यक्ति का तरीका एक हो और ध्वनियां भी समान हों। इन्हीं गहरी समानताओं के कारण हिंदी उर्दू को दो भाषाएं कहने को मेरा मन स्वीकार नहीं करता। लेकिन यह सच्चाई है। और इन दोनों भाषाओं की लिपियां अलग हैं। लेकिन इसकी वजह भी शायद कोई और नहीं, सिर्फ लिपियों का प्रचलन था। पुनः श्रीश चौधरी का उल्लेख करना चाहूंगा : लिपि के आधार पर सामान्य लोगों ने हिंदी और उर्दू को अलग अलग भाषाओं के रूप में व्यवहृत किया, देवनागरी लिपि की भाषा हिंदी तथा अरबी लिपि की भाषा उर्दू। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में, हिंदी उर्दू के मध्य सांप्रदायिक विभाजन स्पष्ट हो गया। अनेक हिंदुओं ने इस भाषा में लिखा, जैसा कि अनेक मुस्लिमों ने भी किया। परंतु अब हिंदू मुख्यतः संस्कृत तथा पाली इत्यादि के शब्दों के बाहुल्य के साथ देवनागरी लिपि में लिखते थे, जबकि दूसरी ओर मुस्लिम अरबी, फारसी अथवा तुर्की शब्दों के बाहुल्य के साथ अधिकतर अरबी लिपि में लिखते थे। (श्रीश चौधरी, 'भारत में विदेशी लोग और विदेशी भाषाएं', पृ. 178)

एक प्रकाशक के नाते अपनी बात कहूँ तो हमने कभी उर्दू से हिंदी अनुवाद की जरूरत महसूस नहीं की। हम हिंदी में पुस्तकों का प्रकाशन करते हैं। इसलिए यहां केवल उर्दू से हिंदी में प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों की बात करूंगा। हिंदी से उर्दू में पुस्तकें हमने प्रकाशित नहीं कीं, जबकि उर्दू से हिंदी में मंटो, राजेंद्र सिंह बेदी, इस्मत चुगताई, कुर्रतुल ऐन हैदर, कृष्ण चंदर, अली सरदार जाफरी, रघुपति सहाय 'फिराक', कैफी आजमी, साहिर लुधियानवी, जिलानी बानो, जां

निसार अख्तर, गालिब, मीर, फ़ैज, अब्दुल्ला हुसैन, इंतजार हुसैन जैसे बड़े रचनाकारों की बहुत सी पुस्तकों का प्रकाशन हमने किया है। गुलजार और जावेद अख्तर भी हमारे यहां से छपे हैं। पर हमने इनमें से किसी के भी लेखन का अनुवाद नहीं कराया। दरअसल हमें, राजकमल प्रकाशन समूह को, इसकी कभी जरूरत ही महसूस नहीं हुई। हमने हमेशा केवल लिपि की दूरी को खत्म किया। लिपि बदलते ही उर्दू हिंदी बन गई। रचना में प्रयुक्त कठिन शब्दों को बदला नहीं, पाठक की सुविधा के लिए इनके अर्थ दे दिए। इससे कथ्य को समझना आसान हो जाता है। साथ ही हिंदीभाषी पाठक की शब्दावली में कुछ नए उर्दू शब्दों के आने की संभावना भी बनती है।

हमारा मानना है कि हिंदी में उर्दू के शामिल हो जाने से भाषा में रवानी बढ़ जाती है, कोमलता और ठहराव आ जाता है। केवल लिपि के बदलाव को अनुवाद या रूपांतरण नहीं कहा जा सकता। हम इसे 'लिप्यंतरण' कहते हैं। इसमें भाषा नहीं बदलती, शब्द नहीं बदलते, भाषा और शब्दों का क्रम वही रहता है। वाक्य विन्यास को भी बदलने की जरूरत नहीं पड़ती।

'हिंदी' और 'उर्दू' के रूप में जानी जाने वाली इस भाषिक समानता के सबसे मुखर प्रवक्ता, प्रसिद्ध उर्दू विद्वान ज्ञानचंद जी मानते थे कि : "...औसत उर्दू लेखन तथा औसत हिंदी लेखन के मध्य का अंतर उतना बड़ा नहीं है जितना बड़ा अंतर औसत उर्दू और कठिन उर्दू अथवा औसत हिंदी और कठिन हिंदी के मध्य है..."

ज्ञानचंद उचित ही कहते हैं: "आधारभूत शब्द, न कि केवल उद्धृत शब्द, भाषा और बोली का निर्धारण करते हैं। यद्यपि मलयालम के करीब अस्सी प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं फिर भी भाषा द्रविड़ ही है। कुछ सौ शब्दों को छोड़कर अल्बानी भाषा का संपूर्ण शब्दकोश अन्य भाषाओं से व्युत्पादित है (खासकर लैटिन से), इसके बावजूद यह एक स्लाविक भाषा है। क्या यह सच नहीं है कि हिंदी का आधारभूत शब्दकोश उर्दू के समान है? उसी प्रकार, लिपियों का भेद एक भाषा को दो भाषाओं में विभक्त नहीं कर सकता है, जैसे कि लिपियों की समानता दो भाषाओं को एक भाषा नहीं बना सकती है..." (अमृत राय, (1991), 'अ हाउस डिवाइडेड : दि ऑरिजिन एंड डेवलेपमेंट ऑफ हिंदी उर्दू' में उद्धृत)

हिंदी के लेखकों में भी अधिसंख्य इस विभाजन को अहमियत नहीं देते। डॉ. राही मासूम रजा के विचारों को रेखांकित करते हुए डॉ. कुंवरपाल सिंह कहते हैं : "स्व. राही मासूम रजा उर्दू, हिंदी को सबसे निकट की दो भाषाएं मानते थे, लेकिन भाषा की राजनीति के कारण ये दोनों भाषाएं दूर हो रही हैं। राही जीवन भर इसके लिए प्रयत्नशील रहे कि दोनों भाषाओं की दूरी कम हो। इसके लिए उनका सुझाव था कि उर्दू देवनागरी लिपि में लिखी जाए क्योंकि लिपियां भाषा और साहित्य नहीं होतीं। उन्होंने उदाहरण देते हुए कहा कि पंजाबी, गुरुमुखी और फारसी लिपि में लिखी जाती है। इसी तरह सिंधी भी दो लिपियों में लिखी जाती है। मराठी, नेपाली, संस्कृत और हिंदी देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं, तब भी ये भाषाएं अलग हैं।" ('खुदा हाफिज कहने का मोड़', राही मासूम रजा की भूमिका में कुंवरपाल सिंह।)

राही मासूम रजा खुद भी कहा करते थे कि, 'मैं वैसे ही हिंदी का कथाकार हूँ जैसे गालिब हिंदी के कवि हैं।' 'आधा गांव' उन्होंने अरबी लिपि में लिखा; उन्हें देवनागरी तब नहीं आती थी। कुंवरपाल सिंह ने उसे हिंदी यानी देवनागरी में लिप्यंतरित किया। प्रेमचंद ने 'सेवासदन' अरबी लिपि में लिखा। बाद में इसे देवनागरी में किया गया। प्रेमचंद की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'गोदान' पहले 'गऊदान' के रूप में उर्दू में लिखी गई थी।

राही मासूम रजा ने अन्य कई जगहों पर भी इस मुद्दे पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। एक उद्धरण यहां देना अप्रासंगिक न होगा : "यह ग्यारहवीं या बारहवीं सदी की बात है कि अमीर



खुसरो ने लाहौरी से मिलती जुलती एक भाषा को दिल्ली में पहचाना और उसे हिंदवी का नाम दिया। उन्नीसवीं सदी के आरंभ तक यही हिंदवी, देहलवी, हिंदी, उर्दू ए मुअल्ला और उर्दू कही गई। अब तक लिपि का झगड़ा खड़ा नहीं हुआ था, क्योंकि यह तो वह जमाना था कि जायसी अपनी अवधी फारसी लिपि में लिखते थे और तुलसी अपनी अवधी नागरी लिपि में। लिपि का झगड़ा तो अंग्रेजी की देन है। भाषा का नाम तो हिंदी ही है, चाहे वह किसी लिपि में लिखी जाए। इसलिए मेरा जी चाहता है कि कोई सिरफिरा उठे और सारे 'हिंदी साहित्य' को पढ़कर कोई राय कायम करे। अगर मुसहफ़ी उर्दू के तमाम कवियों को हिंदी का कवि कहते हैं (उनकी किताब का नाम 'तजकरए हिंदी गोया' है।) और अगर गालिब अपने 'हिंदी कलाम' को याद करने की कोशिश करते नजर आएँ, तो हमीं में कौन से सुर्खाब के पर लगे हैं कि हम अपने आपको हिंदी कवि कहते हुए शरमाएँ? मैं उर्दू लिपि का प्रयोग करता हूँ, परंतु मैं हिंदी कवि हूँ। और यदि मैं हिंदी का कवि हूँ तो मेरे काव्य की आत्मा सूर, तुलसी, जायसी के काव्य की आत्मा से अलग कैसे हो सकती है? यह वह जगह है, जहाँ न मेरे साथ उर्दूवाले हैं और न शायद हिंदीवाले।" ('उर्दू साहित्य की भारतीय आत्मा', राही मासूम रजा, पृ. 31)

आज उर्दू हिंदी में भी लिखी जा रही है। हिंदी उर्दू में लिखी जा रही है। हिंदी में गजलें कही जा रही हैं और उर्दू में दोहे। पाकिस्तान में परवीन शाकिर जैसे रचनाकार भाषाओं के भेद को समाप्त किए दे रहे हैं। उनकी गजलों में कभी कभी तो फारसी का एक शब्द भी नहीं होता। पाकिस्तान में दोहे खूब लिखे जा रहे हैं। यह स्थिति अमीर खुसरो से अब तक चली आ रही है। फिर भी काफी कुछ करने की अभी जरूरत है। उर्दू में छपनेवाली किताबों के लिए एक आंदोलन की तरह इसे होना चाहिए। और यह भी तय किया जाना चाहिए कि हिंदुस्तान में पाकिस्तान की किताबें और पाकिस्तान में हिंदुस्तान की किताबें, लेखक और प्रकाशक से वैधानिक अनुबंध के बगैर प्रकाशित न हों। इससे किताबों की प्रस्तुति में तो गुणात्मक सुधार होगा ही लेखकों और प्रकाशकों को भी उनकी मेहनत का उचित परिणाम मिलेगा।

हमारे पाठक उर्दू शायरी के दीवाने हैं। उर्दू शायरों की किताबें उर्दू से कहीं ज्यादा हिंदी में पढ़ी जाती हैं। अफसानों और उपन्यासों के लिए भी यह बात कही जा सकती है। पिछले दस सालों में उर्दू से शायरी की जितनी किताबें हिंदी में छपी हैं उतनी पहले कभी न छपी होंगी। बेहतरीन उर्दू किताबों का स्वागत करने के लिए हम हमेशा तैयार हैं।

एक बात कहने से मैं अपने को रोक नहीं पा रहा हूँ। हम हिंदीवाले अपनी हिंदी को सरल बनाने के लिए उर्दू से शब्द लेना अच्छा समझते हैं और यह भाषा को बेहतर बनाने में मदद भी करता है। पर उर्दू में ऐसा करने की बात क्यों नहीं सोची जाती। उर्दू में जहाँ शब्द नहीं मिलता वहाँ अंग्रेजी से शब्द ले लिया जाता है। हिंदी के बारे में सोचना भी मुनासिब नहीं समझा जाता। इस सोच को बदलने की बाबत सोचा जाना चाहिए।

उर्दू हिंदी के बीच आदान प्रदान का सिलसिला बढ़ना चाहिए। हिंदी में उर्दू से सैकड़ों किताबें हर साल छपती हैं। हिंदी से उर्दू में चंद किताबें ही आती हैं। मेरी जानकारी की सीमा हो सकती है पर यह बहुत गलत नहीं होगी। हिंदी में ऐसा बहुत कुछ है जिसे उर्दू के पाठक पसंद करेंगे। कृतियों और कृतिकारों के नाम अनगिनत हैं। जरूरत है, उर्दू पाठकों के लिए क्रमशः उपलब्ध कराने की। राही मासूम रजा ने कभी कहा था कि : "हिंदीवालों से मेरा यह कहना है कि यदि आप ईमानदारी से उर्दू को हिंदी की एक शैली मानते हैं तो उसके साथ आप वही बर्ताव क्यों नहीं करते जो अवधी, ब्रज या राजस्थानी के साथ किया जाता है? हिंदी साहित्य और भाषा के विभाग मीर, गालिब, नजीर, अनीस, इकबाल, जोश और फ़ैज को जायसी, सूर और तुलसी ही की तरह क्यों

नहीं अपनाते? गालिब ने भी जायसी ही की लिपि में लिखा है। तो फिर हम गालिब और जायसी में फर्क क्यों करें?”

यह बात पूरी तरह तो नहीं लेकिन इतनी तो उर्दू वालों से मैं कह सकता हूँ कि वे भी हिंदी से अपनी नजदीकी बनाने की पहल करें। वर्तमान समय में सभी देशी भाषाओं पर खतरे मंडरा रहे हैं। लेकिन इधर उर्दू पर एक अलग ढंग का खतरा भी महसूस हो रहा है, जिसके पीछे एक खास सोच की राजनीति काम कर रही है। हमें उससे भी सावधान रहना होगा। ऐसे किसी भी संकट का सामना मिल जुलकर ही किया जा सकता है। मुझे लगता है कि हिंदी से निकटता इससे निकलने में मददगार होगी। हिंदी पढ़े युवाओं के बीच उर्दू की लोकप्रियता लगातार बढ़ रही है। उर्दू शायरी ने इसे नई ऊंचाइयाँ दी हैं। हिंदी कविता उर्दू शायरी के अनुपात में बहुत कम पढ़ी जाती है। मुशायरों में और शायरी की पुस्तकों में भी हिंदीभाषी युवाओं की भारी संख्या में शिरकत इसका जिंदा उदाहरण है। 'रेख्ता' जैसी संस्थाओं का उदय और कुछ ही समय में परिदृश्य पर छा जाना एक बड़ी मिसाल है जिससे हिंदीभाषी समाज में उर्दू की स्वीकार्यता का अनुमान लगाया जा सकता है।

मुझे लगता रहा है कि भारतीय भाषाओं के प्रकाशन विकास के लिए भारतीय भाषाओं के प्रकाशकों का एक संघ होना चाहिए। स्पष्ट है कि मैं अंग्रेजी को भारतीय भाषाओं में शामिल नहीं कर रहा हूँ। भारतीय भाषा प्रकाशक संघ एक दूर की कौड़ी लग सकता है, शायद अभी है भी। लेकिन हम हिंदी उर्दू प्रकाशकों के संघ की बात तो कर ही सकते हैं। हमारे बहुत से हित अहित समान हैं। मिल बैठकर एक दूसरे के बारे में फैली संवादहीनता को दूर किया जा सकता है। इस दिशा में होनेवाली किसी भी पहल में हम जरूर शामिल होंगे।

उर्दू हिंदी पुस्तकों के संयुक्त वितरण तंत्र पर भी विचार किया जाना एक सकारात्मक कदम हो सकता है। देश में भी और विदेश में भी हिंदी उर्दू के पाठक प्रायः साथ ही रहते हैं। पूरे उत्तर भारत में जहां हिंदी है वहां उर्दू भी है। दक्षिण में हैदराबाद क्षेत्र में भी ऐसा ही है। इससे पुस्तकों के वितरण संबंधी खर्चे कम होंगे। पुस्तक विक्रेताओं की जो भारी कमी महसूस की जा रही है, वह दूर होगी और दोनों भाषाओं के पाठकों को पुस्तकें आसानी से मिल सकेंगी।

और अंत में मैं दोहराना चाहूंगा कि उर्दू में लेखक प्रकाशक के बीच उचित अनुबंध के तहत ही पुस्तक प्रकाशन की शुरुआत का संकल्प फौरन से पेशतर लिया जाना चाहिए। यह व्यावसायिक और विधिसम्मत अनुबंध हिंदुस्तान और पाकिस्तान दोनों के बीच भी समान रूप से लागू होना चाहिए। राजनीतिक पहल की प्रतीक्षा न करके इसे जन सहयोग से तुरंत लागू किया जाए। यह सिर्फ भाषा का मामला नहीं है। बल्कि गंगा जमुनी तहजीब की नींव का मामला है। जिसकी हिफाजत हमारी सामाजिक जिम्मेदारी है।

## नवल शुक्ल की कविताएं

---

### मीठी नीम पत्तियां

मीठी नीम पत्तियों की जरूरत होती है  
तो एक बूढ़े कवि की याद आती है  
मैं उनसे हरी पत्तियों को पाने जैसा मिलता हूँ  
तो वे मुझसे अनायास मिलने जैसा मिलते हैं।

ढेर सारी पत्तियों को देने की तरह  
झड़ते रहते हैं जीवन के हालात बदलते रहने के सच  
वे नरम मुलायम पत्तियों की तरह विलांबित हंसी हंसते हैं  
जैसे वे पेड़ हों और फुनगियों पर निकलने वाले हों पत्ते।

मुझे उनकी बातों और हंसी की बहुत जरूरत है  
मैं उनसे रोज मिलने का इंतजार करता हूँ।

### लेकिन हम चाहते हैं

जागने से टूट जाते हैं सपने  
लेकिन हम जागते हैं

चाहने से कुछ नहीं होता  
लेकिन हम चाहते हैं  
हम इतिहास जानना चाहते हैं  
लेकिन मरने मारने के लिए नहीं  
इतिहास के अगले पन्नों पर साहित्य सा जीवन चाहते हैं

हम तुम्हें चाहते हैं  
तो तुम्हारा साथ चाहते हैं  
वे आंखें चाहते हैं जिनकी छांव में  
धूप, बारिश और ठंड से घुले मिले  
हम साथ हुए और बड़े हुए  
हम समय पर कालिख पोतने वालों को नहीं चाहते  
सच के लिए हम बच्चे सी जिद्द चाहते हैं  
हम ऐसी ही पृथ्वी चाहते हैं।

मैं बोलूं या तुम बोलो  
तो बोलते जाएं बेरोक टोक  
चाबुक नहीं चाहते, लगाम नहीं चाहते हैं  
बोलने का प्रत्याख्यान नहीं चाहते हैं  
हम अपनी ही संस्कृति चाहते हैं  
सांस्कृतिक उपाख्यान नहीं चाहते हैं  
भले ही बार बार टूटते हैं हमारे सपने  
लेकिन हम रोज रोज जागते हैं  
क्योंकि हम ऐसा ही चाहते हैं।

### निवेदन के पाठ से बाहर

मैं तो अपने काम से काम रखता था  
सुबह निकलता था और शाम को लौट आता था  
कभी कभार आकाश की ओर देखता था  
पक्षियों को उड़ते देखता था  
और उन्हें लौटता देख वैसा ही खुश होता था  
जैसे मेरे लौटने पर खुश होते थे मेरे बच्चे  
बच्चे पाठ पढ़ रहे होते थे और सुनाते थे  
माननीय महोदय विनम्र निवेदन है कि  
और अंत में आपका विश्वासपात्र मैं

महोदय आप ऐसा जंजाल रच रहे हैं कि  
पहले भ्रमित होता हूँ फिर आशंकित होता हूँ  
सुबह संशय के साथ निकलता हूँ  
और शाम भयभीत वापस लौटता हूँ

मैं तो बस अपनी पसंद का खाता हूँ  
अपने मन का पहनता हूँ  
बगल से गुजरते आदमी को पहचानता हूँ  
उसे जोर से पुकारता हूँ  
क्यों खां खैरियत कहता गले लगाता हूँ

पर माननीय आपने तो वार किया  
सबसे पहले विश्वास पर  
फिर पहनावा, खानपान, तहजीब पर वार किया।

पहले मैं हतप्रभ हुआ फिर डरा  
फिर डरते डरते डरे हुए लोगों के पास गया  
कि लगातार डरते रहने से नहीं चलेगा जीवन  
बस इतना मैं समझ पाया हूँ  
कि जिंदगी ने नहीं बख्शी है डरने की कोई गुंजाइश  
मैं भी इसी मिट्टी की उपज हूँ  
और जीना है इसलिए निवेदन के पाठ से बाहर आता हूँ।

### माता के तत्सम गूँज में

मातृभाषा में हम गाय को गाय कहते थे  
गाय खोलते थे, बांधते थे, चराते थे, दुहते थे  
और हिंदी माध्यम में गाय पर निबंध लिखते थे  
कि गाय मरने के बाद भी हमारे काम आती है

हम गाय पर निबंध लिखकर बड़े हुए  
फिर मातृभूमि पर जन्मस्थान से दूर हुए  
खली, भूसी और घास, पतवार से दूर हुए  
मोहिनी, चितकबरी, ललहकी, संवरकी गायें हमसे दूर हुईं इस तरह हम बोली बानी  
से दूर हुए और बड़े हुए

अब आसपास न गायें हैं, न उनकी रंभाती आवाजें हैं, गौमाता, गौमाता के जयकारे हैं

गौमाता की तल्लख आवाजों में  
दौड़ते, रौंदते लोगों के पदचापे हैं  
परिनिष्ठित भाषा है, धमकी है, अन्याय है  
आखेट में शामिल लोग हैं  
भयभीत आदिम ध्वनियां हैं

माता की तत्सम गूंज में  
देशज में रहती मां की याद आ रही है  
माई रे माई जैसी तुम  
वैसा तुम्हारा घर  
जैसे बेहद में घर के सामने बथान  
जहां हम रहे कई साल  
और आज भी बंधे हैं गाय बछड़े की तरह  
तुम्हारी ही बोली की डोर से  
माता बोलने के भय और आतंक को किनारे करते हुए  
दुधमुहे की तरह बोल रहे हैं तुम्हारे ही बोल  
तुम्हारे पाले पोसे जीवन और ताप से भरपूर  
स्निग्ध, धवल, शुभ्र, उज्ज्वल  
जय हिंद, जय हिंद, जय हिंद।

## यह माटी का है

शरीर का कोई भरोसा नहीं है  
यह माटी का है जी  
माटी के खिलौने को  
अपने होने की तरह निहारता हूं  
उसे माटी की तरह छूता हूं  
और बचे भविष्य की तरह खिलखिलाता हूं

रेत और माटी होने से पहले  
चाहे जितना भी शरीर का धूल झाड़ता हूं  
पर धूल झाड़ने से कोई दूसरा आदमी नहीं बन जाता हूं  
बस भरोसे से परिचय बढ़ाता हुआ  
भरोसे जैसा आदमी बनता जाता हूं

शरीर का कोई भरोसा नहीं  
यह माटी का है जी

माटी से बनी चीजों पर भरोसा करता हूँ  
माटी के खेत, खलिहान और चूल्हों से भरोसा पाता हूँ माटी पर खड़े पहाड़ों की तरह  
खड़े होने की धुन में पत्थरों की तरह  
लुढ़कता गिरता माटी पर टिक जाता हूँ।

### यह खामोश जगह है

ठंड के शुरुआती दिनों की शाम  
शिकारे लौट रहे हैं  
डल झील के ठहरे घरों, दूकानों के बीच  
नेहरू पार्क के पड़ोस से।

झील की निस्तब्धता के ऊपर  
चप्पुओं की मध्यम आवाजों की थाप है  
और आती हैं अजान की आवाजें, फासले से  
एक के बाद एक हहराती हुई लगातार  
रोशन होते शिकारों के बीच  
झील का जल ठहरा हुआ सा निस्पृह  
स्वर लहरियां परस्पर टकरातीं, मिलतीं हुई सी  
इस अनोखे अनहद के बीचोंबीच  
रुकता हूँ, इशारे से रोकता हूँ  
शाकिब के हाथों में थामे चप्पू को  
कहता हूँ वाह, अप्रतिम है यह जगह, यह समय  
पूछता हूँ, यह कौन सी जगह है

यह खामोश जगह है जनाब  
खामोश जगह पर ये बाहरी आवाजें हैं  
ये आती हैं यहाँ और पाती हैं अपना रूप  
और थरथराती हैं  
चलिए हम इनके बीच गुजरते हैं।

## श्रीप्रकाश शुक्ल की कविताएं

---

### कृतघ्नताएं!

कृतघ्नताएं बड़ी अचूक होती हैं  
वे भावना में नहीं बहतीं  
और संभावनाओं को अपने पूरे तह में  
बहा ले जाती हैं

विनम्रता की खाल में छुपी हुई ये  
अपने ऊपर कोई संशय नहीं करतीं  
और नियति की खोल पहने  
हर उदात्त आशय को ध्वस्त करती हैं

जीभ के विरुद्ध फनफनाती कृतघ्नताएं  
आत्मा के सुनहरे माथे पर  
उगी हुई सींग हैं

चाटते हुए लोग जब हुरपेटने लगें



तव विकसित होती हैं कृतघ्नताएं

मनुष्य की आत्मा में जब  
लहलहा रही हों फसलें हरी भरी  
तब असमय ओले की तरह  
गिरती हैं कृतघ्नताएं

पक्षी जब अपने घरों को लौट रहे हों  
तब बहेलिए के जाल की तरह  
छोप लेती हैं कृतघ्नताएं

आदमी जब पूरे शबाब में हो  
तब कबाब में हड्डी की तरह  
पड़ती हैं कृतघ्नताएं

ऐसे में हम कितने दूर तक  
बचा पाएंगे अपनी मनुष्यताएं  
जब सड़क पर चल रहे हों अपनी राह  
और उल्कापात की तरह  
बरस रही हों कृतघ्नताएं!!

## मित्रता!!

(वाया मालवीय चबूतरा)

यह तथाकथित पीड़ितों की मित्रता है  
जो एक बदहाल भारत की खुशहाल व्यवस्था से बहिष्कृत हैं!

इनकी एक चेतना है  
जिसका कोई भूगोल नहीं

इनकी कांख में एक तरफ 'बहिष्कृत भारत' की पुरानी प्रति है  
तो दूसरी में जार्ज ऑरवेल का जर्जर 1984!

ये कुछ सिरफिरे लोग हैं  
जो व्यवस्था की बदहाली से तंग आकर  
पुरानी मित्रता पर तंज कसते  
और नई मित्रता की तलाश में

चबूतरे पर चर्चा करते

मित्रता उनके लिए न तो सूची में नाम भर की जगह है  
और न ही संगठित अपराध में शामिल होने का आश्वासन!  
वे समूह में रहकर भी निजता की हद तक अकेले हैं  
और निजता की डोर से बंधकर भी  
समूह की चिंता में मगन।

इन्होंने किसी बहेलिए को कभी कोई पंख नहीं दिया  
और न ही दीमक बन  
किसी गाड़ीवान का इंतजार किया

इनकी सुबह अक्सर उन चर्चाओं से शुरू होती है  
जिसमें एक रोबोट प्रकट होता है  
जो सुबह की चाभी से शाम तक चलता रहता है  
और जब कभी इसकी बैटरी तनिक भी ढीली पड़ती है  
(या कि असावधानी बस गीली हो जाती है)  
अपनी असुरक्षा के दायरे में वह  
एक ही धुन पर बजने लगता है!

इनके सपनों में एक सामंत भी आता है  
जिसकी उदास आंखों में अक्सर ही उबाल होता है  
और वह गलगुच्छ मंत्री भी समय असमय दिखाई पड़ता है  
जो हर बदलते दरबार की बदहाल सुरक्षा में  
अपनी कोमल सी देह को सौंप चुका होता है!

कभी कभी वह भरापूरा बकरा भी आता है  
जो पहाड़ पर खड़ा होकर  
खुद को पहाड़ से बड़ा कहता है  
और वह मासूम सा वृषभ भी  
जो अपने शिव की सुरक्षा में  
विष्णु को अक्सर ही सींग सटा बैठता है!

गाहे ब गाहे ऋषि अगस्त भी प्रकट हो जाते हैं  
जो एक हाथ से पुरवा पकड़ते  
दूसरे से लौट आने तक  
झुके रहने का आशीर्वाद देते हैं!

यहां एक ऐसी मित्रता है  
जहां ज्ञान रति के चरम उत्कर्ष पर  
अक्सर ही विषय बदल दिए जाते हैं  
और फिर सिर की ऐसी कपाल क्रिया होती है  
कि हेड कहीं और गिरता है  
तो ब्रेन कहीं और!

यहां कुछ भी कभी स्थिर नहीं है  
(खुद चबूतरा भी नहीं)  
और नायक बनने की हर अकड़ को  
थोड़ा अधिक आदमी बनने की तरफ  
मोड़ दिया जाता है

आदमी बनने की मित्रता के क्या मायने होते हैं  
यह देखना हो तो इस चबूतरे पर चले आइये  
जो पूरा का पूरा गोल है  
लगभग खगोल!

यहां की हर बैठक में मित्रता को महफूज रखा जाता है  
और संबंधों की बदलती हुई चादर के बीच  
कुछ चेहरों की फोटो  
लगभग रोज ही उतारी जाती है!!

## भरोसा

दिन बहुत उदास है  
रात भारी  
भोर है कि थकी थकी

सुबह पड़ी हुई है अलसाई

रास्ता लंबा है  
भीड़ से अटा पड़ा

सब हैं बहुत है काफी है  
फिर भी कोई नहीं जिससे बन सके बात

कुछ पेड़ हैं इधर उधर  
जो चुप हैं और देख रहे हैं

हर क्षण बदलते हुए दृश्य को

समय करवट बदल रहा है  
और शाम आकर टिक गई है पत्तों पर

एक चिड़िया ले आई है कुछ तिनके  
जिससे वह घर बनाएगी

आकाश से झड़ रही है अंधेरे की पाखें  
और सुबह का भरोसा अब  
इसी चिड़िया से है!

### जन्मदिन

वह बहुत नसीब वाला है  
एक दिन मिलता है  
और वर्ष भर का हिसाब लेता है

मैं रोज मिलता हूँ  
फिर भी अभागा का अभागा ही ठहरा  
कोई हिसाब किताब भी रख नहीं पाता

कितना बदनसीब हूँ मैं  
कि उससे हुई हर मुलाकात में  
कुछ दिन और छोटा हो जाता हूँ

और वह है कि खुद को बड़ा साबित करता हुआ  
वरिष्ठ जैसा बधाई देता है!

### जो हुए अच्छे ही हुए!

होने से थोड़ा ज्यादा ही हुए!  
होनी के न हुए तो क्या  
हुनर के तो हुए

जो हुए अच्छे हुए  
अच्छे से अधिक बड़े अच्छे हुए!

जो होना था  
वह न भी हुए तो क्या  
जो हुए होने से ज्यादा ही हुए

मेरे होने से  
सुबह न हुई तो क्या  
जो शाम हुई  
उसमें मेरा होना तो हुआ

सूरज मेरे होने से न हुआ तो क्या  
चांद की ताकत तो मेरे होने से हुई

जिसे तुम होना समझे हो  
वह हुआ न हुआ तो क्या  
जो मेरे होने से हुआ  
वह होना तो हुआ

हुए जो हुए हम हुए  
जैसे भी हुए हम ही हुए

कुछ के न हुए तो क्या  
बहुत के तो हुए

जो हुए अच्छे ही हुए!

**मुगलसराय बाया 'मंगल का सराय'!**

मेरी मां अक्सर कहती थीं उसे 'मंगल का सराय'  
जहां तब के कलकत्ता जाते यात्री सुस्ता लेते  
और लौटती यात्रा की थकान मिटाते  
अगले पड़ाव की ओर निकल पड़ते

यह पूरब का प्रवेशद्वार था  
जो महज एक स्टेशन नहीं था

यहां एक संस्कृति थी जो गठरी में बंधी नींद की तरह पहले सिकुड़ती थी  
फिर दूर से आती सीटियों की आवाज में  
धीरे धीरे पूरब की तरफ फैल जाती

पूरब का सूर्योदय इसी रास्ते होता था  
और वावजूद इसके कि यहां से पश्चिम भी  
जाया जा सकता था  
हम लगातार पूरब ही जा रहे थे!

यहां से गुजरना अपने पुरखों के पदचिह्नों से गुजरना था  
जिसे सड़क ए आजम के नाम से  
कभी शेरशाह ने पुचकारा था!

यह अन्य सरायों में एक अलग सराय था  
जहां घोड़ों की टापों से अधिक  
संगीत की ध्वनि गूंजती थी  
और दूर देश से चले आते पथिक  
थोड़ी देर के लिए मगन मन सुस्ता लेते

हमारी चेतना में बसा यह स्टेशन  
महज स्टेशन नहीं, 'सटेशन' था  
जिसके भीतर तक बजते हुए संगीत में  
हमारी हलचलों का लेखाजोखा मौजूद था!

जब जब बनारस से बात नहीं बनी  
या कि कोई गाड़ी यहां से नहीं गुजरी  
वह मुगलसराय के नाम से गुजरती हुई मिल जाती

हमारे लिए तो जो वहां से नहीं जाती  
उसे भी वहां से जाना था  
और जिसे कहीं नहीं होना था  
शुद्धता के हर दावे के खिलाफ  
उसे भी यही कहीं होना था!

कितनी लचक है इस नाम में कि जिसने जिस रूप में देखा  
सुंदर दिखा  
और एक लोचदार संस्कृति को अपने गर्भ में संभाले

सदियों से ललचाता रहा

मुगलसराय जो कि महज एक नाम नहीं है  
उसे नाम में कैद करना  
एक धड़कते इतिहास को परिहास में बदल देना है

यह ताकत के दायरे में हमारी स्मृति की हत्या है  
जिसे समय की एक अनपेक्षित मृत्यु ने  
सामूहिक उत्सव में बदल दिया है!

# जसिंता केरकड़ा की कविताएं

---

झारखंड की आदिवासी पृष्ठभूमि से आने वाली युवा कवयित्री जसिंता केरकड़ा कविता के अलावा आदिवासी समाज में बौद्धिक संस्कृतिक जागरूकता के लिए सक्रिय हैं। दो कविता संग्रह प्रकाशित।

## प्रार्थना का समय

हमें बताया गया लंबे समय से  
गरीबी, भुखमरी और बीमारी  
ईश्वर पर यकीन न करने का परिणाम है

हमने पूछा  
इस भीड़ में क्यों  
सिर्फ मुट्ठी भर लोगों के पेट में  
अच्छी फसल का  
अच्छा हिस्सा फंसा रहता है?  
उन्होंने कहा  
वे इस धरती के चुने हुए लोग हैं



कई लोगों का खाना  
कुछ लोगों के पेट में  
कई दिनों तक अटका रहता है  
यह 'ईश्वर' का चमत्कार है  
और शेष लोग?  
शेष लोगों की बीमारी, भुखमरी  
अपनी आस्था पर खरे न होने की सजा है

जब समय था  
खुद पर हो रहे  
अन्याय के खिलाफ  
एक साथ खड़े रहे  
तब हजारों की संख्या में  
हम जंगलों से निकल  
बाल बच्चों सहित  
प्रार्थनासभा की ओर मुड़ गए  
बैठे रहे दिन भर  
बोलने वालों का मुंह ताकते  
पीढ़ियां बदल गईं पर हालात नहीं बदले  
तब हमसे कहा गया  
बदलाव त्याग मांगता है  
और हमने गांठ के रूप के साथ  
अपनी हासा, भाषा सब त्याग दिए

सभा चीखती रही  
चमत्कार ऊपर से होते हैं  
हमने अपनी बंद आंखें ऊपर उठा लीं  
और बीमारी की जड़ें नीचे रह गईं  
हाथ जोड़कर बदलाव की प्रार्थना की  
इस तरह हमने सीखा  
बिना सवाल किए कैसे जोड़े जाते हैं हाथ  
हम बंट गए कई हिस्सों में  
जब आधे लोग सड़क पर उतरते  
तब हम प्रार्थनाएं करते  
और भविष्य की तरफ देखते  
क्योंकि हमें बताया गया

उधर ही कहीं स्वर्ग है

एक दिन हम हारकर  
इस पर बात करने को जुटे  
कि अब और नहीं  
हमें उठ खड़ा होना चाहिए  
एक साथ  
अपनी हालात के खिलाफ  
अभी इसी वक्त, इसी समय  
कि भविष्य यहीं है  
इसी क्षण, इसी घड़ी

कि तभी  
अलग अलग दिशाओं से  
अलग अलग आवाज में  
घंटे बज उठे  
यह कहते हुए  
कि जुटान खत्म हो  
यह प्रार्थना का समय है।

**नहीं आए वे**

मर रही है  
कोई आदिम भाषा  
हथियारों से लैस वे  
नहीं आए उसे बचाने  
व्यस्त रहे चुराने में  
उसके गले से अद्भुत हार,  
उसके कानों से बालियां,  
उसकी छाती से गोदने।

मर रहे हैं  
आदिम लोग  
हथियारों से लैस वे  
नहीं आए उन्हें बचाने  
व्यस्त रहे चुराने में  
अधखुली आंखों से उनके

सपनों की कलाकृति,  
घर की दीवारों से  
उनकी चित्रकारी,  
बर्तनों से नक्काशी,  
उनके हाथों से हुनर,  
जंगल से पेड़ और  
पेड़ों से उनकी जान

कर दिया है घोषित उन्होंने  
उनके वर्तमान को अतीत  
लिख दिया है यूं तो  
हर जनजातीय संग्रहालय में  
'कोई किसी चीज को हाथ न लगाए'  
पर ठीक उसके बाहर  
ले रखी है पूरी आजादी  
जिंदा जीवन को उनके  
ध्वस्त करने और उजाड़ने की।

### सड़क पर किसान

सड़कों पर नंगे पांव  
चल पड़ा है पूरा गांव  
अंधेरे के खिलाफ खड़ा बिहान  
पूछ रहा  
क्यों आत्महत्या करे किसान?  
कभी सोचा है तुमने  
कहां से यह अनाज आता है  
क्या यह देश सिर्फ धूप खाता है?  
हर एक चीज का दाम वसूलने वालो  
तुम्हारी भूख की कीमत कौन चुकाता है?

क्यों खेत हल लेकर  
देश के चौराहे पर पड़ा रहेगा?  
क्यों उसका आंगन  
नई सड़क के नीचे गड़ा रहेगा  
क्यों शहर की नींव में

कोई गांव दबा रहेगा  
क्यों पोकलेनों से  
कटकर छांव गिरा करेगा  
क्यों अन्न सड़क पर दम तोड़ेंगे  
गांव से निकलकर वे  
तुम्हारे शहर को घेरेंगे  
तुम्हारे बदन पर लाखों का सूट  
उनके लिए नहीं पानी एक घूंट  
जिनकी जेबें भरने के लिए  
किसानों का पेट तुम काट रहे  
सब जानते हैं छुप छुप कर  
किस किसके तलवे चाट रहे

क्यों तुमसे ना वो आज लड़ेगा  
मूर्तियां गिराते गिराते  
गिर गए हैं जो अपने भीतर  
हुजूम किसानों का फिर से उन्हें  
सवालियों के चौराहे पर खड़ा करेगा ।।

**उससे मेरा संबंध क्या था?**

वो आम का पेड़  
ठीक यहीं था, सड़क किनारे  
जहां से मुझे हर दिन  
बस पकड़नी होती,  
बस जब तक पहुंचती नहीं  
वह मुझे तंग करता  
पहले मेरी ओर एक आम फेंकता  
मैं खुश होकर जैसे ही दांत गड़ाती  
'धे तो थोड़े खट्टे हैं' गुस्से में बोलती  
वह हंसता  
तुम बस में सोती रहती हो न !  
यह नींद भगाने के लिए था,  
अच्छा अब मीठे आम गिराता हूं  
सच्ची में !  
और तब तक बस आ जाती ।

उस दिन बस पकड़ने सड़क पर पहुंची  
वह गायब था  
सालों से मेरा ठीक यहीं इंतजार करता  
वह आम का पेड़  
कहां जा सकता है भला?  
दूसरे दिन अखबार में पढ़ी  
उसके मारे जाने की खबर  
मैं उस दिन खूब रोयी  
जैसे मारा गया हो कोई घर का अपना  
मैं उस दिन सोई नहीं रात भर  
कैसे काट दिया गया वह यही सोचकर।

दूसरे दिन दौड़ी उधर  
सोचा उसकी गंध समेट ले आऊंगी  
अपने आंगन में रोप दूंगी  
उसकी गंध बढ़ेगी  
तब मैं उसकी गंध लेकर  
घर से निकलूंगी  
लौटूंगी जब उसकी गंध को  
आंगन में खड़ी पाऊंगी

मगर मेरे सपने टूट गए  
धूल का बवंडर जब हंसने लगा मुझपर  
देखा, मेरे आम के पेड़ की गंध  
धूल के बवंडर से लड़ रही थी  
बिल्कुल गुत्थमगुत्था  
मैं भागी थाने की ओर  
यह रपट लिखवाने कि  
मेरे साथी की हत्या हुई है,  
थाना ठहाके लगाकर हंसने लगा  
डंडा दिखाता हुआ बोला  
पहले तू बता  
तेरा उसके साथ संबंध क्या था?

मैं आज तक दर दर भटक रही  
यही बताने के लिए कि  
उसके साथ मेरा संबंध क्या था

मगर वहां कोई नहीं अब  
गायब हो चुका है सब  
अब सिर्फ दूर दूर तक धूल उड़ाती  
चौड़ी सपाट सड़कें भर हैं... ।

# संध्या नवोदिता की कविताएं

---

संध्या नवोदिता इलाहाबाद में रहती हैं और वहां की साहित्यिक, सांस्कृतिक हलचलों में शामिल होकर कविताएं रच रही हैं। फिदेल कास्त्रो की किताब History Will Absolve Me का हिंदी अनुवाद 'इतिहास मुझे बरी करेगा' उनकी साहित्यिक उपलब्धियों में शामिल।

## लड़ाइयां बहुत क्रूर होती हैं

सुनो जोगी

लड़ाइयां बहुत क्रूर होती हैं  
और जब प्रेम में युद्ध होता है  
आत्माएं खींच ली जाती हैं

जब वाक् युद्ध जीतते हैं  
उसी पल मित्रताएं हार जाया करती हैं  
जब प्रेम के लक्षण दूढ़े से न मिलें  
व्यभिचार की काली छायाएं डस चुकी होती हैं

छल, छद्म, धोखे और फरेब  
किसी मोह के शब्द नहीं  
ये युद्ध की रणनीतियां हैं

बार बार तोड़ना और हमेशा तोड़ते ही जाना  
अंततः फूलों का हमारी जिंदगी से विलुप्त हो जाना है

सभी कहानियां अंत तक नहीं पहुंचतीं  
कुछ उसके जरा सा पहले ही हमेशा के लिए अधूरी अनकही छूटती हैं

सुनो जोगी  
रात के अंतिम पहर भी कुछ पंछी  
चहचहाते हैं  
और  
चोंच भर शांति की खोज में नींद गंवाए जाते हैं।

**मैं तुम्हें मां की तरह याद करती हूँ**

सुनो जोगी  
मैं तुम्हें मां की तरह याद करती हूँ

मां जो गई सितारों में  
और तुम हुए जैसे धरती का सितारा  
क्या कहूँ कि एक ऐसी तुम्हारी बस्ती है इस जमीन की  
जहां कोई थोड़ा, तांगा, जहाज नहीं जाता  
कोई रेल नहीं जाती तुम तक  
कोई पगडंडी, कोई शाहराह

सिर्फ एक विराट व्याकुलता है  
जो सीधे तुम्हारे नगर को जाती है  
तुम्हारा घर निगाहों की जद में नहीं  
पर मेरा हृदय वहीं छूट गया है

खुशियों का शहर एक स्वप्न हुआ  
और तुम हुए स्वप्न के सारथी  
जाने कहां गुम हुए  
कि मेरा शानदार जीवनरथ ठहर गया

सुनो जोगी  
वो सात समुद्रतट मिलकर पुकारते हैं  
ऊंचे स्वर में तुम्हारा नाम



सुवर्णरेखा के मैंगरूवों में तुम्हारी छाया आज भी दीखती है  
तुम अब भी तैर रहे हो उड़ीसा के बैकवाटर में

धरती की वो अंतिम सात पनीली दीवारें  
रेत पर उगते, गायब होते सुर्ख फूल  
तुम्हारे हाथों से बिखरी जिंदा सीपियां  
तुम्हारी खुशी का उन्मत्त जवाब देते ज्वार

मेरा आसमान तुम्हारी लाखों चहलकदमियों का गवाह है

सुनो जोगी  
माना कि अंतिम यात्रा पूर्ण हुई  
पर ऐसे कोई किसी को नहीं भूलता  
हम तो मृतकों तक को हर बरसी पर  
धरती पे ले आते हैं जिमाने

सुनो जोगी  
याद एक जिंदा शगल है

और मैं तुम्हें मां की तरह अथाह बेचैनी से सुमिरती हूं।

### रागों में मालकौंस

सुनो जोगी  
जब कुछ नहीं होता  
तब तुम होते हो  
जब सब कुछ होता है  
तब भी तुम ही होते हो

तुम रागों में मालकौंस होते हो  
देवों में शिव  
ग्रहों में पृथ्वी  
और असीम में अंतरिक्ष

मृत्यु तुम हो जोगी  
जीवन तुम  
प्रेम और अप्रेम तुम

तुम शून्य होते हो  
तुम ही होते हो सृष्टि  
तुम होते हो अस्तित्व और तुम ही विस्तार

इंद्रियों में दृष्टि हो तुम  
प्रेम में मृत्यु  
जीवन में होना हो तुम

और फिलहाल मैं मृत्यु के गहन आलिंगन में  
जीवन के पूरे उत्ताप से भरी  
तुम्हारी निःशब्द निःसंग घाटी में गहरे उतर रही हूँ

**मुझे मेरा पता दे दो**

सुनो जोगी,

मैं एक ऐसी भाषा ईजाद करना चाहती हूँ  
जो तुम्हारे हृदय तक पहुंचे  
मेरे आंसुओं में हो इतना खारापन  
कि तुम्हें जिंदगी का नमक दे सकें

मेरी मुस्कान में दहकें सितारे  
जिनकी रोशनी एक सड़क बनाए  
जो सीधा तुम तक आती हो

सुनो जोगी  
दुनिया एक विराट भूलभुलैया है  
जिसे हमारे लहू की अनगिनत नलियां जोड़ती हैं

मैं इन्हीं में डूबती उतरती हूँ

तुमसे मिलना खुद से मिलना है जोगी  
मैं अपने ही वियोग में बहती हूँ  
अपनी ही छांव में नरम होती  
अपनी ही धूप में जलती हूँ

सुनो जोगी  
मुझे अपना पता दे दो  
सुनो जोगी  
मुझे मेरा पता दे दो!

## पागल होने से ठीक पहले

---

अच्युतानंद मिश्र

पत्ते उड़कर वापस  
आ रहे थे पेड़ों की तरफ  
हवा का इरादा मैं जान नहीं पाया

कम निकलता हूँ इन दिनों  
मुझे डर रहता है,  
कहीं बरसात न हो जाए  
हर अकेला आदमी मेरी ही तलाश में  
पकड़ा जाऊँ मैं  
बारिश के बीच अकेला  
सड़कों पर

मैं भागता रहूँ  
और बरसात होती रहे  
गली से एक बच्चा निकले  
और साइकिल के छूटे पहिये की तरह  
घूमता हुआ लौट आए  
सब देखें मेरी ओर

उनकी हंसी मेरे चेहरे पर कीचड़ की मानिंद  
उभर आए

मैं सोचता हूं और  
बिजली गुल हो जाती है  
पंखों की आवाज सुनकर  
भाग चुकी होती हैं छिपकलियां  
कभी कभी इस कदर अकेला होता हूं  
कि मुझे खुद को साबित करने के लिए  
नींद का सहारा लेना होता है  
सपने में मैं  
एक सफेद मेमने के पीछे भाग रहा होता हूं  
मैं गिर जाता हूं मेरे घुटने छिल जाते हैं  
और पानी के जहाज  
और रेलगाड़ियां  
और हवाई जहाज कहीं से चले आते हैं  
तीनों पर एक साथ बैठता हूं  
और पंखा चलने लगता है

तेज रोशनी के छीटों से  
साफ करता हूं आंखें  
मैं हड़बड़ाकर बैठ जाता हूं  
कान लगाकर सुनता हूं  
घड़ी ठीक समय बता रही है  
लेकिन मेरे भीतर एक आवाज  
आती है  
कोई भरोसा नहीं  
घड़ी हो या बिजली  
रास्ता हो या नदी  
कोई भरोसा नहीं

दरवाजे की तरफ जाता हूं  
हालांकि अब तक कोई  
दस्तक नहीं हुई  
मैं अनसुनी किसी आवाज की तरफ बढ़ रहा हूं  
मुझे लगता है उस तरफ से  
कुछ लोग अभी पुकारेंगे

मुझे लगता है वे किसी मुसीबत में हैं  
उनकी आवाज गले में फंस गई है  
उनके पैर जमीन में धंस गए हैं  
उनके हाथों को लताओं ने बांध लिया है

मैं उनकी तरफ जाना चाहता हूँ  
मैं ठीक ठीक कह रहा हूँ  
मैंने अपने कानों से उनकी आवाज नहीं सुनी  
मैंने अपनी आंखों से नहीं देखा उनका चेहरा  
मैंने हाथों से नहीं छुई उनकी उलझन  
मुझे लगता है उस तरफ से ही  
हां उसी तरफ से जहां कुछ दिखाई नहीं दे रहा है  
उनकी आवाज आएगी

मुझे अपनी आंखों पर भरोसा नहीं करना चाहिए  
मुझे अपने कानों से परे  
सुनने की आदत डालनी होगी  
मेरे हाथ इच्छाओं को छूने में  
लगातार असफल रहे

## 2

वे लोग खो गए हैं  
वे उन अखबारों के साथ  
कहीं चले गए  
वहां उनके नाम छपे होने चाहिए थे  
पीले पन्नों की रोशनी में  
उनके रंगहीन चेहरे छिप गए  
मुझे शब्दों से बाहर आकर  
उन्हें पुकारना होगा  
शब्दों में अब वे नहीं बचे  
बहुत दिनों तक वे  
शब्दों की खुरचन बनकर  
भटकते रहे यहां वहां  
फिर वे सिमटे रहे  
शब्द और पूर्णविराम के बीच  
खाली जगहों पर वर्षों तक

पूर्णविराम के ठीक पहले के संगीत की  
मद्धिम धुन पर सवार वे कहीं चले गए

उनकी गलती थी कि  
वे इतना कम शोर करते थे कि  
कुत्ते के कान तक उन्हें सुन नहीं सके  
और जब पैर मिट्टी की ठंडक को छू रहे थे  
वे उसी मिट्टी को मुलायम कर रहे थे  
वे पैर और मिट्टी के अलिखित  
संबंध के बीच बचे रह गए  
वे भोर से ठीक पहले की हवा की नमी में  
और देर रात काम करते  
बच्चे की झपकी में घुल चुके हैं  
वे एक एक कर हर जगह  
पहुंच रहे हैं  
वे एक एक कर हर चीज को  
छू रहे हैं  
हर चीज पर मौजूद ठंडक उन्हीं की है  
थोड़ी देर पहले तक वे पत्तों के टूटने में शामिल थे  
वे बच्चों की रुलाई के ठीक पहले की कचोट में  
शामिल थे  
वे चीखने के ठीक पहले की  
दरार में कहीं छिप रहे थे  
लेकिन अब वे नजर नहीं आ रहे

### 3

चीजें गोल गोल घूम रही हैं  
पत्ते नाच रहे हैं  
लोग ठहाका लगा रहे हैं  
हवाई जहाज उड़ रहे  
पानी के जहाज  
पानी से थोड़ा ऊपर चल रहे हैं  
सबकुछ एक पुरानी रफ्तार में

मैं उस मेमने में बदल गया हूँ  
उसकी आंख से ही देखता हूँ सबकुछ

एक देश सिकुड़ रहा है  
समंदर घेर रहा है उसे  
ऊंची उठती लहरों में घुल चुका है मानचित्र

पानी के जहाज अब पानी की नोंक पर तैर रहे हैं  
हवाई जहाज के ऐन सामने  
पानी के जहाज हैं  
धमाका कभी हो सकता है

दोनों दरवाजे खुले हैं  
लोग जल्दी जल्दी में इधर से उधर आ रहे हैं  
कुछ लोग हवाई जहाज से कूदकर  
पानी के जहाज पर आ गए हैं  
वे बेहद पढ़े लिखे और जहीन लोग हैं  
वे पानी और हवा के नियमों में फर्क कर रहे हैं

अब कुछ भी देखना नहीं चाहता  
इससे पहले लहर  
उस सफेद मेमने को बहा ले  
मैं पत्ते में बदल रहा हूँ

जहाज डूबकर रहेंगे  
सभी जानते हैं  
कोई नहीं जानता  
कौन सा जहाज डूबेगा पहले

दरवाजे पर दस्तक हुई बाहर कोई नहीं है  
शायद वही लोग आए थे  
सिटकनी की ठंडक से जानता हूँ  
दीवारघड़ी अब भी  
ठीक समय बता रही है।



## हमसैनिक फार्मर्स की बदौलत

राजू शर्मा

ये हमसैनिक केस का झमेला है क्या? ये असल है या अफसाना? रहम मानो या बदकिस्मती, ये सवाल इन चौकस शब्दों में कभी पूछे ही नहीं गए। किसी मनगढ़ंत संसार में कोई दरिद्र मोची जरूर ये सवाल अपने लगभग भिखमंगे ग्राहक से पूछता जिसके जूते में सात छेद हैं, मानो सात सदियों से घिसा, फिजा की शरारत ये कि सवाल पूछने में अपने बाप का क्या जाता है, न मेरे पास दमड़ी, न तेरे पास चमड़ी...पर ऐसा एक केस दिल्ली के हाई कोर्ट में जरूर सालों से लगा है, चस्पा है, खत्म होने का नाम नहीं लेता, और कोर्ट कचहरी के नुमाइंदे कहते हैं ये केस क्रॉनिक हो गया है, क्रॉनिक बाज वक्त हिस्टॉरिक सुनाई देता है, जहां तक आम फरियादी हैं, वे दुखी हैं, और ठिठोली के लिए इस मुकदमे की चिउंटी हमसिफर केस बोलकर काटते हैं।

दीवार घड़ी। टिक टिक टिक...हर रोज के काम के बाद, जब उस दिन के मुकर्रर फैसले लिख चुके हैं, वकील और मुद्दई कब के चले गए, बस दो अर्दली और एक स्टेनो रुके हैं, जज अपने चेम्बर से निकलकर अदालत में फिर से आता है, डायस पर चढ़कर इंसाफ की कुर्सी पर बैठता है, और पूरे पांच मिनट तक दीवार घड़ी की टिक टिक का बेरोक ध्यान करता है। स्टाफ इस बेमतलब की रस्म को डेली झेलने के लिए बाध्य है...पर हमेशा ऐसा नहीं था। एक आध साल पहले जज का यह व्यवहार शुरू हुआ, उन दिनों में जज की इस अजीब आदत पर काफी दिल्लगी हुई और कयास लगे। रहस्य की हलचल, शर्ते और कानाफूसी। पर अब सिर्फ आजिज आने का ठूठ बचा है। ये रहस्य बेगुजर है। सर्वमान्यता यही है। पांच मिनट का चोंचला है। मटियाओ। अच्छा, भला जज है...ये जरूर था कि स्टाफ कभी कभी घड़ी की टिक टिक में अजब तरीके से डूब जाता, कोफ्त सी होती।

टिक टौक जस्टिस। ये नाम जज पर कभी चस्पा नहीं हो पाया।

पर जस्साब (बीवी का बरसों पहले का दिया प्यार का नाम) के रोजमर्रा में ये पांच मिनट विशद अहसास का भंडार है : बेहद सारभूत और नितांत व्यर्थ। एक बे सूद बचाव की रस्ती। समुद्र के बीच सूराख से डूबती नौका। ऐसे चरितार्थ क्षण होते कि जज के भीतर इतनी ताकत समा जाती कि वह कुछ भी करने में अक्षम होता। सब इतना साफ और पैना कि वह दृष्टिहीन हो जाता। आन और ईमान का इतना खुद एतमाद कि जस्साब आतंक से घिर उठता। घटनाएं, छवियां, यादों के टुकड़े, चीजों के तर्क, कानून और तथ्य के तत्व इतने प्रकट, कि कुछ भी कदम उठाने, फैसला करने की जज की मंशा चुक जाती। इंसाफ देने की शून्य अवस्था। कौंध और लपक में पूर्व और पश्च दृष्टि हिलमिल जाती।

जज के लिए ये पांच मिनट बेकसी के आवेश की तरह थे। मानो वह कीर्ति के वितल में झांक रहा है। पलायन का शिखर। एक नारकीय स्वर्ग। और अनंत रिहाई का स्पर्श।

किसी भी सूरत से जज के बारे में कुछ भी अपूर्व या स्मरणीय नहीं है। भीड़ में, या अजनवियों के बीच वह कुछ भी लग सकता है : मुनीम, स्कूल टीचर, होमियोपैथ डॉक्टर, किसी क्लब का सेक्रेटरी, रिटायर्ड सरकारी बाबू। पर एक उद्यमी? नहीं। हाई कोर्ट जज? सवाल ही नहीं। पर उसे देखने पर भरोसा ये भी है कि बेचारा भला इंसान है। पर बेचारा क्यों? उसके ढंग और आचार में कुछ ऐसा जन्मजात है, कि पहली क्षणिक मुलाकात में ही उसके लिए लज्जा या दया का भाव उमड़ता। इसमें शक नहीं कि दिल्ली हाई कोर्ट में वह सबसे श्लील जज है। पर जैसे ही रिटायर होगा, तुरंत भुला दिया जाएगा। जजी के कई दशकों में उसने सामर्थ्य और धुन का परिचय दिया। पर उसके फैसलों में कुछ भी दिलेर या नवीन नहीं है। लकीर का फकीर। वह नेक और ईमानदार है। पर सदा यह अहसास कि उसकी शराफत और सत्यनिष्ठा किसी बचाव की चादर है, दबूपने और परवशता की नुमाइश। उसकी खुदी में रती भर प्रेरणा नहीं है। उसके अख्ताक से कोफ्त होती। उसे लेकर टिड्डी और टिटिहरी जैसे शब्द याद आते। उसकी जजी में अगर कोई उजला संवाद है, तो वह शायद इंटेलिजेंस ब्यूरो के प्रतिकूल तबसरे के पन्ने का रिक्त उजाला है, जहां एक भी कॉलम में एंट्री नहीं है।

कह सकते हैं ये वक्त का इशारा और मशवरा भी है। जब लहक और दिखावा ही सब कुछ है। विनय की कोई विरासत नहीं। पर इसमें भी दो राय नहीं कि जज के हर फैसले में बुजदिल सहीपने का दाग है। हर फैसला कानून के सांचे की अक्षत बेगुनाही में कैद। जज फैसला देता नहीं है। वह मात्र उन्हें कागज पर उतारता है, उसके शब्द कानून की गुलामी में दम तोड़ देते हैं।

बुजदिल विनय की शर्म से जज से ज्यादा कौन वाकिफ है? पर ऐसा हमेशा नहीं था। जब तीस साल पहले उसने जुडिशल सेवा का इन्तहान पास किया, पूरा कस्बा विस्मित रह गया था। देवराज प्रणाम, एक जज? सबके मुंह से निकला। औसत छात्र जो कसरती शरीर बनाने के तमाम घंटे जिम में बिताता। ये तगड़ी बायसेप्स। शीरी (जज की पत्नी) शादी की रात उसके बायसेप्स सहलाती रही। डोले के आकार से स्तंभित। तत्क्षण प्यार झरने लगा...तो इतने सालों से, मेरे इंतजार में, तुम बायसेप्स बना रहे थे, शीरी फुसफुसाई, अब चूँकि मैं मिल गई, तुम मेरे हो गए, तुम इंसाफ बनाओगे, है न? एक दिन ये बायसेप्स का लोहा हाई कोर्ट के फैसले लिखेगा, उसने कहा। और बीवी का कहा वरदान साबित हुआ।

पर इस बीच सालों गुजर गए। कलम के मसरूफ घसीटने में जज की बायसेप्स झर गई। औसत और तुच्छ के जंतुओं ने जज के शरीर और मिजाज पर कब्जा बना लिया। तो देवराज प्रणाम : गंजा सिर, शक्की चाल, मोटे चश्मे के लेंस की कानी चमक और डायबेटिक खुराक के लौह नियम। जुडिशल सर्विस में वह तेजी से बढ़ा। कोई अचरज नहीं हुआ जब वह हाई कोर्ट में पहुंचा,

पहले सिक्किम में, और अब दिल्ली में। एक विशाल, भव्य बंगले ने उसे निगल लिया, कार के ऊपर की लाल बत्ती उसका भरोसा बन गई। ब्रदर जज के समुदाय में जलन और विवाद के बादल बने, फिर छिटके, और जज अपने काम और फैसलों में विधान के कथन और हिदायत का कानूनची पक्षधर बना। पक्षधरता की जगह, वह एक प्रकार का तजना या आत्मसमर्पण था। उसके भाव और संवेदन मानो विधान के मोहताज हो गए। विचार की बुजदिली, और कृत्य की भी। इस तरह देवराज प्रणाम की जजी चली।

और निर्बाध, सदाकाल चलती रहती, पर नींद की करवट के मंगल या अमंगल की तरह, हुआ ये कि एक दिन जज के मन में ये खयाल उपजा कि जरूरी नहीं हमेशा यही राग और विराग रहे, दशकों के करियर की समतल, बोझिल जमीन की जगह यश के शिखर भी हैं। रिटायरमेंट अब दूर नहीं, पर वह अब भी बायसेप्स का गुरुर दोबारा कायम कर सकता है, और किसी बोल्ड, जबरदस्त फैसले के जरिये डंड की तर्ज पर जस्टिस पेल सकता है।

और जिस तरह बदी ने टेक लगाई और अपने स्तन फैलाए, जज ने जिस मामले को अपनी ढलती शाम का गुलमोहर बनाया, आखिरी कलाम ए नौ ए इंसाफ का मजमून, वह लंबे वक्त से लंबित, सदा का लटका, करीबन भूला और भुलाया, हमसैनिक फार्मस केस था : कई एक रिट याचिकाएं और पीआईएल जो अब प्राचीन जहाज में रस्सियों से एक साथ बंधे गुलाम के दस्ते की तरह लाल फीते और गत्तों में एक साथ नत्थी थीं।

जज का यह अंधा और अंधेरे का तीर, यह तसव्वुर और अनाड़ी प्रयोग, उसके स्वभाव के रवा से एकदम उलट था, एक भारी गलती। तय तबाही का नुस्खा। दो अलग स्थानों पर लगभग एक ही वक्त इस गहराते अनर्थ का सचेत सीमांकन हुआ। जैसे इतवार की एक बादल भरी सुबह, जब जज अपने नजदीकी दोस्त, एक दुर्जेय पर पराक्रमी वकील, के साथ लोदी गार्डन्स में एक हरी बेंच पर बैठा था, और दो से कम किलोमीटर दूर, सीनियर जर्नलिस्ट विक्रम कुरियाकोस (साथीजन के बीच उसके लिए एक मुहावरा था—विक्रम कुरियाकोस, सजग तरह से कोमाटोस!) अपने एक फोटोग्राफर मित्र के साथ आंध्र भवन की कैंटीन के मशहूर मिनी डोसा, मिनी इडली, मिनी वडा का सडे नाश्ता खाने बैठा रहा था। दोनों की विक्रम वेताल की जोड़ी है, ऐसा अन्य कहते...।

लोदी गार्डन्स में वकील जौली ने जज को सलाह दी कि वह खुद लंबे फैसले लिखने में टाइम न वेस्ट करे। तो कौन लिखेगा? जज ने मिनमिन की। तुम केस तय करो। जजमेंट्स लिख जाते हैं। कैसे लिख जाते हैं? जैसे कारें बन जाती हैं। क्या टाटा खुद कार बनाता है? वो बन जाती है। भई मैं ठहरा पुराने स्कूल का जज...टाइम वेस्ट करने की बात है, मानो तो मानो, वकील दातुन चवाने लगा।

उधर वेताल विक्रम से निरंतर कह रहा है वो अपनी मूल प्रतिभा पर लौटे। और वो कैसे? इंसानी जज्वे और इंसानियत के हौसले के फीचर्स लिखो...इस तरह की आलसी बातें होते होते हमसैनिक फार्मस के केस में जाकर उलझीं। कि इस केस में कोई दम और जूस नहीं है। सूखी गुठली है। टूठ है, न्यूज की एक भी हरी पत्ती नहीं है। कि प्रहसन बन गया है। इस केस की सवारी व्यर्थ है...मैं बिलकुल सहमत नहीं, जज ने कसे जबड़ों के बीच से कहा। तुम गलत हो, कोमाटोस ने वेताल से कहा। और तब एक ही बात निकली। कैंटीन में वेताल ने कही। लोदी गार्डन्स में जौली ने कही। कि जिंदा भैंस के सामने मूर्ख बीन बजाता है। दान में दुलती हासिल होती है। मरी भैंस के सामने बीन बजाना तो पगलौटी की हद है।

हिसाब ये बनने लगा कि जज और विक्रम एक दूसरे के बारे में जान गए हैं। निजी पहचान नहीं है। पर जो संभवतः मारक और दुरुह है वो ये कि वे एक दूसरे के प्रति पुरगौर और आगाह

हो गए हैं। जैसे महीने गुजरे ये आगाही तीव्र होती गई।

इस कथा का निष्क्रिय स्टार्टर और कच्चा कोयला, संपत्ति और दिवाला, शुभ और व्यर्थ, अकथनीय और रिवायत, सार या निस्सार, निर्मल और धूर्त, रुदन और गीत यही है : कि दो चंगे, संपन्न भलेमानुस आव और ताव को ताक पर रख हमसैनिक फार्म्स केस के अतल में झांक रहे हैं, उसकी दलदल में बेवजह लिथड रहे हैं। कि विक्रम हमसैनिक फार्म्स मुकदमे में जज के हर कठोर अंतरिम आदेश को अखबार में रिपोर्ट कर रहा है। जज की जबानी फब्तियां। समय बेसमय पर उसकी चिढ़ और अदालती धमकियां। कि वह जज के संकल्प की तीव्रता को मैप कर रहा है। कि जज के आदेश कठोरतम होते जा रहे हैं। और उसकी सख्ती का ग्राफ लगातार बढ़ रहा है। कि जज और पत्रकार दोनों को लग रहा है कि सामने एक ही रास्ता बचा रह गया है। जो बेहद संकरा हो गया है। और कहीं पास और आगे अगर कोई विकल्प बचा है तो वह या तो विस्फोट है या अंतःस्फोट। धमाका! कोई घटना या नतीजा जिसका कोई पूर्वानुमान नहीं। अभ्यास भी नहीं। या तो सरकार पलक झपकाए और हमसैनिक फार्म्स को वैध ज्ञापित करे। या तो सारा निर्माण ढहे या नियमित हो। जज और जर्नलिस्ट के अंतस में बाइनरी की यह दुनाली तन गई है। यह अंधपना है। शायद उनके निजी दैत्य हैं जो उन्हें खदेड़ रहे हैं। मन की विवशता या विषम। जज पत्रकार के सारे कॉलम इकट्ठे करता है; उसकी हर रिपोर्ट। उनकी कापियां बनाता है, उन्हें कई कई बार पढ़ता, गुनता है। लाइनों के बीच पढ़ने की कोशिश करता है। उनके राजनैतिक संकेत। जो नैतिक फ्रेमवर्क मीडिया की रिपोर्टिंग से बन रहा है। इस पकते विवाद में मेरा स्थान कहां है? जज सोचने लगा है। यह अजीब और करीब ट्रैजिकॉमिक है किस तरह वे एक दूसरे पर सवार हैं, मानो आपस से रक्त और ऊर्जा सोख रहे हैं। आहार पा रहे हैं, एक दूसरे को उकसा रहे हैं। वे एक प्रकार से एक साथ जुत गए हैं, और खुद न होकर कुछ और होते जा रहे हैं।

विक्रम कोई पहला जर्नलिस्ट नहीं है जिसने हमसैनिक फार्म्स केस रिपोर्ट किया है। और न देवराज प्रणाम पहला जज था जिसने बरखिलाफ आदेश पारित किए, और खुली अदालत में मुखालिफ तपसीर की। पहले अनेक जज रहे। कई मुद्दों पर दो जज की बेंच बनी थीं। उनमें से अधिकांश रिटायर हो गए हैं। कुछ मर भी गए हैं। और कई ऐसे भी हैं जो हमसैनिक फार्म्स में रहते हैं।

यह सब जल्दी से बतलाने का अपना रहस्य है...।

...कथा का फ्रेम असल में अलग तरह से गूढ़ और सूक्ष्म है। ये न जज के बारे में है, न उसकी बीवी के, या विक्रम कुरियाकोस या स्फीति के बारे में, या वेताल अथवा जौली। कथा बल्कि हमसैनिक फार्म्स के बारे में भी नहीं है। या यह तथ्य कि हमसैनिक फार्म्स दिल्ली में एक अभिजात, अवैध, अनियमित कॉलोनी है। हमेशा से थी। पैदाइश से। और जो हमसैनिक हैं, निवासी, वे साधारण नहीं। उनसे धन है, वे धन से। शक्ति उनसे है, वे शक्ति से नहीं...कायदा, नियम उनसे आबद्ध है, प्रभा उनसे है, वे पजमुर्दा नहीं, वे सैनिक नहीं हैं तो सैनिक सरीखे हैं, और इधर सब के सब देशभक्त भी बने हैं। और कि ये केस बिना मूठ की तलवार की तरह पंद्रह साल से लटका है, मुर्दे भी लटकते हैं, कार्य व्यापार रुक तो नहीं जाता। या कि सरकार हमसैनिक फार्म्स के नियमितीकरण के मुद्दे पर न हां करती है न ना, अवैध झुग्गी और मलिन बस्तियां तो 1500 से ज्यादा हैं...ये कथानक, लगता है, कानून और ईसाफ के बारे में भी शायद नहीं। या भ्रष्टाचार का पर्दाफाश। काला धन। वोट बैंक की कुत्सित राजनीति। अथवा पोलिटिकल क्रिमिनल नेक्सस का अभिशाप।

अंदाजा या कुछ कुछ लज्जालु उम्मीद ये है कि यह कथा किसी दुष्प्राप्य फिनोमिना या मेटा लॉजिक के बारे में है जिसके प्रताप और रोशनी के भीतर यह सब समीचीन है, और जरूरी और अनिवार्य। कि हमसैनिक फार्म्स के केस और सुनवाई का प्रहसन सहज तरीके से जनहित की शर्त

है। कि गलती या अपराध किसी का नहीं, जो शिकायत कर रहे हैं, या जो बेहिसाब फायदा उठा रहे हैं। क्योंकि यह समाज, कार्य व्यापार, संरचना और संविधान के गौरव और नेमत का सुदर्शन करार है। नाटकीय तरह से कहें तो कि दिल्ली के ठीक बीच, दिन दहाड़े, हमसैनिक फार्मस की हैरतअंगेज, निरंकुश अवैधता के बिना दिल्ली का जीना असंभव है। दिल्ली है, अच्छे और बुरे तरीके से पनप रही है, इसलिए कि हमसैनिक फार्मस भी है, और उसे अनाधिकृत, अवैध रचना और संरचना की पूरी आजादी है। वह तामीर ही नहीं, हमसैनिक फार्मस का विचार और रूपायन तामीर ए तमन्ना ए मोहब्बत ए वतन है!

हमसैनिक फार्मस जश्न का इंसाफ है, और इंसाफ का जश्न है। ऐसे पाक निवेदन के लिए आहुतियां भी जरूरी हैं!

विचार या अवधारणा के पास न शरीर है न आत्मा, इसलिए कथा को हमसैनिक फार्मस के जश्ने इंसाफ या इंसाफे जश्न, उसके पाक निवेदन की थाह शिराओं के उन संवेदन में ढूंढनी है जो हमारे किरदार के दिल और दिमाग में प्रवाहित हैं। रात और दिन। उनकी जासूसी, वे क्या करते हैं, या नहीं करते, हर डिटेल्, उनके क्षुद्र रहस्य और बेजा खयाल, गुण और खोट, सांस और प्यास का रोजनामचा।

हाल में एक ज्ञानी नॉवेलिस्ट ने सही कहा कि क्लाइमेट चेंज के व्यापक खतरे उपन्यास के पात्र होने चाहिए। इसी तर्ज पर लीगल पर्सन्स भी। हाड़ मांस के इंसान की तरह वे भी जन जीवन और अर्थ जगत का अभिन्न हिस्सा हैं—फर्म और कंपनियां। इंसान की तरह ये भी जीवित हैं। जनती, पनपती हैं। आपस का सहयोग, होड़, झगड़ा, कमजोर का शोषण, भक्षण, झूठ, निहितार्थ, ये सब इनके मिजाज के अंग हैं। यह कथा ऐसी उलझनों के लिए अक्षम है, सो इतना कहना ही वाजिब है कि जहां दिल्ली की आबादी 120 लाख से अधिक है, राजधानी में करीबन 10 लाख फर्म और 2 लाख कंपनियां हैं, जो आपस में और इंसान के मुकाबले जगह, इख्तियार और सत्ता के लिए सक्रिय और संघर्षरत हैं। और इंसान से कहीं ज्यादा ताकतवर हैं।

उस महीने के दूसरे पक्ष में जज की आफत हो गई थी। दम भरने की फुर्सत नहीं, रोज का रूटीन तहस नहस। और वह ऐसे मसले में उलझा था, जहां उसका तजुर्बा शून्य था। मोटी रकम की व्यवस्था करनी थी। फ्लैट या अपार्टमेंट का चुनाव। कहां खरीदना है? क्या चाहिए? कैसा? जहां रिटायरमेंट के बाद रहेंगे।

जज के लिए आघात की तरह था। जब शीरी ने साफ कह दिया कि रिटायरमेंट के बाद वे उसके पुश्तैनी बंगले में नहीं रहेंगे। सवाल ही नहीं उठता, उसने कहा। हमें ज्ञात (उनकी इकलौती बेटी) का भी सोचना है। चालीस साल जस्टिस पेली है तुमने जस्साब। कमसकम एक फ्लैट तो लेकर दोगे। नहीं? मैं कोई महल तो नहीं मांग रही। जस्टिस नहीं पेली मैंने, जज ने अटकी आवाज में कहा। एक घर तो पेल दो कमसकम!...इतना तो हक बनता है मेरा। यह तसल्ली कि चालीस साल की गुजर बेकार नहीं थी, उसका मायने था...ये ठीक नहीं है, जज का प्रतिवाद। हो सकता है, पर इंसाफ तो है! जज के पास कोई जवाब नहीं था। जज ने बचत और खाते का हिसाब लगाया। कितनी पेंशन होगी। पी एफ और ग्रैचुइटी। लीव का नकद। कितना कर्जा ईएमआई पर उठा सकता है। इतने से, इस सफेद के जोड़ से, पूरा नहीं हो रहा था। पर और पैसा भी था। जिसकी कभी बात नहीं होती थी। मलिन रोशनी का सच। अनदेखी की रस्म। जो जज की पीठ में अदृश्य खंजर की चुभन की तरह था। काला धन! सभी नेक, ईमानदार जनसेवक के पास होता है। अधिकतर के पास, उन्हें छोड़कर जो पुश्तैनी रईस हैं, दिलदार या दिलफेंक हैं, और कुठेक पगले

टाइप के। यह धन अपने खुद और खुददारी की परछाई की तरह है। जो सदा साथ रहता है, कभी दूर नहीं, पर जिसके लिए तुम जिम्मेदार नहीं। यह कमाया या मांगा धन नहीं। वसूली या कपट का कोई दाग नहीं। जैसे राजधर्म वैसे राजदान। सुनाम और सद्भाव का राजदूत, सत्यनिष्ठा और जम्हूरियत का सर्टिफिकेट। मनुष्यत्व और शराफत की सनद। यह सब देवराज बखूब है। हद तक, बेनागा। तुमने जो किरफायती और ईमानदार जनसेवा इतने सालों में की है, खरा जमीर और आदर्श नैतिकता का आचरण, यह धन उस ऋण का पार्ट नफा और भुगतान है...ये नजराना भर है, यह धन तुम्हारा आगोश है, हिफाजत की जेल, एक इंश्योरेंस कवर, और ये धन अपने हक और हिसाब से जज के एकाउंट्स, लॉकर्स और महफूज तिजोरियों में भरता रहा है, जैसे मुनिसिपल नल से टपकता पानी। जज ने इस कैश का हिसाब किया। न जाने कितने वर्ष और भूले वक्त के नए, पुराने बंडल। गिना। कैश पर्याप्त था। अभाव पूरा हो रहा था। यही उसका हेतु था।

अनाड़ी पूछ सकते हैं क्या तनखा, पेंशन और इज्जत का सफेद धन ढकोसला है? यह सवाल जज की इंसाफ पसंद रूह के लिए जहर के प्याले की तरह है। वह सकपकाता, उसे दर्द और दुख लगता। पर कुछ पल के लिए। वह निरापद उबर लेता। आखिरकार, इंसाफ और भद्रता के समुद्र में एक बूंद की कीच की क्या औकात या अहमियत?

शीरी की जरूरतें न्यून हैं। संयम और तजना उसकी फितरत है। रूह का डेरा, वह खुद के लिए कहती। योग के सुगठित आसन से ज्यादा कीमती कुछ भी नहीं। पर कोई विरल अवसर होता जब वह किसी इच्छा या तकाजे पर टिकती, तो वह हकदारी की तरह होता। तब वह कम नहीं मान सकती। तब उसकी तृष्णा का कोई छोर नहीं था।

और फ्लैट की तलाश में शीरी अनवरत और बेइंतहा है। सिर्फ घर, आशियाना ही नहीं, शमन और निस्तार का साधक भी तो...राहत और पलायन का पालक, वह बुदबुद करती, अगम्य और खुश। बरसों बाद वह पति पर मुस्कान और हंसी की चकाचौंध गिरा रही है। दिल्ली में अपार्टमेंट देखे, गुड़गांव, नोएडा, गाजियाबाद, फरीदाबाद में। एक बार मनेसर तक चले गए। वीकेंड इसी में जाता। कभी दो फ्लैट, कभी चार तक। एक महीना गुजरा, फिर दो। वह कुछ कुछ लिस्टें बनाती, फ्लैट्स को अपनी डायरी में पॉइंट्स देती, और ब्रोकर से सवाल पर सवाल। जज ने राहत की सांस ली कि ब्रोकरके धीरज का कोई सानी नहीं था, और उसकी नवाजी अडिग थी। जज को ब्रोकरों की दुनिया का कोई इल्म नहीं था। सो उसने एक जमावड़े में यह सवाल महीन अस्पष्टता से उछाल दिया था। बात बन गई। क्रमिक परिचय के सीवन से एक ब्रोकर नमूदार हो गया। कमीशन नहीं लेगा, भरोसेमंद और पते का है, एहतियात वाला है, जज को बताया गया।

...दसवीं बार जज और मिसेज जज फ्लैट देखने निकले होंगे। जज के हाथ पतलून की जेब में भीतर तक धंसे हैं, और वह निर्जन फ्लैट में आगे निकल गया है। खाली मन से दीवार की शून्यता ताकने लगा। पीछे, मानो किसी अतल से गूंजती सी शीरी की आवाज सुनाई दी। वह ब्रोकर से कह रही है...आप बुरा न माने तो क्या हम, जज साब और मैं फ्लैट अपने से, अकेले में देख, मतलब फील कर सकते हैं? मतलब बिना किसी बाहरी दखल के। क्यों नहीं मैम, मैं खुद कहने वाला था, ब्रोकर ने बेरोक कहा। मैं बाहर हूं। जज ने ब्रोकरके लौटते पैरों के साथ दरवाजा बंद होते हुए सुना। उसके बाद जो हुआ, निःशब्द और वाग्मी, वह उनके दांपत्य का टोटल स्ट्राइक आउट, पुनर्लेखन, और काया पलट था। एक रक्तहीन विप्लव, खामोश क्रांति।

खोलो मुझे, शीरी ने अंदरूनी रूख की उग्रता से फुसफुसाया और जज से आगे निकल गई। और तमाम तरह के अज्ञात, विस्मृत पहिये अबूझ गति से खुद ब खुद चलने लगे। वह अलमारियां और दराज खोल रही है, बंद कर रही है, नल, परदे, वह चिमनी की ऊंचाई में झांक रही है, और

सिंक और शाफ्ट के संकरे अंधेरे में, एक कमरा, फिर दूसरा कमरा, जज शीरी के अनर्गल हुकम का बेदाम और ऐच्छिक दास बन गया है, राह बखुद बन रही है, निराश्रित आवेग के किसी पहलू का कंटीला ओएसिस उग गया है, वह जज की फैसले लिखने वाली उंगलियों को राह जतला रहा है, दर्शनीय है, लीला का प्रादुर्भाव, अजन्मी चाहतों का रंगस्थल, फिर भी जीवंत...अमल और प्रयास में रमे स्पर्श और पुचकार, जांच पर सिमटी स्पर्श की उठती हुई सरकन, ब्रा का अनावरण, लिपटी इलास्टिक की चटकन, अर्द्ध प्रकट देह का उन्मत्त प्रसार और घन, दीदार के अनूठे कोण, लंबी नींद की जाग...जज की विस्मित, डरी निगाह में शीरी के जिस्म की ओस सुप्त आह और कच्चे शहद के वजन से भारी है, वे एक बिस्तर में विगत कितने सालों से एकसाथ अनछुए हैं, यह नया विन्यास है, शीरी पास और नजदीक, और चरम के निर्गम क्षण के बाद उन्होंने खुद को किचिन में पाया, जज रति के सच के बेवफा द्रोह से कांप उठा, उसने शर्मसार, फेर नजर से शीरी को देखा, मानो धोखा करते पकड़ा गया है। शीरी के भरे होंठ लबालब दिखे, और वह अलग हो गई..चलें, कुछ पल की मोहलत के बाद वह बोली, और बाहर जाने से पहले पॉकेट डायरी में वह कुछ सचेत नोट्स लिखना नहीं भूली।

आगे के दिन, हफ्तों में फ्लैट की दुरूह तलाश चलती रही, और उसमें दूसरी खोज का रहस्य, अनिश्चय और दुर्बोध भी संलग्न हो गया, शरीर की शरीर से तलाश और संसर्ग, इनायत जिसकी इजाजत कुछ चुने फ्लैट्स में ही थी, इस पहेली का राज जज के लिए घोर त्रास और उत्कंठा का स्रोत था। उन वीकेंड्स में जज जैसे ही फ्लैट में दाखिल होता, फ्लैट का संज्ञान तो दूर की बात है, वह संपूर्ण तरह से एक चोर के तनाव से घिर उठता। विल शी और वॉट शी? इस कौतुक के नगाड़े से उसका समूचा शरीर झंकृत रहता। वह अपने से दूर होता। अनेक तरह से खंडित। उसे लगता यह खोज कभी न खत्म हो, एक स्वप्न अवस्था की बेसुधी, और दूसरी तरफ यह खौफ भी था कि ब्रोकर को इस तरह लटकाए रखना ठीक नहीं, और उनके गुप्त करतबों की क्षुद्र, महीन आड़ कब तक ब्रोकर की पैनी निगाह से छिपी रहेगी?

इतना तो तय और अकहा था कि इस त्रयी में, आदमी, बीवी और ब्रोकर, सबका कम या ज्यादा इल्म था। बेखबर कोई नहीं था। हर बार जब वे फ्लैट से बाहर निकलते हैं, ब्रोकर भीतर जाकर अंतिम बार ताले, कुंडियां चेक करता है। कोई अज्ञात कसौटी थी जिसके जरिये शीरी किन्हीं खास फ्लैट्स को एक नजर में उनकी पोशीदा वसलत के लिए चुन लेती। और फिर उसका कमांड : खोलो मुझे। और जज को इस बारे में रत्ती भर शक नहीं था कि चतुर, चिकना ब्रोकर वसलत के दाग वाले फ्लैट्स में कोरे फ्लैट्स के मुकाबले चेकिंग में एक आध मिनट अधिक वक्त लगाता था। भीतर खुशबुएं तैरती होती होंगी...और जिस तरह से ब्रोकर हर विजिट में शीरी को लक्ष्य कर कहता—मैडम फ्लैट को अपने, अकेले सेंस करना चाहेंगी!

अंततः, एक बदली के दिन, देर दोपहर, जब खास गद्गद रति राग, जो और वक्त के मुकाबले ज्यादा देर चला, वे बाहर निकले, तो शीरी ने खोज और अन्वेषण के तिलिस्म और बहार की समाप्ति की। ये फ्लैट पसंद है, शीरी ने ब्रोकर से कहा, इसे खरीदेंगे, ओके, एंड थैंक यू फॉर... एक पल के लिए वह रुकी...वेल्, एवरीथिंग। उसके लहजे और स्टाइल में कुछ ऐसा था मानो पसंद का नतीजा बताकर वह किसी बड़े राज का भी पर्दा गिरा रही है। सीलबंद मोहर मानो। शीरी के ये शब्द जज को मेहरबानी की तरह सुनाई दिए। सबसे पहले राहत। फिर कुछ खो देने की मायूसी। एक तरफ छुटकारे का उल्लास था, दूसरी तरफ गंवाने की दस्तक।

यह कहना मुश्किल है कि जज आज उन दिनों को किस तरह याद कर रहा है, टिक टौक जज, अपनी कुर्सी पर बैठा ध्यानमग्न, रिटायरमेंट में ज्यादा वक्त नहीं बचा है, और महाकाय

हमसैनिक फार्मस केस में सुनवाई और आदेश अपेक्षित हैं। यह साफ तो नहीं, पर ऐसी अफवाहें बनीं कि जज ने अपना फैसला रिजर्व कर लिया है, और फैसला किसी भी वक्त आ सकता है। क्या यह रूढ़िगत, लीक से न हटने वाला जज सचमुच हमसैनिक फार्मस के डिमॉलिशन के आदेश देगा? ये सवाल अगर कहीं मुखर है तो कोर्ट की दीवार घड़ी की टिक टिक में है।

फ्लैट की डील वाजिब प्राइस पर संपन्न होने के बाद रजिस्ट्री की औपचारिकताएं शेष थीं। करते हैं सर, लीव इट टू मी, ब्रोकर ने कहा। फ्लैट की कम कीमत सुनने के बाद जज ने पूछा कि उसके लिए कोई अनुचित लिहाज तो नहीं है? ब्रोकर ने आश्वस्त किया कि एकदम क्लीन डील है। सेल डीड साइन और रजिस्टर हुई। सारा काम बिजली की गति से। जज ने ब्रोकर से ही सुना कि डिजिटाइजेशन और ई सेल डीड प्रोजेक्ट के बाद अब एनसीआर में डीड कहीं भी रजिस्टर कर सकते हैं। पूरी प्रक्रिया सीमलेस है। फ्लैट वसंत कुंज में था। रजिस्ट्री के दफ्तर में जज के साथ ब्रोकरके अलावा एक वकील था। बैनामे के पन्ने उसने पलटे, और जज क्रॉस के निशान पर साइन करता रहा। ऑफिस में स्पेशल एंट्री हुई। फोटो, फिंगर प्रिंट। बैंक यू फॉर द रॉयल ट्रीटमेंट, जज ने कार में बैठते हुए ब्रोकर से हाथ मिलाकर कहा। डीड की कापियां बाद में मिलेंगी, ब्रोकर ने कहा, वह खुद चाबियों के साथ डिलीवर कर देगा, आप चिंता न करें। बीच में मैडम का सेंस...माने फील करने का मन हो, तो प्लीज गिव मी अ कॉल। सेन्स? मैडम शायद अपने पैशन के हिसाब से फ्लैट संवारने की सोचें...मैडम को भी कौंग्रेचूलेशंस मेरी तरफ से, उनकी निगाह और सेन्स ऑफ टाइमिंग का जवाब नहीं, सबसे उम्दा फ्लैट चुना है उन्होंने...सेन्स ऑफ टाइमिंग? जज ने कार के शीशे से हाथ हिला दिया, पहली बार ब्रोकर इतना बोल रहा था, उसके ढंग में कहीं धृष्टता का बीज जज ने महसूस किया, पर फिर उसने राहत की मदहोश सांस ली। अ जॉब डन। काम खतम पैसा हजम, पुरानी कहावत उसके दिमाग में आई। मन किया अभी जाकर शीरी को ये खुशखबरी दे।

नाइस, वैरी नाइस, शीरी ने कहा जब जज ने देर शाम पत्नी को इतला दी। इतना ही जज के मुंह से निकला कि सेल डीड हो गई है। जबकि लौटते हुए उसने एक चुना शेर खास अदा से बोलने का मन बनाया था—कि घर की तामीर तसव्वुर ही में हो सकती है, अपने नक्शे के मुताबिक ये जमीं कुछ कम है...शाम गुजरी, फिर रात, शीरी खुद में खुद रही, जज देर तक ड्राइंग रूम में टीवी अनदेखे देखता रहा। न जाने क्यों ममता फिल्म का एक गीत उसकी जुबान पर चढ़ता उतरता रहा : इन बहारों में अकेले ना फिरो, राह में काली घटा रोक ना ले...मुझको ये काली घटा रोकेगी क्या, ये तो खुद है मेरी जुल्फों के तले! वह जब घर में दाखिल हो ही रहा था, ज्ञात की झलक दिखी थी, उसके बाद वह कहीं चली गई या घर में ही है, जज को कोई अंदाजा नहीं था। इधर उसने देखा है कि वह ज्ञात को कुछ भी कहने में हिचकिचाने लगा है।

जज ने देखा कि शीरी की मुकद्दस शिरकतें और आध्यात्मिक जलसे एक बार फिर जोर शोर से चलने लगे हैं—उसके चिरयुवा, हैंडसम गुरु की शरण में सत्संग, प्रवचन, बुद्धिस्ट चौंट्स। और रात के बिस्तर में उनके बीच का फासला अधिक लंबा और विमुख हो गया।

रात की कितनी ही करवटें। आकुल और निस्तेज। शीरी की नींद में गहरी, परदेस सी काया के मनन में गुजरी वे उन्मत्त रातें जज को भ्रम और किसी तरह के विपथ की तरह लगती हैं। इतना भी साहस नहीं कि वह उंगली बढ़ाकर शीरी को कोई वास्ता जतला दे। ऐसे बेचैन, निद्राहीन क्षणों में जज को शायद लगा हो कि शीरी ने जो लीला रची वह एक चैलेंज या सौगात की तरह थी। अपनी शोख दिलेरी से उसने जज को बांके प्रीतम का दर्जा दिया, और वह खुद जैसे कामना का मजमून बन गई। जज से शायद यह आकांशा हो कि वह इस करतब को स्वप्न की दशा से मुक्त कर, किसी अपूर्व कृत्य के जरिये, नित्य का सच बना दे। अपूर्व कृत्य? एक बेजोड़ फैसला, जज



ने शायद सोचा हो...उसने अकथ के बिंदु तो ठीक से नहीं जोड़े, पर उस खयाल के बीज तभी उसकी तप्त छाती में जन्मे थे, यश के शिखर का बिंब, आखिरी कलाम ए नौ ए इंसाफ का मजमून...हमसैनिक फार्मस की नेस्तनाबूदी और विध्वंस का सिद्धि पर निडर फैसला! यह अजीब सा खयाल था। नापाक पर खरा। कड़ा रुख जज के बर्ताव का अभिन्न हिस्सा बन गया।

जिस वक्त जज सेल डीड साइन करने के लिए साउथ दिल्ली के सब रजिस्ट्रार के दफ्तर में था, विक्रम कुरिआकोस बहुत दूर नहीं था। बल्कि, इत्तफाक से, दो बार वह जज के ठीक बगल से गुजरा था, पर खुद में इतना उलझा कि नोटिस ही नहीं किया। ये जरूर है कि पीठासीन जज और सड़क पर पैदल जज दो अन्वय छवियां हैं। इस तरह एक बड़ा बहुरंगी स्कूप उसकी पकड़ से फिसल गया। अगर, कोरे लक से उसे यह जानकारी आगे न मिली होती, तो ये चूक उसके निछावर की टोपी में एक और मुर्दा पंख होता, यह उलाहना सबसे पहले उसके डिप्टी एडिटर से आता। कई तरह से विक्रम अजब टाइप है, घना बॉक्सर शरीर, मंथर चाल, एक ही क्षण में वह दाढ़ी, बेदाढ़ी दिखाई देता है, उसके जिस्मानी हुलिए के बारे में राय या सहमति असंभव है, स्कूटर पर चलता है, अपनी पर आ जाए तो उसकी धुन और हुनर का कोई सानी नहीं...नाम खूब है, पर बेकामी भी कम नहीं, ठस और जड़ मानुस है तू, पर तेरी जड़ों में फूल खिलते हैं, इसलिए मर्डर नहीं किया तेरा, डिप्टी एडिटर इस तरह उसे लताड़ता, सराहता। चिमनी की तरह सिगरेट फूंकता है, और पेट तो शराब की टंकी है, पर स्फीति के साथ घंटों स्थिर चिराग की मूरत और सिफत। और स्फीति सोच, बहस, लीला, हर मामले में उससे आगे। मैवरिक हो जी, बॉस कहता और आह भरता, पर इशारा अक्सर शब्द के स्रोत की तरफ होता : आवारा गाय जो झुंड से बिछड़ गई है। टैलेंट बेहिसाब है, पर काम की क्वालिटी पैदल। हल्की करतूत के बादशाह हो जी। पर वक्त बेवक्त नशे की झोंक में विक्रम ने कई बार सफाई दी कि उसे लायक की जगह लूजर का लेबिल ज्यादा पसंद है।

बॉस ने अपने प्रिय शागिर्द को गुमनामी के खतरे से बचाने का मिशन बना लिया था। अगर अपनी फिजूल, अनर्गल ग्रस्तताओं में उलझे रहे, तो नौकरी चली जाएगी मेरे लाल। हर मौके पर बॉस विक्रम के खबती दिमाग में ये कील टोक रहा था। विक्रम को बॉस की फटकार मंजूर थी, स्फीति की निगाह की डार्लिंग टोक के क्लेश के बरअक्स यह मलहम की तरह था। बॉस की झिड़कियां इधर हमसेना, हमवतनी (बॉस हमसैनिक फार्मस के केस को हमवतनी या हमसेना कहता है) की लाल बत्ती पर रुकती है। बेवजह की टिनपॉट, बेगोशत स्टोरी, और तुम तो रोज के भक्तजन हो। कोर्ट कचहरी की बीट है, तो पीट रहा हूं, विक्रम दीठपने से बॉस के हिलते सिर को कहता।

...टी स्टॉल के सामने की बेंच तय हुई थी, वहां विक्रम कुरिआकोस, विकी या वीके इन शॉर्ट, अपने कॉटेक्ट का इंतजार कर रहा है। एक जमाने की टाइपराइटरों की अनवरत टकटक अब सुनने में नहीं आती, उनकी जगह अब कंप्यूटर के काले चमचम स्क्रीन्स और माउस की क्लिक। बाऊजी चाय के साथ कट पेस्ट के बुलावे की सड़क के दोनों तरफ होड़ लगी है। कट पेस्ट : संज्ञा भी और क्रिया रूप भी। कॉटेक्ट आज वक्त से आया...कागजात और खबर में पके आम की खुशबू थी। इसका अलग इनाम बनता है, खबरी ने छूटते ही कहा। पीछे की पॉकेट से वीके ने बटुआ निकाला, नोट गिनकर पकड़ाए। इनाम अगली किस्त में, ठीक? एक दिन में कोई शहजादा नहीं बन जाता, है न? कुरिआकोस ने एक हथेली बराबर नोटबुक निकाली, और उसमें कुछ पुरगौर इंद्राज बनाए मानो डाल के आम ने किसी नज्म का साज छेड़ दिया है। कोई चुंबक विक्रम की नवीसाई उंगली और माथे की सांद्र लकीर की तरफ ध्यान खींचती है, उंगलियों के बीच फंसी कलम, एक साथ संजीदा और परहेजगार। उसकी अकस्मात, एकाग्र मुद्रा का यह इल्म है

कि यह बेलगाम सा, वन्यजीव सा, फटेहाल पत्रकार, असल में अपने कर्म की तरफ हद दर्जे नफीस और अचूक है, ये कलम का कायल है, मन करता है हम भी कुछ पढ़ लें, लिख लें, इसकी झोली में खयाल के पुलाव पकते हैं, डाल का आम नहीं...बम पकड़ा मुझे, विक्रम ने खबरी से कहा, कुछ ऐसा बता कि चाय का गिलास लुढ़क जाए। जैसे? जैसे बेनामी खरीद के कागज, बड़े और नामी नेता के बेनामी खाते, शाह नौकर और चमचे, जज और वकील की तरन्नुम के काले कारनामे... अच्छा, क्या है गपशप का गोश्त, सुना तो ये है हमसैनिक के बीच मगरमच्छ के भी बंगले हैं! आप भी सर, कुप्पी से तेल जला रहे हो, खबरी खीसें निपोरने लगा। समझा तो बोल, विक्रम की भौएं तनी...एक है यहां, इधर दिख रहा है, सफेद चोगे का वकील, और काले का ब्रोकर, वोट, नोट, सबका हिसाब, थोड़ा मोड़ा खुफिया पोलिटीशन भी, आज देखा उसे, कोई बड़े साब का कुछ था, केसिनो में पार्टनर है, सुनाई पड़ा, खबरी के अंदाज में दम था। केसिनो? खबरी कुछ कहने को हुआ, फिर रुक गया। विक्रम की बाखबरी में कुछ चमका। चल, इधर नहीं, उसने खबरी को कलाई से खींचा, गली के बीच गोबर के ढेर से पैर बचाते हुए खबरी को कान में खबर दी : पाजामे का नाड़ा और भेद का भांडा खुले में नहीं होता है...फोटोकॉपी के खोखे के पीछे मिल्लिक्यत के दोष से बरी एक अहाते में प्लास्टिक की कई टेबिल, कुर्सियां बिछीं हैं जहां नाशते या टिफिन की गजब वैरायटी है—डोसा, इडली, बोंडा, कढ़ी चावल, मछली फ्राई, भुनी शकरकंदी, चाऊमीन, छोले सिंघाड़ा, पेटे की मिठाई, प्लास्टिक के मिनी कप्स में शक्कर चाय और जले दूध की फिल्टर कॉफी...अदृश्य किचिन से वेटर नमूदार और गायब हो रहे हैं। वीके ने चाय के साथ बोंडा लिया, खबरी ने चाऊमीन के साथ मछली फ्राई का जोड़ बनाया और कुछ देर की नानुकुर के बाद तोते की तरह बोलने लगा मानो पेट में खाने के लिए अधिक जगह बना रहा है। फिर एक साथी को बालक के नाम से फोन किया जो मिनटों में पहुंच गया। मुख्तलिफ शक्ल के जुड़वां की तरह उनके संपूरक बयान से वीके को केसिनो का पूरा कब, कैसे, क्यों, कहां समझ में आ गया। बड़ी कारें रात 11 बजे के बाद लगनी शुरू होती हैं, और 12 के बाद केसिनो की असल मौज रंगत में आती है। बाहर सन्नाटा, और गार्ड के अस्ताह, दूरबीनें, वॉकी टॉकी, और अंदर समझो, जगमग जूए के बाजार में क्या है जो नहीं होता। जैसे? औरतें आती हैं, कमरे के भीतर कमरे जहां हर ऐय्याशी के अड्डे हैं, नशा और लाख की चाल के जूए, मशीन वाले, और पहिये वाला, जिसे रुले बोलते हैं, बोलो। और पुलिस? उनका लंबा चौड़ा कट बंधा है, नीचे से ऊपर तक जाता है, जूनियर खबरी ने जैसे आसमान से शिकायत की। अंदर पहुंचे कभी? दो बेमेल दांत की पंक्ति ने कट खुद के नसीब में न होने का दुख मिटा दिया।

ये खासी खबर थी, क्योंकि अखबार से नदारद थी, पर कोई मन की फितरत थी या गुजारिश कि बारंबार विक्रम का फोकस वह गूढ़ वकील था जो केसिनो से भी जुड़ा है। नाम का वकील है या कोई वकालत भी है?...किधर है प्रैक्टिस? दिल्ली में है, सुना। कहां? हाई कोर्ट में...सच्ची, कसम से। भेदी टीम ने कई सूत्र दिए, पर वो अब बन भी रहे थे, बड़ चढ़ कर बोल रहे थे। वाजिब भी है, जब टॉप के सरकार के लोग जीडीपी को बड़ चढ़ कर बता रहे हैं, तो ये लुच्चा टाइप खबरी क्यों पीछे रहे?...उसका फोटो लाओ, नाम, और हो सके तो पता, मुझे एसएमएस करना, वीके ने पर्स से नकदी निकालकर दी, और केसिनो का पता और रास्ता लिया। चलते हुए मशवरा दिया कि वकील के सामने पोंगे बने रहो, सुख पाओगे। पीछे से उसने कांटेक्ट की आवाज सुनी। शक्ल से पोंगे हैं पर बुद्धि से पंडित! आप चिंता न करें एकदम!

स्कूटर दिक्कत दे रहा था, पर ये वजह नहीं थी कि केसिनो की तस्वीरें खींचने और छानबीन के बजाय वीके ने दूसरी सड़क से प्रेस क्लब का रुख किया। रास्ते में एक गराज के पास से उसने

पुलिस के एंटी करप्शन यूनिट में एक गुमनाम कॉल रजिस्टर की। ये कि हमसैनिक फार्म है न? हां जी, दिल्ली वाला, वहां जो केसीनो चल रहा है, उसकी खबर कल अखबारों में फटने वाली है, और आपने अपनी जान, आन बचानी है, तो आज रात खुद रेड डाल के, वाहवाही लूट लो...बहुत वैसे भी लूट लिया, अब ऐसे भी लूट लो।...वीके ने फोन काट दिया। हलो? हलो? दूसरी तरफ से...वीके का अंदाजा था रेड की खबर देर रात पीटीआई पर खुलेगी। उसका एक धुंधला खयाल था कि हमसैनिक के केस में उसे किस तरह आगे कैची चलानी है।

...प्रेस क्लब : उसका दूसरा आशियाना, उसका पनाहगाह, उम्मीद की जमानत...छत में कैमरे के लेंस की तरह छिपे कुछ बल्ब। सिर्फ इतनी रोशनी कि आकार का अंदाजा रहे, और टेबिल, वेटर और प्रेसियों से टकराना न हो। टटोलती नजरें, और परछाई और अंधेरे के विशाल डेने, मानो किसी सामरिक डिजाइन के प्रहरी। यह मेन बार है। लंबा, चौड़ा, जो डाइनिंग हॉल का भी काम करता है। हमेशा की तरह आधा भरा, कितने ही जन हों, खाली टेबिल न होने की वजह से कभी लौटना नहीं हुआ। कांच, प्याली, प्लेट की आवाजें, बातें, खुसफुस, और इधर उधर की हंसी एक साथ गुंथी हैं। यह गुमनामी और नीम पोशीदा का रहमदिल डेरा है, हमाम जिसमें सारे एक साथ नंगे और खुद्दार हैं, हर रंक राजा भी है, और लुटे पिते की लूटने पीटने की लालसा साझा गंध की तरह तिरती है। भेद के सौदेबाज, अफवाह निगार और खबर के मुंतजिम का नायाब आश्रय : जहां बिना पहचाने जाने के डर के खबरी बेरोक अपने हैंडलर के संग तफरीह लेते हैं। बेकाम स्ट्रिंगर और हर तरह के सयाने जहां सस्ती शराब और स्नैक्स पर हाथ साफ करते हैं। एक पल के मौके में बेहद पुराने पर चुस्त वेटर दो एक पेग गटकने से बाज नहीं आते। नीच गॉसिप और कोरी गप्प की अति का मुबारक सलाम। फैले षड्यंत्र और गजब स्कूप का खुला बाजार। हारे, रिटायर्ड पत्रकार का अड्डा जिन्हें लगता है एक महान स्टोरी उनके गर्भ में पल रही है। अकेला ऐसा पनाह जो सच की गहरी समझ के लिए महीन झूठ और छल के लिए पवित्र राहें बनाता है। तबाहकुन खयाल और खुद के पांव पर कुल्हाड़ी चलाने के फलसफे की शह के लिए तर्क जुटाता है। ऐसी जगह जहां कमसकम दरबारी और छुटभैये असंभव क्रांति के स्वप्न देखें, उसी स्वप्न में, चाहे इस दिवालिया अखाड़े में ही सही, हर अंतर और सत्ता के अंकुश को मिटा दें, और इतना हो कि सदा के लूजर पत्रकार ये माने कि खबरनवीसी दुनिया का सबसे रोमांटिक और समर्पित पेशा है। प्रेस क्लब हर लहजे में लूजर्स का जश्ने फतह है।

वीके को कोई जल्दी नहीं है, और समय का बीतना बेहद सुकूनदेह लग रहा है, जबकि उसकी उलझनों का कोई अंत नहीं। उसे लगा, और ये पहला मर्तबा नहीं है, कि अपने डिप्टी एडिटर के स्नेह और हौसला अफजाई के अलावा, जो चीज प्रोफेशन में उसकी श्रद्धा का सुमन है, वह प्रेस क्लबियों का लंपट पर निर्दोष अज्ञान है, मानो अपने ओछे और मंचित कपट से वे व्यापक अनीति को टाल रहे हैं। चातुर्य की कीलें भी कम नहीं, जो उसके खुद के हठ और पूर्वाग्रह हैं, वैचारिकी के कवच में छुपे, उनकी भृकुटि का तनाव इस प्रांगण में घुल जाता है। उसने अच्छे से पीया खाया, कीमा और रोटी, और दो छोटे ड्रिंक, इशारे से उन जन से हाथ हलो, जिन्हें वह नाम या शक्ल से पहचानता है। लगभग सभी। बिरादरी सी। सामने उसका लैप टॉप खुला है। सेल्फ अप्रेजल का फॉर्म (मैनेजमेंट की नई पहल) जिस पर उसका प्रमोशन लटका है, शायद कॉन्ट्रैक्ट का रिनुवल भी। उसकी पिछले दो साल की स्टोरीज के लिंक हैं। डेढ़ साल से उसके पास कानून और कोर्ट की बीट है, जिसका मतलब हफ्ते में कमसकम तीन मर्तबे हाई कोर्ट, सुप्रीम कोर्ट, और सिटी कोर्ट के चक्कर। अतीत के ऐसे विकट घाव हैं कि प्रदत्त न्याय और कोर्ट के चलन के बारे में उसके जेहन में हूक की हद तक भ्रम और घृणा है। पर अब उसे इस ग्रंथि का भार ढोने की

आदत सी पड़ गई है, और उसकी क्षीण दिलासा बस इतनी है कि ये ड्यूटी जैसे उसके मरहूम पिता की याद में सतत जाग या आहुति है। हमसैनिक फार्म्स के अलग फोल्डर में उसकी लिखी सभी स्टोरी हैं।

कच्चे अमरूद के बेस्वाद की चाह में जैसे उसने फोल्डर खोला और स्करोल किया। हेडलाइंस और मुख्य खबर की एक सैंपल लिस्ट : *हमसैनिक फार्म्स में अवैध निर्माण की जांच हो : हाई कोर्ट; अवैध निर्माण; उच्च न्यायालय ने दी सीबीआई जांच की चेतावनी; अवैध कंस्ट्रक्शन दिन रात जारी। हाई कोर्ट ने कहा हमसैनिक फार्म्स जीरो टॉलरेंस जोन; हमसैनिक फार्म्स में बुलडोजर क्यों नहीं जाते, वकील कोर्ट में भभका; सैनिक फार्म्स को बिजली कनेक्शन दिए जाने का सरकार का अहम फैसला; हाई कोर्ट ने बाउंड्री वॉल की अधिकतम ऊंचाई तय की। पांच फीट से ऊपर की बाउंड्री वॉल को ध्वस्त करने के लिए हाईकोर्ट के आदेश। दिल्ली पुलिस को जमकर फटकार; कोर्ट ने 2001 के बाद से दक्षिण दिल्ली नगर निगम और पुलिस स्टेशन में तैनात सभी कर्मियों की सूची मांगी। दोषियों के खिलाफ सख्त कार्यवाही अपेक्षित; हाई कोर्ट ने केंद्रीय सरकार से हमसैनिक फार्म्स के नियमितीकरण के प्रस्ताव पर दो माह में फैसला करने के लिए कहा; उच्च न्यायालय ने कहा कि अवैध निर्माण की रोकथाम के लिए सैटेलाइट इमेजरी का इस्तेमाल होगा; सभी भारी वाहनों के हमसैनिक फार्म्स में प्रवेश पर रोक; दिल्ली पुलिस ने कर्मियों की कोई सूची नहीं दी। कहा कि ड्यूटी रोस्टर के रजिस्टर 2013 में आग लगने से भस्म; हमसैनिक फार्म्स केस : हंसना पड़ा मंहगा—आज, सुनवाई के दौरान जब कोर्ट ने कहा कि अवैध निर्माण में किसी को बख्शा नहीं जाएगा, तो कोर्ट में मौजूद एक अज्ञात आदमी हंस दिया। इस पर आग बबूला होकर कोर्ट ने उसे कटेम्प्ट ऑफ कोर्ट के लिए एक दिन की सजा सुनाकर जेल भेज दिया। कोर्ट ने कहा कि न्यायालय की कार्यवाही या उसके आदेश पर हंसना कोर्ट की अवमानना है; दिल्ली सरकार ने विगत कई सालों की सैटेलाइट इमेजरी हाई कोर्ट में बंद लिफाफे में सौंपी; पीएमओ ने हमसैनिक फार्म्स के रेगुलराइजेशन का प्रस्ताव ठंडे बस्ते में डाला; हाई कोर्ट ने हमसैनिक फार्म्स में अवैध निर्माण की उच्च समिति की जांच रिपोर्ट तलब की; हमसैनिक फार्म्स के अधिकांश निवासी लीगल स्टेटस पाने के इच्छुक नहीं; भारी वाहन की परिभाषा पर हाई कोर्ट में जद्दोजहद...और स्करोल करने की जरूरत नहीं हैं। ये सारी अनर्गल, नाशुक खबरें और रिपोर्ताज उसके माथे के भीतर चस्पा हैं, हूबहू स्मरण। उसके स्वप्न उन्हें जीते हैं, बल्कि उनके मोहताज हैं, एक सीरियल कथानक की तरह उसके अंतर्मन में स्तंभित और अवरुद्ध, उन्हें निकाल फेंकना असंभव है। जिस तरह भी यह कथानक आगे बढ़ता, एक इस्पाती हिफाजत उसके साथ साए ही तरह रहती, मानो इस केस की निरंकुश अवैधता को ईश्वर की शरण है। वीके के मदहोश, बनैले तसव्वुर में भी, जब वह दिल की बैचैन जलन से कविता की कुठेक योग्य पंक्तियां उगाह लेता, पर इस मुकदमे का उजाड़ उसके जेहन में सफाचट, कोरा मैदान है। स्वांग, तमाशे का इंच बड़ा टूठ तक नहीं, न कॉमेडी ऑफ एरर्स की झूठी दिलासा, या बड़े षड्यंत्र का यश। विचार और तर्क के परे, दृढ़ की प्रक्रिया से कोरा और महरूम। अनजाने ही कुरिआकोस अडियल घोड़े की जिद से अपना सिर हिलाने लगा था, और उसके होंठ हठ की सिकुड़न में बाहर निकल आए थे, जिस भद्दी मुद्रा से स्फीति को अपार चिढ़ है, उसी अनुपात में जिसमें वीके को वीके के लघु नाम से चिढ़ है, और स्फीति की ऐसे मौके पर सांस उखड़ जाती...अपनी कुंठा जतलाने के लिए इतनी बदसूरती की जरूरत नहीं, समझे, वो कटकटाती। कुरिआकोस का सारा अडियलपना इस उग्रता के सामने झड़ जाता, और बगलें झांकने के सिवा उसके पास कुछ नहीं बचता। बेरुखी के अम्ल में क्या वे दोनों धीरे धीरे घुल रहे थे?*

पहले, अकेले में वह कुरिआकोस था, फिर पहली शादी की भयानक भूल जो चार रात का

विष उगलकर उजड़ गई...दूसरी शादी का वरदान—वह विक्रम था, और वो स्फीति, प्यार इस तरह हुआ जो किसी प्यार से कम नहीं था, वह विक्रम से वीके हुआ, वीके से विकी हुआ, वह स्फीति रही, फिर विकी से वी, और स्फीति से फी; वी और फी का न्यून आज उनके दांपत्य का सिरा है, रिश्ते की कच्ची डोर है...।

पित्त का एक गोला जो उसके कंठ में उगा था, वीके ने जैसे जैसे उसे भींचा और एक झटके में लैप टॉप बंद कर दिया। नॉट शट डाउन, जस्ट ऑफ। सौभाग्य से, तभी कुछ फोन कॉल आए, और वीके का ध्यान बंटता। नहीं तो सभी लक्षण क्लौस्ट्रोफोबिया के अटैक की घंटी बजा रहे थे, कई बार पहले हुआ है, पर इस जगह नहीं, कुरिआकोस को इल्म है कि इस मरज की वजह जेहनी है, जिसके सूत्र कोर्ट की प्रक्रिया और हमसैनिक फार्मर्स की संरचना में हैं...।

जब वह बाहर निकला, शाम हो गई थी, और अंधेरा तेजी से गिरने लगा था, क्लब में दो घंटे बीत गए और पता ही नहीं चला। वह स्कूटर पर बैठा, पर वो स्टार्ट होकर न दे। दो किक, फिर चार। घर घर की मरियल आवाज, फिर फट। उसी वक्त एक लंबी, जवान औरत बगल से गुजरी। वह चलती गई, फिर रुकी, एक बेरोक, लावण्य गति में उसने दो कदम वापिस खींचे, तभी सड़क के लैप जल उठे। प्रॉब्लम? नहीं चलता? उसने हौले से पूछा। मूढ़ से इंकार में बॉक्सर शरीर कुरिआकोस ने सिर हिलाया, बच्चे की बेकसी। मैं कर्स? औरत बुदबुदाई। वह स्कूटर से उतर गया। महिला ने एक हाथ से हैंडिल ठहराया, खुद के हल्के वजन को संवारा, फिर एक नुकीली किक। लाइ के स्वर में इंजन जाग उठा। देयर यू आर! औरत ने तसल्ली से कहा, स्कूटर से उतरी, हाथ का अधूरा बाय, और आगे निकल गई। एक अधीन भाव से कुरिआकोस स्कूटर पर बैठा। बला की रूपसी, उसने झंपते मन से सोचा, कुछ पल के लिए उसकी निगाह औरत की कसी, संघटित टांगों के हिरन विस्तार पर टिकी रही। मानो चेतावनी में उसका मोबाइल बजा। हलो? कुरिआकोस ने मोबाइल से पूछा। फिर कुछ देर सुनता रहा। हां, हूं...सिर संकीर्ण मन से हिलता रहा, होंठ उभार में सिकुड़े। खबर, जो भी थी, अच्छी नहीं लग रही थी। शायद फोन पर बैंक का मैनेजर था, जो पिछले महीने दो महीने के स्फीति के बैंक ट्रांसेक्शंस के डिटेल्स बता रहा था। खाता बही जेहनी रहस्य का सबसे नुमायां ग्राफ है, कुरिआकोस ने कहीं सही पढ़ा था...।

जैसे वीके ने समझा या चाहा था, अगले दिन कैसिनो की खबर हर बड़े अखबार के पहले पेज की सुर्खी थी। रेड के बाद पुलिस ने आधी रात मौके पर प्रेस कांफ्रेंस की, फिर एक प्रेस रिलीज हुई। खबरों में खूब नमक मिर्च था, नेता, पब्लिक, निवासी, प्रबुद्ध और एक्सपर्ट्स के बयान। हैरत, अश्लील, सड़ांध, आतंक, क्राइम जोन जैसे शब्दों का प्रचुर इस्तेमाल। सोशल मीडिया पर भी ये खबर वायरल हुई, फिर मजाक और मसखरी का बहाना बन गई। ऐसे जुमले कि खोजो तो हमसैनिक फार्मर्स में प्राइवेट जू है, हेलिपैड, वॉटरफॉल है, और कई दफा चालीस तक हाथी देखे गए हैं...वीके के पेपर में जूनियर रिपोर्टर की स्टोरी थी। जो निकल के आया वह कम गुस्ताख नहीं है। पुलिस ने कैसिनो से 11 लकजरी चार, कई करोड़ के गैंबलिंग चिप्स, 317 महंगी शराब की बोतल, 3 रिवाल्वर, 5 राइफल्स, दर्जन भर वॉकी टॉकी, और डेढ़ करोड़ नकदी बरामद की। 19 गेस्ट, 17 मैनेजर और स्टाफ (डीलर, कैशियर, वेटर, खानसामे, एस्कॉर्ट, वेश्याएं, बाउंसर) स्पॉट पर गिरफ्तार हुए। बताया गया कि मेम्बरशिप गुप्त और जबानी है, एक रात की एंट्री फी पांच लाख। रिवोली, ब्लैकजैक, रूले के कई टेबल हैं, जो ऑनलाइन इंपोर्ट हुए, हर व्यक्ति के लिए खास सिक्के का आईडी बना है...।

कुरिआकोस को ठीक लगा जिस तरह कैसिनो का पुलिसिया पर्दाफाश हुआ। उसके पास

कोई प्लान नहीं था, पर इतना उसने खयाल किया था कि कोर्ट की अगली सुनवाई में कैसिनो की रेड बड़ा मुद्दा होगी, पुलिस इस एक्शन की वाहवाही लूटेगी, और इस माहौल में और भी कड़े एक्शन का प्रैशर बनेगा। जो वीके चाहता है : आरपार का हस्तक्षेप। देर सुबह उसने मोबाइल पर बॉस का मैसेज देखा। गहरे आश्चर्य और प्रश्न का ईमोजी। जिरह का दिन है, डांट, क्रोध और सलाह पाने का दिन है, वीके ने सोचा।

वीके का अंदाजा सही था क्योंकि पहले कुछ क्षण डिप्टी एडिटर तिवारीजी ने एक शब्द नहीं बोला, सिर्फ जबड़े भींचे, और खास तिवारी त्वोरियों की नुमाइश लगाई। पर आसार इतने बुरे भी नहीं थे क्योंकि बॉस ने भरपूर स्नेह से स्नैक्स आर्डर किए, और अपने लिए वोदका, साथ में मिर्ची की दो फांक और नींबू के स्लाइस। वीके के हाथ में बियर का जग है। रात लंबी होने वाली है। सो वीके के तन और मन की गांठें बिना प्रयास खुलने लगीं। अखबार की ऊंची इमारत के पीछे की गली में यह एक छोटा अवैध बार और रेस्तरां है। गजब की बिहारी स्टाइल फिश करी इस जगह की खासियत है। वीके की आंत ने उगती भूख की करवट ली। दरवाजे के बाहर बाबू, क्लर्क, नौकरीपेशा, कुछ थके, कुछ संभले, मेट्रो और बस स्टेशन की दिशा में चल रहे हैं।

पिछले दो दशक में तिवारी कुरिआकोस के लिए सब कुछ था : मेंटर, हिमायती, शुभचिंतक, धूप छांव का भरोसा, और कठोर पितातुल्य। ये जॉब, नाम, गुण, स्किल, सारा उसकी देन है। तिवारी बैचलर है, मुख्तलिफ, परिष्कृत टेस्ट्स, धूपद और जामिनी रॉय का कायल, हरफनमौला, उदार, जन्मजात अखबारनवीस। मेरे खुद का गर्भ से डॉक्टर की गोद में पहुंचने का सफर मेरी पहली न्यूज रिपोर्ट थी, वह मजाक करता। और, इंशाअल्लाह, मेरे जनाजे का खुशगवार सफर मेरा मरणोत्तर बयान होगा, वह कहता, हंसता, और तब उसकी निगाह में न जाने कैसा ख्वाब तैरने लगता...दोनों के बीच खामोशी पसरी है। पर खाने और पीने में कोई तकल्लुफ नहीं है।

तिवारीजी की बिछाई चौसर है। सो उन्होंने ही शुरू किया : कोई हाथ मारता है, और किसी को काठ मारता है! आप तो खैर लाजवाब ही नहीं ला सवाल भी होते जा रहे हैं...वीके ने तत्काल ठान लिया वह बीच में नहीं टोकेगा, ऐसी झिड़कियां नियामत से कम तो नहीं...मैंने देखा आपने कैसिनो की स्टोरी मिस की, जानबूझकर मिस की ये भी ऑब्बियस है, पता चला कल रात आपका फोन ऑफ रहा तो ऑफ ही रहा...बदकिस्मती, नहीं?...संयोग पर संयोग, इतनी बड़ी रेड हो गई...तो मैं क्या समझूं? बचवा चुप। इसका क्या अर्थ है कि पुलिस कैसिनो पर रेड मारने के लिए मजबूर हो जाए...इससे क्या उखाड़ लगे तुम, हं? विरोध का बिगुल बजेगा, नए अन्नाजी पैदा हो जाएंगे?

...तुम्हें सीलिंग अभियान की याद है न? तिवारी का स्वर बदला और अतीत में चला गया। आठ साल गुजर गए, गल्प बनता तो भी बात थी, कोरी गप्प है जनस्मृति में। शुरू से ही सारा सड़ा था, मंशा, दलीलें, भ्रष्टाचार के खिलाफ अंतिम जंग का तर्क, सत्ता और सयानों के लंबे दांव लगे थे, जिसे मौका लगा, रोटी सेंक रहा था, मार पड़ी गरीब को, दरबंदर वो हुआ, घर, रोजी उसकी गई, और यही गरीब उन लोगों के नंगे शोषण की ढाल और बचाव के औजार बने, जो कानून की आड़ में लूट मचा रहे थे...ये कोई नई बात नहीं है, फ्यूडल सिस्टम हमेशा ऐसे ही पनपा है... पर जो नया था वो एक नापाक कानून था—दिल्ली विशेष प्राविधान अधिनियम, 2006, याद है कि भूल गए...हर साल बढ़ा, और अब 2017 तक लागू है, और आगे भी लागू रहेगा...किसे याद है, किसे फिक्र है?...और क्या थे उसके मजमून और आशय? तुमने तो नोट्स बनाए नहीं, पर मुझे जबानी याद है।

...सुनिए बागी मलयाली...ये था एक्ट का मंत्र जाप—कि चूकि आबादी में अभूतपूर्व बढ़ोतरी की वजह से जमीन और बुनियादी ढांचे पर जबरदस्त दबाव है, और इसके मद्देनजर जो तरक्की

और बदलाव हुए हैं वे मास्टर प्लान के हिसाब से नहीं हैं, और चूंकि 2021 के परिपेक्ष्य और शहरी विकास के नए आयाम को ध्यान में रखते हुए मास्टर प्लान में आमूल बदलाव होने हैं, और चूंकि अवैध निर्माण और जमीन के दुरुपयोग से निपटने के लिए व्यापक रणनीति और सुझावों के लिए केंद्र सरकार ने विशेषज्ञों की समिति का गठन किया है...म्याऊं म्याऊं...और चूंकि दिल्ली में स्लम्स, मलिन बस्ती और झोंपड़पट्टियां के पुनर्वास और रीलोकेशन के लिए एक संशोधित नीति भी केंद्र सरकार के विचाराधीन है; और चूंकि दिल्ली का निगम शहर के गरीब हॉकर, पटरीवाले, फेरीवाले, तमाम वाले और वालों के लिए राष्ट्रीय नीति के अनुरूप नई नीति बना रहा है...और चूंकि इस सब के बीच मास्टर प्लान और निर्माण नियमों के उल्लंघन के लिए जो कार्यवाही हो रही है, उससे बड़ी संख्या में जन जनार्दन का अपूरणीय नुकसान और मुसीबत है...म्याऊं म्याऊं...और चूंकि इन मसलों में व्यवस्था बनाने की जरूरत है...अक्ल की जरूरत है और अक्ल के दुश्मनों की जरूरत नहीं है, और अंत में चूंकि इस सब के मद्देनजर दिल्लीवासियों को कानून की मार से एक साल के लिए अस्थायी राहत प्रदान करने की अपरिहार्यता उत्पन्न है...इसलिए जानेमन, सिर्फ इस खातिर गुलबदन, चूंकि सरकार का दिल गरीब और पीड़ित के लिए धड़कता है, जहां तक ये दिल्ली फैली है, उसके लिए ये विशेष कानून एक सौगात और निमंत्रण है, कि बेटा जिसने भी अनाप शनाप जमीन लूटी खसोटी है, जो मन किया वो बनाया है, कानून और नियम की ऐसी तैसी की है, ऐसी सब चोरी चकारी और गलत मलत हरकतें और खून एक साल के लिए माफ है, दंड की कोई कार्यवाही नहीं होगी, चाहे सरकार की जमीन दिन दहाड़े क्यों न लूट ली गई...तुम सब चैन की बंसी बजाओ, दामाद हो आखिर सरकार के...और एक साल के भीतर हम सब ठीक और दुरुस्त कर देंगे, और उसके बाद याद रहे, सनद रहे, चेतावनी रहे कानून किसी को नहीं बख्शेगा...म्याऊं म्याऊं...।

इस तिवारी हमले के दौरान वीके ने दूसरी बियर उतार ली है, मन तो बहुत है कि वह भी कुछ चीरे, किसी अभिप्राय या सर्वनाम की धज्जी उड़ाए, पर उसे इल्म है कि वक्त की यह फांक उसकी नहीं है, वह चुप रहा, कसमसाया...पर तिवारीजी इतने शक्की और निंदक कब से हो गए, क्या वह खुद भी इसी राह पर लुढ़क रहा है...बोलने के विराम में तिवारी ने शराब के ग्लास में सोडा के झाग से निकले छीटों में अपने इत्मीनान पर गौर किया, उसे बॉस और गुरु का फर्ज भी अदा करना है, पर यह शाम कुछ जल्दी स्याह हुई है, उसने सिर उठाया, कहने की चीजें और भी थीं—हर मलयाली कम्युनिस्ट नहीं है, और हर कम्युनिस्ट मलयाली भी नहीं, सो जनाब, विचाराधीन का कभी अंत हुआ है? एक पटरीवाले ने क्या जगह बदल ली, जमीन का हर सौदा और कब्जा जायज हो गया, इस तरह ये हमेशा चला है। अंतिम चीज, इस बार तिवारी के स्वर में उपहास की जगह दुख भरा था, फिर क्या हुआ उस लड़की का, और तीन और का, जिन्होंने एक्स चीफ जस्टिस के कारनामों पर मैगजीन में आर्टिकल लिखने की बहादुरी दिखाई थी? कटेंट के लिए चार साल की सजा!...कितने साल गुजर गए बरखुरदार, उन्हें कोई याद नहीं करता...वो लड़की कनाडा चली गई, अब वहीं रहती है, यहां आना मतलब जेल! दिस इज रियल!

फिश करी और चावल की प्लेट आ गई। थमना पड़ा। खुशबुओं ने ध्यान बांट दिया। किसी तरंग में तिवारी बहा था। वह चुक सी गई। एकाएक वह थका, व्यथित सा लगा। जिस निगाह से उसने अपने शागिर्द को देखा उसमें सराबोर दया है। कुरिआकोस के मन में नागवारी का एक बुलबुला बना। क्या स्नेह के भीतर वैमनस्य के बीज होते ही होते हैं...? स्फीति के लिए जो प्यार और मुलायमित का सोता उसके दिलोजान में बहता है, वह ठीक से प्रकट क्यों नहीं हो पाता? अभ्यास का यह यह दोष इतना विकट क्यों है...इस रक्स ए खुमारी के कई रंग हैं...बियर है, तो

तिवारीजी की गर्क ए बहस भी है, और स्फीति, वो फूटी आंख में भी सुहानी स्फीति है, वो खुमारी की लत है...कुरिआकोस समर्पण की मुद्रा में मुस्करा दिया, पर उसे बाँस से कहना ही पड़ा : ये सब मुझे जतलाने की क्या मंशा है? सौ की एक बात, बाँस ने कहा, ये प्रश्न है, मांग है, जिज्ञासा है, कि आखिर तुम्हें हुआ क्या है, किसी ने ये दंड या आदेश नहीं दिया, फिर भी क्यों तुम मरदूद, मरे, सांप सूँघे हमसैनिक फार्मस के केस में उलझे पड़े हो? उसमें क्या बचा है, पहले रस नहीं था, अब तो गुठली भी चली गई, कोई स्टोरी नहीं है इसमें, तुम्हारे लायक...मेरी बीट है, कोर्ट और कानून, कुरिआकोस की घिसीपिटी सफाई। ये इंटर्न का काम है, तुम्हारे नीचे टीम है, फॉर गॉइस सेक! मलयाली, तेरा टैलेंट और तजुर्बा, दूसरी वजन की स्टोरीज में आना चाहिए। वजन, मतलब कैसे? कोई कमी है क्या मुद्दों की? जाओ न बाहर, घूमो, बड़ा फीचर करो, फुल पेज इन्वेस्टीगेशन, कोई भी हिस्सा चुन ले देश का, एनालिसिस लिख, ओपिनियन पीसिज, लल्ला मेरे, ओपन ऑफर दे रहा हूँ...उस गांव का ही फॉलो अप कर ले जहां हर आदमी, औरत पर न्यूकलियर प्लांट की खिलाफत के लिए राजद्रोह का मुकदमा ठुका था, कुदनकुलम...कदमताल कर और कुदनकुलम ही चला जा मेरे लाल! क्लाइमेट चेंज देख...वो बिहार और ओडीसा में इस साल बिजली गिरने से इतनी मौतें हुई हैं, उसे देख ले...कोई एक भला, दिल खुश करने वाला प्रेरक वृतांत...यार, तू एक जमाने में कितनी कीचड़ से कितने ही कमल बचा कर लाया है, अब मुझे बताना पड़ेगा?...मलयाली, जाकर कहीं एक दशरथ मांझी ढूंढ़...जिस प्यार की आस में तू प्यासा है, खुलकर बरसेगा, एंड यू नो इट। यू शुड नो इट, डैम इट!...टेबिल पर मुक्का मारने को था तिवारी, किसी तरह रुका। पल के लिए कुरिआकोस को नाज हो आया...कुछ भी, पर हमसैनिक फार्मस में उंगली डालना बंद कर दे, क्योंकि उसमें कुछ नहीं बचा है। दिल जलेगा बस। व्यग्र उल्लास से तिवारी फाइनली चावल फिश करी पर टूट पड़ा। देखादेखी वीके के मुंह में भी पानी आ गया।

ये पहली बार नहीं जब बाँस वीके को हमसैनिक केस में समय गंवाने के लिए धिक्कार रहा है। और जो उसने पहले या आज कहा, उसमें सच्चाई का भारी पुट है। उसके तर्क के खिलाफ कोई उलटबहस नहीं है। तिवारी सही है। असलियत तो यही है कि ये केस नींबू के सूखे छिलके की तरह है। बीते और बर्बाद की धूल में अंटा। मृत स्टोरी जो रीडर में कुछ नहीं जगाती। जुगुप्सा, उपहास, सरसरी आलोचना तक नहीं। न अवज्ञा। न ही रोष। पर, इसके विपरीत, इस केस से किसी को चिढ़ भी नहीं है। या नाउम्मीदी। उदासीनता तो है, पर वह इतनी जाहिर या स्पष्ट भी नहीं। मतलब केस की बॉल या गट्टर अगर सड़क के किनारे पड़ा है, तो कोई लात नहीं मारता, परवाह भी नहीं करता, एक क्षण देखता है, फिर आगे बढ़ जाता है। न तुझसे बैर न तुझसे दोस्ती! इस कारण इस केस में कुछ सांस है, जो अलक्षित और अनछुई सी है...बिंदु ये है कि हमसैनिक फार्मस अनाधिकृत है, गैर कानूनी है, गलत है। अमीरजाद के लिए कोई माफी नहीं बनती जनाव, ये जबरदस्ती वाली बात है, ये दिन दहाड़े की बड़ी लूट है, हिसाब लगाओ तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं, पर ये सब जनता के दिमाग के खाने में उसी तरह दर्ज है, जैसे सड़क पर कई खुले सांड या आवारा कुत्ते के घूमने का मंजर, सबको पता है, सब जानते हैं, पर क्या करें, करना कोई जरूरी भी नहीं, काम चलता रहे, इतना काफी है...पर ये भी है कि ये हाथी के आकार का प्रॉब्लम है, और प्रॉब्लम तो खड़ी है, जिंदा है। ये हाथी नामक जीव कमरे में विराजमान है। ये पालतू है, सुप्त है, पर है तो हाथी...केस में विद्युत् का चार्ज, या कहो बारूद तो लगा है, पर गीला है, प्रयुक्त नहीं हुआ है। चांस की बात है कोई इसे सुलगा सकता है, ये खुद भी सुलग सकता है, किसे पता। बस रैंडम चिंगारी की ही तो दरकार है...कोई अच्छा दिन होता, तो कुरिआकोस अपने फालतू जूनून को इस तरह की बहस से जायज ठहराता था।



वीके को इल्म है कि वह अंततः खुद को भ्रमित कर रहा है। जर्नलिस्ट के तौर पर उसके प्रयासों का कॉस्ट बेनिफिट कहीं नहीं ठहरता है। नैतिक करेंसी के हिसाब से भी कूड़ा है, वो जानता है। सरकार के एंटी एन्क्रोचमेंट ड्राइव से उसे कोफ्त है, घृणा है। इमारत, घर, दीवार, अहाते, सामान, ठेले, खोखे ढहाने का मंजर इंसानियत का कलंक है। फिर जले पर तेजाब की तरह उस पर लिखना, यह उसके लिए जहर का घूंट पीने की तरह है। तबाही तो हमेशा गरीब के मत्थे है। मार वही खाता है। वीके के जेहन में जो प्रतिशोध का ज्वर है, प्रोफेशनल एथिक्स में उसके लिए कोई जगह नहीं। और जुगुप्सा की यह गांठ, बरसों में, एक तरह से हमसैनिक फार्म्स के केस के इर्दगिर्द संलीन हो गई। शायद इसलिए कि अवैध कब्जेदारी का विमर्श और अन्याय इस केस में सर्वाधिक भद्दा है। हाई कोर्ट में केस चलते इतने साल बीत गए पर इंसाफ के बल्ले पर अंजाम की गेंद लगती ही नहीं है। जबकि कोर्ट ने हमेशा नेकी बरती, आशय में खोट ओझल है...जब उस क्षुद्र कोठरी से कोर्ट में क्षुद्र से जज ने उसके पिता को तमाम लानतें दीं, और लेक्चर पिलाया, पच्चीस बरस से भी ज्यादा पहले, छोटा कस्बा जहां वे रहते थे, उसका आशय भी नेक था। दर्दनाक की हद तक उजला और नेक। इतना उजला कि ये कहना असंभव था कि कस्बाई जज किस भाव से प्रेरित था—हमदर्दी से या प्रतिशोध से। रहमत या दुर्भाव। पर ये कोई जगह या वक्त नहीं है कि वो बाप की स्मृतियों की राख बीने।

सच, असल, प्रत्यक्ष और तथ्य के सच की अपनी ताकत संदिग्ध और जीरो टाइप है। जब तक वह कानून से सिद्ध न हो, या तंत्र का आश्रय न पाए। ऐसी गठरी जिसे बार बार खोलना पड़ता है, कि कहीं सच बदल तो नहीं गया, सच दगा दे तो हैरत की बात नहीं...झूठ इस मामले में बिंदास है, स्वायत्त है, अपनी रोटी सर्वत्र सेक लेता है—इस तरह के खयालों से वीके जलता, भुनता।

...तिवारीजी पानी के बोल में अपनी उंगली धो रहे हैं। बिलकुल वीके के पिता की तरह! एक बार फिर वीके को गहरा आश्चर्य हुआ, यह चमत्कार नहीं तो क्या है—अनाम कस्बे के पिता और दिल्ली का बॉस, फिर भी मानो कायांतरण! कितनी समानता है—लंबाई, ललाट, हाव भाव, और सबसे ज्यादा आंखें! बस इतना ही फरक कि परिस्तिथिगत, पिता की निगाह में याचना का रंज, और बॉस की नजर में इख्तियार और भरोसे का गुणक। कुरिआकोस किस हक से बॉस से ये बात कहता? कि अगर उसके पिता के नसीब में मौके आते तो उसने जिंदगी भर चार कमरे की टटपूजिया ट्रेडिंग फर्म में मैनेजरी के नाम पर क्लर्क न झेली होती। कितने ही दशक, वही कमरा, वही टेबिल, वही मकड़ी के जाले, दीवार का वही पीला रंग। कितने ही साल टीनेज विक्रम ने रोज उस पीलेपन के असाध्य के दर्शन किए। जब दोपहर वो पिता को टिफिन देने जाता। भला और काबिल था मेरा बाप, तुम जैसा, तुमसे बेहतर बल्कि...कहीं अधिक सरल, निष्पक्ष, कम जटिल दुनिया में शायद यह बात वीके अपने गुरु से कह पाता।

चलते हैं, बॉस ने कहा। विक्रम मुस्करा दिया। बाहर निकले, गले मिले...टेक केयर, यू फूल, तिवारी ने कहा या माना, फिर जाते जाते : अच्छा सुन मलयाली, अगर मुश्किल इतनी है कि लाइलाज है, तो मैं सिक्स मंथ्स की फेलोशिप का इंतजाम कर देता हूँ, जहां किसी विषय पर ठीकठाक रिसर्च कर लेना, सांप और नेवले की लड़ाई पर कर लेना, मंजूर है, पर जमीन, तेरे केस के किसी मुद्दे पर नहीं। ओके?...वीके को उनकी बैठकी का अंत हमेशा इस तरह लगता मानो बेहद लजीज लंच या डिनर के बावजूद कोई स्वाद या मसाला है जो नदारद रहा...जैसे कुछ छूट सा गया, या छूटा रह गया। हमेशा कुछ रह ही जाता, दोनों के बीच, अकहा, अनछुआ...उनका जो आत्मीय जुड़ाव है, न जाने क्यों उसमें मौरुसी और अतीत के अंश नहीं हैं। विक्रम की तरफ से जरूर समय असमय के संकेत थे। पर डिप्टी एडिटर के अलावा तिवारी कौन और क्या है, यह

वीके के लिए अटकलों का रहस्य है...पता नहीं, यह दोनों तरफ की मंशा है या झिझक...तिवारी की ऑल्टो कार गली के मुहाने से गुम हो गई। वीके मुड़ा तो मितली के फुलाव ने उसे पस्त कर दिया। क्या डॉक्टर की आगाही सही है कि अगर उसने पीने, खाने की अति नहीं बदली तो अल्सर होना ही होना है। ये सिर्फ एसिडिटी का मसला नहीं है, उसने डपटा था। इतनी सारी वार्निंगज। हर कोई उसे आगाह कर रहा है इन दिनों। मानो रोजमर्रा में उसका हर काम, हर कदम अनुचित है, संदेह के घेरे में है...।

जज को आज ढाई बजे हमसैनिक फार्मस की रिट सुननी है। करीबन एक साल पहले उसने केस के लिए एमिकस क्यूरि की नियुक्ति की थी। फ्रेंड ऑफ द कोर्ट। कोई सीनियर या मशहूर लॉयर नहीं, पर तेज और मेहनती। छोटा कद और बड़ी अक्ल। उसने जज के लिए केस की तारीख के क्रम में ब्रीफ तैयार की है, 2001 से, जब कोर्ट ने अवैध निर्माण पर उस पूरे इलाके में रोक लगा दी जिसे हमसैनिक फार्मस कहते हैं। जज को अब पूरा केस उंगलियों पर रटा है, तोताबयान। फिर भी उसे अपडेटेड ब्रीफ को यदा शुरुआत से आखीर तक एक साथ पढ़ना फायदेमंद लगता है। और इधर इस पठन में उसे अजीब तरह का बहकावा और तुष्टि मिलने लगी है। वह पढ़ते हुए मानो किन्हीं सुखद कल्पनाओं में विचरने लगता। व्यसन कहना ठीक नहीं, पर उससे मिलता जुलता। कल रात उसने यही किया, और किसी वक्त सो गया। पूरी रात फोल्डर उसके सीने के आसपास बना रहा। सुबह नींद खुली, तो ब्रीफ का फोल्डर ठीक से साइड टेबिल पर रखा दिखा। शीरी ने उठाकर सहेजा होगा। शीरी के लिए कोमल सा भाव उठा उसके मन में। हसरत और चाहना की नोंक कहीं आसपास ही थी। उन फ्लैट्स में उनके घने करतब, किशोर वय की वसलत, वे स्मृतियां कैसे धूमिल हो जातीं? ध्रुव तारे के स्थिरण में वे निथरी हैं। कभी, रात के आग्रह में, वह अपनी हथेली सरकाता भी, उन स्मृतियों के गर्भ की तलाश में, पर शीरी उसे हर बार झिड़क देती। कभी आहिस्ता, और कभी बेअदब और रूखी भी।

...तो हमसैनिक फार्मस, वहां आसपास के कुछ पुराने लोग उसे फौजीबाड़ी कहते हैं, का मसला इस व्यर्थ प्रश्न और असार बहस से शुरु होता है कि समृद्धि या संपन्नता के क्या माने हैं? क्या खुशहाली का तोल मात्र दौलत है? कि क्या समृद्ध कॉलोनी या संपन्न जन का हवाला, और इस परिभाषा के तहत शिनाख्त अर्थपूर्ण और जायज है? लॉ के कसाव में इस विभक्ति की क्या सीमा है? मोटे तरह से पूछें तो क्या 'एफ्लुएंट' कॉलोनी में बसी कोई निराश्रित, गरीब विधवा समृद्ध है? क्या मलिन इलाकों में धन्ना सेठ नहीं रहते? फिर, कानून की समान त्थैरी के सामने संपन्न का अवैध गरीब का वैध कैसे हो गया?...यह बहस बहुत जल्दी पसर गई, ये खून खराबे की भाषा है, किसी ने यहां तक कह दिया, पर कानून की राय जो भी हो, दो और कॉलोनी के साथ नत्थी हमसैनिक फार्मस के नाम से संपन्न कॉलोनी का टैग हट नहीं पाया। जबकि स्टेकहोल्डर्स की तमाम और विचित्र सांठगांठ ने इस प्रकार की दलीलों का समर्थन किया कि हमसैनिक फार्मस के साथ सौतेला व्यवहार कानूनन ठीक नहीं है। कि सरकार ने ही फौजी सहकारी सोसाइटी को भूतपूर्व सैनिक और वॉर विडोज के पुनर्वास और रिहाइश के लिए जमीन प्रदान की, ये कोई दान नहीं था, बंजर और बेकार पड़ा था ये इलाका, और हमारे बहादुर एक्स सोल्जर और वीरगति को प्राप्त फौजियों की बेवाओं ने, हाथ से, जैसे तैसे, मेहनत से सन् साठ के दशक में फार्म बनाए, कुछ कमरे, दीवारें, छप्पर...लेकिन लॉर्डशिप ये 50 साल पहले की बात है। इतने बड़े काल में जीवन, मरण, आगमन, रवानगी, प्रवासन, खरीद फरोख्त, निर्माण, विलोप, तबाही, आपदाएं, विकास, इजाफा, बदलाव, ये सब हुआ, जो होना भी चाहिए। ये न जुर्म है, और न ही अवैध, कि वक्त

बीते, आयाम और संरचना बदले, मूल बदलाव हों। कि सबका विकास सबका साथ, सबके लिए अच्छा है, नदी पुलकित होती है, जलस्तर बढ़ता है, तो सबका स्तर बढ़ता है।

कि समझे प्लीज, कि यही एकड़ दर एकड़ में फैले हमसैनिक फार्म्स दिल्ली के भयानक कंक्रीट जंगल में आज पर्यावरण के ग्रीन लंग्स हैं। कि इस कॉलोनी को, जिसे पॉलिटिक्स की चीप जबान ने नाहक बदनाम किया है, इसके नियमितीकरण में कोई कानूनी अड़चन नहीं है। रिपोर्ट हैं, सिफारिशें हैं, पर मंशा और नीयत में पॉलिटिक्स का खोट है योअर ऑनर। इतने सालों की नाइंसाफी को जनहित में और देश के हित में दुरुस्त करने की महती जरूरत है, योअर लॉर्डशिप। और यह जतलाने की जरूरत नहीं कि जहां भी सेना और सैनिक का सवाल है, वह देशप्रेम का भी सवाल है।

डिफेंस सर्विस एन्क्लेव, फौजी सहकारी समिति और हमसैनिक फार्म्स के रिहाइशी अपनी जायज, सामान्य जिंदगी जायज और सामान्य ढंग से जीना चाहते हैं, और यह निर्मम, गैर जिम्मेदार, अवैध तलवार जो उनके सिर पर बरसों से लटकी है, उससे मुक्ति चाहते हैं, बस! इस पोलिटिकल फुटबॉल पर आपकी रेफरी की इंसाफपसंद सीटी अब बजनी चाहिए। जब एक तरफ 1500 से ज्यादा झुग्गी बस्तियां थोक के पोलिटिकल सौदे में नियमित हो रही हैं, और साजिश के तहत इस नीति से हमसैनिक फार्म्स को वंचित किया जा रहा है।

इस केस में टेढ़ी, दुर्गम दिक्कतें हैं, और निवासियों का इसमें दोष नहीं। लॉर्डशिप, ये भी ठीक से साफ नहीं कि जिसे हमसैनिक फार्म्स का नाम दिया गया है, उसकी हदें क्या हैं, या क्षेत्रफल। कोई 120 एकड़ कहता है, कोई 4000 एकड़ का आंकलन बना देता है। फिर इसका भी पता नहीं कि कितने फार्म्स हैं, या प्लॉट हैं, कितने आखिर घर, बंगले या विला हैं। 2000 से 22000 तक के दावे किए जा रहे हैं। लगता है अदालत में अवैध निर्माण की नीलामी हो रही है! ये ढकोसला और नाइंसाफी नहीं तो क्या है?

...हर बार, पिछले दशकों में, जब भी हमसैनिक फार्म्स को जायज करने के स्वर उठते, एक पीआईएल टुक जाती कोर्ट में, पॉलिसी या उसके किसी टुकड़े के खिलाफ, इस तरह केस की खिचड़ी पकनी शुरू हुई। निजी रिट भी दाखिल हुई, खिलाफत में, पक्ष में, वे भी केस में नथी हो गईं। इसकी अपने में कोई दिक्कत नहीं थी, न्याय की पीठ में कानून और फैक्ट्स के तमाम पदार्थ, मसाले खपाने और पचाने की अपार क्षमता है, प्रक्रिया से कोई बड़ा, चतुर या विजेता, पराजित नहीं हो जाता, अंतिम आदेश के मायने होते हैं, और डिफ्री के निष्पादन के, सो केस का हिसाब मंथर और भावशून्य था। पर एक रोज अप्रत्याशित घटा जब अचानक उस दिन के लॉर्डशिप ने, किसी फालतू के विवाद से चिढ़कर, हमसैनिक फार्म्स में नए निर्माण पर रोक लगा दी।

नतीजा ये हुआ कि केस की सुनवाई और मिजाज तेजी से बदलने लगा, और एक तरह का चूहे बिल्ली का खेल शुरू हो गया। तंत्र और ब्यूरोक्रेसी के विस्तार की घूमघुमैया इस खेल के लिए सर्वथा माकूल थी, चूहे भी खुश, और बिल्ली को क्या चिंता थी। सुनवाई के प्रसंग और कोर्ट के आदेश अजीब से अजीबतर होते गए। ध्यान का केंद्र यह बना कि बेलगाम कंस्ट्रक्शन पर कैसे लगाम कसी जाए, हर पक्ष की हामी थी कि अवैध, निरंतर निर्माण में सबकी बदनामी है और यह तत्काल रुके लॉर्डशिप, पर कंस्ट्रक्शन ने मानो स्वतंत्र होकर बगावत कर दी थी, वह चलता रहा, और फलस्वरूप कोर्ट के भीतर कुंठा का व्यापार चलने लगा...क्योंकि अगर एक तथ्य निर्विवाद था तो वह यह कि हुजूर कंस्ट्रक्शन तो दिनोरात चल रहा है, काबू से बाहर है, किसी का बस नहीं, और बढ़ता जा रहा है। माई लॉर्डशिप, ये रोज की धृष्टता और कालिख है। 800 नए घर बने हैं। रिवाइज्ड फिगर 3000 की आई है, योअर ऑनर। एक अजीब राहत की सम्मिलित सांस सबने ली जब कोर्ट ने कॉलोनी के क्षेत्र में भारी वाहन के प्रवेश और निकास पर बिना अपवाद रोक

लगा दी। विस्फोट न हो, इसके लिए भाप को बीच बीच में छूटना चाहिए। केस का हर पक्षकार प्रेशर कुकर की सीटी की अहमियत से परिचित है।

एक ओर गिने चुने वादी हैं। और दूसरी तरफ प्रतिवादी का काफिला : दिल्ली और केंद्र की सरकार; शहरी विकास मंत्रालय, नगर निगम, पुलिस महकमा, डीडीए, फौजी रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन, डिफेन्स सर्विस एन्क्लेव, जल निगम, बिजली बोर्ड, लोक निर्माण विभाग, पर्यावरण मंत्रालय, और भी अलां फलां मंत्रालय जो नदारद रहते हैं, पर कोर्ट के आदेश उन पर भी लागू हैं...दिल्ली के मास्टर प्लान, उसकी अधिसूचनाओं और खामियों पर सबसे ज्यादा बहस और विवाद थे।

इससे अलग, पर उसी तंत्र की दूसरी आस्तीन की तरह, सरकार ने इन तमाम मसलों के लिए कई समितियां गठित कर दीं। सभी उच्च स्तरीय। जैसे वक्त करवटें लेता रहा, समितियों की सिफारिशें, सत्यता की मोहर से लैस, केस के साथ नथी हो गईं।

...बिस्तर में जज मुस्करा रहा है। एक पुरानी याद जब याचिका की सुनवाई के पहले दिनों में एक दबी मुस्कान उसके होंठ पर खेल गई थी। सुबह के वक्त उत्तेजक बहस भारी वाहन की परिभाषा पर हो रही थी। हल्के और भारी वाहन में निर्धारक विभेद योअर लॉर्डशिप के आदेश से होना चाहिए। निषिद्ध की पहचान जरूरी है...अपना जी तो हल्का कर लें, आपका जी बहुत भारी है, प्रतिपक्ष के वकील ने चुटकी ली। इसके पहले, जब कोर्ट ने निगम और पुलिस को ठीठ ढिलाई के लिए झिड़का, तो उनकी फरियाद थी कि लॉर्डशिप हमारी भारी दिक्कत है कि बंगले और विला की बाउंड्री वॉल इतनी ऊंची हैं कि भीतर क्या हो रहा है, उसकी टोह पाना असंभव है। टॉप पर कंटीले तार हैं, उनमें करंट बह रहा है, किसे पता, दीवार पर चढ़ना मेरी जान के लिए खतरा है, गार्ड डॉग्स हैं सबके पास...गिव मी अ सोलूशन नॉट जस्ट योअर टीयर्स, जज ने हमदर्दी के अंदाज में कहा। हुजूर या तो चहारदीवारी को खतम करा दें, क्या जरूरत है...या फिर ऊंचाई पर चार फीट की लिमिट लगा दें हुजूर। इस प्रश्न पर संक्षिप्त विचार हुआ। और निकला ये कि एक पक्ष का न्याय अन्य पक्ष का अन्याय नहीं हो सकता। बहस आगे धिसी, तो कौतुहल इस पर बनने लगा कि जितना अवैध निर्माण दिनोंरात हो रहा है, उसके लिए बालू, मिट्टी, सीमेंट, ईंट और सामग्री के लिए कितने ट्रक लगते हैं, और उनकी कितनी सौटींग होती हैं? तब माहौल पांचवी कक्षा की गणित की क्लास की तरह बन गया, सब जोड़ घटाने लगे, एक नगर निगम के इंजिनियर ने सबसे पहले बच्चे के भाव से हाथ उठाया, किसी मोटी रेट बुक के पन्ने उंगली में थूक मिलाकर पलटते हुए उसने एक नंबर मिनटों में बताया...इस पर जज भड़क उठा, बोला तो अब तुम्हें यह अहसास होना चाहिए कि तुम्हारी ढिलाई और उपेक्षा का स्केल कितना बड़ा है। पुलिस और निगम को फटकार लगाते हुए जज ने चिन्हित किया कि इन महीनों में एक लाख चालीस हजार बार सामान लदे ट्रक कॉलोनी में बेधड़क, डंके की चोट पर आए और गए, और तुम चैन की बंसी बजाते रहे, एक भी एफआईआर न लिखी, न लिखने का सोचा!

...कोई भी दो नक्शे एक समान नहीं हैं योअर लॉर्डशिप, पर डीडीए और निगम भी क्या करें, एक से या समरूप मैप्स का कंसेप्ट विज्ञान के हिसाब से भी संदिग्ध है, वकील ने ज्यूं ये तर्क रखा तो सभी पक्ष में विनोद की एक लहर दौड़ गई। मानो सबके नीचे की जमीन हल्के से हिली हो, या किसी तरह की अजीब गुदगुदी। जज को अक्सर यह अंदेश होता कि इस केस में वह एक तरफ है, और सभी पक्ष दूसरी तरफ...जज की त्वैरी कुछ तन गई। उसने इस मुकदमे की जजी में पहली बार मेज पर गोविल ठोका, कोर्ट की एक मर्यादा है, उसकी तौहीन बर्दाश्त नहीं, उसने डपटा, और फिर एक के बाद एक हर पक्ष को झिड़का। वह दिन जज का प्रसिद्ध अबाउट टर्न बना, मानो उस दिन उसकी शख्सियत का अचानक कार्यांतरण हो गया। तब तक शायद जज

के अंतस में एक प्राइवेट स्वप्न जाग उठा था। जज ने नए नक्शे दाखिल करने के आदेश दिए। और चूंकि पुलिस और निगम की जॉइंट टीम के नक्शे यह जतला रहे थे कि हमसैनिक फार्म्स में नए निर्माण के कोई सबूत नहीं हैं, जज ने कई तारीख और साल की सैटेलाइट इमेजरी मांगी, नए नक्शों के लिए ड्रॉन्स के इस्तेमाल की मंजूरी दी, और विभिन्न साल और डेट्स के गूगल मैप्स पेश करने के लिए कहा। बाद में सबका मत था कि जज सचमुच गुराया था, जब उसने कहा : दो मैप्स एक समान नहीं हो सकते, ये हो सकता है, पर मैप्स कमीने नहीं होते, और झूठ नहीं बोलते! मैप्स की अब गहरी शिनाख्त होनी ही होनी है। मैं खुद उनकी माइक्रोस्कोप से जांच करने वाला हूं। इस मसले की तह में अब सबको उतरना ही होगा!...क्या था ये? छिपी धमकी? रॉंगटे सबके खड़े हुए, और जज के सबसे ज्यादा!

जज ने खुली अदालत में एक और आदेश डिकटे किया—2001 से दक्षिण दिल्ली निगम में तैनात हर इंजिनियर, जूनियर से लेकर सबसे ऊंचे वाला, बेलदार, झोलदार, जितने दार, और जितने इंस्पेक्टर, ऊपर से नीचे तक, निरीक्षक, संरक्षक, सभी, और थाने और पुलिस महकमे के सारे कर्मी, दरोगा से लेकर एडिशनल कमिश्नर, फिर डीडीए, जल निगम, बिजली बोर्ड, जितने भी हैं जो 2001 से जिस भी कारण हमसैनिक फार्म्स में मुंह मार रहे हैं, उनकी कोई भी जिम्मेदारी रही हो, उन सबके नाम, पते, फोन नंबर कोर्ट में दो सप्ताह में दर्ज किए जाएं। जिम्मेदारी निभाने में अगर कोताही हुई है, बेरुखी, पक्षपात, मिलीभगत, रिश्वतखोरी, तो उसका सख्त दाम और दंड चुकाना होगा।

...आमूल बदलाव की जड़ें किसी नगण्य से शुरुआती कदम में निहित होती हैं, जैसे समुद्र में अटकी एक पतली लकड़ी। प्रारंभ की तरंग सूक्ष्म, अदृश्य सी होती है...जज के बदलाव की आरंभिक अंगड़ाई को सबसे पहले विक्रम ने बूझा : आंख में प्रकट काले बादल की छाया; फैंसलाकुन, भिंची नजर; जबड़े का अनियत, अकस्मात कसाव; क्रोध की लाल, अचानक कौंध... हमसैनिक केस के निर्वाह में जो हल्का मसखरापन भर गया था, उसके बीच ये सूक्ष्म, खतरे के लक्षण। अब, जब वीके सुनवाई में आता, तो उसका ध्यान बिखरता नहीं। वह हर कोण, बर्ताव के प्रति सचेत था। जज को वह बेहद गौर से देख रहा था।

जज ने जल्दी की डेट्स देनी शुरु कर दीं, उसके आदेश सटीक, नो नॉनसेंस, अधिक कड़े थे, वकीलों के ऐतराज पर अक्सर वह कहता, दिस इज सीरियस बिजनेस, लेट्स क्रॉस द हर्डल्स, वन्स एंड फॉर ऑल...एक नया तत्व केस में प्रकट हो गया है जो अपेक्षित के बाहर है, और जो स्थिर साम्य इतने सालों से कायम था वह डगमग हो गया है। यह नया कीड़ा क्या है? पुलिस और नगर निगम ने कहा कि वे 2001 के बाद के कर्मियों के डिटेल्स प्रदान करने में असमर्थ हैं, रिकार्ड्स खो गए हैं। या वीड हो गए हैं, लॉर्डशिप, काउंसिल्स ने इल्लतजा की। वीड हो गए हैं? हमसैनिक फार्म्स के मसले आपके लिए घास फूस हैं? फाइलें आपने वीड कर दीं, सच्चाई को भी वीड करने की मंशा होगी? जज ने धमकी के अंदाज में कहा। बदले में, जज के आदेश हुए कि जो मैप्स पुलिस और निगम ने दाखिल किए हैं, वे गैर भरोसेमंद हैं।

उसके बाद ध्यान दो नए मुद्दों पर पड़ा। दोनों की पहल जज की ओर से थी। केंद्र सरकार पर दबाव कि हलफनामे के जरिये वो फार्म्स के नियमितीकरण की पॉलिटी स्पष्ट करे, और उसके निष्पादन की टाइमलाइन दाखिल करे। और दूसरा यह कि अवैध निर्माण की जांच सीबीआई को क्यों न सौंप दी जाए। लगभग इन्हीं दिनों जज और उसकी वीवी ने फ्लैट्स और अपार्टमेंट्स देखने शुरु किए, जहां वे रिटायर होने के बाद सेटिल करेंगे।

जब तक केस की पुकार लगी, साफाधारी अर्दली की अलां बनाम फलां राज्य, फलां सरकार की लंबी तान, जिसमें देश के न्यायिक इतिहास का मर्म एक कोड की तरह छिपा है, सभी परिचित चेहरे कोर्ट के भीतर आ गए थे। आपस में हाथ मिलाना, गर्मजोश स्वागत, अरे क्या हाल हैं, एक ही रथ या नाव में सवार हैं वाला अहसास और इत्मीनान, जज लगभग सभी को चेहरे से पहचानने लगा है। कई चेहरे विगत चार पांच साल से इस केस की पैरवी कर रहे हैं : काउंसिल्ल, वह औरत जिसने पहली पीआईएल दाखिल की थी, और जो मानो इस कोर्ट की चौखट के भीतर ही सर्वाधिक बूढ़ी हुई है, सरकारी महकमे और निगम के कारिंदे, और पुलिस फोर्स के सब इंस्पेक्टर। उनके हाथ में मोटी, जर्जर फाइलें और फोल्डर हैं, जज के समक्ष अदब से झुकने की कला में अब वे पारंगत हो गए हैं। निचले स्तर के कर्मी हैं ये कारिंदे, निर्दोष, शक्तिहीन चेहरे, पर एक अमली, धूर्त ढंग से उन्हें बाबूगिरी के लाल फीते के अजेय विस्तार का बखूब अहसास है : जायज क्यूरी (माने फाइल पर लिखित ऐतराज) का अनंत खिंचाव। और तंत्र का बेखबर, बेलगाव चेहरा, जिसका बिंब अनंत कतार में लगीं बाबू की टेबिल हैं। शुरू के दिनों में जज को उनके बेकसी के स्वांग खूब मनोरंजक लगते, मानो उन पर अत्याचार हो रहा है, वे बेबात पिस रहे हैं, हमने क्या गलत कर दिया, हम तो नौकर हैं, ऊपर के आदेश बजाते हैं, मुर्दनी और पीड़ित मुखाकृति...पर अब उसे कोपत होती है, उनकी खुसपुस और आपसी इशारों में साजिश और हेकड़ी की बू है...बगल में छुरी मन में राम, इंसाफ और लोकसेवा के भाव के प्रति हिकारत से भरे, ये तसल्ली कि कानून उनका बाल बांका नहीं कर सकता, कोर्ट का क्या, शासन के खिलाफ तो हजारों रिट लगी हैं, मंत्री संतरी सबके खिलाफ सम्मन रद्दी की तरह निकल रहे हैं आजकल, भई डेमोक्रेसी है, सबको अंटशंट का अधिकार है...उन्हें इत्मीनान है कि राज के काज में शक्ति का दुरुपयोग गुमनाम है, उनकी निजी कोई जिम्मेदारी नहीं, कोर्ट में हाजिरी बजाना उसी तरह से है जैसे टॉयलेट जाना, जब प्रेशर बनता है तो जाना ही जाना है, और, अंत में, कुछ नहीं होने वाला। नाजायज के चिरत्व में इन सबकी मौज है...ये सब एकमेक और मिले हुए हैं, हरामखोर टिड्डी टाइप की साजिश करते हैं...जज सोचने लगा था।

पुराना वक्त अब पुराना है, उसे भूल जाइए, जज ने कहा, और अधिसंख्य पक्षों को बीच में ही चुप कर दिया। दिस कोर्ट डज नॉट नीड योअर एडवाइस ऑर गुड विशिज, जज ने एक नहीं कई बार घुड़का। जितने काहिल अंतर्विरोध इस केस में घुसे हैं, सबका हिसाब होगा। बी वैरी श्योर, जो भी जिसने कहा है, या नहीं कहा है, सबका तर्क से अंजाम होना है। एडिशनल सोलिसिटर जनरल नियमितीकरण की पॉलिसी के सवाल पर अडिग रहा। नीति केंद्र सरकार के विचाराधीन है। हर पहलू का सक्रिय परिक्षण हो रहा है। इसके अलावा वह किसी भी तरह की समय सीमा देने में असमर्थ है। पुलिस और निगम के काउंसिल ने सीबीआई के द्वारा जांच का पुरजोर विरोध किया। पर क्यों नहीं, जज ने बार बार टोका। आरडब्लूए ने अपना स्टैंड पलटते हुए अब ये कहा कि हमसैनिक फार्मस के लोग नियमितीकरण की ड्राफ्ट पॉलिसी से इत्फाक नहीं रखते, यह उनके मौलिक हक के खिलाफ है कि उन्हें निजी संपत्ति से सड़कें, पार्क्स और पब्लिक उपयोग के लिए जमीन देने के लिए मजबूर किया जाए, जैसा डीडीए और निगम का प्रस्ताव है। जन उपयोग की चीजों के लिए सरकार जमीन का इंतजाम करे, हमारा क्या लेना देना, वकील ने कहा।

मौलिक हक, फंडामेंटल राइट्स आर टूली फंडामेंटल, यस, अफ कोर्स, जज ने गंभीर रुख से कहा। बीच में कहीं से दांत कटकटाने की आवाज आई है, लगा। मैंने कहीं एक जगह के बारे में पढ़ा था, जज कहने लगा, जहां, एक बार, सुबह के वक्त, बकरियों ने मिमियाने की जगह बगावत कर दी! विदेश की बात है, इलाके के शैरिफ को स्थिति को सामान्य करने के लिए असाधारण

कदम उठाने पड़े...जज के चश्मे का लेंस चमक रहा है, उसने इस लघु कथा को पक्षकारों के अंतस में उतरने दिया, फिर...पर ये शायद किसी मध्ययुगीन कवि की कल्पना है! सर, मे आई एक्सप्लेन, आरडब्लूएफ का वकील मिमियाया, उसे कुछ अंदाजा था यह लोककथा, या जो भी है, निशाना उसकी तरफ है, जबकि जज की नजर इस दौरान पूरे वक्त उस बुढ़िया पर टिकी थी, जिसकी मूल पीआईएल है...लॉर्डशिप, हमें वैधीकरण की कार्यवाही से, अपने में, कोई ऐतराज नहीं...पर लॉर्डशिप सहमत हैं कि जस्टिस की तरह, रेगुलराइजेशन डिलेड इज रेगुलराइजेशन डिनाइड। तो, जज ने मानो हामी भरी, नियमन का अमल कुल मिलाकर, इंसाफ का अमल है! सर, पॉलिसी की आड़ में या उसके बहाने हमारी जमीन और मिलिक्यत का अधिग्रहण नहीं होना चाहिए, हमारा ये डर है... दिल्ली सरकार के वकील ने जोर देकर कहा कि केंद्र राजनीति कर रहा है, और जानबूझकर नियमन के प्रस्ताव पर बैठा है, या अनाप शनाप आपत्तियां कर रहा है। दिल्ली की सरकार हमसैनिक फार्मस के नियमन के लिए तैयार है, कोर्ट इसमें आदेश पारित कर दे। निगम के वकील ने, कोर्ट के आदेश के मुताबिक, तीन पिछले सालों की सैटेलाइट तस्वीरों बंद लिफाफे में दाखिल कीं। पीला लिफाफा, तंत्र का लिफाफा हमेशा पीला या भूरा होता है, इसका मनन भी दिलचस्प होगा, जज ने क्षणिक खयाल किया। जज की प्रकृति में आमूल उखाड़ पछाड़ हो रहा है, उसके मानसिक गश् में अजीब सा प्रलोभन है। इन चित्रों में, आई होप, निष्कर्ष के निर्णायक सूत्र हैं, जज ने कहा, फिर आधे घंटे का अवकाश कर दिया। भोजन किसी का भी शत्रु नहीं, उसने चुटकी ली। कोर्ट ने पुनः सुनवाई शुरू की। जज ने दो आदेश डिक्टेड किए : शो कॉज कि क्यों न फार्मस में सभी चहारदीवारी की ऊंचाई चार फीट सीमित कर दी जाए...और सैटेलाइट तस्वीरों से जो भी अवैध निर्माण दिखाई देता है, उसे ढहाने के आदेश क्यों न जारी किए जाएं? कोर्ट ने पहली बार डिमॉलिशन नामक जंतु की पूंछ पकड़ी है। जज ने फिर भी आज की कार्यवाही खत्म नहीं की। वकीलों के दूसरे केस हैं। वो कसमसा रहे हैं। सिर्फ बूढ़ी औरत को कोई जल्दी नहीं थी।

...हद तभी तक होती है जब हद की बपौती माने, समझे, चूहों की सभा कभी ये तय नहीं कर पाई कि बिल्ली के गले में घंटी कौन बांधे, जज ने कुछ ऊंची आवाज में ऐलान किया, जैसे अदालत नहीं, कोई सभा है, और वह इंसाफ की सीट में धंस गया...कोई क्षण होता है, जब एक कदम पीछे लेने की दरकार होती है। टू रिलैक्स एंड पॉडर...जो उस दिन कोर्ट में मौजूद थे, सबने बाद में जज के मिजाज और कहे को अलग अलग तरह से याद किया। एक सनक टाइप की दिखाई दी उस रोज, दबंगई, किसी ने कहा, वरना बड़ा कायदा पाबंद जज है, दृष्टांत और नजीर का स्लेव। कागज का गुलाम...पर उस रोज तो हद ही हो गई...कई ने माना कि जज्वात की चूक थी, जज खुद अपने को नहीं समझ पा रहा था। पर इतना सब मन में जान रहे थे कि जज और उसकी अदालत में कुछ, जिस पर उंगली रखना शायद संभव या गवारा नहीं, बदल गया है। जज के बावजूद!

यह अदायगी का बीड़ा जज के स्वभाव से बेमेल है, एक खाई सी बन गई उसके अंतस में, पर उसने एक बार जो दंतकथा को निचोड़ा, तो निचोड़ता ही गया। कि मध्ययुग की यह नीतिकथा करीबन हर देश में फैली है। यह मात्र नीतिकथा नहीं, गहरा कटाक्ष है, पोलिटिकल स्पेस और सत्ता की कसरत में कथनी और करनी का अंतर...बिल्ली के गले में घंटी न बांधना शायद वायदाखिलाफी है। इस तरह कि जो कानून का खुला उल्लंघन कर रहे हैं, वे बच जा रहे हैं, जबकि विधान सर्वोपरि है, और उसका अमल न्याय की शर्त...इस तस्वीर में तब बिल्ली अवैध का दबा पांव है जिसके कदम अनसुने हैं, जिस घंटी की बात बेचारे चूहे शताब्दियों से कर रहे हैं, वह तो इजलास की अंतरध्वनि होनी चाहिए...जज ने कुर्सी के हथ्यों पर दबाव बढ़ाया और एक बार चारों ओर नजर घुमाने के बाद बोला...तो जब यह सवाल आप पूछ रहे हैं कि लॉर्डशिप, बिल्ली के गले

में घंटी कौन बांधे, तो क्या अदालत यह करने को मजबूर नहीं, लेट जस्टिस बैल द कैट ऑफ इल्लीगैलिटी!! विस्मयबोध के दो चिन्ह तब जज की आंख की पुतलियों में बने, और, कैसा संयोग, तभी, आकाश में बिजली की चमक की तरह, किसी अभागे का मोबाइल कोर्ट की शान के खलल में बज उठा, इससे पहले अभागा उसे ऑफ कर पाता, गीत के ये बोल सबने सुने...कि वो चांद खिला, वो तारे हंसे, ये रात अजब मतवाली है, समझने वाले समझ गए हैं, ना समझे, जो ना समझे वो अनाड़ी हैं...! सबको लगा अब गाज गिरी, अब गिरी, पर जज ने केस की अगली तारीख मुकर्रर कर दी।

जज ने दो मुकदमे और सुने, फिर अदालत बंद हुई। वादी, फरियादी, वकील बाहर जाने लगे। जज चेंबर में जाने के किए उठने ही वाला था, कि एक बेहद परिचित सा दिखने वाला अजनबी कक्ष में दाखिल हुआ। वकील का चोगा। जज की छाती में जैसे हथौड़े के प्रहार। तेवर और चिंता...अनिष्ट का स्याह आभास, भिंचता गला, खलल और उलझन की धुंध। कौन है? वही है? क्या ये उनका ब्रोकर नहीं? वकील भी है? यहां क्या कर रहा है, पहले तो कभी नहीं दिखा, इतने सालों में? जज स्वतः उसे पुकारने, या इशारे से बुलाने को हुआ, पर किसी तरह उसने खुद को रोका। बीच में कक्ष की लंबाई की दूरी थी। जज का आसन भी ऊंचा था। जूनियर कोर्ट रिपोर्टर के टेबिल पर वह आदमी झुका था, कुछ पूछा उसने, कुछ नोट किया, फिर किसी रजिस्टर में साइन किया। किस मुकदमे में लॉयर है?...उसी दूरी से वह सीधा हुआ, और तब जज या उसकी कुर्सी की दिशा में सम्मान का पालन करती सिर की हल्की सी हरकत, शायद मुस्कराहट का अंश भी, फिर वह ब्रोकर जज की कांप गई देह को वहीं छिटककर बाहर निकल गया। जज के दिमाग के संभ्रम में अधूरी डील का खयाल कौंधा। उसके पास अभी तक सेल डीड की कॉपियां नहीं पहुंची थीं। जबकि रजिस्ट्री को एक महीने से ज्यादा हो गया था।

पिछली रात, पिछली नहीं, करीब एक हफ्ता पहले, एक रात देवराज के सरकते, टटोलते हाथ को हौले से हटाने के बाद, शीरी उसकी तरफ मुड़ी, तब जज आधे अंधेरे में उभरे वक्ष से विचलित हो गया था। शीरी की घनी आवाज तब उसे सुनाई दी : मुझे फिर से जाना है...कहां? घर हमारे, और कहां? इतना कुछ बचा है करने को, अधूरे जतन, मैनेजमेंट...हां, क्यों नहीं, कल?

जब भी, जब तुम तैयार हो...ठीक है, मैं चाबी मंगाता हूं। अनेक धुंधले खयाल जज को घेरने लगे थे। चाबी? तुम्हारे पास नहीं है? थी, पर इधर...कुछ नहीं, टेक योअर टाइम, शीरी बोली... पर कुछ चीजें हैं जिन्हें फिर से तय करना, सहेजना है, शीरी के स्वर में किसी रहस्य की गांठ जज ने महसूस की...फिर एक हफ्ता अजीब से विभ्रम और उलझनों के बीच गुजरा। जज को याद है उसने ब्रोकर को तीन बार फोन किया, पर कोई वापिस कॉल नहीं आई।

...शाम उद्विग्न सी निकली, जज का मन उथला सा। कहां रहती है ज्ञात? उसने बेटी के बावत पूछा। अभी झलक दिखी थी, कहीं निकल गई होगी...आपकी बेटी है, अच्छी लॉयर बन रही है, उसका अपना वक्त है, अपने राग, बुरा क्या है...शीरी ने कहा, केस की फाइल नहीं है ज्ञात जिस पर आदेश होना है...वो ठीक है। उसका हर कुछ अज्ञात सा लगने लगा है इन दिनों, जज जैसे अपने से बोला...नाम की कायल है, जैसे तुम! मतलब? क्या ये उग्र मतलब समझाने की है अब? शीरी ने शायद चुटकी ली। छिटपुट बातें और भी हुईं जो उनके उठने के बाद कहीं डाइनिंग टेबिल के इर्दगिर्द सिमट गईं, कल कुछ बदले रूप में प्रकट होंगी-सिमटे, स्थिर दांपत्य की शर्त, और इम्नीनान, कि जिन हदों का निर्माण, विवाह के शुरू के सालों में हुआ, उसका स्मरण कृतार्थ का आसन है...अगले दिन जज ने एहतियात बरता। उसने अपने मित्र से बात की, जिसने ब्रोकर को भेजा था। मित्र ने उसे आश्वस्त किया। दो दिन बाद जज के चेंबर में एक बॉक्स पहुंचा। जज



ने खोला, अंदर सेल डीड की तीन कॉपियां थीं, और दो चाबियों का एक सेट। राहत। राहत की उसांस। कोर्ट के खत्म होने के बाद, जज तीव्रता से चैंबर में घुसा, एक सीढ़ी पर लड़खड़ाया भी। दरवाजा बंद करने के बाद उसने पानी का हल्का घूंट लिया और खुद को नियंत्रित किया। जो भंवर उसके भीतर जगे हैं, उतेजना की सरसरी अनुभूति। चोर मन से, मानो कुछ नाजायज या गुप्त है, उसने ड्राअर खोली, और पीला लिफाफा निकाला। चिकनी, ठंडी सतह, नुकीले किनारे। एक कटर से लिफाफा स्लाइस किया, और टोहती उंगलियों से पहले चाबी निकाली। चेन से क्रॉस लटक रहा था। फिर हौले से सेल डीड की तीन प्रतियां बाहर आईं। रुपहला, आंदोलित स्पर्श। छूने की कंपकंपी से जज ने बेहद आहिस्ता से पन्ने पलटे, प्रत्याशा की धुंध में नेत्रहीन। देखने की जगह उसकी आंखें अधमुंदी थीं, शीरी के साथ बावली वसलत के उन चुराए क्षणों का स्मरण...और फिर बावले की चेष्टा से, पकी उम्र के लिहाज से नामुनासिब, वह झुका और पन्ने के रेंडम हिस्से चोरी से चूम लिए, जीभ का अंश बाहर निकल आया था। क्षण की बदहवासी गुजरी, उसने आंखें खोलीं, और रेटिना ने पन्ने की लिखावट को भेजे के सही हिस्से में दर्ज किया। वज्र का धक्का सा, और उसी क्षण कान में वह बात रजिस्टर हुई जो कार में ब्रोकर ने उसे पाठ की तरह कही थी कि एनसीआर में पायलट प्रोजेक्ट चला है, शेयर्स की तरह डीमेटीरियलाइज्ड सेल डीड्स की सेंट्रल डिपाजिटरी...बहुत सुविधा हो गई है सर, सेल एनसीआर में कहीं भी हो, डीड का रजिस्ट्रेशन किसी भी सब रजिस्ट्रार के दफ्तर में कर सकते हैं, सब नेटवर्क पर है, फूलप्रूफ! ब्रोकर ने कहा था... क्रोध की जो फांक जज के जेहन में बननी शुरू हुई, वह तत्काल गहरी आशंका में तब्दील हो गई। डर का काला साया प्रकट हो चुका है। जज की आंखें मुंद गईं, यह निर्मूल उम्मीद कि वह किसी नई, अनुकूल असलियत में शायद जागे या जाग पाए!

...अहसास कुछ इस तरह का है कि किसी कुत्ते से भी आश्रम का रास्ता पूछें तो वह खुशी से पूंछ हिलाता हुआ तुम्हें एक लोहे के गेट के सामने ले चलेगा, जो अपने डिजाइन में हृदयार्ज अजूबा है : तीन मीटर चौड़ाई और मात्र चार फीट ऊंचा! कोई गार्ड नहीं। बलात् प्रवेश का खुला निमंत्रण है गेट, योगी ठहाका लगाते हुए कहता। विपरीत अंतर्ज्ञान का साक्षात् दृष्टांत। ज्ञान अर्जन की पहली सीढ़ी—काउंटर इंटरूशन का दम...योगीजी की वाचाल वाणी। जिगरे जोगी। या बस योगी, या योगी जनार्दन। फिर योगी सीख को और खोदता—जब तुम लोहे के गेट के सामने पहुंचते हो तो सामान्य समीकरण चटक जाता है, विभ्रम की स्थिति, और पूर्वज्ञान की स्लेट कोरी हो जाती है, तब आगंतुक के पास सिर्फ शुद्ध नैतिक बोध बचा है...एंड दैन यू हैव टू मेक अ मॉरल कॉल... दस बरसों में एक भी श्रद्धालु या विजिटर ऐसा नहीं था जिसने बिना अनुमति के प्रवेश किया हो... ऐसा है योगी। प्रायोगिक योगी!

कुरिआकोस का मन मुस्करा दिया—जिस चतुर, सादे तरीके से योगी, जेहनी मिथ्या और ट्रेप में फंसे उसके जैसों को सुकून और भरोसा देता है। आज के लिए योगी ने वक्त दिया है। कार्र, बाहर और अंदर, धनाढ्य, तंत्र के बड़ों की आवाजाही। सब कलह और अन्याय के पोषक, सलाह और आश्वासन के भूखे। पर योगी के संबंध के वृत्त में एकेडेमिक्स भी हैं, स्टूडेंट्स, एक्टिविस्ट्स, और आम जन बहुत से। रहस्य है कि योगी इन रिश्तों को कैसे सींचता है, और उसके क्या मकसद हैं। जहां कुरिआकोस बैठा है, वह घर का हिस्सा है। डिस्कोर्स का मंडप आश्रम के अंदर एक अलग इमारत है, करीब सौ मीटर दूर, जहां योगी सप्ताह में दो बार संवाद करता है। लेक्चर्स। मन किया तो गाता भी है, अपने खुद के गीत, नज्में। इधर टीवी पर भी हफ्ते में एक बार आने लगा है। कोई बड़ा नाम नहीं, पर मुख्तलिफ और संलग्न फॉलोइंग है।

वीके अशांत था, बेसब्र, कुछ दिनों से। हालांकि बाहरी उद्घटन उसके मन के मुताबिक थे। इतना तो था। हमसैनिक केस पर अपनी स्टोरी को उसने कैची हेडलाइन दी थी : न्याय ने बिल्ली के गले में घंटी बांधी आखिरकार। स्टोरी में उसने इस दंतकथा के स्रोतों का हवाला दिया, और केस में हाल के आदेशों और हस्तक्षेप को ब्रेकथ्रू की संज्ञा दी। क्या जज का एक्टिविज्म मात्र जुए का भुलावा है, या न्यायोचित की पुनः स्थापना, यह आने वाले महीने बताएंगे। बॉस ने स्टोरी के नए अंदाज को पसंद किया। दाव लगाया है तुमने, दैट्स गुड। स्टोरी पर खबरी दुनिया में हल्की फुल्की हलचल बनी, और यह अकहा खयाल था कि विक्रम की मुट्ठी में जरूर कुछ तगड़े सुराग हैं। वरना मरे केस में कौन इस तरह जान फूंकता है।

लकली, जो मेरा अंदाजा है, वह कुछ सॉलिड सूचना से जमता भी है, वीके योगी से कह रहा है, जो सोफे पर अनंत धीरज से बैठा है। गुरु की पोशाक भी हमदर्दी दिखाती है, वीके ने सोचा। मुलायम चीनोज, खुली कॉटन जैकिट और हलके फेल्ट शूज, मानो योगी किसी मित्र पार्टी के लिए तैयार है। मैं और कहूं? वीके ने जैसे विनती की। मैं सुन रहा हूं, डॉट वरी...विक्रम ने अपने को साधा। मेरा कांटेक्ट है सब रजिस्ट्रार के ऑफिस में। परसों उसका फोन आया। मुझे तो याद तक नहीं था कि मैंने उससे नजर रखने के लिए कहा था, और लीड्स मांगी थी, खास, असल इंटेलिजेंस। पर लगता है मांगी थी। जिस आदमी की खबर मेरा कांटेक्ट लाया, वो एक ब्रोकर है...ठग भी हो सकता है, बहुरूपिया, या बड़ा डीलमेकर।

उस रोज वीके को कांटेक्ट से कोई उम्मीद नहीं थी। उसे खाते देखना सजा की तरह था। जितना खाते हैं, उतनी ही भूख लगती है, विक्रम ने रुखाई से कहा। सही कहे बॉस, खबर की पूंछ का क्या पता, कहां से निकली और कहां तक...मतलब? मतलब कि आपके चहेते जो हैं, वो है छुपा रुस्तम या धांसू ठग!...जितना पूछे उतना ही पूंछ लंबी होती गई—समझो कि ब्रोकर है, लॉयर है, सीए, बिल्डर। इलेक्शन में खड़ा हो चुका है एक बार। फिर? खबर की खास पुड़िया ये है कि एक गुप्ती, खुफिया टाइप, अस्तरवाली सेल तो हुई है। अस्तरवाली? हां, मतलब टॉप की खबर... रजिस्ट्री हुई है। और प्रॉपर्टी हमसैनिक फार्मर्स की है। यहां से कुरिआकोस सतर्क हो गया। करंट सा लगा उसे। अच्छा, तो? खरीददार बड़ा आदमी है। ऐसी भी बात है कि दिल्ली का जज है। कैसा जज, मुंसिफ वाला, सैशंस, क्या? ये पता नहीं पर है बड़ा। डीड की कॉपी? अस्तर पलटने का काम है, पर हो सकता है। जिसने स्टांप खरीदा था, उसकी पहचान है...डीड में बायर और सैलर, दोनों की फोटो मिलेगी, बेनामी नहीं है तो...बाद में विक्रम ने कांटेक्ट को मोबाइल से हाई कोर्ट के कई जज के फोटो भेजे, जिनमें देवराज प्रणाम की भी तस्वीर थी। अगर इस दिशा में कुछ सचमुच निकला तो सनसनी खबर होगी...

पर तुम खुश नहीं, योगी ने कहा। नहीं, लिखा है क्या मुंह पर? इतना भी नहीं, पर फिलहाल तुम्हारी जो बेहाली और तनाव है, एकदम माफिक है, योगी हंस दिया। फी कहती है मैं हैप्पी की स्पैलिंग भूल गया हूं, विक्रम बोलने लगा। इधर स्फीति ने अपने नाम की स्पैलिंग बदली है, और विक्रम को लगा जैसे यह उसका बहिष्कार है, उसके खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव है, जो सब उनका सालों का अर्जन और साझा है, मुहब्बत की रहमतें, उसका नकार...राहें न जाने कब छिटक गई, अलग रास्ते। रिश्ते की रगड़ मिट गई। और आवेग भी। इसके बजाय, एक नियमित, मीठी गंध ने उनके दांपत्य को ढक लिया है। शिष्ट, उदार, मधुर, पर सर्द, दूरस्थ। विक्रम खुद की निगाह में संदिग्ध महसूस करता है। कसूरवार होने का अहसास। जो भी वह बताने से चूक जाता, उसे लगता वह छिपा रहा है। जबकि स्फीति को उसके काम और प्रोफेशन में कोई दिलचस्पी नहीं बची थी। एक अनवरत दीदार विक्रम के जेहन में बस गया है कि जब भी वह फी के पास है, या नजदीक

आ रहा है, वह धुंधली पड़ रही है, दूर और अल्प होती जा रही है, जब तक उसका स्पर्श और गंध भी गुम नहीं हो जाती।

स्फीति की तरफ का बताओ, योगी ने कहा। मेरे साथ बहुत अच्छी है। सहनशील, सचेत। सुनती है, पर पूछती नहीं। पर, बाद में ताल्लुक का जो शेष रहता है, वह मानो इलजाम का छिलका है। लगता है जैसे वह अलगाव के क्षोभ की तैयारी कर रही है...ये डर मुझे छील रहा है कि फी मुझसे अलग होना चाह रही है...मैला लगता है मुझे। कि मैं झूठा हूँ...मेरा जर्नलिज्म झूठ का व्यापार है...पर विक्रम को लगा वह ठीक से व्यक्त नहीं कर रहा, वह जो उसका, फी और उसके बीच का, उनके रिश्ते का खरा असल है। उसे कहना था कि जो प्रेम उसका पूरक है, वह फी के पास रहन है, इसलिए वह निरंतर भय का ग्रास है। फी के नए सरोकार हैं, उसे दूर जाना ही है। यह धोखा है। बदअहदी उसने की कि मुझे विश्वासघात के लिए मजबूर किया! योगी ने रोका और पूछा : फिर प्रतिशोध किसका है, और पीड़ित कौन है?...हम दोनों हैं, विक्रम की निगाह में भ्रम दिखा...शायद तुम दोनों नॉर्मल इंसान हो, जो जितना अच्छा हो सके कर रहे हो, नहीं? सुनो, ये सिर्फ एक खेल है, मुखौटे की अदलाबदली, शेर का और मेमने का। स्वस्थ है ये खेल, रिश्तों की शुद्धता को निखारता है। योगी की आवाज की नमी वीके को भली लगी।

दो बियर खत्म कर लिए थे योगी ने। अ ड्रिंकिंग योगी! तुम्हारी मूल दिक्कत है तुमने अपने तसव्वुर को नजरिए के सींखचे में कैद कर लिया है। जीवन या विचार के कुल से तुम वंचित हो रहे हो। मित्र, हमसैनिक फार्मस में कोई मेडिसिन शॉप नहीं जिसके पास इस जिद का निदान है। कुल ये है कि अगर तुम्हारे सामने कुछ मूर्त है, जो ध्यान का पात्र है, जिसमें तुम उलझे हो, चाह रहे हो कि वो जितना है, उसकी सीमा, उससे वह ज्यादा हो, तो वो हर तरह से दिखाई देगा, सिवाय उसके जो वह स्वतः और जाहिर तरह से है...यही लागू है खयाल पर, श्रेणी पर, राय पर। तुम फंसे हो अच्छे और बुरे के बीच; अनुकूल प्रतिकूल, गुण अवगुण, खरे खोटे, और न्याय अन्याय के विभाजन पर...नीति का कोई श्रेष्ठ कानून नहीं...बस इतना है कि अच्छे को जानने, समझने और स्वीकारने के लिए बुरे का चिंतन जरूरी है। अच्छे की आराधना के लिए बुरे के प्रति करुणा चाहिए। मैं नहीं कह सकता कि ये सिमेट्रिक रिलेशन है...शायद हो। लेकिन, अगर सिर्फ अच्छे पर ही सोच टिकी है, तो नतीजा अच्छा नहीं होगा। पदार्थ की मात्र स्वयं में अहमियत नहीं, उनके बीच के नेटवर्क यथार्थ बनाते हैं। अगर सब कुछ बुरा है, तो क्या हम खुश होंगे? आई कांट से। पर अगर सारा कुछ उजला और अच्छा है, तो ये आतंक की दस्तक है। आदर्श लोक नरक का छद्म रूप है विक्रम।

कुछ देर में वीके ने पाया कि योगी विख्यात इकोनॉमिस्ट, फिलॉसोफर एडम स्मिथ की बात कर रहा है। उसकी दो किताबें : द वेल्थ ऑफ नेशंस और थ्योरी ऑफ मॉरल सेंटीमेंट्स। कानी कौड़ी के भाव की सलाह है, पर एवज में ही सही, बाजार और मुद्रा का व्यवहार जो अच्छा है, कल्याणकारी है, उसका खनन और खयाल करो। ये दोनों किताबें पढ़ो। इस वक्त की श्रेष्ठ स्पिरिचुअल डाइट तुम्हारे लिए यही है!

विक्रम पहली बार हंसा, खुलकर। उसने ओछा और उथला महसूस किया। और उसे भला लगा...पर तुम मुझे कुछ और बतलाने आए थे...मुझे अंदाज है, करीब करीब, योगी ने कहा। सलाह ये है कि अपनी फी, मतलब स्फीति से सीधे कहो। क्योंकि शायद ये कहना तुम्हारी आजादी बने।

जब वीके आश्रम से निकला, करीब घंटे भर के बाद, उसे लगा वह हल्का है और लदा हुआ भी, फ्रेश और थका भी। कुछ देर उसे लगा था जैसे उसे ठौर मिला है, पर छल और छद्म के प्रश्न बरकरार तो हैं ही। और यह तब जब एक बड़े खुलासे के बीज लगभग उसकी मुट्ठी में हैं।

और इतना मन उसका बन गया है कि वह अतीत की हर परत और गंदगी फी के समक्ष, उसकी बाहों में कबूल कर ले, क्षमा मांग ले, फिर से पा ले उसे। पर बुजदिली का कांटा भी तो लीलता है। अगर सचमुच हमसैनिक फार्मर्स की एक सेल किसी जज के नाम हुई है, और वह जज जस्टिस प्रणाम ही निकला तो? और फी क्या सोचने लगी है? कोई तीसरा तो उनके बीच नहीं?

फी कंपनी डिनर पर बाहर गई है। वीके ने एडम स्मिथ के कोर्ट्स गूल किए। एक स्थान पर उसने पढ़ा : हत्यारे और चोर का कोई समाज अगर बनता, तो कमसकम वे एक दूसरे की हत्या या चोरी से बाज आते...मतलब समाज के अस्तित्व के लिए हितकारी होना न्याय से कम जरूरी है। करुणा की कमी खलती है, पर अन्याय का प्रचलन समाज का ध्वंस है...जब हमारे निष्क्रिय भाव इतने गलीज और खुदगर्ज हैं, तो ऐसा क्यों कि हमारे सक्रिय सिद्धांत अशराफ और उदारता से ओतप्रोत हैं...दुराचार के मुकाबले सदगुण का भय ज्यादा है, क्योंकि सदाचार की ज्यादाती पर अंतरात्मा का कोई नियमन नहीं...ईर्ष्या का भाव बचाव का रुख है। सिर्फ हिफाजत के लिए है। यह भावना इंसाफ का अभयपत्र है और निर्दोषता का आश्रय!

नींद का झोंका आया ही था, कि मोबाइल बजने लगा। फी का मैसेज। क्या? लव यू। बस इतना ही। अपशकुन की आशंका से वी सिहर सा गया, कोई जवाब देते नहीं बना। नींद में भी नैराश्य का भाव कायम रहा।

इसके पहले जज के दिमाग में सेल डीड का पूरा आशय रजिस्टर करता (और इसमें वक्त लगेगा) आतंक के काले आवर्त ने उसे दबोच लिया। शीरी से क्या कहूंगा? यह सवाल, झंझट, सांप के फन की तरह उसके सामने था। बस इतनी दिलासा कि शीरी दो रात के लिए बाहर गई है। सच और तथ्य के बीच की कलुषित खाई दैत्य के खुले मुंह से उसे घूर रही है। अपने कितने ही फैंसलों में, गाफिल आश्वासन का लिहाफ ओढ़े, उसने न्याय के निसर्ग और जुस्तजू की दुहाई दी है। कि इंसाफ सत्य में विलीन होने का प्रयास है, पर उसकी निगाह और भरोसा सिर्फ तथ्य और सबूत से संचालित है। सेल डीड के कड़क पन्ने जैसे उसका मजाक उड़ा रहे हैं : एक बेरहम, अश्लील धोखा। पर ये 'क्लेरिकल एरर' भी तो हो सकती है? पर कैसे? यह साजिश है और इसलिए इसके पीछे प्रयोजन है। सबूत और फैक्ट्स निर्विवाद हैं। जज ने रजिस्टर्ड खरीद की है, और अब वह हमसैनिक फार्मर्स में एक आधुनिक, मिड साइज विला का ओनर है। डीड में जो अमाउंट लिखा है, वह 50 प्रतिशत ज्यादा है। जितना उसने सफेद और काला मिलाकर दिया था, उसके मुकाबले। हर पेज पर उसके दस्तखत। गवाहों के। ऑफिस की सील, रजिस्ट्रेशन का सीरियल रिकॉर्ड, बायर और सैलर के कंप्यूटर से उतरे फोटो, फिंगर प्रिंट्स, आधार और पैन नंबर, सब हैं। तथ्यों का वैभव और नुमाइश! ये फैक्ट है, साक्ष्य है। पर सच नहीं है। अगली दो रातें, उनके घंटे, मिनट, नारकीय थे, घोर और दुष्ट। जज ने छुट्टी ले ली। हर क्षण यंत्रणा। कितने ही घंटे वह बिस्तर पर निश्चेष्ट पड़ा रहा, जैसे ब्रीफकेस में पड़ी सेल डीड। वह मर क्यों नहीं जाता, उसने सोचा। भुतहा मन, न विचार न संवेदन। अंततः एक दैविक प्रयत्न से उसने अपनी दशा का आकलन शुरू किया, विकल्प की चीथड़े की कांटफांट, बचाव की राह। अगर बची है तो। डाइनिंग टेबिल पर मनहूस सी छाया। अधछुआ खाना, अधपका सा, स्वादहीन। वह सुन्न, स्तब्ध। कान में थमी आंधी की सनसन। सामने की कुर्सी में धंसी ज्ञात। फूल सी, कितनी कोमल। क्या उदास तो नहीं दिख रही? फासले का नशतर। भीगी, डबडबाई आंखों में ज्ञात तिर रही है। छोर की थाह से विलग।

डेडी? जज के थके दिमाग में मोह का स्फुरण हुआ, जमी धूल की परत हटने की तरह। आपको ब्रीफ दिखाऊं? ब्रीफ? बगल में आ गई ज्ञात, तितली सी आशु गतियां, साफ शफफाफ,

न शिकवा न गिला...इतना आसान और सहज। डैडी ने ब्रीफ का डॉक्यूमेंट पास लिया, साथ में बेटी की हिचक की हंसी—आपके जजमेंट को मैंने रिप्रेसिव प्रूफ किया है! तरक्की के खिलाफ। ओवरटर्न होना है जजमेंट आपका डैडी! ज्ञात चहकी, सपोर्ट भी चाह रही थी शायद। लपक में खत्म की ब्रीफ जज ने, ट्रेनिंग है इस तरह की, और पूरा केस उसे अक्षरशः याद हो आया...यह स्थापना कि अगर पार्टनर्स लंबे वक्त तक लिव इन रिलेशन में रहते हैं, तो विवाहित होने की तरफ प्रिजंपशन है, पर उसकी तरदीद हो सकती है, अगर हालात हैं जो प्रिजम्शन को कमजोर करते हैं, तो कोर्ट उन्हें नजरंदाज नहीं कर सकता...पर बर्डन ऑफ प्रूफ किस पर पड़ना चाहिए? ज्ञात ने ब्रीफ में जस्टिस कृष्ण अच्यर के फैसले को खूब तरजीह दी है कि बर्डन ऑफ प्रूफ कि रिश्ता शादी के जैसा नहीं है, उस पर है जो इस रिश्ते को विधिक स्रोत से वंचित करना चाहता है... यस, जज ने खयाल किया, उसका फैसला कमजोर है, उसने सबूत का सारा भार औरत पर थोप दिया था। कि सबूत का भार उस पर है जो विवाह का दावा कर रहा है, और इस बिना पर अपने पक्ष में फैसला चाहता है...एक जगह तो जज ने यहां तक रिकॉर्ड किया : एक लिव इन रिलेशन है और एक विवाह है। साथ होने के दो अलग तरीके। अगर तर्क ये है कि लिव इन रिलेशन ही विवाह है, या शादी से अलग नहीं है, तो सिद्ध तो करना होगा न...बैड जजमेंट, जज बुदबुदाया। सो, यू अग्री? ज्ञात की आंखें चमक उठीं। उस क्षण जज हर कीमत अदा करने को तैयार था, खुदी को मिटाने के लिए हर तरह से तत्पर। जिस दिन तुमने ये केस जीता न, आई शैल बाय यू अ कार, प्रॉमिस!...कितनी अपनी मां की तरह दिखने लगी है, बाद में जज ने खयाल किया।

जीवन ज्योत की अदम तमन्ना ने आखिर उसे उबारा। खराब से खराब वह जी चुका था। यंत्रणा इतनी विकट थी, कि दो चरम के बीच वह झूलता रहा : समझ की कौंध और करीबन बावली अवस्था। तसव्युरात में उसे चार्जशीट मिल गई है, इंपीचमेंट का मोशन, और वह दिमाग में उसे पढ़ रहा है, मानो कागज सामने है : कि जस्टिस देवराज प्रणाम ने, जब वह हमसैनिक फार्म्स केस की सुनवाई कर रहा था, परितोषण की मंशा से, नामित व्यक्तियों के साथ साजिश रची, और उनके हक में आदेश करने के निमित्त, हमसैनिक फार्म्स में एक विला बाजार मूल्य से कहीं कम कीमत पर खरीदा। कि जस्टिस प्रणाम ने इस हित के टकराव की कोई घोषणा नहीं की, और न ही खुद को केस से रिक्क्यू किया, जिससे आरोप की पुष्टि होती है। जस्टिस प्रणाम का यह कृत्य उनके उच्च पद की मर्यादा और अखंडता का उल्लंघन और अपयश है...कारण बताएं कि क्यों न आपके विरुद्ध महाभियोग की कार्यवाही अमल में लाई जाए...उजले क्षणों में जज लगातार दोहराता है कि ये सेट अप है, उसके खिलाफ साजिश है, उसके साथ जालसाजी हुई है, वह निर्दोष है, फरेब के निशान मिटते नहीं, उसे बस स्टेप बाय स्टेप, इल्मीनान से सोचना है, सच का अनावरण इतना मुश्किल भी नहीं, और कौन विश्वास करेगा कि जस्टिस देवराज प्रणाम, जिसकी ईमानदारी एक मिसाल है, वह चंद पैसों की खातिर ऐसे फूहड़ तरीके से बिक सकता है...आई जस्ट हैव टू बी वैरी काम...।

उसे ऐसे तत्वों ने फंसाया है जिनके हमसैनिक फार्म्स में स्वार्थ हैं, जो यथास्थिति चाहते हैं, जिन्हें जज के हाथों कड़े फैसले और डिमॉलिशन का डर है। ये दुस्साहस की युक्ति है, और आधार ये कि जज के पास कोई प्रूफ नहीं कि वह चीट हुआ है। ये धमकी है जिसके साथ एक मैसेज है : कि तुम हम में से एक हो। मात्र आसीन जज नहीं, बल्कि फार्म्स के विधिक रेजिडेंट। इतना ही वो शायद चाहते हैं। कि केस उसी तरह चले जैसे हमेशा चला है, जैसे पहले के जजों ने किया, वह भी वही करे, बंदरघुड़कियों का खेल, और 'स्टेटस को' कायम रहे...तो उसे कुछ गलत या अवैध नहीं करना है। उसे बस बेवजह अपनी नाक नहीं घुसानी है। और वैसे भी, एक सशक्त और यकीनी मत यह भी है कि भूमि प्रबंध शासन और विधायी का क्षेत्र है, न्यायपालिका का इसमें कोई

काम नहीं...अपने में, फार्मर्स में फ्लैट, घर खरीदना कोई अपराध नहीं, न ही पाबंदी है। कितने ही जज हैं, भद्र और शक्तिवान हैं जो हमसैनिक फार्मर्स में रहते हैं। केस से रिक्यूज करने का इशू है, होगा मतलब, अगर विला वह रखता है...इस तरह के खयाल चिंदियों की तरह उसके मन मस्तिष्क में उड़ रहे हैं। सपोज, वो विला वापिस करने का फैसला करता है। कि जिससे उसने खरीदा है, मतलब धोखे से खरीदवाया गया है, वह उसी प्राइस पर विला वापिस ले। एक और सेल डीड। लेकिन...पॉइंट वॉज, इस मसले में अब दो पार्टीज हैं...मनमर्जी तो नहीं चलेगी, किसी तरह की आपसी बातचीत, सुलह...ब्रोकरके अलावा कौन हैं जिन्होंने ये प्रपंच रचा है? जज डिडिंट नो, डिडिंट वॉट टू नो। इतना अहसास उसे है कि कोई आसन्न खतरा उसे नहीं है। सोचें तो उसके पास कई विकल्प और तरकीबें हैं। अगर अभी, जब तक चीजें साफ नहीं होतीं, वो केस में गो स्तो करता है, विद ऑल ऑपशंस ओपन, तो उसे वक्त मिलता है, उसकी ख्याति एक दकियानूसी जज की है। लकीर का फकीर, अक्षर का पीर, तो उसके आदेश अगर एहतियाती टाइप के होते हैं, न इधर न उधर, तो ये नॉर्मल है...अजीब यह है कि चेतन, अचेतन, खयाल के कई तरह के पुलाव मन की अंगीठी पर पक रहे हैं, और जज तक को यह इल्म नहीं कि इनकी रेसिपी कहां से प्रकट हो रही है। उसकी चिंता इस वक्त शीरी को लेकर ज्यादा है। कि उसे क्या कहे। क्या और कितना बताए? और क्या होगा शीरी का रिस्पांस? जज को इतना साफ है कि यह दोनों का साझा मसला है। घर का मामला है। शीरी की अपनी राय है, होगी। और उसके पास वह हुनर है—टू थिंक आउट ऑफ द बॉक्स। टू एक्ट आउट ऑफ द बॉक्स। और, उसे अजीब तरह से लगा कि उसके मन के कई अज्ञात खाने हैं, जहां इतिखाब और मर्जी के अनेक संवेदन बिना उसके प्रयास के लुढ़कने लगे हैं, वह आगे कौन सी राहें चुनेगा, इस पर जज का पहरा इतना कठोर नहीं है।

दो रात के बाद शीरी लौटी है। अनपैकिंग खतम कर ली है। स्लैक्स और शॉर्ट जैकेट पहनी है, जयपुर में खरीदी होगी। थकान का कोई अंश नहीं। कुछ गुनगुनाने लगी। स्पंदित, टच मी नॉट भी। सुगठित, बिखरी। कैसा था जयपुर, और जगह? जज ने संवाद छोड़ा। उम्मीद से अच्छा, शीरी ने कहा। ढेर ये न करो के नियम तोड़े। आनंद रहा। कुछ नायाब है शीरी के अंदाज में, असार सा कुछ...ये पल साधारण नहीं...खिड़की के बाहर डूबता सूरज जो बगीचे की हरी दलान के ऊपर नारंगी ग्लोब की तरह लटका है। शीरी खिड़की से बाहर झांक रही है, रोशनी के खिलाफ, छाया में। तिमिरचित्र। जज की निगाह उसकी नग्न गर्दन पर टिकी है। घर में जबरदस्त मौन फैला है। ज्ञात न जाने कहां है, घर में या बाहर, दूर। गैर यथार्थ का छल सा विद्यमान है, फिजा में सह अपराध की बुनावट। मानो वे मिलकर किसी अपराध की साजिश रच रहे हैं...जज अनाम के क्षणिक अहसास से चौंक गया, अंतस में कहीं सुखद सी धुकधुकी। वह पीछे से झुका और पत्नी की गर्दन पर होंठ रख दिए। वह स्थिर रही, हटी नहीं। किसी अलैदा ने आह भरी...सुनो, जज ने अधिकार से कहा, नए घर का जो है...घर?...जिसके पास चाबी है, वो है नहीं, थोड़ा वक्त लगेगा, जब वो नैरोबी से लौटेगा...जिसे पूछो, नैरोबी गया है, या जा रहा है...सुंदर होगी जगह, शीरी ने खोये से कहा, इतनी दूर भी नहीं है...वहां ब्लैक राइनो होता है...जो ब्रोकर था न, उसने कितनी सारी बातें बताई थीं नैरोबी की, साल में तीन बार जाता है, कहा, कि वहां इंडिया के मुकाबले तिगुना करप्शन है, कह रहा था...शीरी ने जज को संपूर्ण निगाह से देखा, जज को हैरत लगी कि ब्रोकरके जिन्न से वह चौंका नहीं, और यह अजीब संयोग है कि उसका झूठ शीरी के सच से मेल खा रहा है...कहीं ऐसा तो नहीं कि शीरी ने भी झूठ कहा है? कि जितना वह जान रहा है, उससे ज्यादा वह जानती है, क्या वह कुछ छिपा रही है, या जतला रही है? यह तो तय है कि तब या

बाद में उसे अजीब लगा कि अचानक शीरी ने मकान खरीदने की जिद की क्यों, और हर बार वह जज के साथ जाती थी। वह अकेला कभी नहीं गया, और वो ब्रोकर? कई बार शीरी उसे सीधे फोन भी तो करती थी, समय या तारीख बदलने के लिए। ये सब क्या खयाल की बातें हैं, इनके कोई मकसद या भेद तो नहीं?

कोर्ट में हमसैनिक फार्मस केस की सुनवाई में क्षरण और छकाने का खेल चलने लगा। जज न पीछे हटा, और न ही उसने अपना मन प्रकट किया। उसने न अपने मित्र को कांटेक्ट किया, न ही ब्रोकर को। अगर उनके पास ट्रंप है तो मूव उसके पास है, और शक्ति भी। यह उसका क्षेत्र है, कोर्ट, पीठ उसकी है, ही इज द मास्टर। और अभी वक्त है। युक्तियां बदलीं। दोनों तरफ से हल्की, टटोलती ट्रिक्स, चालें, आजमाइश, अभ्यास, इन सबसे जज को थकान होती, पर वह सजग भी रहता, चौकस, और बाद के सालों में उसने याद किया कि यह पिरियड उसके प्रोफेशन का सबसे खुशगवार और जीवंत वक्त था। सुनवाई की प्रक्रिया और गति में सूक्ष्म बदलाव, बहस और अंतरिम आदेश के स्वरूप और तात्पर्य में न्यून भेद, यह सब किसी ने नोटिस नहीं किया, सिवाय विक्रम के। कुछ हियरिंग्स के बाद ही वह समझ गया कि केस के गोलपोस्ट शिफ्ट हो गए हैं। ये वो पहले वाला जज नहीं है, और यह उस राह पर नहीं बढ़ रहा जहां जाने का उसने वस्तुतः ऐलान किया था। कोई अबाउट टर्न नहीं है, ऐसा कुछ नहीं जिसे वह स्पष्टता से इंगित कर पाए। पर आशय और तत्व के बदलाव प्रक्रिया के अनाम में निहित थे। कोर्ट में एक नया जंतु आ गया है, और हर पक्ष इस जंतु से सावधान है। पर ये जंतु है क्या?

एक लकीर बनाना रहा गया है वीके के लिए, सेल डीड के सुराग से, कि खरीद विला की हाल की है, और खरीददार एक जज है...यह कनेक्शन धुंधले सूरज के आकार की तरह उसके दिमाग में बना है, पर उसके अपने जंजाल और बीबी के साथ बिगड़े रिश्ते के कष्ट इतने हावी हैं, कि वह स्थिर नहीं है, निश्चय में दम नहीं है। और एक बड़े स्कूप की उपजाऊ मिट्टी उसकी उंगलियों से फिसलती जा रही है।

जज ने केस में लंबी डेट देनी शुरू कर दी, जज के संचालन में क्रोध या धमकियां न के बराबर दिखीं। वह ज्यादा सुन रहा है, इतना टोकता नहीं। पर उपाय या सुलझाव के लिहाज से यह सब गोलमोल है, काफी नहीं। उनके लिए जो यह मान रहे थे कि जज ट्रैप हो गया है।

एक दिन कोर्ट में अचानक जज को ब्रोकर फिर से दिखाई दिया। केस की सुनवाई बस शुरू हो रही थी। वह शख्स (ब्रोकर है भी कि नहीं?) दूत की तरह सामने आया और काउंसिल के कान में कुछ कहा। फिर हियरिंग के दौरान पूरे वक्त पीछे की दीवार से सटा खड़ा रहा। उसके बाद यह एक तरीका बन गया। एक रोज रिसेस के दौरान काउंसिल जज के चैंबर में आया, पीछे दूत। जोर से हंसा काउंसिल। लॉर्डशिप, आपकी ज्योतिष में ख्याति है...इनसे मिलाना चाह रहा था मैं, दूत आगे आ गया, ये एलेखीन राजा हैं...नाम दुर्लभ है, हुनर भी अनूठा, इनके पिता असल में चौस के बेहद शौकीन रहे, इसलिए...एलेखीन वर्ल्ड चैंपियन था चौस में, रूस का...आपकी इनसे मुलाकात नहीं, मौका नहीं बना, असल में एलेखीन टी लीफ रीडिंग का मास्टर है...टेसियोग्राफी... तो विचार ये था कि एक दिन, आपको जो दिन सूट करे, एक टी सेशन करते हैं...शुक्रिया जी, जज ने दबी आवाज में कहा, टेसियोग्राफी का मुझे अता पता नहीं, पर मैं घोर तर्कवादी हूं, समझे न?...सॉरी लॉर्डशिप, मेरे खयाल में गलती हो गई, आपके ब्रदर जज होंगे...इस पाप और अनिश्चय की दुनिया में अगर टी लीक्स से भरोसा मिलता है, तो क्या बुराई है...थैंक यू लॉर्डशिप।

काउंसिल की धृष्टता से जज दंग रह गया था, पेशकश उसे भी करनी होगी, जैसे भी, कैरट एंड स्टिक, साम दाम दंड भेद। इस तरह कि बटन भी लगा रहे, और खोलने की नौबत भी न

आए। जज ने कोर्ट में कहा कि सैटेलाइट इमेजिज की प्रामाणिक स्टडी के लिए काफी वक्त चाहिए, और विशेषज्ञों की टीम बनाना बेहतर होगा। फिर ये तस्वीरें भी रॉक सॉलिड हैं कि नहीं, यह भी सवाल है। क्रॉस रेफरेंसिंग की भी जरूरत है...इस बीच पुलिस और निगम महकमा अगर चाहे तो अवैध निर्माण के बारे में नए एफिडेविट दाखिल कर सकता है। ड्यूटी और सत्य मार्ग, ये सभ्य समाज की बुनियाद है, जज ने शास्त्र के उद्धरण जतलाते हुए बल दिया। और सुधार का अधिकार सबको है...दोष का शोधन बेहतर है, बजाय आरोप और सजा के, जज ने वकालती अंदाज में कहा। एक बाद की हियरिंग में जज ने अनेक इशारे दिए कि सीबीआई इन्क्वायरी इंस्ट्रूमेंट ऑफ लास्ट रिपोर्ट है। दूध का पूरा धुला कोई नहीं, तो जो उपलब्ध दूध है, उसे उबाल कर देखने में भी कोई हर्ज नहीं? जज के रूपक जरूर उलझ गए हैं, पर मंतव्य और तजवीज की दिशा क्लियर थी। गतिमान है इंसान, संरचना, सृष्टि सभी। हर नए दिन के साथ नई उम्मीद की किरण है, जज ने उठते हुए कहा।

...उंगली दो तो हाथ के पकड़े जाने की चेष्टा लाजिमी है। आरडब्ल्यू के कार्टिसिल ने कोर्ट के चेंबर में न्यारी पेशकश की और अड़ भी गया। दो जूनियर वकील अगल बगल हैं। ब्रोकर नहीं है। कॉज ऑफ जस्टिस सर, नथिंग पर्सनल, सीनियर कार्टिसिल ने शुरू किया। पहले थूक के छींटे निकले फिर शब्द। नाटा कद, बुलंद स्वर। उसने पारदर्शिता के बुनियादी सिद्धांत का तरबतर जिक्र करते हुए उसकी तुलना एक पवित्र नदी से की जहां लोकतंत्र, न्याय, मानव अधिकार, लिबर्टी और संविधानवाद का संगम होता है...लॉर्डशिप के दूध के मुहावरे को उठाते हुए उसने कहा अवश्य दूध का दूध और पानी का पानी होना ही चाहिए...अवैध निर्माण को चिह्नित करने के लिए सैटेलाइट मैप्स की पूरी पड़ताल जरूरी है, पर द क्वेश्चन रिमेंस, आखिर वो लोग हैं कौन जिन्होंने अवैध निर्माण किया है? कार्टिसिल चैम्बर के बंधु भाव में सर जी पर उतर आया। सरजी, आई प्लीड, कौन हैं वे जो उनके पड़ोसी हैं, उनसे मिले हैं, जिनकी शामिलात है...एक तरफ सरकार है जिसने पॉलिसी को अधर में छोड़ दिया है। दूसरी तरफ गपचक्की चल रही है मानो फार्मर्स का हर फौजी चोर है, गुनहगार है। अवैध के घुन के साथ निर्दोष और आईन पसंद का गहूं पिस रहा है, सरजी। चलिए, बहस के लिए मानें सब के सब दोषी हैं। दैन लेट अस बुक दैम, लॉर्डशिप, कॉल दैम हियर... जज ने संयम के छींटे डाले; जिसे शिकायत है, कोर्ट में पिटीशन डाले, देखेंगे। सरजी, पॉइंट इज, प्रोएक्टिव एप्रोच हर क्षेत्र में बराबर होनी चाहिए। हमारे सभी मेम्बरान की लिस्ट कोर्ट के पास पहले से है। इसके अलावा दूसरे भी हैं। आगे झुक आया है कार्टिसिल। जज ने देखा उसकी हथेली के पीछे घने बाल के गुच्छे हैं। एंटीने की तरह कान में भी। हाऊ डिजगस्टिंग, जज ने सोचा। प्रपोजल सर जी ये है कि कोर्ट हर प्रॉपर्टी ओनर को नोटिस जारी करे। कि वो तशरीफ लाएं और अपना डिफेन्स दाखिल करें। तब बनेगी ट्रांसपेरेंसी। सब रजिस्ट्रार सेल के रिकार्ड्स दाखिल करे। हर रेजिडेंट फाइल करे फोटो, बिल्डिंग प्लान्स, ड्राइंग्स, सर्टिफिकेट, डीड्स, कागज, विडियो, जो भी। ये कोर्ट की मंशा नहीं कि कोर्ट खुद ये सब इकट्ठा करता फिरे...कोर्ट को कोर्ट की मंशा या दायरा जतलाने की जरूरत नहीं है, जज ने तलखी से कहा। लॉर्डशिप, इन मुद्दों पर कानून की व्याख्या जरूरी है। ओनली इफ कार्टिसिल वुड इंस्टिस्ट ऑन दिस लाइन, जज इस बार चढ़ा...लॉर्डशिप, हम तो आपकी रियायत चाहते हैं...।

बीच में एक बार फिर जज भड़का। आप ट्रांसपेरेंसी का गीत गा रहे हैं। पर आप इस, क्या कहूं मैं, बिना पेंडे के प्रपोजल को मेरे चैम्बर की चार दीवार की सीक्रेसी में डिसकस कर रहे हैं। खुसपुस कर रहे हैं...लॉर्डशिप? आप कोर्ट में फॉर्मल एप्लीकेशन फाइल कर सकते हैं। यस, वी जस्ट मे, अगर हम संतुष्ट नहीं हैं, इफ वी रिमेन अग्रीव्ड...ये इफ और बट का झूला नहीं है जनाव,



ये इजलास है, आपको पता है एक सेकंड में एप्लीकेशन डिसमिस हो जाएगी। कानूनन, ये जीरो है, इसमें कोई दम नहीं रखा। वो तो ठीक है सर जी। पर ये तो कोई नहीं चाहता कि ये एप्लीकेशन ओपन कोर्ट में दाखिल हो? एक नया मुद्दा बने। फिर वो मीडिया में रिपोर्ट हो? और फिर सरजी, एप्लीकेशन खारिज होगी। राइटली सो। पर मीडिया और पब्लिक तो इतने से राजी नहीं होगी न, सरजी। उसकी प्यास तो बढ़ेगी, उसे तो पूरी खबर चाहिए, है कि नहीं...।

इस नए तकाजे और गुहार में जो धमकी छिपी थी, साफ सफा थी। रिस्क पूरा जज का है। एप्लीकेशन फाइल करने में उनका कुछ नहीं जाता। अर्जी खारिज होगी। दो चार अफवाहें, मीडिया में गुपचुपी के संकेत। नतीजा : सारा ध्यान ये कि फार्म्स के मालिकों का क्या प्रोफाइल है? ये प्रोफाइल किस तरह बदल रहा है? और वे कौन हैं जिन्होंने हाल फिलहाल फार्म्स में प्रॉपर्टी खरीदी या बेची है?

और, निस्संदेह, जज के नाम का खुलासा होगा। तो जज अब क्या करे? और ये लोग? क्या इन्हें सचमुच लग रहा है कि जज डिमॉलिशन के आदेश कर सकता है? जज आर्शकाओं से भरा है। पर कहीं उसे गुदगुदी सी हुई, कि उसके फेसलैस विरोधी उसे इतना तीसमारखां समझ रहे हैं।

ये एक पगले की फंतासी ही हो सकती है कि हमसैनिक फार्म्स की गलियों के गोरखधंधे में स्कूटर ड्राइव करना किसी कब्रिस्तान में भटकने की तरह है, या ऐसा मैदान जो किसी युद्ध के पश्चात का उजाड़ है। उन्माद की लहक कि मेरी सांस नहीं है, दम घुट रहा है, गर्दन अकड़ी है, क्योंकि प्राइवेट विला, बंगले और महलनुमा मकान के इस रिहाइशगृह में आजाद हवा नदारद है। सार्वजनिक जमीन का एक इंच टुकड़ा तक नहीं, जहां तुम इख्तियार से खड़े हो सको, आड़ी तिरछी, सफेद कंक्रीट की, आपस में गुंथी गलियां, सरकते सांप की तरह, उनके नंबर हैं और अक्षर, ए से जैड, दो गाड़ियां, ठेले या जन एक दूसरे को क्रॉस नहीं करते, मानो सारा कुछ वन वे है, एक तरफा के सिद्धांत का परम प्रतिपादन...कुछ नहीं ऐसा जो पार्क है, तिराहा, चौराहा, या राउंड अबाउट, पब्लिक स्क्वेयर, या ट्रैफिक लाइट्स, ट्रैफिक आइलैंड, लैंप पोस्ट्स, पोस्ट बॉक्स...किराने, ग्रीसरी का स्टोर, कितना भी छोटा बाजार, ठेले या बेचने वाले, प्राइमरी स्कूल, कोई डिस्पेंसरी, मंदिर...बादलों के नीचे और सिर के ऊपर कोई तार नहीं, न पतंगें कभी उड़ती दिखी हैं, अगर कैसे न कैसे थोड़ी सांस आई भी, बिना डर या कसूर के अंदेशे के थोड़ा सुस्ता लिया, तब पता चला कि जो आसमान इस इलाके के ऊपर है, वहां कोई चिड़िया नहीं उड़ती, एक शून्य, विकृत असार विराजा हैं वहां, चाहे छज्जे, कगार, मुंडेर, खिड़की के चौखट, इमारतें और दीवार, सब सपाट और सूना, खिड़की, दरवाजे सब बंद, पर्दानशीं, गली के दोनों तरफ की दीवारें, घात लगाए और घुड़कती सी जैसे, सिर पर गिरने को तत्पर, न बंदा, न बंदे की जात, अगर कुछ तने हैं, तो विशाल लोहे के गेट के पैने, नॉकदार शूल, निरंतर भन भन का स्वर है, खुदने, खोदने की धम धम की आवाज, पर ये नर्सों का स्पंदन हो शायद, सिर जैसे फट रहा है, इस अमंगल, घने मौन से कैसे पार मिले...इस गुम गुमां की तासीर में, दीवारों के सन्नाटे के पार कैसिनो की जगमग और धूम है, जश्न ए शबाब और गुलाबी सुर्खियां, ग्रैंड बॉल्स, स्विमिंग पूल गाला, दावतें और मंडली, वाइन और टी टेस्टिंग के उत्सव, खासोखास प्रदर्शनियां, नृत्य और संगीत सभाएं, बिजनेस डिनर्स...फिर भी कोई भीतर जाता या बाहर आता नहीं दिखता, सिर्फ चमकती कारों की कतारें, शोफर्स के एहतियाती साये, मानो यह परफेक्ट वियोजन है, दीवार पीछे के कार बार पर जैसे ऐच्छिक अदर्शन का पर्दा डला है, हर घर, बंगला, मकान मानो महानगर के बीचों बीच जहाज की तरह बंधा है,

जमीन जल में बदल गई है, बेशक खुदाई कभी खत्म नहीं होती...तारों की फीकी उजास, खुले में गली पर नजर गाड़े सिर्फ स्कूटर की मंद हैडलाइट, खिंचे पर्दों से छनकर बाहर झांकती रोशनी के सिमटे धब्बे, साए तक उसकी पुष्टि नहीं करते, इस खुले और सार्वजनिक में न पते हैं, न जड़ें या पेड़, जो भी हरा और वनस्पति है, वह चार दीवार के भीतर का हक और संपदा है, दूब के मैदान और बाग बगीचे भी, भीतर के विस्तार ने बाहर और आम का स्पेस हथिया लिया है...पगली फंतासी ही सही, अंततः वीके को रुकना पड़ा, और वह रुका।

अंधेरे की छलनी में सन्नाटे का असंयत चीत्कार। क्या है इसका राज और मुबारक? इंद्रियों के होश हवास के लिए न झींगुर हैं, न मच्छर, भुनगे, जुगनू के स्वर, निर्जीव का जैसे आधिपत्य... पर भयानक तरीके से यह तब भी मेरा, सबका शांत, मनोरम अपर क्लास पड़ोस है, दीवार और प्रतिष्ठा का रक्षा घेरा, पत्थर चेहरे प्राइवेट सिक्विरिटी फर्म्स का पहरा, निजी संपत्ति और प्राइवेट के कानून की प्रभुता, कोई पुलिस स्टेशन नहीं है, जरूरत भी नहीं, अवधारणा ही बहुत है...फिर किस तरह वह अपने रोष और उबलते उत्पात को उगले, कहां और किसपर, क्योंकि यहां कोई दुश्मन, गुंडे या अराजक तत्व नहीं, मारकाट, उपद्रव का कोई गली कूचा नहीं, तबाही और संहार का कोई रक्तरंजित मैदान नहीं...उसके अंतस में उबलते रोष का ज्वर और तूफान, जेहन में संज्ञास के गरजते बादल, उनके निर्वाह और सिद्धि के लिए कोई निर्दिष्ट साधन स्थल नहीं दिखाई दे रहा... अगर उसके मन की आंख हमसैनिक फार्म्स की निरभ्र, अपर क्लास शोभा को किसी तरह महाभारत के रणक्षेत्र में तब्दील कर पाती, तब शायद उसके संताप को चुकने का ठौर मिलता, जड़ जमे क्लौस्ट्रोफोबिया को सुकून और समर्थन...तब अभिशप्त अश्वत्थामा की तरह उसके निजी प्रतिशोध को त्रासद अशराफ का हक हासिल होता, वह अवैध के ठंडे, निर्लिप्त वास की शर्म और अपराध बोध से मुक्त महसूस करता...जबकि सदा उसे धुंधला अहसास था, पर अभिव्यक्ति के लिए उसके शब्द अधूरे हैं, यह तर्क कि उत्तर आधुनिक की नियमावली में नादिरशाही और लूटपाट के लिए युद्ध और आक्रमण की जरूरत नहीं, भाले और लहू की धारा, लाशें और विनाश के कुंड, इनका उपयोग नहीं, यह वितान कानून के दस्तावेजों से बेहतर सिद्ध है, लॉ फर्म्स और एक्सपर्ट्स की राय, नोटिस और अधिसूचनाएं, जटिल और सूक्ष्म नीति के बदलाव...दमन और जुल्म के घोर और विकट चक्रव्यूह अब महफूज और वातानुकूलित परिवेश में बनते हैं, जिनमें इजलास सर्वोपरि है।

इस रुग्ण नैरेटिव की तरफ विक्रम बेबस सा है, न निगलते बनता, न उगलते, और जब कुछ हिम्मत जुटती, संशय के अलावा कुछ नहीं हाथ लगता। दो दिन घुलने के बाद उसने फी को सब कुछ बताने का फैसला किया। चाहे उसे फी को कंधे पर बिठाकर स्मृति की हर दुर्गन्ध और कीच क्यों न पार करनी पड़े। पर क्या वह सुनने को तैयार और राजी है? उसकी तरफ उदार और दयालु? क्या वो उसके पाप माफ करेगी जो उसने कभी किए नहीं? क्या एक की माफी दूसरे का प्रतिकार है, जैसे पहले कभी था...फी ने, जब वक्त आया, उसे सुना और नहीं भी सुना। यह अनपेक्षित भी नहीं था।

**अथक,** निःशर्त प्रेम के वे शुरू के दिन और वर्ष! सब कुछ इतना हल्का और स्वतः स्फूर्त।

पूरे दिन की मेहनत से कुरिआकोस ने ईमेल बनाया और स्फीति, जर्नलिस्ट कोलीग, को किसी निरादर के क्षण में भेजा : एक पेचीदा खयाल अर्ज है—तनोमंद हैं हम, तो तने तन्हा क्यों भला रहें, मैं नाजबरदारी करूँ तुम्हारी, तुम नामानिगारी करो? तूफानी रोमांस फूटा और महीने बाद उन्होंने शादी कर ली।

ऑल बिकॉज, अगर ये मलयाली इतनी मेहनत से मेरे लिए उर्दू जुबान में प्रपोज कर सकता

है, तो जान तो देगा ही मेरे लिए, दोगे न? कितने ही साल, नॉनसेंस वॉज द बेस्ट सेंस बिटवीन दैम।  
उन्होंने निरर्थक को अर्थ दिया, बड़े ख्वाब देखे, और माना कि जर्नलिज्म दुनिया में सबसे रोमांटिक जॉब है। स्फीति के पुकारने में विक्रम ने फी चुना। फी? छि! ये क्या नाम हुआ? मेरी फी! कैसा फी? फूल वाला फी, मुआफी वाला फी, या फरमाइश वाला फी?

वे अनन्य क्षण। तुम रिपोर्टर क्या खाक हो? फी ने छोड़ा। तुम्हारा बेस्ट डिस्क्रीप्शन है— बॉक्सर फिलॉसोफर! कैसा, जैसे मुहम्मद अली? विक्रम ने कहा। अरे जाओ जाओ...फी पास आ गई, बेहद पास, हर दिन लगता वह और और पास आ रही है। करीबी का खयाल बे इतिहा है... या बेहया! फी की हंसी अप्रतिम। तुम तो तन्हा कुरिआकोस हो। तब फी ने बचपन का वह नॉनसेंस काफिया याद किया अचानक : घासलेट, सड़क पर लेट! गाड़ी आ गई, फट गया पेट! कुरिआकोस, इतनी मुद्दत जैसे पंख पर सवार : मैं तुम्हारी मुद्रा हूँ न। स्फीति की, साथ साथ हम फूल रहे हैं!

इस तरह जिंदगी बेफिक्र, खुश खुशामद चली, जब एक दिन अचानक फी ने जॉब छोड़ दिया, और एक बड़ी एमएनसी में मार्केटिंग एग्जेक्यूटिव बन गई। कुरिआकोस हैरान रह गया। बिजी रहने लगी फी, सरोकार बदल गए, रवैया और जेहनियत भी। अलगाव और फासले के कीड़ों को आहार मिलने लगा। यह दोनों का अबोला अहसास था, पर क्या करते। राहें विभक्त हुईं, फिर शायद मन की दरारें भी बनने लगीं। बिना बुलाए, बेचाहत।

आई कांट इमैजिन यू, मार्केटिंग? मैनेजमेंट मानती है, मैं कुछ भी बेच सकती हूँ। कॉमर्स बुरा शब्द नहीं है, मेरी जान, फी हंसी। फिर भी, वी ने कहा, और कहते कहते रह गया।

फिर भी के साए में गुजरे साल! इन सालों में विक्रम दो बार बहका। डिड शी नो? ओनली शी न्यू।

...जितना सोचा था उससे ज्यादा ठंड है पंगोट के रिजोर्ट में। नैनीताल से आठ किलोमीटर आगे। घने जंगल के बीच। बर्ड सैंक्चुअरी। वे बाईनीकुलर्स लाए हैं इस बार। शादी के एक साल बाद जब आए थे, तो सुध ही कहां थी। आपस से थकते जो नहीं थे। दो रात की बुकिंग है। परफेक्ट गेट अवे, ऑनलाइन पोर्टल का वायदा। लंबी, घनिष्ठ वॉक्स, प्रशांत छवियां, और हिमालय की हिम श्वेत शिखर का विहंगम दृश्य...ऑल दिस एंड मोर, बुकिंग साइट ने प्रॉमिस किया था। वीकेंड, फी का बर्थडे। सिर्फ हम दो, एक साथ, अपने आधिक्य और अनेक के साथ! विक्रम की आरजू। चैलेंज है या निमंत्रण? फी मुस्करा दी, राजी हो गई। स्पोर्टिंग लेकिन धुंधली।

दिन मुलायम और निर्बाध, करीबन ध्वनि शून्य। बस आहटें। नीले आकाश का प्रेरक विस्तार, हवा में ताजा चुभन। शरीर के अनजान तनाव आहिस्ता से खुले, पतले रास्ते की ज्योमेट्री में फिर वे लीन हो गए। रास्ता नीचे सघन जंगल में जा रहा है। हवा में खूब नमी और बरबस सुगंध, धूप के पतले तीर नीचे तक छन रहे हैं, पंद्रह साल पहले के वास की यादों की तरह। तब सिर्फ दो कमरे थे, और आज क्लास रिजोर्ट है। अतीत ने बाहें फैला दीं। वक्त की रेखा मानो सिमट गई है...क्या वक्त का कोई चेहरा है? फी पूछ रही है, गाल में गड़ढे उभर आए। मिचमिचा गया वी का मन। वक्त के बीतने से जो चेहरा बदल, बूढ़ा हो रहा है? छि! फादर टाइम की पेंटिंग्स, दाढ़ी, एक हाथ में हंसिया, दूसरे में रेत घड़ी। और काल? पर काल वक्त नहीं, वह मृत्यु का दूत और तर्क है, वक्त और मृत्यु की सुलह है, आई थिंक। फी जवान है, बेहद जवान है। वी फी के पीछे है, चाहत का उभाड़, फी के स्पर्श, देह की रहमत और नजदीकी की प्यास। बीच बीच में फी गर्दन घुमाकर उसे, पीछे को ताक रही है, वी के चेहरे पर कोई रेखा नहीं, सुगठित देह से युवापन फूट रहा है, गुड मसल्स। फी बर्ड्स साइट कर रही है, नाम, गुण, कहां से, वह खूब जानती है, और वी फोटो ले रहा है, हर साइटिंग और क्लिक के बाद एक चुम्बन, यह नफ्स परवर कायदा

उनकी पहली विजिट का नूर था, उन्मेष और इश्क ए बयां की नॉक। जितनी साइटिंग्स, उतने चुंबन! इस बार जैसे वही पदपथ उनका निग्रह है...शुरू के चुंबन सूखे, उथले, यंत्रवत्, बीते के प्रति करीबन माफी। पर शरीर और मन की अपनी सत्ता अलग भी है, धीरे धीरे बहाली का बोध बना, पुनर्खोज की तरह, प्रणय की टहनियों का ढेर बना, सूखी और चटख, एक नन्ही आग जलने लगी, निसर्ग का हस्तक्षेप, एक नई उत्कंठा, द्वेष का पर्दा हट गया, कहीं उड़ जाने की तमन्ना, चुंबन अब दीर्घ और बेरोक हैं, आग्रह तीव्र, आलिंगन में गहरा इकरार, निःशर्त।

वी ने वाइन की दो बोतलें निकाली और नुमाइशी पर अटपटे अंदाज से उन्हें टेबिल पर रखा। गमले की तरह, फी ने सोचा, और शॉल कंधे पर कस लिया। निगाह में उपहास की पतली सी झिल्ली। वी ने यह सब नहीं देखा। फी की गतियों में जो तनाव का पृष्ठांकन है। विद्वेष का सुप्तपुंज फी के अंतस में कहीं उभरा। वह एकाएक चौंकी। विरस, विराग, यस। निर्लिप्त भाव, दूरी तो थी। पर वी के लिए जुगुप्सा का यह क्षणिक शूल? मैं ऐसी तो नहीं, फी ने खयाल किया। शायद सेक्स का गैरजरूरी असंयम...? वी अपने में मग्न। ध्यान भीतर में डूबा, क्रियाएं बाहरी और कुंद। घातक विभक्ति। एक आदमी जिसने अपनी औरत के साथ कसरती, पुष्ट संभोग किया है, और फूला नहीं समा रहा। ये नाजुक क्षण हैं, और वीके अनभिन्न है, या उसे परवाह नहीं। पर दोष भी क्यों? वी मंशा से, प्रयास से, अतीत में स्पंदित प्रेम को पुनः अधिग्रहीत कर रहा है। नेकनीयत है। एक घंटे पहले वे किस शिद्दत से आतुर, रतिरत थे। दो शरीर एक जान। प्रीति का पराक्रम, यह सब वी के जेहन की आंच है, जिसके जोर पर वह पंद्रह साल पहले की उनकी निजी रस्में दोहरा रहा है। क्या था उनका जुमला? प्रीत के अछोर का भी पार...वाइन की दो बोतल खत्म होंगी, कोई कसर नहीं छोड़नी है, हर दरार, चीर और सूराख की सवारी। हमेशा वे सफल होते, पर ये वर्षों पहले का आभूषण था।

फी ने वाइन की तरफ इशारा किया। और दूसरी बार पूछा, तो, ये चैलेंज है या मनुहार? कुछ भी वर्जित नहीं, हजार खून माफ, वी ने हेकड़ी, बेहूदा यकीन से कहा। कम से कम फी को इसी तरह सुनाई दिया।

अभ्यास की आदत से उन्होंने वाइन के घूंट जीभ पर रोल किए, अंग्रेजी कुल्ला, कभी वी इतराकर कहता, वेस्ट की खिल्ली उड़ाकर उसे लगता उसकी जमीन ज्यादा ठोस है, ये झाड़ू की आड़ शुरू में फी को बेहद प्रिय थी...और फिर हलक की गर्मी में उतार लिए। बाहर अंधेरा गिरने लगा। निपट खामोशी। हर बोले शब्द की निर्ममता और कठोर मूलांकन जैसे तयशुदा था।

मन की पुतलियां बेहिसाब खिसक रही हैं, हवा तैरती सी, अब क्या, फी सोच रही है। ओके, गिव इट टू मी, ऑल, सब कुछ जो तुम्हारे भीतर सड़ या उबल रहा है, मैं तैयार हूं, अगर दस फीसदी भी तुम जतला सके, कि यू केयर, रियली केयर, तो कसम है, मैं तुम्हारे संपूर्ण विष का अमृतपान करूंगी...बह रही है फी, मनुहार उसकी भी है, चुनौती के लिबास में, उसके जेहन का कितना कुछ इस रिश्ते में निवेशित है, फी उठी, बाहें दूर तलक आगोश की उदारता में फैलीं, किसी थिएटर के पोस्टर की तरह, नशे में वह लड़खड़ाई, फिर सोफे में धंस गई। अगर वी देख पाता, तो इस अदा में उसे आप्रपाली दिखती, उज्जयनी की वसंतसेना, कोई अनाम गणिका, परिचारिका, गृहिणी, अभिसारिका सब के रुख नजर होते। थिएटर के नजरिए से वी ने हमेशा शूद्रक के किरदार की हिमायत की। बहुस्तरीय, वह कहता। मेल, डर्टी पिग हो, और क्या कहोगे, बड़े आप, फी चिढ़ कर कहती। या नाटक करती। कोमलांगी हो, चारुदत्त जैसे से शादी होती तो बोरियत से मर जाती मेरी जान! तो तुम कौन से हैमलेट हो गए, थिएटर के नजरिए से। बदनखोर तो हूं! नुकीले मजाक, रूपक की तरह, जिनमें नमक है, मिठास और अम्ल के मिलाप का उन्मत्त जायका भी। पर तब

वह भी अखबार में थी। थिएटर अक्सर जाना होता। कंपनी ज्वाइन करने के बाद ये बातें खत्म हो गई...।

मेंढकी को जुकाम का जिक्कर करते हुए, और न जाने किस बिंदु को जोड़ते हुए वी अपने पिता की बात करने लगा। बाप के बारे में, बाप से। फी को खटका सा लगा। वी का लहजा इस तरह जैसे छोटे कंकर की माला अपनी बीवी और हमसफर के गले में डाल रहा है। वी के लिए यह जतन श्रद्धा की छलांग है, किसी नियत और अविरल को नष्ट कर दफनाने का प्रयास।

मैंने इस तरह कभी नहीं कहा, बट टूथ इज, मेरा बाप लुच्चा न होकर टुच्चा था। क्षुद्र, कम दर्जा, संकीर्ण...छिछला, क्षीण...और जब भी टैस्ट हुआ निचले स्तर का नीच! ओ प्लीज वी, डॉट यूज दीज वर्ड्स, ये गलत है। गलत है, पर झूठ नहीं, मैडम, नियम से श्राद्ध निभाता हूं, बेनागा धर्म निभाया है, इस आस्तिक ने पूज्य पिता के लिए...और तुमसे कह रहा हूं, किसी गैर से नहीं..अगर वी ने फी की तरफ देखा होता तो पसीने की बूंद की एक रेखा उसके होंठ के ऊपर नजर आती। तब शायद उसका मन भटकता, और जिस त्राहि को वह बेवजह आमंत्रित कर रहा है, वह टल जाती। फी ने वाइन का ग्लास खाली किया।

मेरा बाप करीबन हमेशा मेरी आंख में झांकने से कतराता था, ये मुझे सूट भी करता था, वी ने आधे इलजाम के लहजे में कहा। बस तब नहीं, जब हम रात में खाना खाते थे, एक साथ, आमने सामने, हमेशा चावल दाल, वो भुक्खड़, खुले मुंह से खाता था, और तब वह मुझे स्थिर, खोई टकटकी से घूरता रहता, वह अथक चबाने की क्रिया में मग्न सा लगता, चावल और दाल के दाने दूने जोर से उसके मुंह में चकरी खाते, मैं तब कक्षा 9,10,11,12 में था, चार साल का हर रात का अञ्जेल रूटीन...तुम्हें पता है मेरी मां का जब देहांत हुआ, मैं 11 साल का था। अकेली संतान। बस घर में हम दो थे इतने साल, एक दूसरे को भुगतने के लिए जैसे शापित। मेरे खयाल से यह अहसास दोनों तरफ से था।

वक्त का निर्वाह, या बीतना जैसे मुल्लवी हो गया है। बताना इतना सरल नहीं कि वस्तु, मनुष्य, अजीब, मूर्त, अमूर्त, खयाल, भाव...किसने या सबने दम साध लिया है। फी सुनने के लिए न तत्पर है, न तैयार, पर सुन रही है। उसने 10 फीसदी की मनौती पर जुआ जो खेला है...वी कहीं अतीत में विराजा है। वर्तमान से उसका तकाजा स्थगित है।

मेरे बाप के हाथ लंबे और पतले थे, हमेशा स्याही में रंगे, वो रोज बहीखाते के बड़े बड़े मोटे गत्ते के रजिस्टर घर लाता, और देर रात तक उनमें इंद्राज बनाता, उंगलियों पर लगातार गुणा, भाग, जोड़ घटाना। कैलकुलेटर का इस्तेमाल करते हुए मैंने उसे कभी नहीं देखा। कागज पलटने के लिए वह जीभ से उंगली भिगाता, और कई बार उसके दांत भी लाल, नीली स्याही में सने दिखते—हूबहू यही काम उसका दफ्तर में था, पहले मुनीम, फिर हैड मुनीम, बाद के सालों में जूनियर एकाउंट्स ऑफिसर की पदवी मिली, पर काम और जगह चालीस बरस एक ही रही, लकड़ी का टेबिल और एक स्टील की अलमारी, और ढेर बहीखाते और रजिस्टर...अपने काम या प्रोफेशन को कभी कोसा नहीं उसने, यह सही है, पर मेरे लड़कपन के लिए वह एक दयनीय प्राणी था, चुटकी और अवहेलना का पात्र, इंसानी मकौड़ा, एक पराजित शख्स और बाप। उसकी खुशी कहां और किस चीज में थी, मैं कभी नहीं जान पाया। मैंने कोशिश भी नहीं की। वह कटु और रूखा था। मैं भी कम रूखा नहीं था। हमारे क्वार्टर के बरामदे की लाइट कोई दस साल फ्यूज रही। पर न मैंने बदलने की चेष्टा की, न बाप ने बदलकर दी।

विल यू स्टॉप नाओ, फी जोर से चीखना चाह रही है, पर होंठ जैसे सिले हैं, स्वर ने मूक खिलाफत की है। और सच कहें तो फी के विकृत, ना जेबा हिस्से को हवा भी मिल रही है। प्रिय

से कुत्सित सुनने में एक अजीब तरह का ताप और नशा है। कितना दूर, कितना नीचे से गिर सकता है, यह जानने की लालसा, ताकि उंगली पकड़कर उठाने का मौका भी जिंदा रहे। और गिराने का भी! पता नहीं तब फी ने इस तरह से सोचा कि नहीं, पर उसकी आंखें पिशाच के आनंद से चमक तो रही थीं। अति और ज्यादाती के लिए उसके मन की भीतरी लताएं उतावली हैं।

वाइन अपनी दखलंदाजी अनवरत कर रही है, आंखें मिचमिचा रही हैं, जैसे ही प्याला खाली है, भर जा रहा है, और वी का बोलना विराम तक लेने को तैयार नहीं, न प्रश्न का लिहाज या दरकार, उसकी आवाज बहकने लगी है। फी को पूर्व से कुछ बातों का अंदाजा था, पर यह नई और कंटीली जमीन है, सहज कौतुक के साथ जुगुप्सा की चुभन भी है। उसकी नसें सर्द होती जा रही हैं।

धीरज या हमदर्दी हर किसी की चुक जाए, जिस लहजे में वी बोल रहा है। प्रलाप की तरह, करीबन बालोचित, और आत्मदया में लिपटा फालतू विद्वेष। वी सीधे से कह सकता है कि बाप की ईमान के पसीने की कमाई सीमित थी, हमेशा परिवार ने अभाव देखा, और ऐसे हर शरीफ इंसान का सपना होता है कि उसका अपना जमीन का टुकड़ा हो, अपना काम भर का घर...इसके बजाय वह बड़े क्रूर मजे और कुत्सित विस्तार में बतला रहा है कि किन तरीकों से बाप अपना पैसा दांत से बचाता और चोर की आंख से छिपाता था। इतना घुन्ना, और हर शनिवार, पूजा का बहाना बनाकर, बंद किवाड़ के पीछे घंटे भर नोट गिनता था, और जब बाहर आता तो एक लंबी डकार लेता, जैसे जो पचाना था, पच गया...बाप के खुशामदी, चोर चेहरे को देखकर बेटा तिलमिला जाता, शायद बेटा यह वकालत कर रहा है कि इससे अच्छा बाप सारा पैसा जूए या शराब में लुटा देता, तो कमसकम वह इज्जत के लायक तो होता...बेटे के इस बेहया तर्क, कृपालु स्वांग और रूखे स्वर को हजम करना नामुमकिन है।

अचानक वी का स्वर बदला, और संजीदा आवाज में उसने बताया कि पिताजी ने जमीन का टुकड़ा खरीदने के लिए खूब खोजबीन की, और अंततः एक आधा बना मकान खरीदा। ये एरिया तेजी से बढ़ रहा था, ठीक सौदा मिला, किस्मत अच्छी थी, पिता ने अपने जोर पर मकान को री मॉडल किया, एक दिन वह बनकर तैयार हुआ, सामने छोटा सा बगीचा, और पीछे नन्हा सा किचन गार्डन, गृहप्रवेश हुआ, पिता की जैसे मुंहमांगी मुराद पूरी हुई, और वो अकेला मकान में रहने लगा, तब वी ने कॉलेज में दाखिला ले लिया था, दोस्तों के साथ मिलकर पीजी का इंतजाम कर लिया था, पर कॉलेज में उसका हिसाब खास ठीक नहीं था। औसत बुद्धि और अभाव के कीड़े परेशान तो कर ही रहे थे।

पिताजी ने यह इल्म नहीं किया कि भाग्य, दुर्भाग्य जुड़वा भाई हैं, एक के पीछे एक, उनका चैन और मजा ज्यादा वक्त नहीं चला, तीन महीने बीतते तक उसे बेदखली का तल्ल नोटिस मिला। जो जगह उसने खरीदी थी, उसका रिहाइशी उपयोग अवैध था, पता चला इलाके की पूरी जमीन निजी नहीं, बल्कि सरकार की थी, कमसकम कागज यही बोल रहे थे, सरकार यही कह रही थी कि ये पार्किंग की जगह है या इस तरह का कुछ।

अब वी अपने शब्दों के साथ उतना निर्मम और चौड़ा नहीं है, वाक्य अब छोटे हैं, बीच में विराम और सोचना भी, मानो कोई तकलीफ साल रही है। स्वर में कड़वाहट सुनने में आ रही है, और जैसे एक उदास खालीपन। पर अभी तक उसने जो निंदक और विद्रूप पाठ किया था, उसके जबर्दستی को कोई भरपाई नहीं थी। फी ने इतना समझा कि वी के पिता ने मुकदमा किया, और खिंचते खिंचते केस हाई कोर्ट पहुंचा, जहां वह बिना डेट एक साल तक सड़ता रहा। बेदखली की कतार तो लटकी ही थी, न निकाले जाने की हर महीने पुलिस को रकम अदा करनी पड़ रही थी।

और उस रोज हाई कोर्ट में वी अपने बाप के साथ पहली मर्तबा गया, पिता बाथरूम में गिर पड़े थे, टांग में हल्का फ्रैक्चर था, गनीमत ये कि ज्यादा चोट नहीं आई, डॉक्टर ने आंखें तरेर कर वी को डपटा, वॉकिंग स्टिक के साथ चल रहे थे पिता...ठक ठक ठक का स्वर, जैसे इंसाफ के किसी गहरे राज या साम्य को भेद रहा है, इस स्वर से वी का पीछा कभी छूटा नहीं। कोर्ट ने खिलाफ फैसला दे दिया था। पर बाप रिव्यु या रिवीजन पिटीशन डालने पर आमदा था, इस बीच कई दांत गिर गए, बाल झड़ गए, जो बचे वो सफेद, मैं घर से हटने वाला नहीं चाहे सुप्रीम कोर्ट क्यों न जाना पड़े, वह पोपले मुंह में बड़बड़ाता, उसकी कृश काया के साथ सदा एक मूर्ख, पहलवान बदन वकील होता जो उसे जमकर चूस रहा था, मास्साब (मास्साब क्यों, यह कभी वी के पल्ले नहीं पड़ा) छठी का दूध न पिला दिया तो नाम बदल देना, वकील की बदजुबान से न जाने कितनी बार वी ने सुना, वह कुढ़ जाता, पर क्या कर सकता था, पिता को सलाह देने का अधिकार तो उसने कितने ही साल पहले खो दिया था, पर उस रोज कोर्ट को औपचारिक आदेश जारी करने थे, जिसके लिए हाजिरी लाजमी थी। वी ने अब कोर्ट में ध्यानमग्न टोड़ी के नीच हथेली लगा ली थी।

जज दूसरा मामला सुनने में लगा था, वी कुछ देर के लिए बाहर आया, दफ्तर फोन किया कि लेट हो जाएगा (उसने एक मैगजीन में पार्ट टाइम एडिटिंग शुरू की थी) जब वह कोर्ट लौटा, तो हॉल खचाखच भरा था, पिता के पास या आगे तिल धरने की जगह नहीं है, वकीलों से तो तिल बेहतर हैं, वी साइड की दीवार से सटकर खड़ा हो गया, करीबन एक टांग पर, बगुले की तरह, एक गैप से उसे पिता का चेहरा तिरछे कोण से बीच बीच में दिखाई दे जाता, लाइट के किसी एंगल में उनका चेहरा लाल चमक रहा है, स्वस्थ सा, एक सुप्त मुस्कान उनके चेहरे पर चिपकी है, वे सीधे, ठूठ से कुर्सी से सिर टिकाए बैठे हैं, मानो शीतनिद्रा में। बराबर से वी को कानून की विशाल डैस्क के पीछे जज का चेहरा नजर आ रहा है, बीच बीच में वह छुप भी जाता, वह कुछ बोल रहा है, बल्कि लेक्चर पिला रहा है, टोन बल्कि इस तरह थी मानो उपदेश दे रहा है, या धिक्कार रहा है।

कुछ सेकंड लगे वी को यह समझने में कि जज की न्यायिक फटकार उसके पिता के लिए है। जो हो रहा था, वह करीब दस मिनट लगातार चला, संभवतः ज्यादा, जज बस पीछे ही पड़ गया, पिटीशनर की अच्छी खासी मलामत, राशन पानी लेकर चढ़ाई, जैसा मुहावरा है, यह नॉर्मल नहीं, वकील भी बगलें झांक रहे हैं, जज की निंदक ध्वनि पर नैतिक पाठ का मुलम्मा चढ़ा है, मानो समाज की समस्याओं पर ऐसे पढ़ रहा है।

मलामत लंबी और आगबबूली थी। उस पर इंसाफ पसंदगी की तर्कातीत मोहर है। जस्टिस कभी ये नहीं कहता मेरा क्या उखाड़ लोगे, पर मुतमइन है कि उसका कोई कुछ नहीं उखाड़ सकता। कोर्ट की भव्य संरचना, ऊंचा डायस, उसका शालीन शऊर इस संज्ञान की तसदीक है।

जज ने मानो सीधे पिता को खदेड़ा—यू, द पिटीशनर, यू आर अ समव्हॉट मैन। आधे अधूरे इंसान, कटाफटा मानुस, जिनकी गिनती की बहुतायत है...चित भी मेरा, पट भी मेरा, है न? थाली के बैंगन, है न? जो काईया हैं, सयाने, दोगले, दोतरफा हैं, है न? कोर्ट इस खूबी से बखूब वाकिफ है, इसकी चिंता न करो जजमान!...शुरू में जज लगातार पिता को घूर रहा था, वो जस्टिस नहीं जिसकी आंख पर पट्टी होती है, पर खुली, रक्तरंजित आंखें, वादी पर किसी अज्ञात ग्लानि का बोझ ठेलती हुई, घना मौन पसरा है, और पूरा कोर्ट यह जानने को उत्सुक है कि ये कौन याची है, क्या कर दिया उसने कि लॉर्डशिप के इस कदर खफा होने की नौबत आ गई है। और पिताजी जैसे बुत हो गए थे। काठ के।

ये समझौते मैन, न इधर न उधर, ये संज्ञा है तुम्हारी, और आचरण भी, इन सालों में तुम जैसों ने जमकर मुनाफाखोरी की, अपने उल्लू गुपचुप सीधे किए, क्योंकि खुलकर कपट करने के गट्स नहीं हैं, इससे तो उठाईगीर और चोर बेहतर हैं, जो करते हैं उसमें दोगलापन नहीं, खुली रिस्क है उनकी, वे तुम जैसों से ज्यादा इज्जत के पात्र हैं, मिस्टर। तुम्हारे टाइप के लिए सिर्फ कोफ्त होती है, तुम एक नहीं बहुतेरे हो गए हो, बोझ बन गए हो...और असल में क्या लक्षण और तरीकें हैं तुम्हारे टाइप के, हं? जज ने भाषणगत लहजे से सवाल उठाया।

पूरी जिंदगी तुम ईमानदारी का फर्जी नाटक करते हो, कि भई भगवान का डर है, लॉ अबाइडिंग सिटिजन हैं, लोअर मिडिल क्लास, पर रिफ रैफ, कोई टटपूजिये नहीं, पसीने की दाल रोटी मिलती रहे, यही खुशी है, ट्रैफिक नियम का पालन करते हैं जी, टैक्स नियम से भरते हैं जी, क्यों?...वर्दी और ताकतवर के सामने धिधियाते हो, मन ही मन कि काश हमारे घर का भी कोई बाहुबली होता...मॉडल सिटिजन का पूरा मुलम्मा ओढ़ा है, काढ़ा है, पाक साफ, देशभक्त हैं जी, पूर्वज भी थे...और हर बेर कोई कमजोर, छुटभैया कानून तोड़ता है, पकड़ा जाता है, पब्लिक इकट्टी हो गई है, तो तुम सबसे आगे जेल और पिटाई और सजा की चीखपुकार मचाते हो, और ये सब तुम किसी आदर्श, प्रेरणा या विश्वास से नहीं कर रहे, ये इख्तियार तो वक्त की मजबूरी है, असल में तुम अपने चांस की घात लगाए हो, यही होता है समझौते मैन। और तुम इस बदरूप का सैपल हो!

...ये समझौते मैन हमेशा प्रेशर में रहता है, समृद्धि की सीढ़ी उसे चढ़नी ही है, मेहनत करता है, क्योंकि और चारा नहीं, और गिलहरी की तरह, वह धीरे धीरे धन जोड़ता है, गुपचुप, चाहे फाका क्यों न करना पड़े, है न जी? और एक दूसरी पोटली भी है उसके पास, जो वह बटोरता है, और वह है रोष, द्वेष, दूसरों से, जो ज्यादा सफल हैं, गुणी हैं, खुले दिल के हैं। यू सी, समझौते मैन तुम हमेशा अपनी सामर्थ्य से बेहतर पाते हो, जितने लायक हो उससे ज्यादा। पर तुम्हें हमेशा उन सबसे रंज है जो तुमसे बेहतर हैं, क्योंकि तुम्हारे मुकाबले ज्यादा लायक हैं।

तो ये समझौते मैन बाट जोह रहा है, फर्जी ईमानदारी का नाटक कर रहा है, और जो पहला, महफूज मौका मिला, ये गिलहरी तुरंत चूहे की तरह जायज व्यवहार का जहाज छोड़ देती है, सियार की तरह फिर ये मौका नोंचता है, ऊपर से दीन भेड़ की खाल ओढ़ ली है, वो तो हमेशा ओढ़ी ही थी, और फिर धूर्त लोमड़ की तरह समझौते मैन, मसलन कि तुम, वो जमीन खरीद लेते हो, उस मकान को जो अवैध है, जो जमीन न तुम्हारी है, और न हो सकती है, और ये हड़पने के बाद, ये सोचकर कि बहती गंगा में तो सभी हाथ धोते हैं, अब गंगा मैली कुचैली है तो क्या साफ करने का ठेका तुमने उठा लिया है, तुम फिर से अपनी जाली, शरीफ, सत्यवादी जिंदगी जीने लगते हो। है न जी?

पर कभी भूले भटके लोमड़ी टंगड़ी खा जाती है, और ऐसा ही तुम्हारे साथ हुआ, और तुम धर लिए गए! कितने दुख की बात है, है न जी? ये एक ट्रेजेडी लगती है, पर महाशय ये ट्रेजेडी है नहीं, और ये बात तुम्हें जतलाना जरूरी है। ताकि तुम्हें समझ में आए कि आज तुम्हें सजा नहीं इंसाफ मिल रहा है।...ये समझौते मैन आसानी से हथियार नहीं डालता। ये कोई लुटेरा लैंड शार्क नहीं है, कुव्वत भी नहीं है, रिस्क और खतरे के लिए जिगर नहीं है, उसे चाहिए कि उसके नाचीज, चुराए, कुंवारे टोस्ट पर दोनों तरफ झिल्ली सी कुंवारे मक्खन की परत लग जाए, बस, इससे ज्यादा नहीं चाहिए प्रभु...।

ये सचमुच का जज है, या कोई बहुरूपिया? हैं? कहीं कोई फेंकू या पेलू तो नहीं, आजकल थोक के भाव दिख रहे हैं, हैं न?...ये खयाल विक्रय में जरूर विचरित हुआ, पर कोर्ट में नहीं, भई ये कोर्ट ही है, इस रीडर और पेशकार को नहीं पहचाना, भैंगी आंख है, पर रिश्वत के पैसे नापने



में कभी गलती हुई है बताओ...?

जज बक रहा है और बोल रहा है। जज है, उसे कौन रोक सकता है? इस बार जज थोड़ा आगे की ओर झुक आया—इस समव्हॉट मैम को केक का चूरा पसंद है, उसे कुतरने में इसे खूब मजा आता है, छोटी मछली मिल जाए मुफ्त की, निगल लेगा, पर शार्क से तौबा तौबा, ये बगुला भगत है, इसे पहचान लो, इसने न जाने कितने साल पहली फ्री की मछली का इंतजार किया है, और अब जाकर उसे निगल पाया है, और अब इसकी गुजारिश है कि लॉर्डशिप, मेरा कोई माई बाप नहीं, निर्धन हूं, ईमानदार हूं, भगवान से डरता हूं, सदा कानून का पालन किया है लॉर्डशिप, और अब आपसे इतनी ही रिआयत चाही है कि मेरी नन्ही सी, भोली सी पाचक ग्रंथि पर इजलास की नीली मोहर का ठप्पा लग जाए। लॉर्डशिप, इंसाफ करिये इस नाचीज के साथ। इंसाफ माई फुट!

अपनी पोपली, बिन पेंदे के लोटे की दोगली शख्सियत को छिपाकर, ये अधम प्राणी, अपने जाली ईमान का ढिंढोरा पीटता है, खुद को भ्रष्ट, अमानवीय सिस्टम का पीड़ित बताकर, गुहार करता है। तन और मन से हर शोषित, दीन, हीन और उपेक्षित के देय और अधिकार को ये खुद हड़पना चाहता है, और इंसाफ के नाम पर कानून का हर दाव पेंच लगाकर ये कोर्ट से राहत चाहता है...अगर इसका बस चले तो ये अपनी कथित गाढ़े पसीने की दीन कमाई की दयनीय पोटली से चांद खरीदने की दरखास्त डाल दे, है न जनाब? आख से चंगे, नाम सूरदास!

जज ने कहा नहीं, पर उसके होंठ हिले थे। और उन्हें कोई पढ़ लेता तो जज के अपशब्द सुनाई देते : लुच्चा कहीं का!

नो, डिअर सर, ये सब नहीं चलेगा—कपट के लिए रती भर, आध इंच की रिआयत नहीं है। ये कोर्ट याची की हर धूर्त दलील के प्रति सख्त ही नहीं सखततम है। दलील जिसका आधार ही खोटा और अवैध है।

अभी और भी कहना बाकी है, सो जज ने कमर कसी। हमारे महान देश का भविष्य शहर और महानगर के स्वस्थ विकास पर टिका है। शहरी नवीकरण और नियोजन निर्णायक है, और अनिवार्य है। अगर जस्टिस स्मार्ट नहीं हुई, तो स्मार्ट सिटीज कैसे बन पाएंगे? किसी केस के फैसले में ऐसे मौके आते हैं, जब व्यापक जनहित में विधि के किन्हीं सिद्धांत को एक दृष्टांत जजमेंट से मस्तूल पर कायम और साफ करने की जरूरत होती है। और ये एक ऐसा ही क्षण है, जज ने कहा, मानो जजमेंट के भीतर का पल कोर्ट के मौजूदा क्षण के समवर्ती है, और जिस ज्वलंत निगाह से वह इस धूर्त और क्षुद्र क्लर्क की कपट आत्मा में झांक रहा है, वह कोर्ट की डिग्री का पहला ड्राफ्ट है।

जज पूरे केसरिया रंग में रंगा है, कोर्ट में मौजूद हर फरियादी को न जाने क्यों लगा। केसरिया सूर्य का रंग है, अग्नि का, भोर और सांझ का, केसर त्याग का रुसूख है...।

*अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥ हे अग्निदेव! हम सब आपकी स्तुति करते हैं; आप जो यज्ञ के पुरोहितों, सभी देवताओं, सभी ऋत्विजों, होताओं, और याजकों को रत्नों से विभूषित कर उनका कल्याण करें...।* पूरे वजन से जज ने कहा कि इस मुआमले में कानून के दो प्रतिस्पर्धक मुद्दे हैं। पहला तो, जाहिर है, एक फर्जी सेल है, जिसमें व्यक्ति 'ए' ने व्यक्ति 'बी' को ऐसी संपत्ति बेची जो कानूनन उसकी नहीं है। दस्तावेजों का मत है यह संभवतः सरकारी जमीन है। ये भी इशू है कि शायद यह जमीन किसी पुराने वक्त गलत तरीके से अधिगृहीत की गई थी। ऐसा कोई सबूत नहीं कि किसे और कितना मुआवजा दिया गया। फिर लैंड पॉलिसी और उसके उल्लंघन का दूसरा मुद्दा है। अवैध बस्ती और कॉलोनी के रेगुलराइजेशन, अतिक्रमण और अवैध कब्जे के संबंध में नीतियां। इन सब में सामंजस्य बनाने की जरूरत है।

जज ने और कानून बांचा, और तथ्यों का किला बनाया। उसकी निंदा यह बहस रच रही

है कि दिल्ली का व्यापक जमीन कब्जेदारी स्कैम, और लैंड माफिया के कलयुग की प्रदूषित गंगोजी मानो सामने विराजे कम दर्जे के क्लर्क के सियार व्यवहार और क्षुद्र लालच से उपजी है, जिसका तरीका ही यही है कि सूरज निकले न निकले, अपना हाथ तो साफ कर ही लो!

तुम्हारे जैसे लोग, एक बार फिर जज ने दांत पीसे, समव्हॉट मैन, तुमसे शर्म भी लज्जित है, तुम तो मौका लगे तो धूप चुरा लो, नदियों का पानी, लोगों का वक्त! नो सर, इस कोर्ट के मन में तुम्हारे लिए कोई हमदर्दी नहीं, तुम न दया के पात्र हो, न रिआयत के, क्योंकि एक मिसाल कायम करनी जरूरी है। इस महान देश के सिस्टम और नैतिक तंतुओं में जो कचरा फंसा है, उसका पूरा बोझ तुम क्यों न सहो...तुम मोथे की तरह हो, क्योंकि तुम उसी निर्मल घास की तरह दिखते हो, जिसे तुम नष्ट करते हो, तुम्हें उखाड़ना जरूरी है, जड़ समेत, उस इमारत से वर्जित, और निष्काषित, जिसे तुमने घर बनाया है, और ये सजा भी काफी नहीं है जनाब...।

अचानक जज वाक्य के बीच रुक गया। उसने वह शब्द निगला, और दूसरे शब्द भी जो उसमें मुंह में थे, अनजान दुश्मन के लिए अंधी नफरत का आलम जज के रोम रोम से बह रहा है, कुछ अचानक गड़बड़ और अनुचित सा लगा, मेरा पिता जो इस पूरी नौटंकी के लंबे वक्त में बुत की तरह स्थिर और सीधा था, उसका चेहरा और सिर किसी क्षण एक ओर लुढ़क गया था, वो मर गया था, कम से कम तासीर तो यही कह रही थी...फी...इस दौरान वो न जाने कब मर चुका था, और जस्टिस की कुर्सी मेरे मेरे बाप के ऊपर न्याय के कोड़े बरसा रही थी, और उसकी मौत खौफ से हुई, शर्म और अपराध के खयाल से...कितनी थी उसकी गलती, अगर थी भी तो?... खून, मेहनत और पसीने की कमाई से उसने अपने सिर पर अपनी छत का प्रबंध किया था, एक रिहाइशी कॉलोनी में, जहां बरसों से लोग रह रहे थे, रह रहे हैं, आज भी, न केवल वह घर जज ने उससे छीना, साथ में उसकी आबरू, अस्मिता और जान भी छीन ली...।

जज के सख्त फैसले से मुल्जिम को कोर्ट में हार्ट अटैक। अस्पताल पहुंचने से पहले दम तोड़ा...ये चार लाइन की खबर एक आध अखबार के तीसरे पन्ने पर आई। जज ने डिक्री एक हफ्ते बाद जारी की, और वही किया जिसकी धमकी खुले कोर्ट में दी थी। उसने न केवल बेदखली का आदेश जारी किया, बल्कि उस पिंजरे से मकान को सरकारी रेट पर डीडिए को सौंप दिया, और जो पैसा मिला उसे लीगल एड सेल के सुपुर्द कर दिया। ताकि सनद रहे...न रहे बांस न बजे बांसुरी, यह उसका कुत्सित प्रतिशोध था, है। और, अंततः यह हुआ कि उस विशालता में फैली, घनी, आबाद कॉलोनी में मेरा बाप अकेला इंसान था जो घर से बेदखल हुआ। जिस मकान से मेरा बाप निकाला गया, उसमें भी न जाने कैसे आज के दिन एक परिवार रह रहा है, रहता है।

...पर फी? वह अध करवट, लुढ़की सी, इतनी देर से कर क्या रही है? क्या उसे नशे से होश है? क्या उसने कुछ सुना भी? वह जैसे किसी बदतहजीब तूर्यनाद से उभरी, छले जाने, गैर वाजिब बदसलूकी, बलजोरी का अहसास...मान न मान मैं तेरा मेहमान, इस फिकरे में उसने अपने जिद्दी बांस को कई बार कसा है, ये चाहता क्या है, ये जज, फी ने गुम्से का फाहा बनाने की कोशिश की, पर आवाज में सिर्फ खीज समा पाई, अधम और पाजी का मुकुट आखिर कौन सहला रहा है, जज के बहाने वी, या वी की हिमायत में जज, और ये, इतनी बकबक क्यों? फी को लगा कोई अलैदा सा पंजा है जो उसे दबोच रहा है।

वी की रूँ रूँ के दोहराव में अब यह कसक शामिल है कि पिता, पूज्य, दिवंगत पिता की आत्मा को शांति कैसे मिले। उसके मनगढ़ंत में पिता की रूह ने कभी कोर्ट की हद छोड़ी ही नहीं, वो यहीं फड़फड़ा रही है, अन्याय और विश्वासघात के दोहरे प्रहार से आहत, वह कोर्ट से कोर्ट में मंडरा रही है, कि वह कभी न कभी, कैसे न कैसे न्याय का जगमग, बेदाग रूप भरपूर एक्शन

में देखे, सुने, समझे, उसे तसल्ली मिले और वह जुल्म की यातना से मुक्त हो।

वाइन की बोतलें खत्म हो गई हैं, और वी का बयाने किस्सा भी...लगता है वह ऊंधने लगा है, फी की धुंधलाई, विस्फारित आंखों ने यह सब जब किया, एक क्षण के लिए उसे अफसोस हुआ कि ये रात घटी है, काश ये इस तरह से न घटती, ये जगह पंगोट नहीं होती, वे यहां हॉलिडे और प्रेम के पुनर्जन के लिए न आए होते, मेरे आदमी का यह कन्फेशन मैंने न सुना होता...किसी तरह वह अपने मन मस्तिष्क के उलझाव को कुछ सुलझा पाती, ऐसे खयाल से बच पाती जो न सच है न झूठ, चीजें जो न सिद्ध हो सकती हैं न खंडित...या इस तरह की कोई चिंता या दिलासा ही होती, विराग और निरुत्साह का ऐसा मरुस्थल सामने न फैला होता, कुछ तो हरकत होती मन या शरीर में, एक विराट से चिढ़े, टेढ़े शून्य के अलावा...।

सुबह नींद खुली तो वी का सिर और माथा हल्का और साफ था। वह दरवाजे तक आया। लंबे बरामदे से स्टेप्स नीचे जा रहे हैं, और उनके आगे बगीचे का विस्तार है। एक पत्थर की शिला जिसकी सतह पर पंगोट की ख्याति और खूबियों का वर्णन है। पक्षी और उनकी किस्मों के बारे में। एक तरफ झूला है जिस पर फी बैठी है, पहाड़ की तरफ मुखातिब, वी की तरफ पीठ है। उसकी देह बीच बीच में कंपकंपी से भर उठती है, बाहों के ऊपर शॉल का कसाव है। फी ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। जब पिछली बार वे यहां थे, फी हर बार पीछे मुड़ी थी, कहती थी तुम अपनी नजर से मेरी पीठ पर रेंगते हो...वी को कोई इल्म नहीं वह क्या सोच रही है। उसे ठीक से याद नहीं रात में नींद का पर्दा किस तरह गिरा था, जब उसका कहा खत्म हुआ था, या उससे पहले भी। कि फी ने क्या कहा, या उसे छुआ था, या आगोश में भरा था...? करीबन दो घंटे में वे दिल्ली के लिए निकलेंगे। वी मुड़ा और कमरे में आ गया। फी ने पैकिंग कर ली है। वी को तैयार होना है। उसे फी के जिप हुए सूटकेस का रुख अच्छा नहीं लगा, जिस तरह वह दरवाजे के किनारे लंबूतरा खड़ा है।

बहुत बार हम अपने दुश्मन या विपक्षी को ज्यादा आंक लेते हैं। रोज रात ये बात जज ने खुद से जतलाने की आदत डाल ली है। हमें लगता है कि विरोधी कोई बड़ी, निधड़क, तीसमारखां ताकत है, जिसके पास हर चीज की काट है। और हम मानो शहद के निविड़ में फंसी मक्खी हैं। जो असल होता है, जज ने खुद को आश्वस्त किया, अमूमन इसका पलट होता है...विरोधी जो छिपे, अंधेरे किनारों से धमक दिखाता है, वह असल में ज्यादा डरा और बेचैन है। प्योर लॉजिक, नहीं? सोच के इस पैटर्न में जज का यकीन बढ़ता गया है। पर उसकी प्रतिक्रिया अजीब और तिरछी है। उसने साहस दिखाया। पर उसके जगे आत्मविश्वास का निवेश उसके खुद के खयाल में भी अप्रत्याशित है।

हमसैनिक फार्मस केस में उसका रवैया लगातार निष्क्रिय, दबू और तुष्टि वाला होता गया है। जाहिर है, उसके खिलाफ की ताकतें खुश और आश्वस्त हैं। पर कोर्ट के बाहर के उसके लोक व्यवहार में जज की हिम्मत और विद्रोह के स्वर में अजीब गुस्ताख सा उछाल हुआ है। सिर्फ बहादुरी ही नहीं—बल्कि एक ठीठपना, धृष्टता, बेलौस जैसे, असंयम और विषम का स्टाइल, बेपरवाह...कल का सूटबूटधारी जैसे रातोंरात उठी सूंड के हाथी की याद दिलाने लगा। ये आमूल, बेपर्दा बदलाव है, और इसके छिंटे घर की छत के नीचे भी गिर रहे हैं। ये उलटपलट शीरी की नजर से अछूता नहीं। उसके जगे कौतुक में सम्मोहन का खिंचाव भी है। शीरी के रुझान और इच्छा का स्पंदन अचानक जैसे तेज हो गया है। ये मेरे चतुर नर, जस्साब बांके कब से हो गए, शीरी ने सोचा। ये दम और दंभ कहां से चुरा ले आए जस्साब? किसी मौके पर शीरी जज के बगल देहरी पर

लड़खड़ाई, और इस बहाने उनकी बांह पकड़ी, और पल भर के लिए उसे जकड़ा, सहलाया। आश्चर्य : मछलियां बनी थीं पुट्टों में, कठोर स्नायु...चट्टान की तरह, जैसे पहले के सालों में..श्रीरी ने उत्सुक शिनाख्त की, एक दिन वह छत के कमरे में गई, उसे खोला तो दंग। जस्साब इन दिनों जिमिंग कर रहे हैं! ट्रेडमिल के अलावा नए वेट्स...इस उमर में? वहीं एक मेडिकल रिपोर्ट पड़ी दिखी। जस्साब के टेस्ट्स : टीएमटी, इको, बाँडी मास नॉर्मल से बेहतर। फिटनेस स्कोर 100 में 87। श्रीरी वहीं थोड़ी देर बैठी और आईने में अपनी काया देखते हुए मुखर मुस्कराती रही। डॉट इज ही अप टू, दिस फेलो, एट हिज एज?

डॉट इज दिस फेलो अप टू? यही सवाल ब्लैकमेल ग्रुप को भी तंग कर रहा है। कोर्ट या कोर्ट से बाहर, जज की हर हरकत पर ग्रुप ने भरपूर नजर रखी है। शुरु में ग्रुप को पूरा भरोसा हो गया कि जज उनकी गिरफ्त में है, उसका हिसाब किताब हो गया है। पर ये उल्लास और भरोसा बहुत दिन नहीं चला, जब जज के आचरण के बारे में अजीब रिपोर्ट आने लगीं, शुरु में उसके पहनावे और ड्रेस को लेकर, और फिर कि वह तमाम अवसर और समारोह में कब, किससे और क्या कह रहा है। तब भ्रम और चिंता की स्थिति बनने लगी। यह कि जज ने कोर्ट में जो दबूपने का रुख अख्तियार किया है, कहीं वह उन्हें बहकाने की तरकीब तो नहीं? उसकी अंटी में तुरुप का कौन सा पत्ता है, जिसकी ग्रुप को जानकारी नहीं? ये जज किस तरह की उस्तादी दिखा रहा है? क्या इतनी लियाकत है इसमें कि हमसैनिक के केस में कोई तहलका मचा दे, उलटफेर कर दे? इसके दिमाग का स्कू कहीं ढीला तो नहीं है? हमें 100 परसेंट गारंटी होनी है, फाईनेंसर्स ने दो टूक कहा। सौ की छोड़ें जनाब, प्लस 80 की चिंता करें।

ग्रुप ने इतना समझ लिया कि एक नई स्क्रिप्ट प्ले हो रही है, और उनके पैर तले की जमीन ठोस या महफूज नहीं है। सौदे का खेल अब जज चला रहा है, और उसके पास कोई पत्ते तो हैं, जिनका अता पता नहीं हो रहा। इसे और माल तो नहीं चाहिए?...इस राह पर अभी चलना ठीक नहीं, यह समझ में आया। कहीं जज ने ट्रेप लगा दिया तो सीधे फसेंगे, समझो! ग्रुप कुनमुना रहा था, उन्हें ऐसी ऊहापोह की स्थिति की आदत नहीं है, बरसों से वे सिस्टम की हड्डी बिठा रहे हैं, फेंट रहे हैं, क्या नेता, बाबू या जजी, पर ये अजीब टाइप की प्रॉपर्टी सामने आई है, ये जज! कुछ को लगा इस रास्ते नहीं निकलना चाहिए था। जज को फिट करने के चक्कर में कहीं खुद फिट न हो जाएं?

जज की नई बचकाना शोखी और तड़क भड़क से श्रीरी चकित है, और मुदित भी। अच्छा उसे ये लगा कि देवराज कोई कौआ नहीं जो हंस की चाल चलने लगा है। मोर बने हैं जस्साब, इटला रहे हैं। और उनके ध्यान में मेरे सिवा कौन हो सकता है? श्रीरी ने सोचा। यह खयाल प्यारा है। श्रीरी थोड़ा बहुत इतराने लगी।

सच में छैला बना है जज, खुदराय रहा है। पीछे क्राफ्ट का एहतियात है। एक तो वार्डरॉब पूरा नया कर लिया है : दो तीन भड़कीले जैकित, तेज रंग के शर्ट, चमकीले ट्रैक सूट, चुस्त कट का नया टू पीस सूट, गोल्फ कैप, और श्रीरी ने कुछ वी कट, टाइट ब्रीफ्स भी देखे। और जब वे बाहर डिनर, पार्टीज, जलसे, ब्याह, सभाओं में जाते, तो जज ने सुर्खी से ड्रेस करना शुरु कर दिया। जब वो संबोधन या स्पीच देता, तो उसके स्टाइल में अनेकार्थी उग्रता, और अल्लड़ बेपरवाही होती। तुरही बजाने की तरह, श्रीरी का खयाल है, बैंड बजाने की तरह, चाहे अपना क्यों न बज रहा हो। उसकी वक्त बेवक्त की हंसी में अजीब सा छिछोरपन है, अकहे आक्षेप से भरा, पर ये भी है, श्रीरी ने देखा, कि जज की तड़ी और आमपसंदगी में निरंतर इजाफा हो रहा है। और घर में, प्राइवेट में, संबंधी और मित्रों के बीच, श्रीरी तक के साथ, उसके बोलने का लहजा टकराहट

और छेड़खानी की तरह है, मानो चैलेंज कर रहा है, पासा फेंक रहा है, एक जुआरी का दिल, इस तरह कि चलो भिड़ो तो मुझसे। जाहिर है, हर कोई टकराव से बचता। बोलचाल में जज दोहरे मतलब और बेवजह की दमबाजी दिखाने लगा। बल्कि उसके चलन, मुद्रा, निगाह और हाथ के इस्तेमाल के तरीके में अजब सी बेअदबी दिखती जिसे शब्द देना या इंगित करना कठिन है। जैसे मैल धो रहा है। वह अभद्र हो जाता है, थोड़ा खुरदुरा, और फैशनपरस्त तरीके से अश्लील। हां में हां मिलाने के अलावा उसने दूसरे का पास कोई अस्त्र नहीं छोड़े हैं। सबने ये बदलाव नोटिस किए, पर खुलकर किसी ने भी न कुछ कहा, या किया, लगता है जैसे कहने को कुछ बचा ही नहीं है, शायद लोगों ने इस तरह से तर्क बनाया कि उम्र के साठवें के बाद ऐसे ऊटपटांग और अनर्गल बदलाव आएंगे, तो तकाजा उम्र का ही है। और ये तो सच है ही भाईसाहब कि जो जीते वही सिकंदर! सिर्फ ज्ञात ने आते जाते एक बार कहा : लगता है कुछ लोगों के जीवन की कई इनिंग्स होती हैं!

आखिर क्या जीत लिया है जस्साब ने? शीरी ने इसके बारे में हल्के से, मुग्धता से सोचा। जीता तो है, इसमें शक नहीं, और सीधे सीधे कुछ खोया भी नहीं। किन्हीं क्षणों में शीरी को लगा उसे पति को थोड़ा चेताना चाहिए, कि हद का परहेज बरतने में क्या जाता है। पर क्यों? रिटायरमेंट में कुछेक महीने बचे हैं। जस्टिस के नम्र और विनीत अंगवस्त्रम् तो सारी उम्र धारण किए जस्साब, और दबू कहलाए, लकीर के फकीर, दकियानूस...मक्खीचूस...अचानक जस्साब के लिए बहुत सा दुलार आया शीरी के मन में, हिलकोरे की तरह, अब रौब बना है, जस्साब की तूती कुछ कुछ बोल रही है, तो क्या बुरा है, ये सौदा फायदे का है, शीरी ने तय किया।

और ये सब मेरी खातिर? कि नहीं? शीरी ने अपने गुलाबी होंठ से पूछा। मैं जरिया और निमित्त, मेरी प्रेरणा, सच पूछो तो! जस्साब जस्टिस के बांके घुड़सवार बने हैं, अब पैदल होने की क्या जरूरत है, शीरी ने माना। और इस अनमोल, असिद्ध अहसास को उसने पोस्ट रिटायरमेंट लाइफ के लिए अपनी छाती के भीतर सहेज लिया।

...जज लोग पब्लिक में लोकनीति और बखेड़े वाले ज्वलंत मुद्दों पर व्यक्तिगत राय देने से बचते हैं। इसका ठोस आधार भी है। जज के लिए कानून या समस्या की व्याख्या का प्रदेश कोर्ट के भीतर है। जस्टिस कोर्ट के भीतर आंख पर पट्टी लगाता है, और कोर्ट के बाहर मुंह पर। और किसी जज ने किसी रौ में बहकर नीति के मुद्दे पर अपनी राय सार्वजनिक प्रकट कर दी, और मुद्दे से जुड़ा कोई केस सामने आया, तो रिव्यूज करने की नौबत होती है।

खबरी और अपने लोगों से ब्लैकमेल ग्रुप को लगातार चिंताजनक रिपोर्ट मिल रही हैं कि जज किस तरह सभा, लेक्चर्स, सेमिनार में अजीब तरह की बातें कह रहा है। और उसके बयान आक्रामक हो गए हैं, धमकी टाइप के। विषय कुछ भी हो, वह इधर का उधर से जोड़ गांठकर, नगरीय विकास और प्रबंध पर कठोर कदमों की पैरवी कर रहा है। खास तौर से मेट्रोपोलिस का उदाहरण लेकर, जहां, बकौल जस्टिस देवराज प्रणाम, सब कुछ जो विकृत और असहनीय है, एक जगह पर संकट का अजगर बनकर खड़ा है : फाइनेंस, निवेश, टेक्नोलॉजी, नई खोज, प्रवासन, अवाम, पॉलिटिक्स, सत्ता और अपराधी का नेक्सस...कोई माने या न माने, जज आंख नचाकर कहता, अजगर का मुंह खुला है, और अगले दशक, दो दशक में हमारे 4, 5 या 10 महानगर किस तरह मैनेज होते हैं, समझो देश का भविष्य इस सवाल के साथ में जुता है। राजधानी को ही लो, जिसकी हर रग और सीरत से हम वाकिफ हैं...या तो मैनेज करो, नहीं तो आत्मनाश तय है। सफाई, कूड़ा, वेस्ट, प्रदूषण, सड़कें, ट्रांसपोर्ट, ऊर्जा, इनकी बात कर, वह जमीन के जमीनी मुद्दे पर शुरू हो जाता...साथ में धौल या कुड़कुड़ी हंसी-ठक ठक, टेबिल पर, डायस के टॉप पर, अपने माथे पर, या हवा में कोई स्पाॅट, उंगली से, पेन, पेन ड्राइव, क्लिप, चम्मच, जो भी हाथ में होता, या

हाथ के नजदीक, ये पीठासीन जज की बेवश व्यंजना है, कानून की हथौड़ी की चेतावनी, क्योंकि जब भी जज ने लैंड पॉलिसी के बारे में पब्लिक राय दी, उसके लिए वह जजमेंट का संतोष है, उस ऑर्डर का एवज जिसे कोर्ट में सुनाने की उसकी हिम्मत या औकात नहीं है...निंदक हंसी तब आती, जब वह कहता कि मुद्रा चाहे पेड़ पर उगती हो, उसे पर्सनल अभ्यास तो नहीं, पर जमीन पेड़ पर नहीं उग सकती, जमीन जितनी है, उतनी ही हमेशा रहनी है, और अगर इसके इस्तेमाल में कोताही और कल्ल, जी हां मैं कल्ल कह रहा हूं, क्योंकि जमीन का नाजायज कब्जा और दुरुपयोग कल्ल से कम संगीन तो नहीं...मैं लैंड माफिया की बात कर रहा हूं, लेट मी बी क्लियर, अगर ये ऐसे ही चलता है, बरकरार रहता है, तो जिस कचरे में हम आज हैं, उससे गहरे कचरे में कल होंगे... जज ने कई बार शांघाई और बेजिंग के अद्भुत कायाकल्प के उदाहरण दिए, जनता के रीलोकेशन और जमीन के पुनर्विकास की अहम जरूरत, और चीन की अर्बन कमीशन का पराक्रम जो नगर विकास और गरीबी के खात्मे के लिए हर वर्ष करीबन 30 लाख लोग रीलोकेट कर रहा है, और सैंकड़ों हजार एकड़ जमीन का पुनर्विकास।

ये फालतू के, दिल, दिलासा के घटिया लेक्चर हैं, सठियाने का केस है, या हमारे लिए कोडिड मेसेज? अ वार्निंग? ब्लैकमेल ग्रुप में यह सवाल उठा, पर अनिर्णीत रहा। ये मूर्ख कभी चीन गया भी है, या यूं ही बांच रहा है, किसी ने इस तरह भड़ास निकाली। ग्रुप के स्ट्रेटेजी सेशंस में अजीब सा बेबस तनाव पैदा हो गया है। महंगे सिगार, सिगरेट के धुएं और सिंगल माल्ट की अलख गंध में बेताबी के साए तैर रहे हैं। जहां वे मिलते हैं, वह एक बाय इनविटेशन ओनली रेस्टो बार है, अरावली के आरक्षित जंगल के पास, या बहुत संभव, ठीक बीच में। किसी तहखाने या काल कोठरी की शकल में, मय सलाखें, जाले, दीवारों पर बुलेट के छेद, कुंदों से लटकी जंजीरें, और ऊपर छत से उलटे टंगे स्टपड चमकादड़, एंड, ऑफ कोर्स, बेहद खूबसूरत बार और डाइनिंग स्पेस...एक जगह ये लाइनें : स्टेप इन, व्हेर एंजिल्स फियर टू ट्रेड...वहीं एक स्विच के साथ भरवां डमी, स्विच दबाने पर ये जुमला : बड़े बड़े बहे जाएं, गधा थाह ले!...और बार के ऊपर पीतल के अक्षर : शरारती शैतान की जन्मत!

जिस ब्रोकर ने जज को विला बेचा था, वह भी अर्चभित है। अलग अलग राय है, सब में खतरा—जज की करतूतें : वो चैलेंज कर रहा है या हल की गुहार? रिट से रिक्यूज करने का पैतरा? कि उसका पूर्वाग्रह है? पर ऐसा होने के लिए उन्हें ये पॉइंट अदालत में कहना होगा। और कहीं लेने के देने पड़ गए तो? कहीं उसे ज्यादा तो नहीं चाहिए? विदेशी बैंक? सौदेबाजी का निमंत्रण तो नहीं? दांव बड़ा है। पीठासीन जज को ब्लैकमेल करना, ये छोटी बात नहीं। अगर उसने एफआईआर कर दी तो? सरकार का क्या रवैया होगा? नेता दोनों तरफ से खेल सकते हैं? गुल्थी ये है : ये अनाड़ी या उस्ताद कोर्ट में क्यों गाय बना हुआ है? काठ का उल्लू? ये डेट पर डेट देता है, कभी ना नहीं, स्थगन पर पहले आफत मचाता था, अब पूछता है, न डांट, न फटकार, मुंह से शहद गिराता है। इस तरह तो केस बरसों चले, पर पक्ष में भी कोई फैसला नहीं देता, और फिर रिटायर कर रहा है चंद महीने में...तो शायद यह यथास्थिति का प्रस्ताव हो, जो हम चाहते हैं, पर...ये पर ही तो नाक का बाल बना है, बरखुरदार! नाक का बाल नहीं मिस्टर, गले की हड्डी कहो, न दोस्त न दुश्मन! उसकी आंख में बावली रंगत दिखती है, नोटिस किया तुमने, सदा गलत आदमी से आंख मिलाता है, मुझे तो अदेशा है कई बार आंख मारता भी है, यू मीन विंक्स? जी हां, और अजीब मौकों पर। कुछ और ही चलता लगता है इसके दिमाग में...कुछ डरावना, मनहूस, धमाकेदार। उस जज की कुर्सी पर कितनी नालायकी से बैठने लगा है, देखा तुमने? नालायकी? यार तुम भी...अनवर्दी, ऑफेंसिव!...जैसे अब फार्ट किया, अब किया...दिस इज टू मच! मैं बतला

रहा हूँ न, वो जो बार बार आगे होकर सुनने का नाटक करता है, मे बी ही इज फार्टिंग!...और उसकी ड्रेसिंग देखी हैं इन दिनों? छैला एकदम...ब्रोकर ने कन्फर्म किया कि जज किसी सायकियाट्रिस्ट को नहीं देख रहा है, या कोई डॉक्टर। औरत? नो, भनक तक नहीं। शायद ब्रोकर की तैयारी पूरी नहीं?...अब जो है सो है।

एक बार कोर्ट में जज ने एक साफ, अमंगल सवाल किया था, और खुद जवाब भी दिया था : जनकथा का अनिर्णीत सवाल : बिल्ली के गले में घंटी कौन बांधे? और जवाब : कोर्ट से बेहतर कौन उम्मीदवार है? लेट जस्टिस बैल द कैट!

इस नकली कालकोठरी की बनावट के बार में कैट फिर से उभरी है, गजब है कि एक दीवार पर प्राचीन कथा की बिना घंटी की कैट दिख रही है। कोई अज्ञात पेंटिंग। असल में यह जापान का एक वुडब्लॉक प्रिंट है, ओरिजिनल 1900 के आसपास का...। एक रुई का गोदाम है, बोरियों के ढेर पर अनेक चूहे, जिसकी चोटी पर एक चूहा है जिसके पास घंटी है। बाईं तरफ की दीवार के ऊपरी सिरे के रोशनदान से एक बिल्ली छतों से कूदती हुई गोदाम की ओर आती दिख रही है...। एक लंबे बालों वाला आदमी वुडप्रिंट को ढेर तक देखता रहा। वह अभी तक खामोश था। वह सबकी ओर मुखातिब हुआ, एक लंबी सांस ली, और कहा : बहस का सवाल ये है कि ये ब्लडी कैट है क्या चीज? इसका चक्कर क्या है, ये क्या चाहती है? फ्रेंकली, हमें कोई इल्म नहीं, इस बारे में सब जीरो है। और जो मेरी चिंता है, सबसे बड़ी चिंता, वो ये है कि मुझे शक है इस हरामखोर जज को भी पता है उसका प्लान क्या है! दो अंधे हैं, एक वो और एक हम, जो ब्लफ खेल रहे हैं!

हिसाब ये लगाओ कि किसकी रिस्क ज्यादा है। यह बोलने के बाद उसने अपने दोनों हाथ की हर नस चटका दी।

इन दिनों जज तल्लीन नींद सो रहा है। सांस में चैन है। रात में बाथरूम जाना भी कम हो गया है। खरटे भी कमतर। और पिछले महीनों के मुकाबले उलट ये है कि शीरी है जो कई बार सोये खाविंद को मुग्ध, मिलीभगत की आंख से निहारती है। दिन के दिखावे और डींग में पति की काफी शक्ति जाती है, उसे आराम चाहिए, और वह पा भी रहा है। ये नई चीज जज की उसे अच्छी लग रही है। कि जो वह चाहता है, पा भी रहा है...एक वक्त जस्साब जजी के इम्तहान में खरे निकले थे, और इन दिनों दूसरे इम्तहान भी उत्तम से पास कर रहे हैं! कभी शीरी हाथ सरका कर जस्साब की बाइसेप्स छूना चाहती, मसल्स की मछलियों की ताकत और तसल्ली, उन्हें हौले से दबाना, पर वह ऐसा करने से बचती है। वह इंतजार कर रही है, क्यों, वह खुद ठीक से नहीं जानती। या शायद वह बेहतर से जानती है, और इसीलिए एहतियात बरत रही है? जस्साब छत के कमरे में कसरत कर रहे हैं, वह कल्पना करती है, और मुस्कराती है। रोमांटिक तो शीरी कभी नहीं थी। जरूर ऐसे द्रव्य होते हैं जिनमें दिल की कठोर कीलें भी तैरने, इठलाने लगती हैं!

दो एक दिन पहले जज ने अंततः घर, अपने घर, खरीदे घर की बात उठाई। मेरे पास चाबियां आ गई हैं, हम जब भी जा सकते हैं...पर एक इशू है...दिवक्कत नहीं है, सिर्फ एक रद्दोबदल है!...कोर्ट के आदेश का जैसे संशोधन होता है न, उस टाइप से। जज ने पूरे आत्मविश्वास से ये बात कही, स्वर में दुविधा या घबराहट नहीं है। या कोई तनाव। शीरी को जज के बर्ताव में डर नहीं दिखा, और वह खुश हो रही है। और रसानंद इसका ज्यादा है कि जज की आवाज में उल्लास और जिंदादिली का मिजाज है। वाह रे मेरे न्याय के लीलाधर!...वही भाव और व्यंजना जब बरसों पहले जस्साब ने पहनाने के लिए एंगेजमेंट रिंग का डिब्बा खोला था...जज ने कुछ और कहना चाहा,

पर बीवी के किसी इशारे पर वह रुक गया। मुअत्तल। हवा में टंगा सा...।

हम प्लान करते हैं न, कब जाना होगा, वाजिब होगा। टाइमिंग मुबारक होनी है न? शीरी ने वारी वारी आवाज में कहा। संज्ञान की सरसराहट जज के भीतर दाखिल हुई। शीरी ने भी महसूस की जस्साब की सरसराहट।

तो तुम्हें मालूम है? मतलब था...माने है? जज जैसे उछलने से एक पल दूर है।

जिप अपनी कितनी बार खुली छोड़ते हो जस्साब, मैं ऊपर चढ़ाती हूँ कि नहीं? डिस्कस तो नहीं करते...तो कितनी बेर आप ब्रीफकेस खुला छोड़ते हैं, बंद मुझे करना होता है न?...तो तुम...? शीरी ने हां का सिर हिलाया। सबूत के लिए जज के बेहद नजदीक तक आई, उसकी जिप नीचे तक उतारी, और फिर ऊपर तक चढ़ा दी! एक समूची, अभंग गति में। जज पाताल तक उतरा और जन्त तक उड़ा!

अब जस्साब कोर्ट के लिए ठीक से तैयार हैं, हैं न? तो जाएं! शीरी की आंखें चमक रही हैं, और ये चमचम चमक दिन भर जज के साथ रही। व्हूशश—इस तरह की हुंकार सी भरी जज ने, जैसे ही कार में बैठा। ड्राइवर बेचारा क्षण भर के लिए घबरा गया। कार कोर्ट की ओर दौड़ने लगी। कोर्ट में जज ने दिन के सारे लिस्टिड केस सुने। सिर्फ हमसैनिक फार्म की याचिका में अगले महीने की डेट दे दी।

ग्रुप के लंबे बाल वाले लीडर को कभी किसी ने स्तब्ध, भौंचक्का नहीं देखा। सो, वह हक्का बक्का न होता, पर चौकता जरूर, अगर उसे पता चलता कि जज के दिमाग में क्या चल रहा है, कैसे फूल वहां खिल रहे हैं। लंबे बाल ने दंतकथा को मिक्स किया, और जज को बिल्ली समझ कर देखा, और खुद और अपने संगियों को माना कि हम चूहे हैं, जो बिल्ली के गले में घंटी बांधने चले हैं। ये मिक्स अप विचित्र नहीं। अगर इस मुहावरे का सही इस्तेमाल करें तो बिल्ली असल में हमसैनिक फार्म का अवैध, मुकम्मल विस्तार है। और तंत्र का हर नौकर और शाह चूहा है जो बिल्ली के गले में घंटी डालने का स्वांग कर रहा है। जज ने जस्टिस को चूहों के निमित्त घंटी डालने के लिए मुकर्रर किया है...इस तुलना की कोई वकत नहीं क्योंकि तंत्र को चूहों की तादाद की तरह कोई नहीं देखता। पर ये इतना गलत भी नहीं क्योंकि चूहे के मिजोरम के मौतम और उसकी वजह से अकाल के प्रकोप से कौन नावाकिफ है। तो अगर रूपक को ठीक से तर्कसंगत करें तो जज को बड़ी बिल्ली या मेटा बिल्ली या काल्पनिक बिल्ली कह सकते हैं!

बिंदु ये है कि बड़ी बिल्ली के मन में तंत्र के चूहों के लिए कोई भूख या रुचि नहीं। पांसे डल रहे हैं, ब्लैकमेल ग्रुप अंधा है, पर जज की बड़ी बिल्ली अंधी नहीं, उसने अपनी निगाह फेर ली है, और उसके जेहन में अन्य तरह की मुहिम छिड़ी है, और जज्वात का तूफान।

खुद जज के लिए, हालांकि इस बात का उसे पूरा अहसास नहीं, हमसैनिक केस की अब कोई अहमियत नहीं। बिरले ही वह केस का खयाल करता हो। और इन दिनों, जब उसके सामने यह केस आता है, तो वह किसी और के जिम्मे का सपना देख रहा है, या जो जज पीठ पर विराजा है, वह खुद नहीं, बल्कि कोई और है जिसके साथ उसकी धुंधली सी वाकफियत है। वियोजन लगभग पूरा है। एक वकत था जब जज ने शुद्धता की विधि में कीर्ति की प्रभा तलाशी थी। केस के यज्ञ में पूरे हमसैनिक फार्म को ढहाने के आदेश की आहुति का तसव्वुर किया था। पर अब वह तमन्ना कीचड़ में लिथड़ने की चाहत में तब्दील हो गई है—छोटे पाप और सलामत दुराचार का उत्सव। मन के भीतर की आस और टकटकी जो बेकार और सिफर के अच्छेपन की शुष्क बंदिश से रिहाई चाहती है। नंगे, बिजली के तार को छूने के गुनाह की तपिश...गुण और दुष्ट के बीच की रेखा पर चलना, बल्कि इस लकीर का सृजन, उसका बदलाव, इस मार्ग की शाही सवारी, उन लोगों की



तरह जिनका रुतबा है, जो नियति के सृष्टा हैं, उसके मोहताज नहीं...संक्षेप में, अच्छे और बुरे की खींचतान से भयभीत होने के बजाय यह खयाल कि पाप पुण्य के मिजाज की मुख्तलिफ किस्में एक ही टहनी के अंगूर हैं, इच्छा, जरूरत और रसज्ञान के आधार पर उन्हें चखा, ग्रहण किया जाता है। संक्षेप में, यह धारणा कि कोई कानून या गुण इतना पुनीत नहीं कि वह गले का फंदा बन जाए, और ऐसा कोई कुकर्म या अवैध काम नहीं जिसका सदा तिरस्कार हो। इस तरह, संक्षेप में, जो बर्ताव जायज है वह उसके अपने, माने जज के, दखल और विवेक का मोहताज है।

एक आवेग और चाहना जज के मन में उमड़ रही है। जिसकी कोई माकूल वजह नहीं। एक गैरजरूरी, बल्कि, मूढ़ जोखिम। फिर भी वह जज के अंतस में रोज बरोज बढ़ती जा रही है, और एक दिन उसे निगल न ले।

उत्तेजना या मुराद ये है कि दिन का वक्त है, वर्किंग डे है, वह ऑफिशियल कार में, शीरी के साथ, खुद ड्राइव कर, सैनिक फार्मर्स के अपने विला जा रहा है, दरवाजा खुला, दोनों भीतर दाखिल हुए, और दरवाजा बंद हो गया। किसी तरह उसे विश्वास है कि विला सेमी फर्निशड है। उसकी कल्पना में फ्रिज लबालब भरा है, बियर के कैन, चीज के बड़े टुकड़े, और ताजे, सुर्ख सेब! वह महसूस कर रहा है कि उसने सेब बीच तक दांत से काट लिया है, शीरी चीज कुतर रही है, और उसने उंगलियां बढ़ाकर शीरी के होंठ के किनारे से चीज के कण हटाए हैं। कभी, किसी केस की सुनवाई के दौरान भी वह इस तरह के दिवास्वप्न में खो जाता। या जब घर में वह खाली होता है, अकेला, शीरी किसी सभा में या मित्र के यहां गई है, जज विला की पहली अपेक्षित विजिट को पूरे क्रमिक विस्तार में कल्पित कर जीता है।

दिवास्वप्न लगभग हमेशा जज की सरकारी कार के क्लोज अप से शुरू होता है, ऊपर घूमती लाल बत्ती, गीली सड़क, विंडशील्ड के कांच पर बहता बारिश का पानी, वाइपर हाई पर, और कार के भीतर के धुंधले में, जज स्टीयरिंग के पीछे है, और शीरी बगल की सीट में, उसकी एक टांग डैशबोर्ड के ऊपर टिकी है। स्टैंडर्ड फिल्मी तस्वीर है, अनाम कशिश या रहस्य को फ्रेम में जमाता दृश्य...ये खूबसूरत युगल तेज बारिश में, सड़क के गीले सन्नाटे में कहाँ जा रहे हैं...इस तस्वीर ए खयाल में जज और शीरी जैसे चिरकाल युवा हैं।

विला के गेट के बाहर कार जैसे तैरती हुई आकर थम गई है। शीरी पहले बाहर निकली, वक्ष के उभार ने उसे धकेला। एक पल के लिए लगा मानो नितंब एक कदम ज्यादा पीछे रह गए हैं...लोहे का गेट अपने से खुला। जज के नुमाइशी अंदाज के बगल शीरी सलज्ज है। आपस में उंगलियां गुंथी हैं, सहज और सहेजने की कुछ गतियां...निपट सन्नाटा, निर्जन के बीच सब कुछ अपने से और, लगता है, इच्छा से हो रहा है, इस घटने के पक्ष में वोट डालने की तरह, मुलायम और संयमित रहस्य का उत्सव, सदाचार के बंजर अहंकार का जनाजा...दरवाजे की ब्रास नॉब को छूने की जरूरत नहीं पड़ी, ज्यों दोनों ने अंतिम सीढ़ी के बाद बरामदे के फर्श पर पैर का तला जमाया, दरवाजा खुद ब खुद खुलने लगा, और इस खास क्षण की निधि युगल की जांच के फ्रंट, निचले हिस्से की मसल के निश्चय और वेग में बसी है, रेक्टस फेमोरिस, और वास्टस मिडयालिस, मगरूर क्वाडरिसेप मांसपेशी का लालित्य जिसे अनीति की कोई परवाह नहीं। शुद्ध जिस्मानी जोर, रूहानियत से बेखबर।

वे भीतर दाखिल हुए, पहले लेडी, फिर जेंटिलमैन जज, उसी क्षण प्राचीन सी घड़ी ने जैसे स्वागत में प्रमुदित घंटा बजाया, लाइटें स्वतः जल उठीं, एसी घरघराने लगे, अगर दंपति आपस में, खयालों की उमड़न में इतने मग्न न होते तो शायद कोयल की कूक भी सुन पाते, उनकी मदहोश आंखों के सामने दो पल पहले फ्रंट के गार्डन में मोर नाच रहा था, पर उन्हें इल्म ही नहीं हुआ।

..पियानो का ओढ़ना हट गया, और कोई मधुर बंदिश कण से कण में फैल गई...वे कमरे से कमरे जा रहे हैं, दरवाजों ने उनके लिए राह बनाई, खिड़कियों के पर्दों की सरसराहट, किचिन में तैयार व्यंजन की भीनी, आस्वाद खुशबू, वे ड्राइंग रूम में लौट आए हैं, बिना किसी संकेत या क्रिया के छत के बीच से लटका फानूस जगमगा उठा, डाइनिंग टेबिल पर अपने आप ग्लास अवतरित हुए, दूधिया, जालीदार नैपकिन, और जज इतना व्याकुल और आपे से बाहर, कि उसने भावविभोर होकर एक नैपकिन अपनी नाक से सटाकर दीर्घ से सूंघा, और फिर उसी नैपकिन की झिल्ली से शीरी को ताका, और फानूस से फूटते प्रकाश के चमकते कण, जज जमीन से जैसे दो इंच ऊपर सरक गया, वाइन की बोतल यथोचित प्रकट हुई, बकेट में बरफ के टुकड़े, कई किस्मों की लजीज डिशज, अद्भुत सुवास, वे क्या न क्या कुतर रहे हैं, वाइन के छोटे घूंट, बिना किसी प्रयत्न के वे डांस कर रहे हैं, और चूँकि यह सब बेवश है, डांस के स्टेप्स प्रोफेशनल और अभ्यस्त हैं, मानो वे नहीं कोई और जज और उसकी बीबी नाच रहे हैं, और इस तरह ये चलता रहा, जब उन्होंने पाया वे पीछे बने ग्रीनहाउस में हैं, उज्ज्वल हरे और रक्त लाल चेरी टोमेटोज के गुच्छों के बीच, उनके आगे एक ऊंचा, तीन पाए का स्टूल है, बैठने की सीट बेहद संकरी, उस पर शीरी के विस्तीर्ण नितंब उत्कृष्ट संतुलन में संघटित हैं, जज, मानो स्वप्न में पहली बार इरादा व्यक्त कर रहा है, वह स्टूल के सामने तीन प्रतापी कदम में पहुंचा, वह अपेक्षाकृत लंबा हो गया है, स्वप्न इस मामले में मेहरबान होते हैं, उसे शीरी के होंठ पर होंठ रखने के लिए नीचे झुकना पड़ा, वह झुका, उसे शीरी की प्रतिक्रिया का अंदाजा नहीं था, पर शीरी ज्यादा मुस्तैद और चपल है, ज्यों जज, घुटनों को सीधे रख, नीचे झुक रहा है, शीरी ने उसका सिर और नीचे झुका दिया, उसका स्पर्श इकहरा पर हठी है, और जज उसके इशारे के पालन में नीचे झुकता जा रहा है...।

जब वे विला से बाहर निकल रहे हैं, उन्हें भीड़ दिख रही है, ये जन शायद जज का अभिनंदन करना चाह रहे हैं, या उसकी बात सुनना, आगे के सालों में जस्टिस पर बोलने के लिए जज के लेक्चर्स की प्रचुर मांग होगी।

ये कहना मुश्किल है कि शीरी भी क्या इसी तरह के सपने देख रही है? वह ज्यादा संतुलित है, और आसानी से अनसोचे आवेग का शिकार नहीं होती। वह संयत है, और शांतचित्त, पर जो बौर उनके बीच खिल रही है, मानो सुरा का उमड़ना, उसका नशा उसे भी है, पर शीरी ने प्लावन से हिफाजत के लिए एहतियाती मध्यस्थ का जरिया भी कायम किया है, और इसका प्रमाण वे पोस्ट हैं जो वह अपनी नई फेसबुक फ्रेंड स्फीति को बौछार में लिख रही है, और स्फीति के अविलंब, कुरकुरे जवाब, जिस पर शीरी ने लिखा मेरा मन, पता है, ये होता है कि तुम्हारे जवाब पढ़ने के बाद उन्हें चबाऊं!

फ्रेंड रिक्वेस्ट एक दिन स्फीति की तरफ से थी, उसने कहा कि वह शीरी महाजन को फोटो से एक नजर में पहचान गई थी...यू डॉट नो, आप मेरी हीरो थीं, इन स्कूल, आप जब बारहवीं में थीं, मैं सेकंड क्लास में थी, नन्ही सात बरस की! पर मन से इतनी नन्ही, भोली भी नहीं थी!! जूते के फीते तीन तरह से बांध लेती थी!...आई थॉट, कि आप दुनिया की सबसे खूबसूरत लड़की हो! आई फ़ैल इन लव विद यू!!! आई एम टच्ड...अब लड़की नहीं, भरपूर प्रौढ़ा हूं, शीरी ने जवाब में लिखा, और जैसा अक्सर फेसबुक पर होता है, वे साइबर फ्रेंड्स बने, शुरु में स्माइली ज्यादा, शब्द और इजहार कम, और फिर दिन, हफ्तों में वे एक दूसरे के निजी सबब, जिंदगी, खयाल और फंतासी के घने राजदार बन गए। उनके रहस्य, झूठ, कुंठा, नफरत, इच्छाएं एक दूसरे के समक्ष निर्मम सच्चाई में आसानी से खुल जातीं। जो बातें वे शायद अपने पति से कहना चाहने पर भी

नहीं कह पातीं, दांपत्य के अच्छे और बुरे वक्त, सराहना या निंदा, वे आपस में उड़ेलतीं, अनकहे और दुर्गम को व्यक्त करतीं, यह अभ्यास भी था, और सुप्त जज्वात की अंगड़ाई भी, अक्सर उनकी बातें दिल के तलछट में सनी होतीं, और इस तरह एक विचित्र रेक्टेंगल कायम हो गया, शीरी और जज, स्फीति और कुरिआकोस, एक सांयोगिक, बिन मांगी चौकड़ी, जिसमें पतियों के अक्स बिंदुओं की रेखा से बने हैं, और इस चौसर के चौखाने के बिलकुल बीच में हमसैनिक फार्स का अवैध, अनियमित ताजमहल है!

आखिर देवराज चौंसठ क्रॉस कर रहा है, शीरी ने एक पोस्ट में लिखा, सो थोड़ा सठिया गया है, कुछ भुलक्कड़, हालांकि कुछ खास चीजें कभी नहीं भूलता, जैसे उसके चांद के बाल नाक और बगल के बाल से कम ही होंगे (जस्ट जोकिंग!), पर नो जोक्स, हर शनिवार सिर में नारियल का तेल चिपड़ना नहीं भूलता...कई सख्त रूटीन्स हैं, टस से मस नहीं, और इसके बीच वह, जैसे रेगिस्तान में फूल खिल गया है, अचानक क्यूटी छैला हो गया है। जस्साब रियली मोर के माफिक फुदक रहा है, सच्ची! शरीर स्वस्थ, अच्छा है, थैंक गॉड। तो ये जो नई जवानी चट्टी है, इसका कोई नुकसान या डर नहीं है, मतलब किसी रात ज्यादा ही कसरत लगा दी तो! (डॉट लाफ!)...तो मैं मन ही मन इतराने लगी हूं, आई कन्फेस, कि मेरा जस्साब अब शरारती बांका जज है, पता है, जैसे फिल्मों में, जस्साब के कोट के सीने के पॉकेट से मजाल है कि लाल रुमाल का तिकोना हेकड़ी से न झांके!

तौबा तौबा! एक हसीना थी, एक दीवाना था, क्या उम्र, क्या समां, क्या जमाना था...!! स्फीति ने रिप्लाई पोस्ट किया।

फिर एक दूसरे दिन शीरी ने लिखा कि जस्साब पार्टीज में दबंगई से पेश आता है, निधड़क बोलता है, और फिर, अगर मामला नाजुक हो गया, तो ऐसे डरे चूहे की तरह टुकुर टुकुर मुझे देखता है कि हाय! मेरा दिल आ जाता है, कि उसे अपने वक्ष में वहीं सबके सामने छिपा लूं, पर इसमें जो अच्छा है, बेहद सुखद है, वो ये कि ये जो सारा बदलाव, कायाकल्प है, रिटायरमेंट की सांझ में ठाठ का पहनावा, जंगल में मंगल, सीनाजोरी, ये सब किसी न किसी तरह मुझसे जुड़ा है! मेरी खातिर, मेरे लिए है!! मुझे महसूस होता है कि वो मुझे प्रेम जतला रहा है, अपने तरीके से, जो भी उसकी वजहें हैं, डैम द रीजंस, इट इज सो लवली टू बी लव्ड, इस अनोखे, अनाड़ी तरीके से, है न?? ये खयाल, ये भरोसा कि प्रेम के आवेग का जो गूदा हमने खोया है, उसे दोबारा पा रहे है, या पा सकें शायद, टू फील यंग अगेन!!!

कुछ महीने में रिटायरमेंट है उसका, और मुझे लगा था कि हमारा बचा जीवन किसी पुराने जजमेंट की तरह होगा जो न मान्य है न सार्थक। पर अब, भला हो इस नौनसेंस का, कि मैं हमारी दूसरी इनिंग्स, आफ्टर रिटायरमेंट लाइफ, को किकस्टार्ट करने के लिए उतावली हूं! किकआस, जैसे ज्ञात ट्वीट करती है!! अभी तो!! का मार्क लगाया है, किस पता पांच महीने बाद!!!! का मार्क लगाऊं! जवाब में फी ने कई स्माइली और कैंक और वाइन के प्याले भेजे।

और तुम्हारा कैसा है, पंगोट के बाद?? शीरी ने पूछा, उसे लगा वही लिखे जा रही है, स्फीति की बारी भी तो होनी चाहिए। उनके आत्मीय संवाद की शोखी और खिलंदड़ेपन ने जल्द ही उनके बीच एक इकारार का सृजन किया : एक दिन में एक राज की बात! इस तरह वे शेरर करेंगे, और वचनबद्ध रहेंगे जब तक उनके सारे भेद चुक नहीं जाते! और उसके बाद हम जश्न करेंगे! जाहिर है, अवशेष कभी पूरी तरह नहीं चुक सकता। फी बखूब जानती है कि राज का कहना ही नए राज पैदा कर देता है, इस तरह यह एक अनवरत सफर है। यह भूमिका उसने बांधी जब उसने अपने और वी के बीते और आज के रिश्ते के बारे में लिखना शुरू किया। फी के लिखने में कुछ

खिन्नता थी, और उदासी की सांझ। अपनी तरफ से शीरी उसका मूड हल्का करती। वी और फी, या वायफाय!! शीरी ने दिल्ली की, नाम का संक्षेपण है, तो रिश्ते की क्या बिसात, नहीं?? वैसे भी, सफर अगर अनंत है, ये तो बिरलों का नसीब है, फी रानी!!

फी लिख रही है कि हर बार वे बीच का एक अंतर हटाते हैं, तो दूसरी दरार बन जाती है। और, पता है, व्यथा ये नहीं कि संबंध में प्यार का घन मौजूद नहीं, वो आता है जाता है, आफत वह थकान है जो खोये स्पर्श और भावनाओं के लगातार सृजन में खर्च होती है...। प्यार को इतनी मरम्मत चाहिए कि अर्थशास्त्र की भाषा में उसकी नेट वर्थ नेगेटिव हो गई है...अर्थक्वेक प्रोन! अवर लाइफ! फी के शब्द म्लान थे।

उनके साझे जीवन का कालीन, जो साथ में बुना, कढ़ा...जिस पर सूनूपन की परत चढ़ रही है...जिस कालीन पर वे इतने साल सोये हैं, प्यार किया है, सपने देखे, लड़े और गले मिले, शिकवे और आभार की लड़ियां बांधी, बोले, चीखे, और मौन का अस्त्र बनाया, हंसे रोए, आकाशी महल बनाए और ढहाए...उस कालीन से फी को धागे खींचने हैं, एक के बाद एक, और उनसे शब्द बनाने हैं, एक राय कायम करनी है, एक निष्कर्ष और उसका उपाय, उन धागों के जो रहस्य हैं उन्हें उधेड़ना है, रहस्य जो धागे के दायरे से भी पतले हैं, ऐसे भेद और शिकवे कि उन्हें सूंघने या बूझने से शायद छींक आने के अलावा कुछ हासिल न हो...और यह वह कैसे तय करे कि वो सही धागे और सही क्रम में उधेड़ रही है...पर शीरी ने फिर भी उसे राजी किया कि यह सही कदम न भी हो, यह लॉजिकल स्टेप है, और इसके बिना कोई चारा भी नहीं, दांपत्य की घोड़ी पर एक नहीं हजार बार चढ़ना होता है, मेरी मानो, तजुर्बा मेरा ज्यादा है, और हौसला भी फी बेगम!

तो फी ने रिश्ते के धागे निकालने शुरू किए, रैंडम तरह से, अपनी वृत्ति और खयाल पर उसने भरोसा कायम किया, कि रैंडम के प्रकार में उसके ईमान और निष्ठा का निवेश है, और वी का भी, इस आजमाइश से कोई नुकसान तो नहीं, द अनएग्जामिंड लाइफ इज नॉट वर्थ लिविंग, सोक्रेटीस ने राजद्रोह के मुकदमे में फांसी की सजा सुनते हुए कहा था, और इस तरह की बातें कौन फी से बताता था—वी, उसका वी, पर अब जब कुछ कहने को होता है तो वी अटकता है, चुप हो जाता है। फी अपने शौहर की स्वतः प्रवृत्ति और स्वेच्छा मिस करती है, और जो बिजली उनके बीच अनायास लपकती, दौड़ती थी। ये हम हैं, पर ये हम नहीं हैं! फी ने लिखा, और जवाब में शीरी ने एक थम्ज डाउन और चार थम्ज अप के इमोटिकॉन भेजे।

फी और शीरी की फेसबुकी ने इसे प्रेम बहाली निबंध की संज्ञा दी! इस प्रयास को फी ने पति पत्नी के बरसों के यौन संबंध के बारे में लिखने से शुरू किया। पर रिश्ते के सबसे निजी पहलू से शुरू करने की क्या जरूरत है, शीरी ने टोका, तुम अपने और वी की रोज की झिंकझिंक से शुरू कर सकती हो! क्या उल्टे से शुरू करना भलमनसियत है?

बेहतर है, फी ने कहा, आसान भी, जिस्म की भाषा में गुणा भाग और झूठ की कम गुंजाइश है!! ये निकल के आया कि बिस्तर में वे पूरक हैं, लयबद्ध और खुले। जिस्म पहले भी मग्न थे, आज भी हैं। वैसे भी सेक्स इज ओवररेटिड, फी ने लिखा, मेरे हिसाब में टेकनीक की बात है... पर इतना है कि हमारे रति के आंगन में सरंडर की ज्योति कमतर है। फ्रीक्वेंसी?? कम है, पर इतनी कम भी नहीं! पर्याप्त, कामनाएं ठीक हैं...पर जिसका अभाव है, बल्कि जिस चीज ने जिस्म के बीच दखल किया है, वह, कैसे कहूँ? सर्द मिजाज? नहीं। बेरुखी? नो। फिर?? दोनों ने अनेक शब्द रखे, शब्दकोष देखे—लापरवाही, दूरी, अलगाव, दुराव, विरक्ति, तटस्थता, लौटाव, विच्छेद, पलायन, भावशून्यता, अपकर्ष, व्यर्थता? नहीं...फिर? घृणा, तिरस्कार, निंदा, क्रोध, अस्वीकार, क्रूरता...नहीं तो क्या?? किस तरह कहना सटीक होगा—कि एक तरह का पूर्वबोध या भय या चिंता

कि ये सारे गलीज भाव, इनका मिला जुला, मन में कहीं मौजूद है, जड़ और सुप्त, पर जिंदा! वायरस की तरह...इसका मतलब विरक्ति, नफरत, ठंडापन...इस तरह का भय? पर किससे? अपने से या वी से? दोनों से, कि पहल किसकी होगी, कब होगी! तुम बेवजह के प्रेत देख रही हो फी जान!! तुम्हें, और तुम्हारे पति को ब्रेक की जरूरत है, हॉलिडे! या थोड़े दिन एक दूसरे के बिना रहो!! या बच्चा कर लो...!!! पूरा नजरिया बदल जाएगा, जो थाह नहीं मिल रही है, वह गोद में होगी, सच में, आई स्वेर!!

फी ने इस दिशा को आगे नहीं बढ़ने दिया। देखो, उसने लिखा, मैं वी पर संपूर्णता से निर्भर थी। मुझे अच्छा लगता था, मन बचपन से अनाथ था, उसे ठौर मिला, उसने मुझे हर तरह से मुक्त किया। मैंने उसके कंधों पर चढ़कर दुनिया देखी, लांघी...वी मेरी ताकत है, मेरे तन मन का लोहा। जितनी मैं मुक्त हुई, उतना ही उसका अनुमोदन चाहती। और अचानक उसके कंधे ढीले पड़ गए। झुकने लगे, और मैं जैसे बीच अधर में लटकी रह गई। वी को शायद लगा...शब्दों के बीच के शून्य में शीरी ने सिसकी महसूस की...कि मैं जो उसकी हर बात पर स्वीकृति चाहती हूँ, वह नाटक, ढकोसला है, मैं उस पर रहम जतला रही हूँ, आई डॉट नो, उसने सचमुच ऐसा सोचा और कितना सोचा, और इस खयाल में कितना सच है...आई डॉट नो, फ्रैंकली।

...प्रोफेशन के लिहाज से मैं टॉप पर हूँ, फिर भी मैं डरती हूँ, अपने लिए, क्योंकि कभी मुझे लगता है कि मेरे भीतर की ताकत या बूता उसे, वी को, कमजोर करता है, मानो ये बूता मैं उसका या उससे छीन रही हूँ, माइंड यू मैं कोई जेंडर का मसला नहीं बना रही, न खुद को तुम्हारे सामने कोई ग्रेट हीरो, ओके...पर ये चीजें, मेरी सफलता, और प्रोफेशन का चेंज, इन चीजों का उस पर असर पड़ा है, वह पहले की तरह स्ट्रॉंग और निधडक नहीं है।

क्या तुमने उसके साथ, आई मीन, उसे चीट किया कभी? नो, पर अब मुझे अपने पर उतना भरोसा नहीं, मुझे डर है ऐसा कुछ हो सकता है! और मैं नहीं चाहती ऐसा हो!! और तुम्हारे पतिदेव, उनका क्या? पता नहीं। उसका हल्का अफेयर रहा हो, हो सकता है!

मुझे लगता है मेरा खसम आत्मनाश की राह पर चल रहा है। उसके पास अजूबा टैलेंट है। सब कहते हैं, उसके साथी। पर वो सुनता नहीं। अपना हुनर, बूता जैसे लुटा रहा है। अब ये क्या है, किस तरह का विषपान, कोई जिद, प्रतिशोध, या त्रास, या इनमें से कुछ भी नहीं, आई रियली कांट से। हो सकता है उसका भरोसा सचमुच हिल गया है?

जो पिता की मौत को लेकर ग्लानि है, या अपराध भाव, कहीं ये तो वजह नहीं?

मुझे नहीं लगता, या मैं मानना नहीं चाहती, ये धुंध की तरह है, फी ने लिखा। संभव है, संभव नहीं भी है...पर इसके लिए तुम इतनी कठोर क्यों? शीरी ने तुरंत पूछा।

उस रात पंगोट में, जो उसने किया, एक प्लान की तरह था, अ शो। मैं ये नहीं कह रही उसने झूठ कहा, या इस तरह की कोई लानत, लेकिन मुझे उसके त्रास, या यंत्रणा, जो भी, उस पर यकीन करने का मन नहीं हुआ। और मैंने कोशिश की, बहुत कोशिश की, उस रात, और बाद में। हर रोज करती हूँ शीरी, ये लिखते हुए भी कर रही हूँ, और सदा ये उम्मीद कि किसी जुदा जतन से ही कोई मन का पुल बने। सी दिस इज पॉजिटिव, शीरी ने लिखा, इस सिर्रे को छोड़ना नहीं है।

सी, द पॉइंट इज, जब वी ने मुझे अपने पिता का वाकया सुनाया, वो गलत जगह थी, गलत वक्त था। उसे नहीं करना चाहिए था इस तरह, एक सरप्राइज तोहफे की तरह, लाइक अ गिफ्ट, या कि वो मुझे खास इज्जत बरत रहा है, कि देख मैं अपने सबसे भीतर के घाव को तेरे सामने खोल रहा हूँ, क्योंकि मैं तुझे ट्रस्ट करता हूँ, तू जैसी भी है...पहली बार मुझे लगा उसने मेरा इस्तेमाल

किया है, ये ट्रस्ट नहीं था, ये ट्रस्ट का अपमान था, जितना मैं ऐसा न सोचना चाहूँ, उतना ही मैं ऐसा ही सोच पाती हूँ...मैं वी की खातिर मर सकती हूँ, पर यूँ नहीं कि वह मुझसे जान का निछावर छीने, मुझे फोर्स करे, ये त्याग मेरा है, ये उसका हक नहीं...आत्मदया की बरफ पर रिश्ते की ऊष्मा नहीं सजती शीरी, ये सब इतना जटिल है, इतना असंगत है, कि समझ में ही नहीं आता...।

इतना ही समझ आता है, कि तुम दोनों ठीक हो! इट इज ओके!!

इस तरह दोनों ने और भी लिखा। अनावरण और भेद भ्रम बांटने का अपना सुख है, लत भी। बीच में मजाक, अश्लील, फहश गप भी खूब रहती।

फिर एक रोज शीरी ने लिखा : पर हर दिन चमकीला नहीं होता, कोई दिन मैले, मलिन भी होते हैं...मैं उग्र में तुमसे बहुत बड़ी हूँ, चाची या भाभी तो हो ही सकती हूँ! प्लस थर्ड पर्सन की हैसियत से ज्यादा साफ देख रही हूँ, तुम्हारे व्यामोह को, और मन की उलझन को। इसलिए जो मुझे कहना है, मैं कहूँगी, एंड आई होप आई एम राइट!!

तुम्हारी एक अच्छी, सुघड़ शादी है। खुशमिजाज शादी है। इसलिए तुम और वी दुख के साए खदेड़ रहे हो! नापसंदगी के मृगजल की तलाश!! यह अनोखा नहीं है, ऐसा होता है। तुम खुश हो, इसलिए नाखुश होना चाहती हो! ये जो गृहस्थी का सुख है, अधिकांश हमवार, गाफिल और शांतचित्त, रोजमर्रा होता है। जरूरी नहीं कि पटाखे फूटें, कुछ उत्तेजक, नाटकीय हर चार दिन में हो! प्यार के नित्य सत्यापन नहीं होते—कि तुम्हें नदी में कूदना है, और विक्रम को तुम्हें बचाना है! या विक्रम जलते कोयले पर चले!! या तुम उसके बदन में चाकू घोंपो ताकि उसे नर्स कर सको...!!! तो मुझे नहीं लगता कोई बड़ी समस्या है, जो डर या त्रास पैदा करे...अगर वी कल नपुंसक हो गया तो अलग बात है!!!!

मेरी कहानी ज्यादा सरल, तुम्हारी थोड़ी पचीदा है, दैट इज करेक्ट। पर मुझे अगर सूत्र में तुम्हें आईना दिखाना हो, जो लक्ष्य भी है, तो इस तरह कहूँगी : तुम नाखुश हो, कि तुम खुश हो, या इसका विपरीत! और तेरा खसम चिंतित है, कि वो चिंतित नहीं है, या इसका ठीक उलटा!! एक बार वरमाला तुम दोनों ने डाली थी। चॉइस, वरण तो अब भी तुम्हें करना है, विक्रम को करना है! मेरी जान इस तरह देखो तो!!

फी ने उस रोज कुछ नहीं लिखा, न जवाब दिया। दूसरे दिन भी। शीरी ने सोचा मन के आंचल संभालने में वक्त लगता है। फी जबरदस्त सोच रही होगी, शीरी ने खुद से कहा। यही तो वह चाहती है, वह मतलब फी भी और मैं भी!

शीरी अनजाने मुस्कराने लगी।

जिस दिन वी को अपने हकले सोर्स से ब्रोकर की आइडेंटिटी का पता चला, और उसने अपनी आंखों से वो फोटो और सबूत देखे कि जस्टिस देवराज प्रणाम खुद ब्रोकरके साथ सब रजिस्ट्रार के दफ्तर गया, जहां उसने हमसैनिक फार्म के एक विला की अपने नाम सेल डीड रजिस्टर कराई, कुछ प्राणाधार उसके भीतर एकाएक बुझ गया, कोर्ट के केस में उसकी दिलचस्पी एकमुश्त खत्म हो गई। जैसे बैटरी कभी कभी सेकण्ड्स में टोटल डेड हो जाती है। एक अजीब तरह का समभाव और सुकून उसके जेहन में उतर गया। मानो कोई सुलह या करार की फांस। जड़ता और काहिली के वजन ने हाथ पैर में बेड़ियां डाल दीं। जिस अम्ल और तनाव का ईंधन विक्रम पी रहा था, एकदम जैसे नदारद। कान में सुन्न सी ध्वनि। उसके पास फोटो हैं, सेल डीड की कॉपी, तारीखें, शीर्ष भ्रष्टाचार का पूर्ण नैरेटिव, इन सबूतों को वह उन्हीं दिनों की कोर्ट की कार्यवाही के बर खिलाफ रख सकता है, यह इतना आसान है अब, इन सबूतों के लिए उसने अपनी जेब से काफी

पैसे खर्च किए हैं...उसके पूर्व के ज्वर और ख्वाबों में उसने कितनी ही बार हूबहू इसी तरह की न्यूज स्टोरी का तसव्वुर किया है, फ्रंट पेज, ऐसी खलबली पैदा करने वाली खबर सालों में मिलती है, जैसे तहलका के और तमाम दूसरे खुलासे...खबर जिससे अवार्ड मिलते हैं, बोलने के निमंत्रण, जर्नलिज्म के स्कूल्स में केस स्टडी बनती हैं...उसने किन्हीं दिनों में कई कई बार इस स्टोरी का प्रारूप रचा है, तस्वीरों और बुलेट पॉइंट्स के साथ, वह कितने साल से इस केस को फॉलो कर रहा है, किसी संकरी, उजाड़, त्यक्त गुफा में रेंगने की तरह, और अब खुले का प्रतिफल प्रकाश दिखाई दे रहा है, सामने है।

खुद की जड़ अवस्था और मानो स्तब्ध पक्षाघात से वह खुद अचंभित है। काटो तो खून नहीं, चिंउटी काटो तो ये मैं तो नहीं। वी ने खयाल करना चाहा, पर मन मस्तिष्क जैसे शून्य है। दिमाग की स्लेट जैसे कोरी, साफ हो गई है। विस्मृति की लबालब धुंध। क्या ये डर है? प्रतिहिंसा का? तंत्र और ताकतवर की शक्ति का जो उसके पीछे आएंगे? मानहानि के सिविल और क्रिमिनल केस की बरसात? कोर्ट की अवमानना? कि उसका जॉब चला जाएगा, उसकी श्रेणी खारिज और च्युत होगी? पर इस सब के बारे में वह पहले ठीक से सोच समझकर राय बना चुका था। बल्कि वह इस दर्जे के युद्ध का बेसब्री से इंतजार कर रहा था, बड़ी, नीति और नीयत की जंग। उसने ऐसी लड़ाई चाही है, उसे रिझाया है। यूं भी नहीं है कि उसके पास जवाबी हमले के सूत्र नहीं हैं, या एस्केप रूट्स। नहीं, यह भय नहीं हो सकता, ये डर नहीं है। फिर क्या है?

अजीब, कि किन्हीं कौंध में उसे लगा कि उसका काम पूरा हो गया है, और उसका सच और मंशा स्थापित हो गई। फिर उसका क्या जो उसके पिता के साथ घटा, जो विक्रम का शूल और त्रास है? क्या उसका कोई अभिप्राय नहीं? पिता की कोर्ट में दुखद मृत्यु की शुद्धि, अन्याय के शेष का समापन कैसे होगा...वह सारा त्रास कि पिता की आत्मा कोर्ट से कोर्ट में भटक रही है, एकतरफा दंड की नाइंसाफी का बैलेंस चाहती है। कि जस्टिस सबके लिए एक और एक समान है, होनी चाहिए।

वी जानता है ये सबूत आज उसके हाथ में हैं, कल दूसरों के पास भी पहुंचेंगे। और ये छिपा नहीं रहेगा कि सबसे पहले एविडेंस कुरिआकोस के पास आई थी। अगर वह जड़ रह गया, तो तासीर ये बनेगी कि कुरिआकोस बिक गया, उसे खरीदा गया है। नहीं तो इस तरह का अचानक, वेल टाइम्ड अबाउट टर्न क्यों? जैसे ही सबूत हाथ में आए, कुरिआकोस ने कोर्ट की डेस्क छोड़ दी, या छुट्टी चला गया। दाल में काला नहीं, दाल ही काली है।

अपने काले, प्रांजल क्षणों में जब वह इस तरह से सोचता तो एक बीहड़, जुदा मुस्कान उसके चेहरे पर बिछ जाती, तब उसका अगला खयाल अपने बाँस के बारे में होता, क्या बाँस उसका विश्वास करेगा? उसके दिल का उचाट और खालीपन? तिवारी ये सोचने से तो नहीं चूकेंगे कि कहीं उनके शागिर्द ने नकद तो नहीं खा लिया? खयाल सहज भी है। तो सीधे पूछेंगे, या पीछे से गुप्त तहकीकात? पर ज्यादा ये है कि तिवारी उसके न लिखने से खुश होंगे या दुखी? आखिर, उनकी लगातार ये चिंता रही कि विक्रम हमसैनिक फार्म, कोर्ट कचहरी का चक्कर छोड़े, तुम जनाब जर्नलिस्ट हो, लचर या लाचार, किसी आंदोलन के सूत्रधार नहीं। पर वी अपने बाँस से खुद क्या चाह रहा है? उसे कभी लगता कि तिवारीजी उसकी ईमानदारी पर शक जरूर करेंगे, इस खयाल में स्वपीड़ा का भरपूर लुफ्त है। उसे सिर्फ कुछ हिंट्स गिराने हैं, हिंट्स भी क्यों, अगर वी चुप रहता है, कोई सफाई नहीं देता, तो बाँस के कान खड़े तो होंगे ही...बाँस ही क्यों, पूरा जर्नलिस्ट महकमा, पूरी दिल्ली...ऊंचे आदर्श के उन्नत शिखर से चंद पैसे के लिए खुद को बेच खाने का पाताल, ये पतन का शीर्ष तमगा है। एक रुग्ण आकर्षण है इस त्रासद सफर में, किन्हीं विक्षिप्त क्षणों में वह

खुद को नकली हीरो की तरह देखता, जिसने जिंदगी में कहने को, गाजे बाजे के साथ, सच अपनाया, और झूठ का राजी निवाला बना...खुद पर कोड़े बरसाने का सुख, ऐसे मातमी जुलूस उसने कई बार देखे हैं। ये खयाल संक्रामक से हैं...जीजस, वह ईसा के बारे में बहुत कम जानता है, पर इन रातों में उसने दूढ़ा है कि यीशू ने पाप के बारे में क्या तसदीकें की हैं? क्या इस तरह का तर्क है कि पापी के प्रतिदान के लिए पाप का वरण जरूरी है? बाइबिल की कमेंटरीज में उसने उक्तियां देखीं : *ईश्वर ने उसको पाप करने के लिए बनाया जो किसी पाप को नहीं जानता था, ताकि उसमें हम परमेश्वर की धार्मिकता बन सकें...परंतु मैं तुमसे कहता हूं अपने शत्रुओं से प्रेम करो, और उन लोगों के लिए प्रार्थना करो जो तुम्हें सताते हैं, ताकि तुम उस पिता के पुत्र हो जो स्वर्ग में रहता है; क्योंकि वह अपने सूरज को अच्छे और बुरे दोनों पर उदय करता है, और जो इंसाफ करता है और जो अधर्मी है, उसकी बारिश दोनों के लिए एक समान है...जिनके भी पाप तुम क्षमा करते हो, वह क्षमा उनकी है; और जिनके भी पाप तुम नहीं भूलते, वह तुम्हारे चित्त का है...किसका अधर्म था, इसका या इसके माता पिता का कि ये अंधा पैदा हुआ? यीशू ने उत्तर दिया : न तो यह आदमी और न ही इसके माता पिता ने पाप किया, पर ये हुआ कि परमेश्वर की कृति इस अंधे में व्यक्त है...।*

ये संभव है कि जितने फैक्ट्स वी ने उघाड़ लिए हैं, वे उसकी तसल्ली के लिए काफी हैं। जज के भ्रष्टाचार और गुनाह को खबर बनाने, या उसके खिलाफ अपराध की एक श्रेणी कायम करने में उसकी दिलचस्पी नहीं है, या नहीं बची। उसका चैन शायद यही है कि उसने खुद को यह सिद्ध कर दिया कि नैतिकता और सदाचार के स्केल में जज, इतना बड़ा जज, और इंसाफ का तंत्र उसके पिता के मुकाबले कहीं निचला है। मन ही मन शायद वी ने जज के मुंह पर और इंसाफ के धूर्त तंत्र पर थूक दिया है, और इतना पर्याप्त है।

एक हफ्ते, बिना सूचना के, वी ऑफिस नहीं गया। जब कुछ उकेरा गया तो तीन हफ्ते की छुट्टी की अर्जी भेज दी। इस वक्त में उसने कुछ नहीं किया, निठल्ले के गुण अवगुण जीए। अक्सर फी काम पर जाने से पहले, और लौटने के बाद कमरे में झांकती। इशारे से हालचाल और दुरुस्ती का आदान प्रदान होता। फी की नजर पति की काया का पीछा करती। ऐसा इन सालों में नहीं रहा है। पर फी ने कुछ पूछा नहीं। वी अच्छा खा रहा है। पर उसे भी कुछ खा रहा है, फी की राय है। पर माथे पर शिकनं न के बराबर हैं। स्किन का रंग चिकना और साफ है। रात में ठीक सो रहा है। लगता है जैसे अभी अभी वेट लिफ्टिंग खत्म की है, और कोई बड़ा वजन उस पर से उठ गया है...फी ने शीरी को लिखा। और आश्चर्य और हल्की मुस्कान के दो इमोटीकॉन बना दिए।

**सर्दी** के आगमन का महीना है। ठंड ने अपनी तिजारत की नुमाइश अभी शुरू ही की है। कड़ाके की ठंड अभी दूर है, पर सिहरन की दविश होती रहती है। इतनी सर्दी तो है कि बॉनफायर की गुजारिश अनहोनी नहीं। बॉनफायर? ऐसी जगह जाना है जहां आग जला सकें, कुरिआकोस ने कहा। एक तो काम से नदारद, और अब ये शगूफा। चक्कर क्या है भई? बॉस बोला। तब कुरिआकोस ने कुछ न कहकर मुंडी हिला दी थी।

तदक्षण वी ने आग में कुछ नई टहनियां डाली, और आग को हिलाया, लपट की जिंदा छलांग में उसका चेहरा दमक रहा है। बॉस और विक्रम एक क्लीयरिंग, या छिल्ले गड्ढे से में बैठे हैं, चारों ओर जमीन की सतह ऊंची है। दिल्ली की दक्षिण रिज के सिरे से वे काफी अंदर हैं। जगह निर्जन और वीरान। हल्का अंधेरा गिरने लगा है, लेकिन आज लगभग पूरा चांद भी है। बॉस ने स्कूटर चलाया था, उसे रास्ते का पता था...उसे कितना कुछ पता है, जिसका विक्रम को कोई इल्म



नहीं...बीच बीच में कुछ आवाजें सुनाई देतीं, किसी छोटे जानवर की कॉल, चीख या किटकिटाहट की तरह। कुछ ऊंचे पेड़ हैं, पर अधिकांश जंगली घास, बबूल और झाड़। इस जगह का एग्जेक्ट लोकेशन क्या है, वी ने पूछा। बॉर्डर है, हो सकता हमारा एक चूतड़ हरियाणा में हो, और दूसरा दिल्ली में! जनाब प्रदेशों के बीच मनमुटाव हो गया तो समझ लो क्या हाल होने वाला है! हंसी का फव्वारा जोर से छूटा। पर बॉस, पीने में कोई पाबंदी का झमेला तो नहीं? बेटा, तुम कब से कमीने की जगह दूरदेश और सयाने हो गए?

रम की बोटल एक तरफ थी, चना, मूंगफली चुगने के लिए दो पैकेट खुले पड़े हैं। ग्लास भरे हैं। तो, क्या सोचते हैं? वी बोला। किस बारे में? जो मैंने अभी आपको बताया है। क्या जरूरी है कि मैं राय दू ही दूं? जो भी सीखा तुमसे सीखा है, दिल का फरक है तो मेरे हाथ में नहीं... वी की आवाज दबी थी। पर बेहतर तो तुम ही जान सकते हो...अगर जानता, तो पूछता क्यों? तिवारी ने एक पैर का जोर दूसरे पर सरकाया। इतना तो ठीक है कि दायित्व या कर्तव्य की कोई लीगल बाध्यता नहीं है...बॉस, टू हैल विद लीगल, ये जिंदा चीज है...मेरे बच्चे जवावदेही का वजन भी हल्का है, नकारा जा सकता है। ये तुम्हारी चॉइस की बात है...मतलब मॉरल चॉइस?

कुछ पल ये सवाल तिवारी ने हवा में टंगने दिया...हां, एक मायने में, फिर हमारे प्रोफेशनल एथिक्स का भी इशु बनता है, नहीं?...पर तुम्हारा इरादा तो बन गया है? तिवारी ने शून्य से वी पर नजरें टिकाईं। मेरे खयाल से...जब दाना चुग गया, तो जाल क्या परखना? पर बॉस मैं चाहूंगा मेरे फैसले का मूल्यांकन हो, तुम मेरी धज्जियां उड़ाओ, मेरी गलती अगर दिख रही है तो कोसते क्यों नहीं?...जहर आप बनाएं, पिलाऊं मैं, वाह रे मेरे शेर! तिवारी आग के आगे के बढ़ते अंधेरे में झांकने लगा। जलती लकड़ियों की धधक से रह रहकर चिगारियां फूट रही हैं। लपट के शोले कमतर होने लगे हैं...विक्रम, ये चीजें इतनी साफ और सीधी नहीं, कि नियम की गांठ बन जाए... एक अधजली टहनी का टुकड़ा कटकटा कर पैरों के पास आ गिरा। उसके गीले सिरे से तिवारी ने उसे उठा लिया, मानो उपचार करना चाहता है...ये एक सवाल है कि ये जतन कोई व्यक्तिगत मुहिम, हिसाब चुकाने की जद्दोजहद थी, या पत्रकार की ड्यूटी का पालन। तुम जिस राह पर चले वह संपादकीय फैसला नहीं था। और तुम इस मसले को कभी मीटिंग में भी नहीं लाए...।

पर मैं रिपोर्ट करता रहा हूं, और खबरें प्रकाशित भी हुईं...ये भी फैक्ट है कि ये सबूत मेरे हाथ में आकाश से नहीं गिरे, मैंने उन्हें खोदा था, उनके पीछे लगा था...और अब वो सामने हैं, बाहर हैं, मुट्ठी में हैं। और ये तथ्य दूसरे भी देर सबेर जान लेंगे। एक बार जो नाड़ा डीला हुआ तो पाजामा तो गिरना ही है, आपके शब्द हैं बॉस!

कोई भी दूसरा इसे पब्लिश नहीं करेगा। अकेले उम्मीदवार तुम्ही थे, कहना चाहिए एकमात्र बेवकूफ! आप इतने श्योर कैसे हो?...हूं, ये मसला उस श्रेणी का है, जहां पूर्व विचार या मशवरे का स्कोप नहीं है, ठीकरे के पास सिर्फ फूटने की इजाजत है...तर्क वितर्क और पोस्टमॉर्टम घटना या फैसले के बाद की क्रिया है...खंजर निकलेंगे तो हाइंडसाइट में...कई साल विक्रम तुम्हें इन सवालोंने से मशक्कत करनी होगी...ये दुधारी चीज है, तुम्हारी उलझन...बल्कि कई सिरे, धार और पहलू हैं... जब आंत में ये कटार मरोड़ लेती है, तब असल अहसास होता है...। पछतावा, खेद? वी ने जैसे खुद को इत्तला की, न कि बॉस को...। पता नहीं, आई कांट से माई डियर, तिवारी ने अशक्त लहजे से कहा।

कहीं से हुआ की आवाज निकली। सियार हो सकता है। विक्रम ने बैग से सारे फोटो और दस्तावेज निकाले और उन्हें घास पर बिछा दिया। जलाओगे इन्हें? बेहतर है, नहीं? कांटे ही न रहें...पर मैं ये सलाह नहीं दूंगा...क्यों?...एक तो उम्र में बड़ा हूं, दांत से चीज पकड़ना सुहाता है!

फिर ये असाध्य स्टेप है। इससे बेहतर इन्हें लॉकर में डालकर चाबी फेंक दो। सबूत जिंदा रहें। इतना उनका हक है, ऑल सेड एंड डन, साक्ष्य आखिर सच का साथी है...। पीछे हटना है तो पूरा पीछे हटना है, वी के स्वर में अजीब सी हिकारत और खंडन की जिद सुनाई दी। एक एक कर कुरिआकोस ने फोटो, सेल डीड के पन्ने आग के सिपुर्द कर दिए, ज्वाला एक बार फिर धधकी, पर खुराक कम थी। पलों में बस लकड़ियों की दहक रह गई। दोनों की आंखें काफी देर बुझने के जलने को ताकती रहीं।

ये रस्म की अदायगी नहीं है। ब्यौरा या बयान है। पर जिसका अर्थ अभेद्य है। निःशब्द बैठे रहना अच्छा लग रहा है। ठंडी, कुरकुरी हवा का आचमन। कि इस निर्जन की लय उनकी हुक्मरानी करे, उनकी थकी, ऊसर आत्मा को निगल ले। उनकी थकान में किसी राग की बंधक तंद्रा है, किसी किस्म के उपचार की झांकी। ये हर बीतते क्षण का अहसास जादुई सा है, कंक्रीट की सत्ता का वश यहां मानो धुंधला हो गया है। अगर किसी एक पक्षीय कानून का यहां जोर है, तो ये संकरे रास्ते, मिट्टी का जमाव, पेड़ों की जड़ें और तने, लुके छिपे जानवर, और कीट जंतु उसके मुरीद या गुलाम नहीं। ये सब, यह आबोहवा, एवोल्यूशन के उपाख्यान की संतानें हैं, और जस्टिस, न्याय एक खारिज, परकीय विचार है। अच्छा लग रहा है कि आग अपने मन के मुताबिक आहूत हो रही है। सिर्फ बैठना और कुछ नहीं करना। और लंबे वक्त तक निष्क्रिय रहने के अचंभे का मनन। कि तैर रहे हैं, और खुद और दूसरे से कोई टकराव नहीं। एक पोस्ट निर्णय की दुनिया का संकल्पन। ये समझना कि जहां तक ये नगर और नागरिक और वे हैं, यही है जो है। और हमारे जीतेजी यह शायद न बदले। पर हमारा जीवन शायद फिर भी बदले, यह शायद हमारे हाथ और संकल्प में शायद हो। शायद...उनकी चाहत संभवतः मन की सेहतबख्शी की है। कि मन से वे जितने चंगे हैं, और ज्यादा हों।

पता है, जब उम्र अपना हिसाब करने लगती है, वह बताती नहीं, तिवारी ने काफी अंतराल के बाद कहा। कुरिआकोस ने सिर हिला दिया। वह समझ भी गया...पता है, तिवारी ने आगे कहा, मैं इन दिनों चीजें आसानी से भूलने लगा हूं...स्मृति का फिल्टर कठोर सा हो गया है। किन्हीं थके दिन में कोई किताब, नॉवेल पढ़ रहा हूं, बेहतरिन नॉवेल, पन्ने पढ़ता हूं, उन्हें जब कर रस लेता हूं, पन्ना पलटता हूं तो लगता है पिछले पन्नों का काफी सारा विस्मृत हो गया है, फिर भी नए पन्ने का व्यस्त आकर्षण और रसास्वाद बना रहता है, पर डीटैल्स धुंधला जाते हैं, और अंत में मात्र एक सेंस बचती है, समझ रहे हो...जो संप्रेषण के लिए व्यर्थ है...।

अगर मैंने ये रिपोर्ट लिखी होती तो क्या तुम छापते? कुरिआकोस ने काटते हुए पूछा। ये अगर मगर के सवाल बेमानी हैं मलयाली...पर मेरे लिए नहीं...तब इसका उत्तर, पूरा चांस है, नो है। पहले ये तर्क आता कि यह येलो जर्नलिज्म टाइप का है, आई मीन योअर हायपोथेटिकल स्टोरी। टेक्निकली हमसैनिक फार्मर्स में घर खरीदना कोई गुनाह नहीं। मैं शायद ये स्टैंड लेता कि ये घटिया रिपोर्ट है, सोशल मीडिया गप्प के लायक, सबूत हैं तब भी, और रिस्क के मुकाबले स्टोरी हल्की है। इस खबर से कुछ बनता नहीं...।

खबर बनाना क्यों नहीं चाहता पेपर, इशु ये है, वी का पलटवार। तिवारी ने खुद को धीरज खोने से रोका...सालों पहले मैं भोपाल में पोस्टिड था। एक छोटा शहर था, नाम छोड़ो, एक आदमी ने बड़े से मकान में खुद को लिटरली गिरफ्तारी में डाल लिया था। पूरी किलेबंदी, कभी बाहर नहीं निकलता। मैंने उसका एक फोटो देखा, वह खिड़की की लोहे की जाली के पीछे से झांक रहा था... सड़क के दूसरी ओर पुलिस की परमानेंट पिकेट लगी थी। सामान, दूध, चीजें पास के दूकानदार लाते, और दरवाजे पर रख देते। कोर्ट के बाकायदा आदेश से ये व्यवस्था चल रही थी। किसी

भी बाहरी के घर में दाखिल या दखल पर अस्थाई निषेधाज्ञा थी। कथा इस तरह बनी कि एक रात चमत्कार हुआ, और भगवान कमरे की दीवार पर आकृति के रूप में उभरने लगे। आकृति साफ और पूर्ण होती गई, और भोर के पहले उजाले में दीवार से छिटक कर प्रतिमा के रूप में खड़ी हो गई। भगवान कल्याण के लिए खुद प्रकट हुए हैं, यह खबर फैल गई। देखने वालों की कतारें लगने लगीं, शुरू में मकान का मालिक खूब खुश। बहुत संभव है, यह बात उसी के मुंह से शुरू हुई...भीड़ बढ़ी, फिर बेकाबू हुई, नेता, भक्त, पूजा अर्चना का अधिकार मांगने लगे, कि ये घर नहीं, बड़ी मन्तों का मंदिर है...तब शायद घर का मालिक डरा, पुलिस, मजिस्ट्रेट से गुहार का कोई असर नहीं हुआ। प्रभावशाली लोग और बिचौलिए कई तरह के रास्ते सुझाने लगे। कि कुछ मुआवजे की राशि लेकर वह मकान मंदिर ट्रस्ट के सुपुर्द कर दे। भक्ति और आस्था की बात है...भक्त तो मैं भी हूं, मालिक मकान ने कमजोर प्रतिवाद किया। वो तो हो, पर धर्म के ज्ञाता तो नहीं, ये जवाब मिला। देखते ही देखते कैदखाने की स्थिति बन गई, कि क्षण भर के लिए भी घर छोड़ा, और कब्जा हो गया, तो वह कहां भटकेगा...भक्त तो मैं भी हूं, इसी शीर्षक से मेरी पहली खबर छपी। खूब वाहवाही मिली साथियों से...25 से ज्यादा बरस गुजर गए हैं, और अभी हाल में मुझे पता चला कि उस गली में, उस मकान में आज भी वही स्थिति है। वह आदमी अब, जाहिर है, बूढ़ा हो चला है, पर तमाम पार्टी, संगठन, बुद्धिजीवियों के अनुरोध और आश्वासन के बाद भी वह घर से बाहर निकलने को राजी नहीं...मुझे नहीं पता, मैं ये किस्सा तुम्हें क्यों सुना रहा हूं, पर तुम्हारे जज को मैंने जब भी देखा, कई बार उस आदमी की याद आ गई।

मेरा जज, तुम जानते हो उसे? जज हो, मंत्री या संतरी, सबको जानना मेरा पेशा है। तुम कभी मिले नहीं जज से?...नहीं, क्या मिलना चाहिए था...असल में तुम लोगों से अजीब अमूर्त तरीके से डील करते हो, जिसकी अपनी सीमाएं हैं...हो सकता है, वी ने कहा, पर कमसकम ऑब्जेक्टिविटी कायम रहती है...मुझे शक है, क्योंकि तब तुम नरेटिव को खुद के खयाल के भीतर से पुनर्जीवित करते हो...मे बी, पर अभी तो मैं बदलने वाला नहीं...। तिवारी हौले से मुस्कराया, पता है, जब मैं खबर के लीड किरदार से मिलता हूं, तो मन में पहला कयास ये होता है कि ये साला बिस्तर में क्या करता है। राम गटकने के लिए विराम पैदा हुआ...पर, ये जज अच्छा आदमी है...फ्रैंकली, क्या फरक पड़ता है?...पड़ता है, अन्वेषण और तहकीकात को समग्र का पहलू मिलता है...मैं बताता हूं। ये जज हाई कोर्ट में सबसे शरीफ और ईमानदार जज में है, सबसे बोरिंग की गिनती में भी ये खूब ऊपर है, लकीर का फकीर, कानून के अक्षर और रूढ़ि का दास। पर मुझे लगता है आज के उलट पलट माहौल में इसकी जरूरत भी है, ये दीगर है कि इन दिनों ये जनाब अपनी शख्सियत से खुद आजिज आ गए हैं।...मतलब?

कई एक पार्टियों में इधर मिला तो एक अजीब सा बेटंगा स्टाइल बना लिया है तुम्हारे जज ने। ड्रेस बकती है, खुद बकता है। जोकर की तरह, वरना बड़ा संजीदा होता था...और, शायद तुम्हें इल्म न हो, इधर जिस सभा, सेमीनार में उसे मौका मिलता है, लैंड माफिया और जमीन की कब्जेदारी पर सही पर तबाहकुन राग अलाप रहा है...अच्छा? वी के स्वर में विचलन सुनाई दिया... जो बातें तुम चाहते हो कि हों, उनकी वकालत कर रहे हैं आपके जज, दब्बू से अचानक शेर हो गए हैं! पर...कहे और अनकहे के खेल की बात है।...मुझे तो बचकाना छल लगता है।...मुझे नहीं लगता, ये जज असल में सीधा, भला प्राणी है। मेरी लाउड थिंकिंग है कि जज प्रेशर में है, और मानसिक स्तर पर परेशान है। ये जो सेल डीड का चक्कर है, तुम जो मान रहे हो उससे ज्यादा संगीन और पेचीदा है, मुझे अचरज नहीं होगा अगर जज न केवल एक्टर है, बल्कि विक्टिम भी! ये बड़बोल और ऐलान ए बकबक, उसका मूर्ख बदला और पलटवार लगता है, मानो खुले मैदान

से वह जजमेंट सुना रहा है, जिसे वह कोर्ट में डिलीवर नहीं कर सकता, और न करना चाहिए। तुम्हारे हिसाब से हमसैनिक फार्मस केस में डिमॉलिशन का आदेश जायज नहीं है, गलत है, वी ने पूछा...सही और गलत का सवाल यहां इतना महत्वपूर्ण नहीं। ऐसा कदम प्रतिगामी और अनुचित है। उपनिवेशक और तानाशाह होते हैं जो शहर, बस्तियां, संरचनाएं तबाह करते हैं, विध्वंस करते हैं। मकसद होता है लूट और दमन। ये माननीय न्यायालय का फंक्शन नहीं है। मेरा खयाल है...।

बॉनफायर के अंगार करीबन राख हो गए हैं। दिल की जलन और क्षुधा उतनी शांत नहीं हुई। इसलिए कई बार चलने की बात करने के बाद भी वे बैठे रहे। क्या तिवारी के मन में भी उसकी तरह भ्रम और कुंठा के बवंडर कुलबुलाते हैं, या उनके मन का ज्वालामुखी प्रसुप्त हो चुका है, वी कभी खयाल करता। उनके संवाद की दिशा और मिजाज कुछ बदला, डिनर के बाद डिजर्ट खाने की तरह। वी ने सबेटिकल लेने का जिक्क किया, तो बॉस ने ढेर सुझाव दे डाले। तुम मेरे भटके पुत्र जो हो, क्या करूं! मैं नहीं चाहता तुम उन राहों को चुनो, जिनकी मार मैं सह चुका हूं...पर क्या वो मेरा नुकसान नहीं है, वी की आवाज में नमी थी।...है, पर, आई कांट हेल्प इट।

जब वे अंततः उठे, तो कमीज, पतलून के साथ चिपके कितने ही कांटे, घास के तिनगे, पत्ते, किसी इच्छुक सफर के लिए उनके साथ उठ गए। मन ही मन वे गले मिले, कृतज्ञ और भावशील... भरे, संवेदित हृदय से उन्होंने रम की खाली बोतल एक प्लास्टिक बैग में डाली, और वापसी का रास्ता लिया। तिवारी आगे है, वही रास्ता जानता है। अचानक पहले न घटित के घटने के आभास ने तीर की तरह वी को बांध दिया...मानो कभी किसी रात एक जंगल में उसके पिता लौट रहे थे, और वह उनके पीछे था, और डर की वजह से उनसे सटा चल रहा था...।

वी ने एक साल की लीव ऑफ एब्सेंस के लिए अप्लाई किया, जो उसे सहर्ष मिल गई। एक जर्नलिज्म स्कूल में उसे एसोसिएट फेलो की चेयर मिल गई। वह कुछ लेक्चर लेगा, और अपनी चॉइस के विषय पर थीसिस लिखेगा।

इन्हीं दिनों फी और शीरी और भी गहरे और नजदीकी फेसबुक दोस्त बन गए हैं...अब चारा नहीं है, कि हम रोज बात न करें!...चारा तो गाय खाती है, उसका राष्ट्रीयकरण हो रहा है, नहीं?... फेसबुक गाय!...उनके भेद की टोकरियां खाली हो गई हैं, पर आदत भी बनी है कि रोज सीक्रेट्स शेयर करें, जितने गहरे राज उतनी ही उतावली और चैन, सरल सीक्रेट्स में, जिनका वे पूर्वानुमान कर लेते (मुझे पहले से ही अंदाजा था!) उतनी तृप्ति नहीं थी, तो उन्होंने निर्दोष और भोले राज, घटनाएं, वृतांत ईजाद करने शुरू कर दिए, इधर उधर की मरीचिका और स्वैर कल्पनाएं, जिनसे किसी हानि की अपेक्षा नहीं थी, उन्हें वे तासीर के लिए शेयर करतीं, वे अपनी अंतरात्मा की सेल्फीज ले रही थीं, और एक दूसरे को पोस्ट कर रही थीं, पर अगर ये इसी तरह चलता रहता तो रिश्ते में छितराव और विकृति का अंदेशा पैदा होता ही होता, उनके संबंध के विशुद्ध और सच के लिए यह अनावश्यक जोखिम है, इसलिए यह राहत की तरह था और वरदान भी, कि एक दिन उन्होंने फेस टू फेस मिलने का फैसला किया। कि वे मय पतिदेव डिनर के लिए मिलेंगे (और अगर साथ में डांस की भी गुंजाइश बनती है तो दिल बाग बाग)। जो जगह चुनी वह एक नया, शिक होटल है, एक थाय होटल चैन, जिसने हाल में भारत में प्रवेश किया है, और अपने विलक्षण मेनू के लिए काफी ख्याति बहुत कम समय में अर्जित की है। डिनर डेट शीरी ने चुनी, फी को लिखा कि जस्साब का बर्थडे है उस दिन, इसी फरवरी के महीने के आखिर में जस्साब रिटायर भी हो रहे हैं, ये लीप इयर है, तो जस्साब को जजी निभाने का एक अतिरिक्त दिन मिल रहा है, एक्स्ट्रा डे!! कैसा अद्भुत संयोग है, फी ने डिनर डेट मंजूर करते हुए लिखा, आजकल हमारे मलयाली

शौहर कुरिआकोसी तरह से थोड़े रहस्यमय बने हुए हैं, चलते हैं तो पैरों की थाप का पता नहीं चलता! पर वो आएगा कैसे नहीं, पूरे रास्ते रस्सी से खींचना ही क्यों न पड़े...और अजब, सुखद संयोग ये है कि उस दिन हमारे खाविंद का भी बर्थडे है!! तो कई जश्न एक साथ मनने हैं, कमर कई बार कसनी होगी...कैसे रखें, फॉर्मल या इनफॉर्मल? जो भी रखें, जश्ने नुमाइश यादगार होनी चाहिए और अनोखी! इंशा अल्लाह!!

**कुरिआकोस** डिनर पर जाने से हिचक रहा था। इन दिनों वह सिर्फ खुद के साथ होना पसंद करता है। जो खुद का साथ है खिलाफत का है। पर वह फी से ना करने वाला नहीं है। फी का उत्साह उसने बरसों बाद देखा है। उसका मन है वह फी की उमंग में सौ गुना अपना जतन डाल दे। पंगोत की चरम रातों के बाद एक धुंधले तरीके से उसे अपनी मनहूस मूढ़ता का कुछ अहसास हुआ था। उसे समझ में आया उसकी अपेक्षा बेजा और गलत थी। उसने फी पर नाजायज दायित्व लादा, इस तरह रिश्ते दुरुस्त नहीं होते, और जिसे तुम प्यार करते हो, यह बर्ताव उसका अपमान है। फी से अपनी खुदगर्ज व्यथा...व्यथा भी कहां, एक अजीब तरह की सनक, के पक्ष में करुणा और स्नेह येन केन ऐंठने की कोशिश एक निर्मम क्रिया थी। पर पिछले दिनों में उसने फी की निगाह में कौतुक की झलकियां देखी हैं। और उसकी तरफ, उसके लिए अनुरक्ति और लगाव का ताप... हो सकता है वक्त लगे, पर उनके बीच की दरारें शायद पट रही हैं, और विरक्ति की बर्फ पिघल रही है। तो प्रथागत ना नुकुर के बाद वी डिनर पर जाने के लिए खुशी से राजी हो गया।

दूसरी तरफ जज इस प्रस्ताव पर मुदित है। इधर तो हर बात, हर कहा उसे आनंदित कर रहा है, अगर उसके लहजे और चिकने चुपड़े शब्दों पर जाएं। जब शीरी ने तटस्थ मुद्रा से जिक्क छेड़ा, तो जज ने हां कहा सो कहा, ताली भी बजा दी। भई वाह, तो आपकी मित्र के पति सीनियर जर्नलिस्ट हैं? बहुत खूब! अपनी ठोड़ी पर उंगली फिराई, और कहा कि किसी वरिष्ठ पत्रकार से आज तक उसका प्रॉपर इंटरव्यू नहीं हुआ। आई हेट दैम, आई लव दैम! और मेरा खयाल है कि जर्नलिस्ट तबका भी, जवाबी तर्ज पर, हमसे, माने जजी से बराबर की नफरत और प्यार करता है! मीठे खट्टे का जैसे मुरब्बा। प्यार और नफरत का कॉकटेल तो बेहद अच्छा है!

ऐसा कतई नहीं कि इन चारों का डिनर जमावड़ा प्रलयंकर, ऐतिहासिक या गेम चेंजिंग होने वाला है, और यूं भी नहीं कि कुछ नष्ट होगा, या नया सृजित होगा, इस तरह से नहीं होता जब हम आप जैसे दो कपल दो जन का एक ही दिन का बर्थडे साथ मनाने के लिए इकट्ठे होते हैं, जहां उम्र की औसत पचास के पार या आसपास है, बड़े या व्यापक संदर्भ तो छोड़ ही दें, अंततः उनकी निजी जिंदगी की नदी में भी यह डिनर एक कंकड़ के गिरने की तरह है, कुछ अनूठा, संगीन या दिलचस्प तब भी शायद होता, अगर एक कपल कहीं युवा होता, जैसे एक मशहूर नाटक में हुआ था...या उनका कोई साझा, कटु और त्रासद अतीत होता...दिल से ये चारों सतह के तैराक और रूढ़िगत हैं, लकीर के फकीर, पक्के कॉफोर्मिस्ट, असल यातना इन्होंने कहां झेली हैं, और दमन और अन्याय के बारे में इनके विचार सुने पढ़े, कृत्रिम, बंजर और रिवाजी हैं, ये कोई निंदा नहीं है, हममें ज्यादातर इसी तरह के हैं, पर उनके सरल और गहरे दिल में किन्हीं जन या संप्रदाय के प्रति घृणा या दुश्मनी का भाव नहीं, जो वर्तमान के अशांत हालात में कोई कम अर्जन नहीं... इतना है कि इस डिनर के आयोजन के साथ पर्याप्त विडंबना जुड़ी है, जिस थाई होटेल में उन्होंने मिलने का तय किया है, वह हमसैनिक फार्म्स से लगभग छू रहा है, हो सकता है उसके भीतर ही हो! अपनी अपनी स्वतंत्र सोच में चार में से तीन को तो इसका धूमिल सा अहसास है, हमसैनिक फार्म्स की निकटता, और अगर विडंबना का खयाल नहीं है, तो इतना है जैसे जब बिल्ली अपने कान

उठाती है, कुत्ता भी, हर जानवर कान उठाता है, जब कुछ नया, अनहोना या टेढ़ा आसपास महसूस होता है, या ऐसा अंदेशा बनता है, सिर्फ उनमें से एक है जिसे बाकी तीन की जिंदगी में हमसैनिक फार्मस के रोल का रती भर इल्म नहीं, और जिसकी परछाई तीनों से कभी ज्यादा दूर नहीं होती, और यही वजह है कि डिनर के दौरान फी ही थी जो सबके मुकाबले संयत और स्थिर थी, वरना बाकी तीन ने अपने स्वभाव के विपरीत खूब जम कर पीया और खाया, मानो अचानक ओरल फिक्सेशन का हमला, वे असामान्य रूप से उग्र, फहश और निर्लज्ज से थे, उन घंटों में अजीब तरीके से नाटकीय, दूसरे गेस्ट्स ने भी देखा और वे अचंभित थे, और उनकी समझ के बाहर था कि इन भद्र से दिखते चार अधेड़ में कैसा शैतान समा गया है कि ऐसी ऊलजलूल हरकतें कर रहे हैं जो उन पर फिट नहीं बैठ रहीं।...जल्दी ही जज ने ये करना शुरू किया कि कुरिआकोस से कुछ भी कहता, कोई मजाक, जुमला या बात, तो साथ में गिफ्ट रैप की तरह आंख जरूर मारता, वह उसे विक कहकर पुकार रहा था, एक आध बार तो विक बेबी तक कहा, और शीरी का मूड इस तरह था कि जज के कंधे पर अकस्मात, बेमतलब बाहें डाल रही थी, फिर वी के गले में भी बाहें डालने लगी, उसे हर चीज में मजाक और खेल दिख रहा था, हंसना शुरू करती तो थमती नहीं जब तक सुडौल पेट में सुडौल बल नहीं पड़ जाते। उनके टेबिल पर पहुंचकर वेटर गुमसुम और हेरान सा दिखता, और पास के लोगों ने यही फुसफुसाया कि जब अधेड़ युवा होने को अधीर हो जाते हैं तो उन्हें झेलना इंफॉसिबिल है, उनके अपने पेरेंट्स के साथ यह कितनी बार होता है, अब क्या किया जा सकता है, तरस खाने के अलावा...तो इस तरह यह आयोजन नॉर्मल फ्रेमवर्क के भीतर है, ऐसा कुछ नहीं कि संकट या अबूझ की दशा बन जाए।

अरे मैं इन्हें जानता हूं, खूब पहचानता हूं, जज ने मिलते ही वी की ओर इशारा करते हुए शीरी से जोश में करीबन चीखते हुए कहा, जज ने कई पलों तक वी से हाथ मिलाया, और कहा कि आपको कोर्ट में बहुत दफे देखा है, मैंने आपके कॉलम और खबरें निरंतर पढ़ी हैं, इतना कहंगा कि आपकी रिपोर्टिंग उम्दा है, लॉ पर आपका ग्रास्प अच्छा है, और आपने मुझे कभी लेट डाउन नहीं किया। जज से सानिध्य बनाने में वी को थोड़ा वक्त लगा, जज के उदार और हंसोड़ मिजाज से वह बेवश और निरस्त्र हो गया, इस अचम्भे के लिए वह तैयार नहीं था, पहचान तो उसने भी जज को पहली नजर में लिया था, एक क्षण का पैनिक था, फिर थोड़ी हिचकिचाहट, जैसे चोरी के बाद पकड़े गए, और पेशी हो रही है, पर फिर वह सहज हुआ, जज का वजनी आग्रह और चाव, दो ड्रिंक्स की जल्दी से हलक में घुसपैठ, मैत्री और मान बनने में देर नहीं लगी, और एक बार जो जोड़ बन गया, तो श्रद्धा और सराहना के घोड़े सरपट दौड़ने लगे, वी ने जज की तारीफ के पुल बांधे, कि उनका लब्ध प्रतिष्ठ करियर रहा है, बेदाग, नामवर इनिंग्स, आप जैसे की गिनती कम हो रही है सर...किस गिरह से ये शब्द निकल रहे हैं, वी ने जरूर अचरज से सोचा, पर तुरंत तर्क भी गढ़ लिए, कि जज की नजर साफ है, मुझे देखकर बाधित नहीं दिखा, या डिफेंसिव, इसका दिल साफ होना चाहिए, सेल डीड को एक्सप्लेन करने का तरीका होगा, बॉस ने इशारा किया तो था, कि बड़ी शक्तियों की चाल है...जबकि जज के लिए उसकी धारणा पहले हमेशा चिढ़ और आलोचना की रही, इस वक्त उसे यकीन सा हो गया है कि जज और वह खुद पाले में एक तरफ हैं, ये मित्र पक्ष है, अपनी जैसी सोच का है, नहीं तो साथ में मजा कैसे मार रहे होते?...वी का मन और स्वर दोनों फिसल रहे हैं, उसने जज के कई फैसलों की भरसक तारीफ की, और एक स्तर पर वे जजमेंट कम से कम संतुलन के लिहाज से काबिले तारीफ भी थे, आपका स्टाइल नो नॉन्सेंस है, निष्पक्ष है, विश्लेषण एकदम स्ट्रेट, तीर की तरह...आई ऑल्सो कांट स्टैंड नॉन्सेंस... तब वे दोनों न जाने क्यों खड़े हो गए थे, वी ने तब न जाने किस भावावेश या विस्मृति में जज

की कमर में कसा शिकंजा बना लिया, और बहकते स्वर में एक से ज्यादा बार कहा : मुझे सयानों से सख्त परहेज है, पर खुदा की रहमत है, मेरी बीवी सयानी नहीं, आप, मैं दावे से कह रहा हूँ, अच्छे, बढ़िया जज हो, पर जिस चीज पर मैं लट्टू हूँ, जिसकी अहमियत है, वो ये है कि आप सयाने नहीं हो, ये जो सयानों की बारात निकल चली है हमारे शहर में, देश में, इसे नेस्तनाबूद होना है एक दिन, सर आई टेल यू, और मैं आपके साथ हूँ इसमें...जज अपने विक बेबी को थपकी दे रहा था, फिर थकान ने उन्हें बैठने पर मजबूर कर दिया। वी के मन में जज के उद्घोष शहद की तरह घुल रहे हैं, जज गुरु गंभीर, विद्वान लहजे में कह रहा है कि कोर्ट इस मुश्किल वक्त में उम्मीद का अंतिम चिराग और दुर्ग है, पॉलिटिक्स का हाल सब जान रहे हैं, और कार्यपालिका पर किसी का विश्वास नहीं बचा, न्याय तंत्र की स्वतंत्रता और विभूति को हर कीमत देकर कायम रखना है, और इसलिए जुडिशियरी और मीडिया के बीच सकारात्मक संधि, मतलब पॉजिटिव अलाएंस सदा एक्टिव रहनी चाहिए, आखिर तुम लोग फोर्थ एस्टेट हो, मैं मीडिया और जुडिशियरी एज इस्टिट्यूशंस की बात कर रहा हूँ, थाली के बैंगन और सड़े टमाटर तो कुछ तादाद में हर ढेरी में होते ही हैं...कुछ ही पलों में वी के हाथ में कागज था, कलम थी, और दोनों आदमी, नादान, अल्हड़ बच्चों की तरह, मीडिया और जजी में सबसे ओजस्वी और विश्वस्त नाम की लिस्ट बनाने लगे, नहीं ये मन का ठीक नहीं, कांड़या है, ये खरा सोना है विक बेबी...उनके सिर शीट पर झुके हैं, माथे लगभग छूते हुए, इतनी सी देर में उनके बीच स्पर्शदोष की तरह एक तरह की घनी भाईबंदी कायम हो गई है, फी पहले वी के इस नवेले अंदाज पर चकित हुई, फिर उसका रोमांच जगा, और उसके बाद तो वह सम्मोहन के वेग में बहने लगी, डबडबाए मन के साथ, मुहब्बत और अर्पण का स्पंदन, जिससे वह कितने साल महरूम रही, फी के पिघलते प्राण ने देखा कितनी तेजी से दोनों आदमियों के बीच इकरार बना कि पहले वे एक इनफॉर्मल थिंक टैंक के रूप में सेंटर फॉर इंटीग्रिटी एंड जस्टिस कायम करेंगे, और साल भर में वह सेक्शन 8 की कंपनी की तरह रजिस्टर हो सकता है, इसी दौरान जज ने सुना कि रिपोर्टर जनाब अपनी थीसिस शुरू कर रहे हैं, आपकी क्या राय है, वी ने पूछा, तो जज ने कई विषय सुझाए, और वहीं, मिनटों में यह हिसाब बना कि विकी मीडिया के द्वारा कोर्ट कवरेज के लिए स्टैंडर्ड प्रोटोकॉल तैयार करने का माकूल प्रोजेक्ट लेगा, एंड आई शैल राइट ड फॉरवर्ड, जज ने कहा, और दोनों बीवियां अपने शौहर को, और अपनी क्लोज फ्रेंड के पति को गरूर से और तरबतर प्यार से ताक रही हैं, उन्हें हैरत हो रही है कि एक ही शाम में वे सब इतने नजदीक हो गए हैं, जबकि अभी तो स्टार्टर्ज भी शुरू नहीं किए...आपके पति इतने ट्रेंड हैं कि आसानी से कोर्ट की सीट पर बैठ सकते हैं, और सीनियर लॉयर की तरह केस की बहस कर सकते हैं, इस पर फी बलश करने लगी, चेहरे पर उभरी हरातर की लालिमा कितनी भली लग रही है, उसने सोचा, और विक्रम कहने लगा कि रिटायरमेंट के इतने पास होने के बावजूद जस्टिस प्रणाम की जुडिशल एनर्जी का कोई छोर नहीं, वंडरफुल!

अब काम की बातें ओवर, जज ने फरमाया, चलिए नाचीज चमचे उठाएं और बनें बीवी के खास चमचे! गपशप होने लगी, मजाक, दिल्लगी, नाज नखरा, शोखी...पतियों ने आह भरी कि श्रीमती युगल ने सारे राज आपस में बांट लिए, और हम रह गए भिखारी, ये बेहिसाब नाइंसाफी है, हम अंधेरा टटोल रहे हैं, और इन्होंने हमारी गर्दन में टाई का फंदा डाल दिया है...पर कितना अच्छा हुआ कि हम लोग मिले, फेसबुक अच्छी चीज है, नहीं...मेरा कोई फेसबुक अकाउंट नहीं, जज ने मुंह बिसूरा, मेरा अकाउंट है, वी ने कहा, तो मुझे सिखाते क्यों नहीं, जज ने कहा, द गुड थिंग्स एंड द डर्टी थिंग्स!...जो भी स्फीति जी अलाओ करें...खूब लपक कर खाया सबने, मस्ती चढ़ी है, गुफ्तगू की डोर अब त्रिया और प्रिया की उंगलियों में लिपटी है...इतनी मगन कि शील

का परदा न जाने कब गिर गया, उनकी त्वचा चमक रही है, कामदेव ने पहरा शिथिल कर दिया है, शीरी विक्रम से गुलबदन की बेस्ट रेसिपी मांग रही है, नहीं जानते तो अपने से बनाइये, इतने अनाड़ी तो आप नहीं! फी जज से जानेमन का लीगल वर्ड पूछ रही है, अगर हलफनामा दाखिल करना है कि जानेमन ने मेरे साथ दगा किया है माई लॉर्डशिप वगैरह वगैरह, तो जानेमन तो नहीं लिख सकते, फिर क्या वर्ड यूज होगा, बताइये, नहीं तो ईजाद कीजिये! अश्लील की हदें पुचकारने में मजा आ रहा है...पर हसीन, मधुर अहसास भी हैं...फी खास खुश है, कि जो इतने साल से सुप्त भाव उसमें जगे हैं, उनमें आवेग की आतिश कायम है...जो भी अधर में लटक रहा था, लगता है थाह मिल गई है। फी के भीतर जो शून्य और अनिश्चय बना था, वह शायद आज घुल गया है, फी को लगा वह वी से दोबारा प्यार करने के लिए तैयार और समर्थ है...जो गिले शिकवे और संशय मन में बचे हैं, उनसे पार पाना आसान लग रहा है...

डिनर खत्म हो गया था...आहट दूसरी थी पर उठा जज था। चलो माई 'पेट', लेट्स गो! जज ने शीरी से कहा, जो तब, या पहले, या तत्क्षण जज के बगल में सिमट गई है। जज की पलुआ है जी, ऐसी वैसी नहीं! जज जोर से हंसा। पितृतंत्र की जायज हंसी! बगल के टेबिल पर कम से कम एक मादा चम्मच तो नीचे गिरी। गिरी और फर्श पर लुढ़कती चली गई। उधर चम्मच गिरी, और इधर ये चार रेस्टोरेंट से बाहर निकले। चारों नशे में बहक रहे हैं, और रुखसती के पूर्वर्ग खिंचते जा रहे हैं। सब सबसे गले मिले, एक नहीं कई बार, गालों पर गीले चुम्बन, इतना उलट पलट सा मिजाज, कि जब कार में बैठने की नौबत आई तो फी गलती से जज की कार में बैठ गई, और शीरी, मानो गोलमाल का मुकाबला चल रहा है, शीरी धम से विक्रम की कार में जा बैठी। कारें कुछ मीटर तक आगे बढ़ी, तब जाकर उन्हें गलती का इल्म हुआ। अब गलती थी या बागी भूल, क्या कह सकते हैं, बहरहाल मस्ती और दिलकशी के इस माहौल में वे चलते रहे, और त्रिया प्रिया का एक्सचेंज इंडिया गेट पहुंचने पर हुआ, जहां उन्होंने कुल्फी खरीदी और भरसक चूसी, और अंततः दोबारा जल्दी मिलने के ढेर मंसूबे के बाद, वे विदा हुए।

इस डिनर का चारों की जिंदगी में कोई अहम रोल, बल्कि कोई रोल नहीं है। और अहमियत वजह भी नहीं कि इतने विस्तार से डिनर की शाम का चित्रण हुआ है। जो भी बातें उस शाम हुईं, वादे इरादे, वो अगले ही दिन लगभग भूले के फोल्डर में शामिल हो गए, यह भी नहीं कि जो उन्होंने कहा वह फिजूल या झूठा था, उनका मन सच्चा है, और दोबारा मिलने पर, अगर वे मिलते हैं, तो यही बातें पूरी शिद्दत से फिर होंगी, फिर भी इतना है कि डिनर ने उनके बहुत से मसले और सवाल के हल की राह प्रशस्त कर दी है, उन्हें माकूल, अन्य दृष्टिकोण मिला, दूसरे कोण से चीजें परखने का आधार और बूता, इस डिनर ने फी और वी के बीच द्वेष और मायूसी के पहाड़ को ढहा दिया, यह करिश्मा से कम नहीं। कुरिआकोस अचानक मन के अंदरूनी बैर से छुट्टी पाने की दिशा में चल रहा है, जबकि अब भी उसे यह स्पष्ट आभास नहीं कि जीवन और सरोकार के प्रति उसका रवैया वस्तुतः रातोंरात बदल गया है...वे वही हैं जो वे पहले थे, लेकिन हूबहू फिर भी नहीं, क्योंकि जीवन के दो अलग क्षण एक रूप नहीं होते, नहीं हो सकते, वे बेहतर हुए हैं, और बदतर भी हुए हैं, यह इस पर निर्भर है कि हम क्या और किस मंसूबे से उन्हें परख रहे हैं, पर जो प्रमुख चीज है वह यह है कि यह सब, बदलाव या पतन या उत्थान, अवैध हमसैनिक फार्म की जर्द, अविकारी टकटकी, उसकी उदार छाया और रहमत के छत्र के अधीन हो रहा है, मानो अवैध की अवधारणा का उपहार और आशीष!

...यह उलझन किसी नोक की अज्ञात चुभन का क्षण है, इसलिए थोड़ा थमने की जरूरत



है, दिमाग और ध्यान की सीट बेल्ट थोड़ी कसें...ऐसा लगता है कि इंसान के निसर्ग में किसी की निगाह या निगरानी में होना, और साथ साथ किसी पर नजर रखने की तीव्र हाजत है, टू वॉच ओवर एंड बी वॉच्ड बाय...कितनी दंतकथाएं, मिथक और धर्म की सीखें इस संवृति से भरी हैं, मां बच्चे का खयाल करती है, बाप औलाद की सिफत पर नजर रखता है, लोग अपने वृद्ध मां बाप का ध्यान रखते हैं, इश्कबाजों की निगाह एक दूसरे से हटती नहीं, महबूब के हर कदम, उसांस, जज्बे की गहन थाह जरूरी है, खतरे और दुश्मन से हर क्षण चौकसी बरतना अहम है...भय और प्रेम का अतिरेक हमें चौकन्ना करता है, या कर्तव्य और दायित्व का आह्वान, सम्राट अवाग पर कल्याण और निगरानी का शामिल जाल बिछाता है, स्टेट हर नागरिक की निगहबानी के लिए सर्वलेंस का विराट ढांचा रचता है...रहम और करुणा भी कम निगहदाश्त नहीं, कमजोर, गरीब और सताए को खैरात और इमदाद की निगाहे मलहम चाहिए, अगर इंसाफ की नजरे इनायत भी हो, तो बेहतर, कैपिटलिस्ट और मुनाफाखोर को धन और ताकत की इतनी लिप्सा है, कि वह कोई मौका नहीं चूकता, ये नजर और निगरानी का फलक इतना व्यापक है कि नए प्रयोजन के लिए नए शब्द बनते हैं, पहरे, मुखबिरी, निगरानी, मुस्तैदी के अलावा गुप्तचरी और तहकीकात की अलग विधा है, आकाश में निरंतर प्रदक्षिणा में कायम उपग्रह की आंख सदा चौकस है, इस सर्वलेंस के संक्रमण का कोई अंत नहीं, अब हर स्थान और मोड़ पर सीसीटीवी कैमरे हैं, हर जन पर एक गार्ड की दशा बन रही है, और यह तभी सिद्ध होगी, जब मन और सोच का मूल स्वभाव खुद और सभी की जासूसी का होगा, नेट और मोबाइल के सर्च इंजन और अल्गोरिदिम दिनोंरात सजग हैं, सोशल मीडिया की दिग्गज कंपनियां सर्वगत पहरेदार हैं, हर जन के हर स्वभाव और कृत्य और आकांशा के हर पहलू की सनद पूरी है, जिसके कई नाम हैं जैसे ई लाइफ या डिजिटल फुटप्रिंट्स, डिजिटल यू और डिजिटल मी...अल्लाह, ईश्वर की सदा नजरे इनायत रहे, सभी इबादत, उपासना, प्रार्थना का यही मकसद है, और गृह और नक्षत्र की दशा और स्थिति हमारे नसीब का क्या निगहबान नहीं?...तब भी कोई भी दो निगाहें एक समान नहीं, नजर की ज्योति नम्र और उदार भी है, और सूखी और कठोर भी, निगाहों का अकस्मात टकराना भी सतर्क दृष्टि का नतीजा है, यूं कि उनसे मिली नजर कि मेरे होश उड़ गए...इश्क का तबिसरा नजरे नूर की मुलायम सौगात है...निगाह सबकी सतर्क है, सुई की आंख से लेकर सेटेलाइट की सर्वनिगाह।

...डिनर के रोज ने हमारे चार किरदारों के अंतस में संतुलन और पॉजिटिव ऊर्जा को पुनः कायम किया, उनकी जिंदगी की उथलपुथल और चीरफाड़ अब अधिक साम्य और समानता से वितरित और बंटी है, अब वे तड़फड़ा नहीं रहे, बल्कि अशांत समुद्र में संयत ढंग से किनारे की ओर तैर रहे हैं। और सब, डिनर का पूर्व, तैयारी, बाद के नतीजे, और डिनर के रोज की अद्भुत उपलब्धि, यह हमसैनिक फार्मस के सगर्व विस्तार की सतर्क और मेहरबान निगाह के अधीन घटा, एक पूर्णतया अवैध मगर परफेक्टली जायज और समादर संरचना...अगर मैं कहूं कि रेड फोर्ट इललीगल है, क्योंकि यह साफ नहीं कि नीचे की जमीन किसकी थी, या कि इंडिया गेट के गोल चक्कर का व्यास कानून की शर्त से कम या ज्यादा है, ये भी कोई तर्क है, बताइए...इस तरह का भद्दा चैलेंज हमसैनिक फार्मस के कठोरचित्त संकल्प के कारण ही संभव है, कि विरोध या विपत्ति चाहे कितनी ही मजबूत क्यों न हो, वह अपने तर्क और जमीन से नहीं हिलने वाला, हमसैनिक फार्मस की यह दिलेरी ही है कि हमारे किरदार जैसे सैकड़ों के छोटे गुनाह और उल्लंघन वह खुद के चौड़े सीने में सोख लेता है, और इस तरह उन्हें दोष से बरी करता है। अगर भगवान है तो उसकी मंशा भी क्या इससे अलग है?...यह व्यवस्था तब तक है जब तक एप्पल कार्ट के उलटने का खतरा नहीं है, और चूंकि एप्पल कार्ट की औकात फिलहाल एक कहावत की है, किसी ने उसे

देखा नहीं, तो कोई फर्क नहीं पड़ता, तो, इन इफेक्ट, सूरत ये है कि जहां तक हमसैनिक फार्म्स का मसला है, एक नहीं, सौ नहीं, हर खून और कानून से खिलवाड़ माफ है, कानून इंसान के संकल्प से है, न की इंसान कानून की इच्छाशक्ति से...बहरहाल, यह हमसैनिक फार्म्स का खरा और सच्चा होने का धृष्ट दावा ही है, जिस वजह यह चमत्कार संभव हुआ, एक तरह से यह उद्घोष कि मैं विद्यमान हूं, पनप फल रहा हूं, उन्नत और कामयाब हूं, मेरी पूछ और स्वीकृति है, फिर मैं वैध नहीं तो क्या हूं?...संरचना और कानून के अक्षर के बीच अगर चुनना है, तो कानून का अक्षर डिमॉलिश करना सहज और जायज है, मेरे मित्र।

आगे के वक्त में वे चार अच्छे दोस्त बने। कई एक दिन में साथ शिरकतें हुईं, घरों में साथ में सुखद शामें गुजरीं, एक बार साथ हॉलिडे पर भी गए...बात करने के लिए विषय और मुद्दों, मजाक और ठिठोली की कमी नहीं थी, जब वी फी के साथ जज के हमसैनिक फार्म्स के विला में गया, तो पैनिक या क्लौस्ट्रोफोबिया का कोई निशान नहीं था। जज मुकर्रर दिन रिटायर हो गया। और दो महीने के भीतर वे हमसैनिक फार्म्स में शिफ्ट कर गए। जिंदगी सुकून से चलने लगी। ज्ञात अपनी रिसर्च के लिए विदेश चली गई, रह गए मियां बीवी। हालात कुछ इस तरह बने कि जस्टिस के निमित्त जज के योगदान पर एक प्रकार की भूतापेक्षा आभा चमने लगी। उसकी व्यापक सराहना होने लगी और उसके जजमेंट अनेक सभा, सेमीनार, लेख में उद्धृत हो रहे थे। वह एक लोकप्रिय वक्ता सिद्ध हुआ, निमंत्रण की बाढ़ सी बन गई। मानव अधिकार, और जस्टिस फॉर ऑल की अहमियत, और इंसाफ पाने की कीमत और रफ्तार के संकट पर उसके सुझावों की खूब चर्चा हुई। जज को खुद को एक अहम सुधारक के रूप में स्थापित करने के लिए कोई पेंच नहीं लड़ाने पड़े। सब कुछ जैसे स्वतः ...अन्य जज अचंभित थे कि इस फीके, पोस्टमास्टर टाइप के जज का कद एकाएक इतना बड़ा कैसे हो गया। अचरज के अलावा इर्ष्या भी पर्याप्त थी। ताज्जुब की बात नहीं कि जज के तौर तरीके फिर से एहतियाती और मुनासिब हो गए। पिछले वर्ष की सस्ती तड़कभड़क सिरों से गायब हो गई। पहनावे में सफेद, ग्रे, ब्लैक की बहुतायत दिखने लगी। जज नियम से जिम जा रहा है, और फिट है। फिर एक दिन, एज एक्स्पेक्टिड, कानून मंत्रालय से कॉल आई। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के वाइस चेयरमैन का पद जस्टिस देवराज प्रणाम की झोली में गिरा। जज ने सहर्ष स्वीकार किया। ये मेरे लिए सम्मान की बात है, और इस भूभंजक, उन्नत काल में अहम जिम्मेदारी भी, जज ने मंत्री से कहा। बड़ा कद, बड़ा दायित्व, मंत्री ने हाथ मिलाया। शीरी जज से भी ज्यादा खुश। फूला न समाना।

विला दोनों के लिए वरदान साबित हो रहा है। कितने फ्लैट देखे थे, पर जो नहीं देखा, वही सौभाग्य का खेवनहार बना। जो फ्लैट देखे थे, उनमें घटे की श्रृंगारिक यादें हैं। शीरी कभी उनमें मग्न होती। कोई दिन होते जब स्पिरिचुअल डिस्कोर्स से लौटती तो रतिराग के उबाल में डूब जाती। जब भी वक्त बना, विला कामुकता का द्वीप साबित हुआ...जस्साब के बायसेप्स के स्पर्श की पुलक बनी रही, बनी है। कभी तीव्र इच्छा जगती, और शीरी किसी बहाने जज के बायसेप्स का जायका लेती। अब भी मजबूत और ठोस। दोनों हाथ की हथेली के मध्य ही वे समाते। झूल जाने का मन आ जाता...।

आज जस्साब को नए पद की शपथ लेनी है। संवैधानिक पद है। शपथ राष्ट्रपति दिलाएंगे। देवराज जल्दी निकल रहा है, शीरी थोड़े बाद में निकलेगी। कल रात उम्र को तौबा करती वसलत के बाद ये बात हुई कि क्या सरकारी बंगले में शिफ्ट करें? पांच वर्ष हैं। पर हम यहां खुश हैं, जज ने शीरी से कहा। ये घर है, फिर मेरा अपना बंगला है। तो क्या जरूरत है? शीरी ने जज के होंठ छू लिए। ऐसे ही पूछा...देखो तीन घर दो से ज्यादा हैं, पर भाग की देवी को दो बार नहीं

लुभाना चाहिए!...अहो भाग्य की कृपा जिंदगी में एक बार हो जाए, बहुत है, शीरी ने दर्शन के अंदाज में कहा।

जज बेडरूम से तैयार होकर ड्राइंग रूम में आया। काला, फॉर्मल सूट, गहरी नीली टाई। टाई की गांठ में वैसा बल नहीं जो होना चाहिए। शीरी जस्साब के पास आई। उसे पंजों के बल उठना सा पड़ा। आदिम प्रथा के वश में जैसे, शीरी ने जस्साब के बायसेप्स पर उंगलियां सहलाई। तृप्ति की अनुभूति। शीरी ने टाई ठीक की। जीभ होंठ के एक किनारे से हलके से बाहर निकल आई। जस्साब, आपने मान रखा हमारा, इतने साल...जाइए, अब इंसाफ का मान भी बढ़ाइए!... आप मजाक कर रही हैं? जज ने शोख नजर से पूछा। थोड़ा, पूरा नहीं! हमेशा अपूरा क्यों, हर सवाल और विनती और चाहत? बेहतर है न जस्साब, आधा मानें तो दोगुने की बरसात होती है, नहीं?...आप रसिक हैं या साध्वी? जज ने मुग्ध होकर पूछा। दोनों हैं, मौसम का तकाजा है जस्साब, आप खूब जानते हैं...चलिए अब एड़ लगाइए, अश्वमेध के घोड़े की तरह! जज जब देहरी से बाहर निकल रहा था तो शीरी ने उसके लेफ्ट बटक्स पर चपत लगा दी।

मन की बात का अनुसरण करते हुए, बल्कि एक कौंध के वश में, शीरी ने कंपनी से, प्रमोशन को तजते हुए, एक साल की लीव ऑफ एब्सेंस ले ली। उसका टैलेंट ऐसा था कि कंपनी मना नहीं कर सकी। हॉलिडे पर, दिल्ली की धूल और जहर से दूर होने के लिए फी और वी एक महीने के लिए केरल चले गए। एलेप्पी में उन्होंने एक सिंगल बेडरूम अपार्टमेंट किराए पर ले लिया जो बैकवॉटर्स से पचास गज की दूरी पर था। जो तलाश रहे थे, वही वह निकला।

हर कुछ इतना भला और अच्छा है। कुछ भी बुरा नहीं महसूस हो रहा। सब कुछ सुकूनपसंद और सुकूनती। रातों में मन के तार सहलाती पानी की छपछप का असल या कल्पित स्वर। पतली, साफ गलियां, सड़कें। जिंदगी के लम्हे मंद गति के हवाले। वही गति जो बैकवॉटर्स के शांत, धीरे बहाव में है। वी को लगता जैसे उसके होंठ पर नमक का स्वाद है। घरों के भीतर से कैरल्स के गाने के स्वर। प्यानों के मधुर सुर। एक रात वे मलयालम के मशहूर फिल्ममेकर जयराज की फिल्म ओटायाल देखने गए। फी की शुरु में इच्छा नहीं थी, पर गई, जब वी ने जिद की। सब टाइटल्स नहीं थे। कुछ मिनट वी अनुवाद फुसफुसाता रहा। पर ज्यों वे फिल्म के उदात्त और मानवीय काव्य में डूबते चले गए, इसकी जरूरत नहीं रही।

एक आठ साल के लड़के के माता पिता कर्ज के आतंक का अंत खुदकुशी से करते हैं। बच्चे का बाबा उसे साथ ले जाता है। वह मछुआ है, और बतख पालन करता है। बाबा का पूरा जीवन आद्र भूमि पर नाव खेते हुए बीता। वेटलैंड्स उसकी संपूर्ण दुनिया, ठिकाना, सुख दुख। छोटी सी नाव, बच्चा और बाबा वेटलैंड्स में न जाने कितने दिन नाव पर चलते, बतख के झुंड के साथ, गंतव्य इतना पास नहीं था। रातें वे किसी गांव की सरहद पर गुजारते। एक जगह वे कई दिन के लिए रुके, और कच्चा घर बनाया...जहां एक डाकिया है जिसके पास गांव के लिए कोई डाक नहीं होती, एक बूढ़ा जो दिन भर कांटा डाले तट पर बैठा रहता है, पर कभी मछली हाथ नहीं लगती, एक अनाम कुत्ता, एक उदास सी मुर्गी...लड़के का एक अमीर घराने का लड़का दोस्त बन जाता है...छप्पर की ताड़ी की दूकान जहां बाबा रोज ताड़ी और सिकी मछली के टुकड़ों से मन हल्का करता है। शरीर और मन सुस्ताता है। तब उसके पैर के नाखून भी विश्राम करते दिखते हैं। रात के आसमान के विस्तार में असंख्य, मिचमिचाते तारे...भोर की उजास में जल कुमुदिनी की कितने रंगों की चौड़ी पट्टियां, और आर्द्र भूमि की निःशब्द सरसराहट...फिर सफर का वक्त हो जाता है, बच्चे का अकेला दोस्त भी छूट रहा है। बाबा को अहसास होता है कि वह बेहद बीमार

है, उसके ज्यादा दिन शेष नहीं। पोते को कहां, किसके हवालेकरे? विकल्प नहीं हैं। इस बहाने से कि अच्छे स्कूल में उसकी भर्ती हुई है, बाबा उसे बिचौलिए के साथ एक पटाखे की फैक्ट्री में काम करने के लिए भेज देता है। दिल लहुलुहान, पर क्या करे, कोई और चारा भी नहीं...बाबा की मृत्यु होती है...लड़का फैक्ट्री में बहुत दुख में है। बाबा के साथ आर्द्र भूमि पर बिताए दिन स्वर्ग की तरह हैं। वे भूलते नहीं। वह बाबा को चिट्ठी लिखता है कि वह लौटना चाहता है...।

सिनेमा हॉल से लौटते हुए उन्हें लग रहा था, वे भी नाव में सवार हैं और आर्द्र भूमि के जल पर तिर रहे हैं...। विलक्षण से अहसास—फिल्म का नम सौंदर्य, घटनाओं की उदासी, मन को मोहती तस्वीरें और फिल्म के ठहरे पल, वेटलैंड्स के जीवन का अद्भुत प्रगीत, जो बच्चे के लिए इतनी बेरहमी से खत्म हो गया, बाबा का असीम अनुराग...अलगाव का निर्मम यथार्थ, फैक्ट्री में नन्हे बच्चों का अभद्र शोषण...बाबा, जो मर रहा है, उसका संत जैसा चेहरा, मोटे रिबन की हैंडल बार मूछें, जिसमें होंठ छिपे हैं पर मन के भाव नहीं...अहसास का यह सबब छूटे नहीं छूट रहा है, दोनों के क्षीण, जर्जर हृदय में कुछ आत्मिक मथ रहा है, घर लौटते हुए इतना ही फी ने किया कि वह वी से बार बार सट रही है। वे इतने द्रवित हैं कि फिल्म उन्होंने दोबारा देखी...आर्द्र भूमि का धीमे से बहता जल, मौसमी पक्षियों का कलरव, बतख के विशाल तैरते झुंड, नन्ही नावों की प्रशांत छवियां...किसी लोप को जैसे पाने की गरज...काफी दूढ़ने के बाद कुरिआकोस ने फिल्म का डाउनलोड कहीं से पाया, पेनड्राइव पर उन्होंने फिल्म अपने लैपटॉप पर देखी, अगल बगल बिस्तर पर लेटे, लैपटॉप कभी वी, कभी फी के पेट पर टिका, कई सीन और क्षणों पर वे रुकते, फिल्म रिवाइंड करते, और फिर से देखते...आत्मा का मंथन अब एक पुनर्जनन है, हृदय के निर्जन, बंजर खानों में हरी पौध का अंकुरण। अलग अलग, शंका और लज्जा में लिपटा यह खयाल उनके मन में जगा कि उन्हें बच्चा होना चाहिए।

पंगोट के अतिक्रम के बाद उन्होंने शायद ही जिस्म से जिस्म जोड़े हों। स्पर्श के प्रति भी एक सुन्न भाव। उन्होंने एक हाउसबोट हायर की, और रात बैकवाटर्स पर गुजारी। केबिन के स्काईलाइट से तारे दिख रहे हैं। फ्रेम हिलता सा, उसके साथ मन भी डावांडोल। आवर्तन में आहिस्ता सा झूला। वी की परछाई केबिन की दीवार की लकड़ी पर अकस्मात उछाल ले रही है। फी संजीदा है, और आतुर भी। वह वी की नंगी छाती छू रही है, उसने उंगलियों के बीच उरोज मरोड़े। वे सख्त हो गए। फी की हथेली नीचे सरकी। वी की चाह बनी, पर वह बेजान, गतिहीन रहा। एक क्षण का संत्रास करवट से उम्मीद में बदल गया...उस गहराई में उतरना है जहां उनके अफसोस और क्लेश की झाड़ियां हैं, उसे खाली और साफ करना है, पहले...कितना सारा है जिसे तजना है मेरी जान, फी उसके आतंक से कह रही है, अपने को जतला रही है। एक गुड्डे की तरह वह उसे सहलाने लगी।

सुबह से वी तेज बुखार में तप रहा है। रह रह कर कंपकंपी। ज्वर कई दिन रहा, और फी ने उसकी देखभाल की। वह अंग्रेजी के लोकल पेपर से उसे खबरें पढ़कर सुनाती, और नेट के सर्च से उसे सब कुछ के बारे में थोड़ा कुछ बताती...ताकि कुछ तो तसव्वुर के लिए भी छूटा रहे। वी ने सांस खींची। तुम्हें पता नहीं, खयाल और गौरोफिक्र के साजो सामान तो सरकार ने हथिया लिए हैं! फी ने गोल होंठ बनाकर कहा। शिकन उभरी कुरिआकोस के माथे पर। ठीक कह रही है फी, बंदी, पाबंदी, रोक और विजिलांतिज्म का ऐसा प्रतिहिंसक और संकीर्ण माहौल जैसे रातों रात न केवल बन गया है, बल्कि तेजी से फैल रहा है। जिसके भीतर भी जिस भी कारण बैर या घृणा या अहसासे कमतरी का जहर है, वह खुले सांड की तरह उसे पब्लिक स्पेस में उगल रहा है...एसे लोगों की संख्या कम नहीं, जो इसे दूसरा स्वतंत्रता संग्राम कह रहे हैं, विदेशी और बहुलवादी विचार

से निजात...सुनो, वी ने कहा, विजिलातिज्म का हिंदी क्या होगा, संस्कृत बता दो तो हर पाप से बरी! फी हंसी, वी भी हंसा, फिर दर्द की टीस से कराह उठा। क्या हुआ, फी पास आ गई, कुछ नहीं, हंसा तो सिर में जैसे एक मुट्ठी भिंच गई...फी थोड़ी देर गूगल करती रही, फिर बोली कोई कायदे का शब्द मिल नहीं रहा...ये तेरी हिंदी वेजीटेरियन होगी इसलिए! हंसने का मन किया, पर शूटिंग पेन की याद से मुंह पूरा नहीं खोला...मिलकर दोनों ने कई शब्द बनाए—खबरदार होशियार, इंतेजामिया गुप, बाखबरी!...हिफाजती सेना कैसा है? ऐसी की तैसी टुकड़ी क्यों नहीं? 'तेरी तो' के पहरेदार! इतने हंसे कि बल पड़ गए, और इस बार माथे ने भी साथ दिया।

फी उसे कोल्ड कंप्रेस लगा रही है, रात में जब बुखार बढ़ रहा है, माथे, छाती, पेट पर। गीले, ठंडे तौलिए से कई बार पूरे जिस्म को पोंछा, वह हुज्जत करता तो कहती सीधे नल के नीचे बिठा दूंगी, विक्रम के कान में वह हंसती है, देख, तुझे गरम करने की जगह कोल्ड कंप्रेस दे रही हूं, लानत है तुझ पर...फी मेरी जान, वी हौले से फुसफुसा रहा है, होंठ सूखे, पपड़ी से, थकी मुस्कान आती है जाती है, और आंख में गहरे सुख और अनुग्रह के रंग।

कभी ज्वर के ताप में वह बेसुध सा, बेहोशी के आलम में, आधी नींद, या नींद से बाहर, तंग और बेचैन करवटें, कुछ कुछ बोलता है। हर बार जब देर रात में अचानक उसकी नींद टूटती है, वह फी को बहुत कोशिश से कह रहा है जो वह पहले से जानती है, क्योंकि उसने यही बात कुछ घंटे पहले सुनी है, और कल भी सुनी थी, पर उसे कोफ्त नहीं होती, अच्छा लगता है, बीच की गिरहें खुल गई हैं, वह बोझ से मुक्त महसूस कर रही है, और विनीत भी...ये...उम्मीद का सफर है, हमारा, वी कह रहा है, अमन का ठौर...सुथरे का गीत...एक किताब बन रही है, नई शुरुआत... वी के कुछ कुछ बोलने में बार बार उस फिल्म का जिक्र है, वेटलैंड्स का, आकाश और असंख्य तारे, वे लोग, बाबा और लड़का...।

जो वी अपने तप्त मन के टुकड़े वाक्य में कहना चाह रहा है, छितरी तस्वीरें और लंबे खामोश पलों की चुप्पी, ज्वर और अनिद्रा की अनुभूति, और जिस तरह फी ने उसे सुना या समझा या समझना चाहा, वह यह है कि ओटायाल का गांव ही उस विकल्प का तसव्वुर है, जो उनसे छिना और छूटा है, जिसकी नामजूरी उनका क्लेश बन गई।

...बाबा सबसे उदात्त बाबा, लड़का सबसे प्यारा बच्चा...बतखें, जल, नीलकमल, वही जो सृष्टि का खाब है, वैसा डाकिया, मछुआ...अगर जज होता, उसका कोर्ट, वहां, आर्द्र भूमि के ऊपर, ताड़ी की दूकान के बगल में, उस आकाश और तारों के नीचे, तो...पुलिस भी होती, पुलिस स्टेशन, तंत्र के ढेर मकड़े और उनके जाल...तब वे निरपराध न होते, वे सब...डाकिया जिसके पास डाक नहीं, मछुआ जो मछली नहीं पकड़ पाता, बाबा जो आलसी और पियक्कड़ कहलाता, बच्चा जो स्कूल नहीं जा रहा, मनमौजी बतखें, मौसमी पक्षियों का उपद्रव...वे फरियादी होते या मुलजिम होते, और इंसाफ का कहर हवा तक को निगल लेता...जज है जो अपने साथ अन्याय का जहर लाता है, विधि अवैध का निर्माण करती है...तंत्र क्रूरता और ताकत के दुस्साहस की शर्तें और तत्व पैदा करता है...।

फी ने बेहोशी के प्रलाप का सत्व पा लिया। वह जान गई वी क्या कह रहा है, कहना चाह रहा है। ज्वर भी जाता रहा। वी के सेक्स की मशीन उसी रात दुरुस्त हो गई, जिस रात वे दिल्ली लौटे।

**पर** हमसैनिक फार्मस का क्या? उसे तो हम न हिला पाए, न हटा पाए। उसने हमारी एक न सुनी, बातचीत से भी इंकार कर दिया, गवाही देना तो बहुत दूर की बात है। कटघरे में खड़ा करने का तो विचार ही त्याग दें। हमसैनिक फार्मस ज्यों का त्यों है—अटल, कृतसंकल्प, चिरस्थायी, गुस्ताख,

बेधड़क, धृष्ट, भव्य, अमित...इतना ही है कि उसके भीतर से, जमीन के कहीं भीतर से हमेशा, दिन रात, घर घर, ठक ठक, धम धम की आवाज निरंतर सुनाई देती है, एक गुर्राहट की तरह। शायद यह हमसैनिक फार्मस की खुदी की आवाज है, उसका घोषणापत्र या ऐलान या फरमान...कोर्ट में यह स्वर अन्य नाम, मुद्दे, इलजाम की तरह दर्ज है, जाहिर है कोर्ट की पूरी ऊर्जा या दिखावा ऐसे सवालों में लगा है, जैसे : कि आवाज का स्रोत क्या, कहां या कौन है? स्वर का जिम्मा किसका है, या होना चाहिए? स्वर ऊंचा है, मध्यम या नीचा, उसकी कथनी और करनी का भेद, स्वर की वैज्ञानिक परख, उसकी वैधता या अवैधता की पड़ताल...जहां तक आवाज की स्वतंत्र सत्ता का प्रश्न है, याचिका के मामले में वह बहरी है या निपट बेपरवाह। स्वर को सम्मन जारी करना कोर्ट का बस नहीं...वैसे भी हमसैनिक फार्मस कभी खुद चलकर तो कोर्ट नहीं आया, न उसे बुलाया गया, और न ही ऐसी विधिक या कानूनी बंदिश है...जिस तरह धम धम की आवाज का स्वतंत्र अस्तित्व है, उसी तरह हमसैनिक फार्मस का स्वतंत्र अस्तित्व है। जन या तंत्र, यहां तक कि न्याय की पीठ भी, ऐसा स्पष्ट नहीं कहती, यूं नहीं कि इस निरूपण से उन्हें परहेज है, या वे उसे नहीं मानते, उनकी विद्वान् और मनीषी नजर में यह स्वतः स्पष्ट है। सूर्य के अस्तित्व पर क्या बहस होती है? खास तौर से उगते सूरज और उसके बाद बीच आकाश में चमकते सूर्य की बेमतलब चर्चा नहीं होती। सूर्य की, मेरे बच्चे, उपासना होती है, तुम्हें भी करनी चाहिए। कहावत नहीं है हाथ कंगन को आरसी क्या...? अब कुछ जन, या संगठन हमसैनिक फार्मस के विरोध में या उनकी तरफ से बोल रहे हैं, या खुद हमसैनिक फार्मस बने हैं तो ये उनका रुख और नजरिया है, परिणाम भी वही भुगतेंगे...या कोर्ट जो करे उसकी मर्जी...कथा का काम है जो प्रत्यक्ष होकर भी अप्रत्यक्ष रह जाता है, उसे उकेरो, उसे प्रस्तुत करो, सो हम कर रहे हैं, जहां तक बन पड़ रहा है। हालांकि ये विवादित है, पर कई कथाएं इस जिद पर बनी रहती हैं कि उनका धर्म है कि वे काव्य सच बयान करें, चाहे इसके लिए तथाकथित तथ्य झूठ का सहारा ही क्यों न लेना पड़े। पता नहीं इसे किस्मत कहे या बदकिस्मती, पर इस कथा के लिए ये नौबत नहीं आई, क्योंकि काव्य सच और तथ्य सच में गजब की समानता है, और यह तभी होता है जब हम अजेय स्थापनाओं की पड़ताल करने के लिए विवश होते हैं...।

कथा के चार प्रमुख किरदार की तरफ से इतना स्वीकार तो बनता है कि हमसैनिक फार्मस की अवधारणा ने उनका कभी बुरा नहीं चाहा, न कभी अपशब्द कहे या बदसलूकी की। बल्कि, अगर हमसैनिक फार्मस के खुद का सीना है, धड़कन है, और संवेदन है, तो उसने सदा उदारता का परिचय दिया, और उन्हें दुश्मन नहीं समझा। बल्कि सदा अपनी छांह और आसरे में उनके लिए जगह बनाई और ऑफर भी की। चाहे जज हो, शीरी, स्फीति या कुरिआकोस, ये हमसैनिक फार्मस का सबका साथ सबका विकास का रुख और व्यवहार है, और पर्सनल लेवल पर उसकी दरियादिली कि सबने इस एपिसोड, इस संरचना, इस कांड, इस स्कैम, इस घोटाले से सीखा और पाया है। कुछ खोया तो नहीं। खर्च न्यून और अर्जन अधिक। निखार सर्वोन्मुख है। हमारे चार किरदार के दांपत्य, शरीर और आत्मा के संसर्ग, सूझ और प्रज्ञा, उनके खयाल और सोच में बड़प्पन और परिपूर्णता का संचार हुआ है, आप माने या न माने, उनके मन के भाव और सरोकार जो पहले एक आयामी, संकीर्ण और खुदगर्ज थे, वे अब निस्वार्थ और जनहित से प्रेरित भी हैं...और सबसे बड़ी बात, जो इस बहस या विवाद का विराम है, और जिसके बारे में दो राय नहीं, वे खुश हैं, तन और मन से स्वस्थ, बहिर्मुखी...।

साफ कहने की जरूरत है कि सिस्टम के रखवाले और रखल वे पहले भी थे, पर विद्रूप और मानसिक तंगी ने उन्हें विद्रोह की राह पर धकेल दिया था। वे बेमेल और नामुनासिब नकार

और प्रतिरोध के जहर से भर गए थे। यह विष उनके निजी जीवन का भी अमंगल था। चूंकि हमसैनिक फार्मस सिस्टम का कथा पुरुष और महावीर है, वह स्टेट का पौरुष और तंत्र की सहक्रिया का ध्रुव है, वह खुद प्रकट हुआ, अपना सीना उसने खोला, कवच हटाया, उसकी अंदरूनी लॉजिक उसका इष्टतम है और सद्गति उसकी हिफाजत है...ठीक है, हमसैनिक फार्मस कह रहा है, करो प्रहार मुझपे, छलनी करो मुझे, अगर मेरे सूराख से ही सत, सतत और कल्याण का दर्शन है, तो अपने विष सौंपो मुझे और जन जनार्दन को अमृत का दान करो...यह सब घटा है, और अंततः तंत्र ने हमारे किरदार के विद्रोह को क्षमा प्रदान की, यह आत्मसमर्पण नहीं था, बल्कि सुबह के भूले का शाम को जनहित में वापिस लौटना था।

योगी याद आ रहा है। वह कुरिआकोस का गुरु है। योगी जस्टिस देवराज प्रणाम का भी गुरु है। योगी सत्ता का पक्ष या खैराती नहीं, न ही वह तंत्र का प्रवक्ता या हिमायती है। योगी सचमुच निर्विघ्न और निर्लिप्त है, वह प्रज्ञा और विवेक के अबूझ का रोशन चिराग है।

हर अधूरी कथा, अनुत्तरित सवाल, अगम्य विडंबना और पहेली, अव्यक्त और निःशब्द व्यथा, हर जुस्तुजू का अंधेरा, ईमान और नाइंसाफी की धुंध, तंत्र के मंत्र, और मंत्र के तंत्र, त्रास, ग्लानि, गुनाह और बीते के अफसोस...ये सब योगी तक पहुंचते हैं।

किसी वक्त योगी ने जज से कहा या कुरिआकोस से कहा, या खुद से भी कयास लगायारू हमसैनिक फार्मस एक फिनोमेना है, स्थायित्व और नित्यता का बिंब, एक कलश है...तंत्र की अभिव्यक्ति, क्रीड़ा और अवकाश है! यथापूर्व स्थिति और यथास्थिति का नागर गान और स्तुति है...सत्ता और ताकत का बुर्ज और सुसाध्य है। विधि की लक्ष्मणरेखा की हिफाजत की चेतावनी है...हमसैनिक फार्मस है तो दिल्ली है, दिल्ली की आन बान शान है...हमसैनिक फार्मस खुद अवैध का ओहदा लेकर दिल्ली और तंत्र की हर अवस्था को वैधता का पुष्प भेंट करता है। अगर तंत्र एक व्यापक प्राण है तो हमसैनिक फार्मस उसका जिगर और सांस है।

हमसैनिक फार्मस जायज के अल्हड़ अभ्यास का जनक है!

चाहे स्टेट या जुडिशरी, फार्मस का डिमॉलिशन एक विनाशक, सबवर्सिव खयाल है। क्या जनभावना ने कभी हमसैनिक फार्मस का विरोध किया? कभी कोई मार्च हुआ, जुलूस निकला, मशालें जलीं, इंडिया गेट पर मोमबत्तियां? जंतर मंतर पर एक भी अभाग कभी इस मसले पर बैठा? तो आप अभागों के सिरमौर कब से हो गए? आप जज हैं...आप टैलेंटिड जर्नलिस्ट हैं? आप किन चक्करों में पड़े हैं? क्या इसकी कोई शोभा, कोई औचित्य है?...डिमॉलिशन बगावत का अस्त्र और हितैषी है...अवाम शासन से बुजदिली की अपेक्षा नहीं करती। और नियमितकरण का मसला? ओछा विचार है ये। ये चॉइस और टाइमिंग का मुद्दा है। इसका कोई अंदरूनी तत्व नहीं। कौन मांग रहा है हमसैनिक फार्मस का रेगुलराइजेशन? कोई नहीं, किसी की जरूरत नहीं। जब कोई रोग नहीं है, तो औषधि किसे चाहिए? कोई भी, स्वप्न या किंवदंती में भी, बिल्ली के गले में घंटी नहीं बांधता जनाब! जितना जल्दी ये गांठ बांध लें, उतना ही सबके लिए भला!

तथास्तु।

## गुजरे जमाने का शहर - II

ममता कालिया

पिछले चार पांच बरसों से ऐसा हो रहा है। जब भी कहीं कोई इलाहाबादी हमसे टकराता तो सारी खैरियत के बीच हम उससे शहर की खैरियत जरूर पूछते— और बताएं, इलाहाबाद का क्या हाल है?

इलाहाबादी कहता, क्या बताएं, शहर का नक्शा एकदम बदल गया है। ये ऊंची ऊंची इमारतें बन गई हैं और बनना अभी जारी है। सारा दिन बालू सीमेंट उड़ाती धूल भरी आंधी चलती है। सड़कों की शान फना हो गई है, लोग अपनी हरियाली बेचकर खुशहाली खरीद रहे हैं। हम भी बेचैन हो जाते, यह अपने अलमस्त शहर को क्या हो गया। वहां टैगोर टाउन और लूकरगंज में बंगले से बड़ी बारादरी और बारादरी से बड़ा लॉन हुआ करता था। वहां रहने वालों के घर जब उत्सव आयोजन होते, उन्हें कोई जलसाघर लेने की जरूरत नहीं पड़ती। सारा काज अपने द्वार पर निपट जाता। व्यग्रता थमने पर हमें अहसास होता कि हमारा डर निर्मूल है। इलाहाबाद का हाल और माहौल ईंट गारे से न कभी बना, न बनेगा। शहर की ऊपरी सतह पर चाहे जितनी मंजिलें चढ़ जाएं, उसकी अंदरूनी खूबसूरती नष्ट नहीं होगी। इलाहाबाद साहित्य, संस्कृति, कला और इतिहास का नगर है। ये संपदाएं सैकड़ों साल से यहां मौजूद हैं। पीढ़ियां बदल जाएं, संवाद विवाद गतांक से आगे बढ़ जाएं किंतु इलाहाबाद की इयत्ता स्थापित रहेगी। भारतीय राजनीति में भी इलाहाबाद का अन्नप्राशन काम आता है। मंजे हुए राजनेता वे ही व्यक्ति रहे हैं जिन्होंने यहां के हवा पानी में सांस ली है। विश्वविद्यालय के छात्रसंघ का चुनाव, राजनेता की पहली मंजिल रहा है। कुछ तो खास है यहां के मिजाज में कि यहां सत्ता पक्ष की राजनीति की जगह प्रतिपक्ष की राजनीति ही पनपती है। साहित्य में भी विरोध और प्रतिरोध की घोषणा यहीं से आरंभ होती है। भैरव जी, मार्कंडेय जी और अमरकांत जी, शेखर जी के बाद सठोत्तरी पीढ़ी ने यहीं रहकर अपने पैर जमाए और नई कहानी की शक्तिशाली त्रयी मोहन राकेश, कमलेश्वर तथा राजेन्द्र यादव के



किले को ध्वस्त किया। कहानी के कलपतरु की उपशाखा बनने की बजाय साठोत्तरी कहानीकारों ने अपना अलग वृक्षारोपण किया। इतने बड़े बड़े विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित हो जाते हैं जिनमें मूल समस्या का समाधान नहीं निकलता, वहीं एक हिंदी कथा समारोह में, सन् 1965 में कलकत्ते में, यह तथ्य स्पष्ट हो गया कि कहानी में नई कहानी के युग का पटाक्षेप हुआ। इस तेवर और तैयारी के पीछे इलाहाबाद की पृष्ठभूमि और अग्रगामिता थी। ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह और रवीन्द्र कालिया ने नई कहानी की फार्मूलाबद्धता के खिलाफ अपनी ताजा, मौलिक रचनाओं से जिहाद छेड़ा। दूधनाथ सिंह बलिया से आए किंतु उनकी शिक्षा इलाहाबाद में हुई और यहीं उनकी वैचारिकता निर्मित हुई। ज्ञानरंजन खांटी इलाहाबादी हैं। काशी जी रहते बनारस में हैं पर जब भी इलाहाबाद आते, यहाँ रम जाते। रवीन्द्र कालिया कई शहरों की खाक छानकर इलाहाबाद पहुँचे और यहीं के होकर रह गए। इस शहर में रचना करना बड़ी मुमकिन सी बात है। दूधनाथ सिंह, ज्ञानरंजन और रवीन्द्र कालिया ने अपनी तमाम यादगार कहानियाँ यहीं लिखीं। दूधनाथ सिंह ने जटिल फंतासी के जरिये 'रक्तपात', 'रीछ', 'स्वर्गवासी' जैसी कहानियों में भयावह यथार्थ का शोध किया। ज्ञानरंजन की सभी महत्वपूर्ण रचनाएँ इलाहाबाद में संभव हुईं जैसे दांपत्य, यात्रा, घंटा और बहिरंगमन। काशीनाथ सिंह ने बनारस में रहते हुए इलाहाबादी लेखकों की टक्कर की कहानियाँ लिखीं, अपना रास्ता लो बाबा आदि और रवीन्द्र कालिया ने शहर में रानीमंडी की गली में जीवन के अनेक रंग देखे जो उनकी कहानियों— गरीबी हटाओ, टाट के किवाड़ों वाले घर, पनाह और नया कुरता में व्यक्त हुए। इन रचनाओं ने कहानी सृजन का पैमाना तय कर दिया और तापमान भी। इससे यह न समझा जाये कि ये कहानीकार हर वक्त कागज कलम लिए बैठे रहते थे। इन सबमें जिंदगी जीने की अदम्य आग थी। दो पहिया वाहन तक उपलब्ध न होने पर भी ये शहर का कोना कोना छान मारते। इलाहाबाद में पैदल चलना कभी भी निरुपायता का पर्याय नहीं था। 'मस्ती का आलम वहीं रहा हम धूल उड़ते जहाँ चले' वाले अंदाज में इन सबके लिए शंभू बैरक, लूकरगंज और रानीमंडी से सिविल लाइंस तक टहलते हुए निकल जाना मामूली सी बात थी। काशी जी तो दूर थे पर इन तीनों में सबसे शाहदिल ज्ञानरंजन थे। उनकी जेब में जैसे छेद था। वे खर्च करने में सबसे अब्वल रहते। उनके आसपास दोस्तों का जमघट भी सबसे ज्यादा लगता। सिविल लाइंस में एक मिठाई की दुकान थी 'मुरारी'। कॉफीहाउस की बजाय ज्ञान जी यहीं महफिल जमाते। मुरारी का मालिक शायद ज्ञान जी की मुहब्बत में गिरफ्तार था। वह बिना एतराज चाय के बेहिसाब प्याले ऊपर की मंजिल पर भिजवाता रहता। लेखकों, गैर लेखकों से सजी यह महफिल तब तक चलती जब तक 'मुरारी' के बंद होने का वक्त न हो जाता। 'मुरारी' से जुड़ा एक और किस्सा याद आया। इस वाक्ये पर आज भी मन उद्विग्न हो जाता है...।

दरअसल रवि बंबई में धोखा खाकर, प्रताड़ित होकर इस पूरी तैयारी से आए थे कि जैसे भी हो इलाहाबाद में पैर जमाने हैं। उनके विपरीत मैं पैर पटकती इलाहाबाद पहुँची थी। मुझे बंबई की रफ्तार रास आई थी। धोखे मेरे साथ भी हुए थे, मैं फिर भी वहाँ रहना चाहती थी। नौकरी छूटने पर, जब मैं मुंबई से इलाहाबाद पहुँची तो एक बड़े शहर से छोटे लद्दधड़ शहर में आने की उदासी के साथ साथ घर चलाना बड़ी चुनौती थी। चौक का मकान घर से ज्यादा गोदाम था। समस्त दीवारें तारकोल से पुती हुईं कि दीमक न लगे। नीचे छापाखाना ऊपर बेढंगे कमरों में रिहाइश। मकान मालिक जो इस छोपेखाने के मालिक भी थे उन्होंने इस ऊपरी हिस्से में अपना पुस्तक गोदाम बना रखा था। हमारे लिए अन्यत्र घर लेना सामर्थ्य से बाहर था सो यहीं डेरा जमाया। मकान मालिक ने आंगन पार के एक बड़े कमरे में रसोई के लिए एक प्लेटफॉर्म बनवा दिया था, बस। नीचे रवि के आफिस में चाय ले जाने के लिए रसोई से आंगन, गलियारा, कमरा

पारकर ऊंची ऊंची अंधेरी सीढ़ियां उतरनी पड़तीं। हमारी कुकिंग गैस भी अशक जी के यहां काम आ रही थी सो मांगते नहीं बन रहा था। स्टोव पर, अंगीठी पर मैंने कभी काम नहीं किया था।

मैंने बहुत से परिचितों, दोस्तों से एक घरेलू सेवक के लिए कह रखा था। घर के कामों में मदद कर दे, बाजार का फेरा लगा दे, और नीचे रवि के दफ्तर में चाय पहुंचाता रहे तो जीवन जीने लायक बने।

एक शाम सिविल लाइंस की मिठाई की दुकान 'मुरारी' में हम सब बैठे हुए थे—यानी ज्ञानरंजन, सतीश जमाली, शैलेश मटियानी, अमर गोस्वामी, रवि और मैं। और भी दोस्त थे, नाम याद नहीं आ रहे। यह ज्ञान जी का प्रिय अड्डा था। नीचे दुकान में मिठाई बिकती, ऊपर चाय पीने के लिए कुर्सी मेज थी। जो लड़का चाय लेकर आया, बड़ा खूबसूरत, भोलाभाला पहाड़ी बालक था। उम्र मुश्किल से तेरह चौदह। मटियानी जी ने बात शुरू की—“कहां के हो, कब आए।” ज्ञान जी ने पूछा—“यहां क्या मिलता है?” “पंद्रह रुपये और खाना।” लड़के ने बताया। ज्ञान जी ने कहा—“पच्चीस रुपये पर काम करोगे?”

लड़का भौचक ज्ञान जी की तरफ देखता रहा। फिर बोला—“अगर हम से कप प्लेट टूटेगा, तो पैसे तो नहीं काटोगे?” ज्ञान जी ने आश्वस्त किया—“नहीं कटेगा। यहां सैकड़ों लोगों का काम करते हो, घर में सिर्फ दो लोगों का काम होगा।”

लड़के ने थोड़ी देर सोचा, फिर कहा—“अभी मालिक हमको सौंप लेने बाहर भेजेंगे। हम चौराहे पर मिलेंगे।”

हम सब सिविल लाइंस के चौराहे पर इंतजार करने लगे।

वादे के मुताबिक लड़का आया।

अमर गोस्वामी ने उसे अपनी साइकिल के कैरियर पर बिठाकर हमारे घर पहुंचाया।

उस लड़के की भोलीभाली सूरत ने हमारा मन मोह लिया। जगदीश नाम के इस लड़के को सब्जी काटना, चाय बनाना, बिस्तर बिछाना सब आता था। सबसे बड़ी बात, वह ऊपर नीचे के दसियों चक्कर लगाता। बहुत जल्द जगदीश हमारे लिए घर का सदस्य बन गया। दोस्तों के आने पर वह झट ऊपर जाकर चाय बना लाता। जगदीश प्रेस के कर्मचारियों से भी हिलमिल गया। कुछ महीने बाद जगदीश को गांव की याद सताने लगी। वह कहता—“मुझे घर जाना है। तीन साल से मैं घर नहीं गया।” मैं कहती—“साल भर बाद जाना। तब तुम्हारे हाथ में कुछ रुपये भी हो जाएंगे।”

एक शाम हमें अशक जी के यहां जाना था। जगदीश ने बताया घर में सब्जी एकदम खत्म है। मैंने उसे पैसे दिये और चाबी का गुच्छा कि वह ताला लगाकर बाजार जाये और लौटकर अपने लिए खाना बनाकर खा ले। अशक जी कभी भी हमें बिना खाना खिलाये नहीं भेजते थे।

हम रात दस बजे घर लौटे। ताला बाहर से बंद था। हमने अपनी चाबी से फाटक खोला तो ड्यूटी में चाबियों का गुच्छा पड़ा मिला।

रवि ने फौरन कहा—“लगता है जगदीश पहाड़ चला गया। देखो कितना सच्चा है। ताला लगाकर चाबियां अंदर डाल गया।”

यह तो ऊपर जाकर पता चला कि लड़का चोरी करके भागा था। कमरे से रुपये, ट्रांजिस्टर, रवि की हाथघड़ी और लोहे के ट्रंक से घर की कुल संपदा तेरह सौ रुपये उसने उड़ाये थे।

हम सन्न रह गए। हानि से अधिक यह धक्का था जो हमारे विश्वास को लगा।

अगले दिन जिसने भी सुना यही कहा कि पुलिस में रपट लिखा दो। लड़के को पूरे घर की जानकारी है, वह फिर कभी चोरी कर सकता है। अतरसुइया थाने में हमने रपट लिखवाई। दो घंटे में पुलिस ने उसे बरामद कर लिया। हम सोच रहे थे अब पुलिस इसे हमारे हवाले कर देगी

पर पुलिस ने इनकार कर दिया। जगदीश को हवालात में बंद कर दिया गया।

घर लौटकर रवि एकदम उदास हो गए। उन्होंने उस दिन खाना भी नहीं खाया, कहने लगे—  
“पता नहीं पुलिस ने जगदीश को कितना पीटा होगा। कहीं वह मर न जाये।”

मेरा मन भी कच्चा हो रहा था जैसे हमारे हाथों अपराध हो गया।

दो तीन दिन बाद साहस करके हम थाने पहुंचे तो पता चला जगदीश को किसी बालसुधार गृह में भेज दिया गया। हम बेहद उदास हो गए।

**मिर्जा गालिब** की जीवनी लिखने वाले रचनाकार, स्वाधीनता सेनानी रामनाथ ‘सुमन’ का लूकरगंज में बहुत विस्तृत और विशाल बंगला था। वह चारों तरफ हरियाली से भरा रहता। कथाकार मित्र ज्ञानरंजन इन्हीं सुमन जी के मझले सुपुत्र हैं। ज्ञान जी का जिक्र आया तो यह चंद सतरों में कैद नहीं किया जा सकता। विलक्षणता के अपने वलय होते हैं। सन् 1970 के ज्ञानरंजन को हम बेधक रचनाकार, बेधड़क इंसान और बेमिसाल दोस्त की तरह जानते थे। मैंने उन्हें सुनयना के साथी और पाशा के पापा की भूमिका में भी देखा और सराहा। तब पिता के बड़े से बंगले में ज्ञानरंजन फकीर की तरह बसते थे। गर्मी की दोपहरें वे अपने घर के ठंडे कमरों में नहीं बल्कि प्लाजा बिल्डिंग की दुकान पेट्रोलाम में गुजारते। कभी हम सब रानीमंडी में मिल बैठते। रवि तो लगातार सिगरेट होंठों से लगाये होते। कभी कभार ज्ञानरंजन भी सिगरेट आजमाते। उनके बेटे पाशा के अंदर सिगरेट को लेकर दिली दहशत थी। ज्ञान जी जैसे ही सिगरेट का पहला कश लेते, पाशा जोर जोर से रोने लगता—  
‘पापा फू पियो ना। पापा फू नहीं पीना।’ ज्ञानरंजन उसी वक्त सिगरेट मसलकर बुझा देते।

आप पूछ सकते हैं ज्ञानरंजन तो जबलपुर में काम करते थे, उन्हें इलाहाबादी क्यों समझा जाये? ज्ञान जी जबलपुर में सिर्फ नौकरी करते थे। उनका मन इलाहाबाद में रहता था। यहीं उनकी यारी दोस्ती थी, यहीं घुमक्कड़ी। छुट्टियां खत्म हो जातीं, ज्ञान जी की तफरीह खत्म न होती। दोस्तियां और अदावतें धारावाहिक चलती रहतीं। सच और सही के लिए अड़ने के लिए ज्ञान जी में बेकाबू आग थी। कभी काशीनाथ सिंह बनारस से आ जाते तो चारों यार जमकर बैठते। दूधनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह ज्ञानरंजन और रवीन्द्र कालिया ये सब साठोत्तरी पीढ़ी के प्रमुख कथाकार थे जिनमें कोई किसी की कार्बन कॉपी नहीं था। दूधनाथ सिंह इन सबमें वरिष्ठ थे और गरिष्ठ। वे जटिल फंतासी के जरिये अलक्षित यथार्थ तक पहुंचने की कोशिश करते। उनकी कहानियों में इस तरह के प्रयोग अधिकाधिक हुए। ज्ञानरंजन, दम तोड़ती व्यवस्था, टूटते रिश्ते और घिसटती विसंगतियों के कहानीकार थे। उन्होंने अपने कथा संकलन का शीर्षक भी ‘सपना नहीं’ रखा। वे अपनी कहानियों में सच का क्रूरतम स्वरूप दिखाने से नहीं हिचकते। यथार्थवाद का दामन तीनों ने अपनी तरह से थाम रखा था। रवीन्द्र कालिया ने अपनी कहानियों में कथ्य के कॉमिक एंगिल बनाकर लिख डाला तो सहज ही अबसर्ड विधा का सूत्रपात हो गया। पुरानी पीढ़ी के जो साहित्यकार जीवन की कटु सच्चाइयों को रेशमी रुमाल के नीचे दबा छुपाकर रखने के कायल थे, एकबारगी चिहुंक पड़े।

अपने शहर इलाहाबाद की विलक्षण सामर्थ्य का पता ऐसे ही मौकों पर चलता रहा है। इस छोटे से शहर का पेट इतना गहरा है कि ये कई सैंकड़ा परिमलियन रचनाकार हजम कर लेने के बाद भी प्रगतिशीलों की अगवानी में लेखक सम्मेलन बुलवा लेता है। प्रलेस, जलेस के किंचित शिथिल पड़ने पर यह जसम (जन संस्कृतिमंच) की गतिविधियां आयोजित होने देना है। दरअसल इलाहाबाद ने लोगों, विचारधाराओं, आंदोलनों और एजेंडों को इतनी उल्टी पल्टी खाते देख लिया है कि अब उसे आश्चर्य नहीं होता। उन दिनों साहित्यिक हलकों में दो जुमले जालिम बेइज्जती

माने जाते थे। 1. तुम सीआईए के एजेंट हो। 2. तुम मीडियॉकर हो। आरोपित लेखक यह सोच सोचकर चकराता कि एक अदद 'स्पैन' पत्रिका की कॉपी भेजने के सिवा अमेरिका ने उसे और क्या दे दिया। लेखन के क्षेत्र में मीडियॉकर कहलाना सबसे निकृष्ट गाली थी। इसका दागी रचनाकार खुद ब खुद महफिलों से उठ जाता, गोष्ठियों से गायब हो जाता और साहित्यिक पत्रिकाओं से बाहर। उसके लिए सिर्फ दैनिक अखबारों के रविवारी पृष्ठ और सरिता, निहारिका जैसी व्यावसायिक पत्रिकाएं बचतीं। कई बार दागी रचनाकार अपनी nuisance value विकसित कर लेता। वह गोष्ठियों में गुलगपाड़ा मचाता और कॉफी हाउस में कोलाहल।

साहित्य से इतर इलाहाबाद में बहुत बड़ी तादात विद्यार्थियों की है। स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले छात्र तो लाखों की संख्या में हमेशा से थे ही, साल दर साल हुजूम के हुजूम छात्र बाहर से यहां आकर प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी में लगे रहते। शहर में इतनी हॉस्टल व्यवस्था नहीं थी। बिहार, बंगाल, मध्य प्रदेश से आए मेहनती लड़के मिलजुल कर एक मकान किराये पर लेते, यूनिवर्सिटी रोड से किताबें खरीदते। वहां ठेलों पर किलोग्राम के हिसाब से कॉपियां मिला करतीं। हर छात्र दो तीन किलो कॉपी खरीदता और उसका अध्ययन आरंभ हो जाता। सुबह का अखबार वे चाय की दुकान पर पढ़ लेते और शाम की खबरें पानवाले के टीवी सेट पर सुन लेते। न्यूनतम सुविधाओं में रहकर ये छात्र आई.ए.एस., पी.सी.एस., रेलवे भर्ती बोर्ड, स्टाफ सेलेक्शन कमिशन जैसे पेचीदा इम्तहानों से जूझते। बहुत से इस परीक्षा प्रतियोगिता को जीत जाते तो काफी सारे छात्र वापस लौट जाते। जो नहीं लौटते वे शहर की हताश जनसंख्या में बढ़ोत्तरी करते और अपने अभिभावकों पर एक और साल अपना व्यय भार डालने का इस्सरार करते। कुछ छात्र पत्रकारिता और लेखन की तरफ मुड़ जाते। विद्यार्थियों में वामपंथी विचारधारा सर्वाधिक स्वीकार्य रही। इस दीक्षा में विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों की शिक्षण संस्कृति का भरपूर योगदान रहा। कई बार गुरुओं को धूल चटा दी, ऐसे भी तेजस्वी शिष्य निकले। हीनभावना से हताहत प्राध्यापकों ने विद्यार्थियों के शोधकार्य में अड़ंगे लगाकर उनके भविष्य के साथ खिलवाड़ किया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय की छात्र मीनू दुबे ने एम.ए. के बाद पीएचडी करने की सोची। बतौर गाइड उसे दूधनाथ सिंह मिले। दूधनाथ ने उसके अध्ययन में इतने रोड़े अटकाए कि तंग आकर उसने शोध का उपक्रम ही छोड़ दिया। उन दिनों दूधनाथ, विश्वविद्यालय की एक प्राध्यापिका के प्रेम में पड़े थे। हिंदी विभाग इस प्रेम प्रकरण का साक्षी रहा। शहर और विश्वविद्यालय का चरित्र इतना सहिष्णु था कि उन्होंने पटना के मटुकनाथ की तरह इलाहाबाद के मटुकनाथ के मुंह पर न तो स्याही मली न ही दूधनाथ की पत्नी निर्मला ने उनकी सार्वजनिक पिटाई की हालांकि वह दुखी रहती थी। जब कभी मैं निर्मला से कहती— “तुम उस गोष्ठी में क्यों नहीं आईं?” वह उदास होकर जवाब देती— “ये हमें लेकर ही नहीं गए। दूसरी वाली को ले गए होंगे।” उनके रिटायर होने पर यह प्रेमप्रसंग भी अवकाशप्राप्त कर गया।

यह उदारता और सहिष्णुता हमारे इस शहर को रहने योग्य बनाती है। हमारी कमजोरियों को लुकोने वाली, हमारी गलतियों को छुपाने वाली, हमें बार बार जीवन शुरू करने का मौका देने वाली। हम उत्तीर्ण होकर तो जीते ही हैं, अनुत्तीर्ण होकर भी यहां जी सकते हैं। ऐसे कई निठल्लों को मैंने नजदीक से देखा जो हर परीक्षा और इंटरव्यू में असफल रहे लेकिन अपने घर परिवार में हेकड़ी बनाये रहे। किसी दिन मां या पत्नी ने ज्यादा चूंचपड़ की तो रसोई में जाकर पानी का मटका एक धक्के से फोड़ दिया। सारी रसोई पानी पानी हो गई। मां और पत्नी मटके के अवशेष बिनने में व्यस्त हो गईं और उनका मूल प्रश्न 'कहीं पर काम मिला?' हवा में विलीन हो गया। एक युवा पत्रकार वर्षों राष्ट्रीय सहारा में काम करता रहा जहां तनखाह ही नहीं मिली। तंग आकर

उसने कार्यालय जाना बंद कर दिया। वह जब भी कभी मिलता, सिगरेट सुलगाकर घोषणा करता— “मैं बहुत जल्द अपना अखबार शुरू करने जा रहा हूँ।” एक और लड़का जो हमारे घर के पास रहता था, हर साल मुझसे कहता— “इस बार पर्चे बहुत अच्छे हुए हैं। मैं श्योर लिखित परीक्षा निकाल लूंगा। आप मुझे थोड़ी सी इंगलिश पढ़ा दें तो इंटरव्यू भी पार लग जाये।”

उसकी इस सादगी पर फिदा होना मुश्किल था क्योंकि तीन बरसों में मिले तीन अवसरों में वह लिखित परीक्षा भी पास नहीं कर पाया। तंग आकर वह एक दिन बोला— “अच्छा आप मुझे कहानी लिखना ही सिखा दीजिये।” उसे कैसे समझाती कि कहानी का कोई विद्यालय नहीं होता। ऐसे लड़कों से बात करते हुए मुझे अरुण प्रकाश की कहानी “भाषा” का ध्यान आता। जिसमें युवाओं और छात्रों का संत्रास व्यक्त हुआ है।

किसी शहर की शिखिसयत महज पढ़े लिखे लोग, विद्यालय और विश्वविद्यालय से नहीं बनती। उसकी नींव में वे पुराने मोहल्ले और चौबारे होते हैं जहां दादा नाना, नानी परदादी किस्म के दुर्लभ पात्रों ने निवास किया। इलाहाबाद में पुरनिया मोहल्लों और गलियों की भरमार है। कई बार एक गली से गुजरते हुए कई मोहल्लों की सैर हो जाती है।

चौक इलाका अपने आप में गुलजार रहता है। रोजमर्रा की जरूरत की हर चीज यहां किफायती दाम पर उपलब्ध है। चौक से चार राहें फूटती हैं। एक घंटाघर और जॉन्सनगंज की तरफ चली जाती है तो दूसरी खुल्दाबाद की तरफ। तीसरी राह बताशामंडी, गुडमंडी, मीरगंज से गुजरती बहादुरगंज, कोठापारचा होती हुई बाई का बाग, कीडगंज, बैरहना निकल जाती है। चौथी राह कोतवाली से अंदर मुड़ती है उस तरफ जहां शहर की सबसे सघन बस्ती है। इन गलियों में रहने वाले बखूबी जानते हैं कि कैसे कुत्तों, कूड़े और सांडों से बचते हुए घर तक पहुंचना है। स्कूल जाने वाले बच्चे, पतली गलियों में, दोनों तरफ की नाली में गिरने से अपने आप को बचाते हुए, साइकिल चलाने में निष्णात हो जाते हैं। कोतवाली के पिछवाड़े से ही रानीमंडी शुरू हो जाती है। चौड़ी सड़क के एक तरफ बच्चा जी की कोठी और दूसरी तरफ काशी कोठी दो अमीरों की वैभवगाथा के प्राचीन नमूने हैं। यहां से सड़क फिर तीन तरफ की गलियों में मुड़ती है। एक हाथ को घनघोर हिंदूवादी मोहल्ला लोकनाथ है तो दूसरी तरफ अतरसुइया और तीसरी तरफ रानीमंडी का अंदरूनी इलाका।

मैं रोज बैरहना से रिक्शे में बैठकर वापस घर आती। कॉलेज से बाहर निकलते ही मेरे सिर पर घर सवार हो जाता और मैं रानीमंडी की बजाय चौक पर उतर जाती। पाठक स्टोर से डबलरोटी बिस्किट वगैरह खरीदकर, फलमंडी से केले, संतरे, अमरूद लेती। चौक लांघकर लोकनाथ की लंबी लंबी दो गलियां पड़तीं। वहां सब्जी सस्ती और ताजा मिलती। लोकनाथ की गली में मिठाइयों के साथ साथ हरि नमकीन नाम की दुकान भी थी जिसके समोसे, खस्ता और दमआलू की दुनियाभर में धूम रही। कई लोगों का तो सुबह का नाश्ता ही यह होता। छप्पर वाले हलवाई की दही जलेबी और हरि नमकीन का खस्ता दमआलू, ऊपर से एक कुल्हड़ लस्सी, इलाहाबाद का रईसी नाश्ता था। यही नाश्ता खाने खिलाने, ज्ञानरंजन लूकरगंज से लोकनाथ आया करते। लोकनाथ में दुर्माजिले, तिमजिले पुराने मकान थे जिनमें भूतल के कमरों में छोटी छोटी दुकानें थीं। देखा जाये तो ये वर्कशॉप जैसी थीं। बड़े सर्राफों के कारीगर यहां बैठकर गहने गढ़ते और पॉलिश करते। किसी का यहां जूतों का गोदाम होता। कहीं कोई औरत सिलाई मशीन पर गुड़ियों के धड़ों पर सिर सिल रही होती तो कहीं दो औरतें चबूतरे पर बैठ दस रुपये पंसेरी के हिसाब से खरबूजे के बीज छील रही होतीं। मकानों की ऊपरी मंजिल से समृद्ध घरों के विंडो एयरकंडिशनरों से टप टप टपकता पानी सब्जी वालियों के लिए मुसीबत पैदा करता। वे कभी अपना माल बचातीं कभी कपड़े। घर

पहुंचने की उतावली में मैं जल्दी जल्दी पैर बढ़ाती, गलियां पारकर जाती। रानीमंडी का नामकरण उस जमाने में हुआ था जब यहां तवायफों के कोठे हुआ करते थे। सभी मकानों की रचना एक सी थी; प्रवेशद्वार की शक्ति में खूब बड़ी इयोदी जिसमें दो विशाल पल्लों का फाटक। कहते हैं यहां नवाबों के इक्के आकर खड़े होते थे। अंदर दो या तीन आंगन, उसके बाद बारादरी। खिड़की के स्थान पर बिना सींखचे वाले खिड़के, जैसे फिल्म पाकीजा में दिखाये गए थे। मकान की रचना देखकर ही अतीत का अनुमान लग जाता। मकान का पटाव इतना ऊंचा था कि घनघोर गर्मी में भी कमरे ठंडे रहते। ऊपर की मंजिल में बड़ा आंगन और उतनी ही बड़ी छत। रहते रहते वह बेढंगा घर भी हमें प्यारा लगने लगा था।

एक बार रवि को बागवानी का जुनून चढ़ा। उन्होंने 180 गमले लगा लिये। हर रंग का बेगनबेलिया लगाया गया। हमारा आंगन छोटा मोटा टेरेस गार्डन (terrace garden) लगने लगा। एक कवि की पंक्ति थी— *बेला, गुलाब, जुही, चंपा, चमेली*। रवि ने पांचों पौधे नर्सरी से लाकर लगाये। कोई ऐसा फूल न था जो हमारे यहां नहीं था। स्याही के ड्रमों को साफ करवाकर उनमें रबर के पेड़ उगाये गए। शाम को वे अपने हाथ से पौधों में पानी डालते। अगर उन्हें कहीं बाहर जाना पड़ता तो वापस आने पर टॉर्च से अपने पौधे देखते कि मैंने पानी डाला या पौधे सूखे पड़े हैं। एक रात मैंने कहा— “तुम्हें पौधों से बहुत प्यार है न?”

रवि ने एक नजर मुझे देखा, लंबी सांस भरी और कहा— “मनुष्य से निराश होकर ही इंसान प्रकृति की ओर मुड़ता है।” रवि वृश्चिक की तरह अचानक वार करते। उनकी जन्मराशि भी वृश्चिक थी। गनीमत यह कि मेरी जन्मराशि भी वृश्चिक है। दश का अंश हम दोनों में समान था। कभी मैं तुरंत हिसाब चुकता कर देती, कभी भविष्य के लिए डंक जेब में डालकर रखती।

370 रानीमंडी में जो मित्र पहली बार आता वह कहता— “कालिया तुम्हारी हवेली का बड़ा जोरदार चरित्र है।” लोगों का बड़ा सा फाटक उस पर लटकती लोहे की लंबी सांकल और सात लीवर का गोदरेज ताला, देखकर आनंद आता। घर के अंदर बदइंतजामी थी, उसमें रहने वाले ही समझ सकते थे।

370 रानीमंडी वाले घर का बहिरंग तो दिलचस्प था ही, उसका अंतरंग भी कम अनोखा न था। ऊंची छत वाले बड़े बड़े दो कमरे, उसके बाद एक संकरा गलियारा जो बहुत चौड़े आंगन में खुलता। आंगन के पार फिर दो विशाल कमरे जिनमें एक रसोईघर और एक जालीनुमा हवादार कमरा जहां बैठकर कुल मकान का जायजा लिया जा सकता। आंगन में एक गुसलखाना था जहां नल नहीं था। हमारे यहां मोबिल ऑयल का बड़ा ड्रम और चार पांच बालटियां पानी से भरकर रखते। एक गुसलखाना बैठक से सटकर बना था जो नई तकनीक का था। रसोई, आंगन और गुसलखानों में बड़े मुंह वाली नालियां थीं जिनका निकास बाहर गली में होता। इसी रास्ते से घर में जंगी चूहे दाखिल हो जाते। चूहे इतने जबरदस्त थे कि वे रात में तो धींगामुश्ती मचाते ही, दिन में भी मौका नहीं चूकते। बच्चे उन दिनों ‘रामायण’ धारावाहिक देखा करते थे। अन्नू ने एक बड़े चूहे का नाम जामवंत रखा हुआ था।

दोनों गुसलखानों में मैं एक बट्टी लाइफबॉय और एक टिकिया पियर्ज साबुन रखा करती। कई बार अगले ही दिन पियर्ज गायब। हैरान होकर बच्चों से पूछताछ होती— “तुमने नाली या कमोड में तो नहीं गिराया।” बच्चे सिर हिला देते। जाड़े में पियर्ज साबुन के कुतरे हुए टुकड़े आंगन में मिलते। अन्नू कहता— “भां हम पांच लोग एक ही साबुन से नहा रहे हैं, पापा, आप, मन्नू, मैं और जामवंत। खर्च तो बढ़ेगा ही।”

घर में बिल्लियों की तादाद भी मजे की थी। आस पड़ोस में मांसाहार बनने की वजह से

बिल्ली को छिछड़े की आस लगी रहती। चूहों में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। हमारे घर में कभी कभी दूध दही पर वह हाथ साफ करती। एक बार सिविल लाइंस के डिपार्टमेंटल स्टोर बीएन रामा एंड संस से मैंने हॉकिन्ज का 'सो कुकर' खरीदा। मेरे साथ मीनू दुबे भी थी। हमें यह जानकर बड़ा अचंभा हुआ कि यह बिजली की ऐसी हंडिया थी जिसमें रात को खाना चढ़ाओ तो सुबह पककर तैयार मिले और सुबह चढ़ा दो तो रात में खाना हाजिर। उन वक्तों में भी इस कुकर की कीमत शायद 2300 रुपये थी। रवि ने पहले इस बर्तन का मजाक उड़ाया कि जब सारी दुनिया आगे जा रही है तो ममता कालिया पीछे चल रही हैं। बाद में यह तय हुआ कि इसमें सबसे पहले चिकन बनाकर पहल की जाये।

रवि को खाना बनाने का शौक चर्चाया हुआ था। उन्होंने 'डालडा पाक' पुस्तक के सहारे चिकन को हंडिया में चढ़ाकर बच्चों से कहा— "आज तुम लोगों को स्पेशल दावत मिलेगी।" उधर हम सब शाम के कामों में मशगूल हुए इधर एक काले बिल्ले ने रसोई में घुसकर बिजली की हांडी पर ऐसा हमला किया कि उसका ढक्कन जमीन पर गिरकर चूर चूर हुआ और चिकन बिल्ले के पेट में। जब शाम सात बजे मैं रसोई में आई चिकन की सिर्फ हड्डियां आसपास बिखरी पड़ी थीं। पहले ऐसी निराशा हुई जैसे कोई बड़ी दुर्घटना घटित हो गई है। अन्नू मन्नू बिल्ले के खून के प्यासे बनकर ऊपर नीचे दौड़ने लगे। रवि ने दर्शनशास्त्र झाड़ा— "दरअसल हमारा घर ऐसी चीजों के लिए बना ही नहीं है।" मैं इस घटनाक्रम पर सन्न बैठी रह गई। अगली शाम मैं ढक्कनविहीन हंडिया लेकर वापस स्टोर पर पहुंची— "इसे वापस ले लीजिये हमें नहीं चाहिए ऐसा बर्तन।"

सेल्समैन ने पूरी बात सुनी और कहा— "मैडम हम आपके लिए दूसरा ढक्कन मंगाने का इंतजाम कर सकते हैं पर बिल्ली चूहों पर काबू तो आपको खुद रखना होगा।"

सेल्समैन की हाजिरजवाबी की कायल होती हुई मैं अपने अराजक घर में लौट आई। हाकिंस की हांडी का दूसरा ढक्कन नहीं आया। व्यस्तताओं का नमूना बन रसोईघर के एक कोने में उपेक्षित पड़ी रही।

रानीमंडी वाले घर के नल में जो पानी आता उसके पाइप गली की अंदरूनी सतह से गुजरकर घरों तक पहुंचते। कई बार शोर मचता, 'जर्मीदोज पाइप जंग लगने से फट गए हैं। साफ पानी के साथ गंदा पानी मिल जाने से संक्रामक बीमारियों का खतरा है। पानी उबालकर पिया जाये।'

यह एक झमेले का काम था। कालेज की पूर्णकालिक ड्यूटी के कारण घर का काम सेविका के हवाले रहता। उसने पानी ठीक से उबाला या नहीं, इसका कोई भरोसा नहीं था। खेलते समय बच्चे किसी के भी घर पानी पी लेते। उन पर नियंत्रण रखना संभव नहीं था। घर पर हम जीरोबी नामक फिल्टर खरीदकर लाये कि इससे पानी स्वच्छ हो जाएगा। लेकिन फिल्टर से गुजरकर पानी बेस्वाद और बेमजा लगता। हम हेकड़ी से कहते— "हमने अपने अंदर इतनी प्रतिरोधी शक्ति अर्जित कर ली है कि यहां के मच्छर, मक्खी, चूहे, बिल्ली और बंदर हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते।"

वहां के बौड़मपने के हम इतने आदी हो गए कि जब सन् 1992 में रवि और माता जी ने मैहदौरी कालोनी के मकान का रुख किया तो अन्नू, मन्नू और मैं रानीमंडी छोड़ने को तैयार नहीं हुए। मैंने कहा— "वहां से कालेज जाना मुश्किल होगा।" बच्चों ने कहा— "उनका स्कूल और यूनिवर्सिटी यहीं से पास पड़ेगी।"

रवि तो अड़ियल थे ही। वे इतनी दूर से इलाहाबाद प्रेस आते। दिन भर काम करते। शाम को अपना एक गमला स्कूटर पर रखकर वापस मैहदौरी कालोनी चले जाते। हम तीनों शनिवार इतवार को वहां जाते। उनके जाने पर अन्नू कहता— "पापा यहां से अपने तमाम पौधे उठा ले जाएंगे। बस दो पौधे नहीं जा जाएंगे।" यह कोई अच्छी व्यवस्था नहीं थी। आधा सामान रानीमंडी

में था, आधा मैहदौरी वाले घर में। रवि के मनोविज्ञान पर इसका गहरा असर पड़ रहा था। वे दोस्तों से कहते— “ममता अपने को बहुत स्वतंत्र समझने लगी है।”

सचाई यह थी कि बहुत दिनों के बाद घर में हम तीनों एक रेग्युलर जिन्दगी जी रहे थे। अन्नू एम.बी.ए. की प्रवेश परीक्षा की तैयारी कर रहा था तो मन्नू आईसीएससी की। पक्का बनने पर मेरा कालेज बहुत से नियमों की गिरफ्त में था। कुछ महीनों बाद अन्नू एमबीए करने इंदौर चला गया। मन्नू के इन्तहान खत्म हो गए। एक दिन ऐसा कि रानीमंडी हमेशा के लिए हमसे छूट गई। कभी कभी मेरी दोस्त अनिता गोपेश और शशि शर्मा घर आ जातीं। दोनों के पास अच्छी नौकरी थी लेकिन परिवार की उलझनें उन्हें परेशान रखतीं। दोस्तों को देखते ही हमारी तबियत खिल उठती। उनकी कोशिश होती कि हमें प्रसन्न देखें और हमारी कोशिश होती कि वे अपनी समस्या भूल जाएं। तब शशि की शादी नहीं हुई थी और वह बिंदास लड़की थी। हम तीनों मिलकर पकौड़े बनाते और लिपटन की ग्रीन लेबिल चाय। नीचे प्रेस के आफिस में हम मिल बैठकर समय बिताते। शशि कहती— “मेरी प्रॉब्लम यह है कि— ‘अब तक तो जो भी दोस्त मिले, शादीशुदा मिले’।” हम आदर्श दंपति की तरह दोनों लड़कियों पर दबाव डालते कि शादी कर लो। कई युवकों ने हमारे माध्यम से भी शादी का प्रस्ताव भेजा पर इन लड़कियों को अपनी आजादी प्यारी थी। कहतीं— “ममतादी रविदा जैसा कोई ढूँढ़कर लाओ तो हम सोचें।”

बड़ा गुरूर होता।

रानीमंडी के हमारे घर के ठीक सामने उर्दू पत्रिका ‘शबखून’ का दफ्तर था। शबखून के प्रधान संपादक, उर्दू और अंग्रेजी के प्रख्यात रचनाकार शम्सुर्रहमान फारुखी थे। जिस मकान में यह दफ्तर था, वह फारुखी साब की पत्नी जमीला आपा का था। उनके पूरे परिवार से हमारी पारिवारिक संबंध थे। रवि को उर्दू की अच्छी जानकारी थी। जिस दिन फारुखी साब वहां आते रवि उनके पास जाकर बैठते। फारुखी साब का रुतबा इंग्लिश और उर्दू में बराबर का था। कविता, आलोचना और उपन्यास पर उनकी गहरी पकड़ थी। काव्यशास्त्र के सिद्धांत से लगाकर उन्होंने आधुनिक उर्दू आलोचना को नई आवाज दी। उन्होंने मीर की शायरी पर महत्वपूर्ण काम किया। वे अभी भी लेखनरत हैं। उनका बहुत बड़ा उपन्यास ‘कई चांद के सरेआसमां’ पहले उर्दू में छपा। निहायत खूबसूरत, स्मार्ट, फारुखी साब अपने घुंघराले बालों के साथ जब धीमे से हंसते हैं, उनके आसपास का सारा माहौल रौशन हो जाता है। वे एक बुद्धिजीवी की दिनचर्या जीते हैं, अपनी विशाल लायब्रेरी में कई घंटे बिताते हैं; हेस्टिंग्स रोड के अपने बंगले के खूबसूरत लॉन पर बेंत की आरामकुर्सी पर बैठे वे साहित्य की जीती जागती मिसाल हैं।

दरअसल इलाहाबाद के माहौल में हिंदी, उर्दू, अवधी और अंग्रेजी का मिला जुला नूर है। सैयद अकील रिजवी, अली अहमद फातमी, एहताराम इस्लाम, असरार, गांधी हिंदी गोष्ठियों में भी शिरकत करते हैं और हिंदी के लेखक उर्दू साहित्य की बैठकों में शामिल होते हैं। जो अंग्रेजी में लिखते हैं जैसे अरविंद कृष्ण मेहरोत्रा, स्मिता बहुगुणा अग्रवाल, नीलम सरन गौड़। वे भी हिंदी बोलने से परहेज नहीं करते, बल्कि उनकी दोस्तियां हिंदीवालों से हैं। इस शहर में संगम केवल नदियों के मिलन में नहीं वरन् भाषाओं की मझधार में भी है। इसी से यहां की गंगाजमुनी संस्कृति बनी है।

मैहदौरी कालोनी में हमारे घर के नजदीक बहुत से कलाकार, बुद्धिजीवी और साहित्यकार रहते थे। अक्सर सबका एक दूसरे से मिलना होता रहता और सबका मन लगा रहता। कवि यश मालवीय सुबह सोकर उठते ही, साइकिल पर अखबार वाले राजेश शुक्ला के स्टॉल पर चल देते। बहुत लोकप्रिय और रचनाधर्मी यश की एक साथ कई अखबारों में कविता छपी होती। डाक में आई पत्रिकाओं की भी उन्हें अग्रिम जानकारी होती। उन्होंने गीतों की सामाजिक पहुंच और



भूमिका को बहुत पहले से पहचान लिया था जब लिखा—  
 कहो सदाशिव कैसे हो  
 झुर्री झुर्री गाल हो गए  
 जैसे बीता साल हो गए  
 भरी तिजोरी सरपंचों की  
 तुम कैसे कंगाल हो गए।

नवगीत विधा में यथार्थबोध व्यक्त करने वाले यश अकेले नहीं हैं। एहतराम इस्लाम, सुधांशु उपाध्याय ने भी उतने ही सशक्त गीत लिखे हैं। एहतराम जी की ‘अग्निवर्षा है तो है और बर्फबारी है तो है’ तथा सुधांशु उपाध्याय का गीत—

किसी नर्स की आंखें देखो  
 कोने में थोड़ा जल होगा  
 और जरा सा केरल होगा।

हर कवि गोष्ठी की जान हुआ करता। गीत ही नहीं, नव्यतम तकनीक में कविता लिखने वाले कवि विवेक निराला, अंशुल त्रिपाठी, रविकांत, अंशु मालवीय अपनी मौलिकता और सामर्थ्य पर टिके हुए हैं। बोधिसत्व और कमललोचन पांडे इलाहाबाद से अपनी प्रतिमा बटोरकर मुंबई में कामयाबी ढूँढ़ने निकल गए। वाजदा खान चित्र और रचना समेट दिल्ली चली आईं।

शाम के समय डा. बालकृष्ण मालवीय मेहदौरी कालोनी की सड़क जल्दी जल्दी नापते, बाजार की तरफ बढ़ते दिखाई देते। उन्हें कोई टोकता तो वे कहते— “बाद में बात करूंगा। बड़ी जोर की तलब लगी है, जरा दारू की दुकान तक जाना है।” उनकी बातों में इतना नाट्य होता कि हमें लगता जैसे हम थियेटर में बैठे हैं। वे अचानक घासीराम कोतवाल के संवाद सुनाने लगते या कुमार गंधर्व का ‘निर्गुण’। एकदम सधी हुई आवाज थी उनकी, जिस पर दारू की एक बूंद भी नहीं चढ़ती। थियेटर के क्षेत्र में और भी अनेक प्रतिमाएं हैं जिनकी वजह से यहां रंगकर्म हमेशा सप्राण रहता है। अनिल रंजन भौमिक, प्रवीण सिंह, सुषमा शर्मा, अजामिल एक से बढ़कर एक प्रतिभा हैं जो पूर्णकालिक नौकरी के साथ साथ नाटक को जीवित रखे हुए हैं। यूनिवर्सिटी में ही रवि के दोस्त सचिन तिवारी भी थियेटर से जुड़े हुए थे पर वह पेचीदा शख्स थे। दारू उनके दिमाग में चढ़ जाती और वे नशे में अटककर लड़ाई मील लिया करते— पत्नी स्मिता से, दोस्तों से, टैक्सी ड्राइवर्स से। वे प्रतिभासम्पन्न थे, थोड़े लेखक, थोड़े अभिनेता और काफी हद तक निर्देशक। वे और स्मिता अंग्रेजी विभाग में प्राध्यापन करते थे। उनके पिता डॉ. डी.डी. तिवारी कानपुर विश्वविद्यालय के कुलपति थे और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सामने उनका बड़ा सा बंगला था। सचिन को कोई भौतिक कष्ट न था लेकिन वे विस्की के दूसरे पैग के बाद अपने गुस्से को संभाल न पाते। अक्सर स्मिता उनकी पहली शिकार होती। घर की सेवक मंडली भी चपेट में आ जाती। धीरे धीरे पति पत्नी में अलगाव बढ़ता गया। पिता के दिवंगत हो जाने के बाद उन दोनों ने बंगले को आधा आधा बांट लिया। एक हिस्से में सचिन रहते, दूसरे में स्मिता। अनबोले की इंतहा ऐसी हो गई कि विभाग के बाहर यदि सचिन की कार बीच रास्ते में खड़ी मिलती, स्मिता किसी तीसरे से कहती— “प्लीज जाकर सचिन तिवारी से कहो वे अपनी कार हटा लें।” पता नहीं उनके इकलौते बच्चे गौरव ने माता पिता का यह शीतयुद्ध कैसे झेला। रंग जगत के अलबेले लोगों से इलाहाबाद का तानाबाना बुना गया है। उभरते हुए अभिनेता और रंगनिर्देशक अभिषेक पांडे अक्सर उस वक्त घर आते जब हम दिन तमाम कर चुके होते। एक बार वे कलाकार पूजा ठाकुर को लेकर आए। रवि ने जिज्ञासा की— “आजकल कौन से नाटक में लगे हुए हो?”

अभिषेक ऊंची उड़ान में था। उसने पूजा से कहा वह आगा हथ्र कश्मीरी लिखित नाटक 'खूबसूरत बला' आदि से अंत तक अभिनय करके हमें दिखाये। पूजा दिन भर के रिहर्सल से थकी हुई थी। उसे सुबह आफिस भी जाना था पर निर्देशक की अवहेलना कैसे करे। मैंने लाख कहा— "अभिषेक इस वक्त देर हो गई है, रहने दो।"

अभिषेक पर धुन सवार हो गई— "नहीं, अभी खेला जाएगा 'खूबसूरत बला'। यह मेरा आदेश है।"

कमाल पूजा का था कि उसने पूरा नाटक अभिनय कर दिखाया।

कुछ समय बाद अभिषेक बरास्ते दिल्ली मुंबई पहुंच गए। आज भी मुंबई के नाट्य और फिल्मजगत में दर्जनों ऐसे हस्ताक्षर होंगे जिनकी जड़ों में इलाहाबाद की मिट्टी का असर होगा। कलकत्ते की नाट्य निर्देशक और 'रंगकर्मी' संस्था की सर्वेसर्वा उषा गांगुली की परवरिश और शिक्षा इलाहाबाद में हुई।

इस शहर की फिजा में अदब का हर रंग शामिल है, गीत, कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास और आलोचना। यहां विभूति नारायण राय जैसे भी रचनाकार रहे जिन्होंने कभी कहानी लिखी ही नहीं, सीधे उपन्यास की रचना कर डाली। यह अलग बात है कि उनका दूसरा उपन्यास 'शह में कपर्पू' बस कहानी जितना लंबा था। सन् 1980 में जब वे पुलिस सुपरिन्टेंडेंट थे, हमारा इलाका रानीमंडी दंगों की चपेट में था। राय के दिमाग में कोई धार्मिक पूर्वाग्रह नहीं था बल्कि वे अल्पसंख्यकों के प्रति हमदर्दी रखते थे। वे आजमगढ़ के थे लेकिन उनकी उच्च शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हुई। हर चार साल पर हुए दंगों पर उन्होंने नियंत्रण रखा और कई अल्पसंख्यकों का पुनर्वास किया। उनकी पुस्तक 'हाशिमपुरा' फर्जी मुठभेड़ की त्रासदी बयां करती है। उसका इंग्लिश और तमिल में अनुवाद हो चुका है।

हमारे शहर की बौद्धिक संपदा लेखकों, अध्यापकों और विद्यार्थियों के हाथ थी तो आर्थिक संपदा वकीलों, कानूनविदों और हाईकोर्ट के हाथ। हमारे लिए यह कल्पना करना कठिन है कि शहर में हाईकोर्ट न होता तो शहर का क्या होता। उच्च न्यायालय की वजह से शहर में रौनक रहती, होटल ठसाठस भरे रहते, रेस्तरां में बैठने की जगह न मिलती और हमारे कानूनी मित्र सारा दिन मुक्किलों से घिरे रहते। विशुद्ध तर्क और बुद्धि के बल पर चलने वाला यह अध्यवसाय, अन्य रोजगारों से ऊंचा दर्जा रखता है। यहा एक से एक अधिवक्ता हुए तो एक से बढ़कर एक न्यायमूर्ति। सन् 1975 में इसी उच्च न्यायालय में न्यायमूर्ति जगमोहनलाल सिन्हा के फैसले से बौखलाकर इंदिरा गांधी ने आपातकाल की घोषणा की। अनेक ऐतिहासिक फैसले इस संस्थान में लिये गए। सन् 1869 में स्थापित यह उच्च न्यायालय अगले साल अपने जीवन के डेढ़ सौ वर्ष पूरे करेगा। लेकिन हमें तो केवल उन मित्रों से सरोकार था जो हाईकोर्ट के होते हुए हमारे inner court के थे जैसे वहां के रजिस्ट्रार गिरीश वर्मा और उत्तर प्रदेश के स्थायी अधिवक्ता उमेश नारायण शर्मा। ये मित्र मुझे रवि के माध्यम से मिले लेकिन अपने बनते चले गए। आज भी इलाहाबाद जाने का मतलब होता है उमेश जी के घर जा पहुंचना और भरपेट सुस्वादु भोजन करना। दिन भर वे काम में व्यस्त रहते लेकिन अपनी शाम, दोस्तों के लिए रख छोड़ते। उनके घर जाने के लिए सभी दोस्त एक दूसरे को आमंत्रित कर लेते। पता नहीं उमेश जी की पत्नी जया, एक साथ इतने लोगों का भोजन कैसे बनवा लेतीं। इलाहाबाद के खानदानी घरों की तरह उनकी भी परंपरा थी कि कोई अभ्यागत उनके घर से खाली पेट नहीं जाएगा। अभी हाल तक राज्यसभा के सदस्य रहे देवी प्रसाद त्रिपाठी नवे दशक में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे। जेएनयू से पढ़े डीपीटी विलक्षण वाक् कौशल के धनी थे। जब वह व्याख्यान देते, उनकी कक्षा में अन्य

विभागों के विद्यार्थी भी चले आते। कक्षा खचाखच भर जाती। लड़के लड़कियां डेस्क पर, बेंच पर, यहां तक कि खिड़कियों पर खड़े होकर उन्हें सुनते। उनकी प्रतिभा का ऐसा स्वागत और कहीं नहीं हो सकता था। जब वे कक्षा से निकलते, उनके पीछे बीस पच्चीस शिष्यों का जुलूस चलता। विभिन्न दलों के राजनेताओं से भी उनका घनिष्ठ परिचय था जिसकी परिणति यही होनी थी कि वे सक्रिय राजनीति से जुड़ जाएं।

कई दोस्तियां ऐसी होती हैं जो घटित स्तर पर हमें परेशान करती हैं किंतु फ्लैशबैक में समृद्ध। डीपीटी से इसी तरह की दोस्ती रही। डीपीटी प्रथमतः रवि के दोस्त थे। उनकी बातों की कायल मैं भी थी। लेकिन जब वे दोनों कश पर कश और जाम पर जाम वाले मुकाबले में कूद जाते, मेरी उलझन बढ़ जाती। कुछ और दोस्त आ जाते। सब मिलकर इतना शोर करते, धुआं फैलाते कि बच्चों को पढ़ाई के लिए जगह न बचती। अन्नू का वह आईसीएससी का आखिरी साल था। वह किताब कापी लेकर मेरे पास रसोई में भन्नाता— “मां मैं कहां बैठकर पढ़ूँ। हर कमरे में ठहाकों का शोर आ रहा है।”

मैं रसोई में उसके लिए एक कुर्सी रख देती और वह देर रात तक ऐसे ही पढ़ता। सुबह रवि को उठने की कोई जल्दी न होती जबकि मेरी और बच्चों की भागदौड़ सात बजे से शुरू हो जाती।

ऐसा लगता है अन्नू ने भी जल्दी अपने जीवन और कैरियर की प्राथमिकताएं तय कर लीं। चौक में एक और गली थी जिसका नाम था खोयामंडी। चिपचिप मकानों से बसी इस गली में साल के बारह महीने खोया बिकता। वहां अन्नू का एक दोस्त, अपूर्व मेहरोत्रा रहता था। वह अन्नू से सीनियर था। उसने कैट परीक्षा पासकर एमबीए में प्रवेश ले लिया था। अन्नू कहता— “अगर खोयामंडी का लड़का एमबीए कर सकता है तो रानीमंडी का लड़का क्यों नहीं कर सकता।” अन्नू का मन था कि रानीमंडी में रहते हुए ही वह एमबीए की पात्रता अर्जित करे। ऐसा उसने कर भी दिखाया। हमारे घर के लिए यह बड़ी बात थी क्योंकि हमने कभी बच्चों के सिर पर अपने सपने नहीं थोपे, तुम्हें यह बनना है तुम्हें वह बनना है। अन्नू अपने आप पढ़ाकू दोस्तों की संगत में पढ़ाकू बन गया और मन्नू लड़ाकू दोस्तों की संगत में लड़ाकू। छोटा होने की वजह से उसे हमेशा ऐसा लगा कि अपनी बात पंचम सुर पर बोलकर ही वह इंसाफ हासिल कर सकता है।

एक ही शहर और घर में पलकर भी दो भाइयों की प्रकृत अलग हो सकती है यह हर परिवार में साबित होता रहा है। मेरी बड़ी बहन प्रतिभा और मैं चरम और परम जैसे दो ध्रुवों पर रहे तो रवि और उनके बड़े भाई परस्पर विलोम। प्रेम भाईसाब कनाडा के कोल्डलेक, सबसे ठंडे इलाके में रहते हैं। उन्होंने डॉक्टर के कहने पर भी कभी मांस मदिरा की तरफ नहीं देखा। रवि को कालेज के दौरान ही गुरु से ज्ञानगंगा के साथ साथ सोमरस की सरसरि भी प्राप्त हो गई।

**हमारे एक दिलदार मित्र थे डॉ. खोपर जी। आज सोचकर हैरानी होती है कि डाक्टरों ने कितनी दोस्ती निभाई। हमसे उन्हें कोई प्राप्ति नहीं थी, फीस तक की नहीं। लेकिन वे आधी रात में चले आते राहत दिलाने। एक बार मेरे सिर में बड़ी जोर से दर्द था। पेन बाम, इस्प्रिन, बादामरोगन किसी से आराम नहीं आया। उस दिन रवि से मिलने कई दोस्त आए हुए थे। ऊपर उनके कमरे में महफिल सजी थी। मैंने घबराकर रवि को आवाज दी। रवि सुनते ही नीचे आए और मुझे खुली हवा में बैठने जैसा सामान्य सुझाव देकर ऊपरी मंजिल पर पुनः चले गए। मैंने डॉ. अभिलाषा और डॉ. खोपर जी को फोन करवाया। पति पत्नी अपना सब काम छोड़, आनन फानन में हमारे घर पहुंच गए। रवि ने ‘स्कोडा’ गाड़ी घर पर रुकते देखी तो समझ गए अब मामला गंभीर है। उन्होंने**

‘सॉरी’ और नमस्ते के बीच बाकी दोस्तों से विदा ली और चुपचाप नीचे आकर बैठ गए। डॉक्टर अभिलाषा ने कोई दवा दी, प्यार दिया और बड़ी देर तक दुलार से मेरे सिर पर हाथ फेरती रहीं। उनकी नर्म और नम हथेलियों से सुकून के सोते फूट रहे थे।

हमारे ये डाक्टर खोपर जी अद्भुत प्रतिभा के धनी हैं। निस्संतानता का डॉपलर तकनीक से उपचार करते हैं, साथ ही ध्वनि संयोजन, बड़ईगिरी, लुहारगिरी से भी कोई परहेज नहीं है। एक बार की बात है रवि और मैं जब शाम को घूमने निकले। घर की चाबियां अंदर मेज पर रखी रह गईं। मुख्य द्वार पर स्वचालित ताला था गोदरेज का। वापस लौटने पर गलती का पता चला। रवि ने डॉक्टर खोपर जी को फोन मिलाया और समस्या बताई।

“मुझे ताले तोड़ने का अच्छा तजुर्बा है।” डॉक्टर साब ने कहा और वे अपने टूल बॉक्स के साथ आ गए। उनके बच्चे अभिनय और तनया भी साथ थे। डॉक्टर साब ने पहले सब तरफ से टटोला, कहां से घर में प्रवेश पाया जाये।

मैंने कहा— “टैरेस पर जो दो ताले लगे हैं वे काफी पुराने हैं। किसी मामूली कम्पनी के बने हैं। शायद वे जल्दी टूट जाये।”

डाक्टर साब, बैटमैन की तरह छलांग लगाकर टैरेस पर चढ़ गए। अंधेरा हो गया था। शटर के ताले पर उन्होंने दसियों हथौड़े मारे, ताले नहीं टूटे।

पड़ोसी अपने अपने सुझाव देने बाहर निकल आए।

अपनी विलक्षण विमूढ़ता में मुझे उस वक्त सिर्फ एक फिक्र हो रही थी कि मैं गैस के ऊपर दूध का पतीला छोड़ आई हूँ। अगर रात भर ताला न खुला तो दूध खराब हो जाएगा।

डॉक्टर साब ने कहा— “पुराने तालों में बड़ा दम होता है।” तभी हममें एक किरण कौंधी आशा की। पीछे के आंगन से बाथरूम के रास्ते सिर्फ एक दरवाजा तोड़कर घर में घुसा जा सकता है। हमारे झाड़वर प्रकाश ने एक पेड़ पर चढ़, पिछवाड़े के आंगन में छलांग लगाई और पेचकस से दरवाले के कब्जे अलग किये।

असलियत यही है कि वहां हमारे दोस्त और खैरखाह हर मरहले पर साथ खड़े होते। सरोकार बने रहते। एक की तकलीफ दूसरे की भी होती। जब कभी हमारा छोटा बेटा मन्नू बगावत पर उतर आता, डॉक्टर दंपति ही उसे पटरी पर लाते।

अब ऐसे दोस्त कहां मिलते हैं, कहां ऐसा याराना। हम पिछले कई बरस दक्षिणी दिल्ली के इलाके लाजपत नगर में रहे जहां कभी किसी से दोस्ती तो छोड़िये परिचय तक न हुआ। वहां पार्किंग को लेकर भाई भाई में झगड़े और हत्या तक देखी। एक परिवार ने दूसरे परिवार की कार को आग लगाकर स्वाहा कर दिया क्योंकि वह कार गलती से उसके गेट के सामने खड़ी थी। कोई किसी के पचड़े में नहीं पड़ता। आस पड़ोस के लोग न आपके पक्ष में बोलते हैं न विपक्ष के। किसी भी वारदात पर पुलिस को चश्मदीद गवाह नहीं मिल पाते। पीड़ित परिवार को हमदर्द भी नहीं मिल पाते। हर साल दिल्ली में अपराधों के आंकड़े बढ़ जाते हैं, उसकी जड़ में यही सरोकारहीनता है।

एक जमाने में मित्र प्रकाशन की शहर में बड़ी प्रतिष्ठा थी। प्रकाशन के अध्यक्ष आलोक मित्र विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। थोड़े बहुत लेखक भी थे। ये सभी गुण उन्हें विरासत में मिले थे। उनके पिता क्षितींद्र मोहन मित्र ने इलाहाबाद में मित्र प्रकाशन स्थापित किया था जहां से माया, मनोरमा, मनोहर कहानियां जैसी लोकप्रिय पत्रिकाएं प्रकाशित होती थीं। क्षितींद्र बाबू ने अपने चार बेटों के बीच प्रकाशन का समस्त प्रबंधकीय दायित्व बांट दिया था। गल्प लिखवाने और बेचने की कला में वे सभी माहिर थे। आलोक बाबू ने बड़े से बड़े साहित्यकार को अपने प्रतिष्ठान में नौकरी

दी। उनका फॉर्मूला था— “हम गरीबी दूर नहीं कर सकते मगर उसे बेच सकते हैं।” साल में एक बार वे माया का साहित्य विशेषांक प्रकाशित करते। मार्कण्डेय जी ने ‘माया’ के कई विशेषांक संपादित किये।

मित्र प्रकाशन के दूसरे नंबर के भाई अशोक मित्र एक स्थानीय साप्ताहिक पत्र ‘गंगा जमुना’ निकालने की योजना बनाई, अंग्रेजी में जिसे tabloid कहते हैं, वही। उन्होंने रवि को इसका प्रधान संपादक नियुक्त किया। रवि के रहते यह साप्ताहिक ‘गंगा यमुना’ स्थानीय कैसे रहता, सन् 1993 से सन् 1999 की अवधि में वह राष्ट्रीय पत्र बन गया। सन् 1999 में भाइयों की आंतरिक कलह के कारण यह साप्ताहिक बंद हो गया। मित्र प्रकाशन और माया प्रेस के अवसान के साथ इलाहाबाद में बहुत से पत्रकार और रचनाकार बेरोजगार हो गए। चालीस साल तक वैभव के चरम पर रहा यह संस्थान ताशमहल की तरह ढह गया। आज भी मुट्ठीगंज में माया प्रेस और मित्र प्रकाशन के परिसर में ताले पड़े हैं।

अन्य शहरों की तरह इलाहाबाद में भी आए दिन अखबार और पत्र पत्रिकाएं निकलते और बंद होते रहते हैं। पेंशन और प्रॉविडेंट फंड तो दूर की बात है, पत्रकारों, स्तंभकारों को पारिश्रमिक भी ठीक से नसीब नहीं होता। ‘भारत’, ‘स्वतंत्र भारत’, ‘अमृत प्रभात’ जैसे अखबार अनेक वर्ष निकलने के बावजूद अपना अस्तित्व नहीं बचा पाये। न जाने कितने पत्रकार विस्थापित हुए और कितने ही शहर छोड़ गए। विकल्प का अभाव जहां सृजनधर्मिता की आधार भूमि बना, वहीं न जाने कितने परिवारों को निराधार कर गया। जब जब इलाहाबाद से विस्थापन हुआ है उसकी जड़ में किसी न किसी अखबार का विध्वंस रहा है। हमारे मित्र बाबूलाल शर्मा, प्रभात ओझा, प्रदीप भटनागर, प्रदीप सौरभ और अन्य कई पत्रकारों ने मजबूरन शहर छोड़ा।

कुछ व्यक्तियों से बात करने पर हमेशा नई ऊर्जा प्राप्त होती। हमारे घर से एक मकान की दूरी पर डा. लाल बहादुर वर्मा और उनकी पत्नी रजनीगंधा वर्मा रहते थे। जब भी कभी हम वहां जाते डा. वर्मा हमेशा कुछ लिखते मिलते लेकिन वे तुरंत कागज एक तरफ समेट, हमारा स्वागत करते। जितना कुछ लिख चुके उसका कोई घमंड नहीं किंतु लेखक की गरिमा से भरपूर समृद्ध। उनका बात करने का सलीका, हमारे पूरे दिन की सुस्ती धो डालता। अक्सर उनके घर एक से एक विद्वान उपस्थित मिलते। हर बार उनके यहां से उठते समय हम तय करते कि हमें यहां और ज्यादा आना चाहिए। कुछ दिन दिल्ली रहकर वे शायद अब देहरादून चले गए हैं। हमारे लिए वे हमेशा इलाहाबाद की हस्ती रहेंगे।

हमारे शहर के बहुत से विद्यार्थियों ने खूब नाम कमाया। बद्री नारायण, मृत्युंजय, श्रीप्रकाश शुक्ल, मनोज कुमार पांडेय, जहां कहीं से आए, शिक्षा दीक्षा के चलते इलाहाबाद के ही माने गए। जब ये पढ़ते थे किसी को यह आभास नहीं था कि ये इतने महत्वपूर्ण साहित्यकार और बुद्धिजीवी माने जाएंगे। मनोज पांडेय और संजय कबीर तो हमारे देखते देखते लेखक बने हैं।

समूचा श्रेय शहर के नाम करने का मन नहीं होता। जरूर इसमें नब्बे प्रतिशत योगदान व्यक्तित्व की क्षमता का भी होगा। शहर की भूमिका यही है कि वह हमें स्पंदित रखता है, विचलन के इतने विकल्प प्रस्तुत नहीं करता कि हम बिखर जाएं। प्रतिभा के कद्रदां यहां हैं तो आलोचक भी यहीं। अपने शहर की खासियत यह है कि वह हमें मुश्किल से कबूल करता है, खराद पर चढ़ता है, गढ़ता, छीलता, छांटता है और एक दिन, दुनिया की हवाओं में उछाल देता है, फुटबॉल की तरह।

अगले अंक में जारी

## ‘जाऊंगा कहां रहूंगा यहीं’

अरुण कमल

अंतिम बार अस्पताल में मिला। पहचान गये। हाथ में हाथ लिया। अष्टभुजा से भोजपुरी में बात की। मैंने बस इतना पूछा गांव जायेंगे? नहीं, गांव नहीं जाऊंगा। देखकर दुख हुआ। इतने सुंदर, इतने ऐश्वर्यवान रहे। जिसने जीवन के गीत गाये। जिसने पत्तों का झरना सुना और मिट्टी की रोशनी देखी। हम बहुत उदास लौटे। राजेश भी था। लगा कुछ खोकर आ रहे हैं। अभी तो एक दो महीने पहले पटने में साथ थे। पुस्तक मेले में एक सत्र उनसे बातचीत का था। उनके बचपन और बचपन और बच्चों की किताबों पर। शाम को पूरा कक्ष भरा था। और कितने सुंदर, प्रभावशाली लग रहे थे गले में मफलर लपेटे। ताल्लसताय पूछते हैं कि कौन चेहरा सुंदर कहा जाएगा। कहते हैं वो जो हंसते हुए सुंदर लगे। हंसते हुए इतना सुंदर मैंने किसी और को नहीं देखा। बचपन की बात करते वह बहुत खुश थे। अपने पहले गुरु को याद किया और उन गुरु को जिन्होंने कविता की लौ लगायी। पूरी बातचीत डीपीएस स्कूल के पास होनी चाहिए जिनका यह कार्यक्रम था। शायद यह उनका अंतिम सार्वजनिक सत्र होगा। मैं थोड़ा विस्मित था कि बचपन की इतनी छोटी छोटी बातें भी उन्हें याद हैं। जैसा प्रायः हर बड़े कवि के साथ होता है, बचपन हमेशा उनकी कविता में मौजूद रहा दृश्यों, भूमि, भाषा और परिवेश में। उनकी अधिसंख्य कविताओं में उनके आरंभिक जीवन के भूभाग, लोग और स्मृतियां हैं। बाद के बरसों में मैंने अक्सर उन्हें भोजपुरी बोलते सुना है। भोजपुरी सम्मेलनों में जाते। और हर जगह, चाहे गोरखपुर हो चाहे कलकत्ता, पटना या छपरा या हैदराबाद उन्हें अपनी तरफ के लोग मिल जाते, उनके साथ बैठे रहते। अधिकतर साधारण लोग। और महान भोजपुरी कवि भिखारी ठाकुर पर उनका संस्मरण लेख खुद उनको समझने के लिए जरूरी है। मुझसे कभी भोजपुरी नहीं बोले। नेरुदा की इच्छा थी कि एक विश्वविद्यालय उनकी अपनी बोली, यानी इस्पहानी नहीं (भाषा का नाम भूल रहा हूँ) में खुले। भोजपुरी यानी घर। उनकी

कविता में भाषा का अस्तर भोजपुरी का है। ऊपर से ऐसा नहीं लगता क्योंकि उनकी कविता की भाषा प्रांजल हिंदी है, पूरे वाक्यों वाली खड़ी बोली जहां भोजपुरी के ठेठ शब्द भी कम ही मिलेंगे, लेकिन जब वह पाठ करते तो मैं उस तानपूरे को पकड़ लेता, एक पूर्वी स्वर का जलचिह्न। अकारण नहीं कि वह बार बार गांव जाते रहे। और कोशिश करके अपनी तरफ के लोगों से मिलते रहे। मैंने कभी उनको 'बड़े' लोगों की संगत में नहीं देखा जबकि देश के कुछ सबसे बड़े लोग उनके करीबी थे। उन्हें गूफ्तगू अवाग से थी। और एकदम नये कवियों से। मेरे जैसे लोग धृष्टता की हद तक उनसे छूट ले लेते। हमारे लिए तो वह आम का बगीचा थे, आसरा और खेल का मैदान। खूब रस से भरा हुआ। हर गुस्ताखी के लिए पहले से माफी। कहीं जाते तो खुद ही नये कवियों को बुला लेते। वहां चले जाते। एक नये कवि की कविता की बात चली तो मैंने कुछ शेखी के साथ उसे खारिज कर दिया। सुनो, ऐसा है...। कभी मैंने उन्हें तेज बोलते, किसी की बात बल से काटते या अपना दबदबा जताते नहीं देखा। बिलकुल खुले, उदार और अम्लान। सुनो, ऐसा है कि जब मैं कोई कविता पढ़ता हूं तो उसे पहले अपने भीतर उतरने देता हूं, रुकता हूं और तब तै करता हूं, यह कविता मुझे अच्छी लगी। मूल्यांकन नहीं, बस अच्छी लगी। इसलिए वह नये से नये कवियों को न केवल पढ़ते थे उनसे दोस्ती कर लेते थे और गप्पें करते। उनकी कविता का द्राक्षासव यदि निरंतर परिपक्व होता रहा तो इसका एक कारण एकदम नये से उनका निरंतर संबंध भी था। और बराबरी का संबंध। नागार्जुन के बाद मैंने और कहीं ऐसा कम पाया। उनमें गुरुडम नहीं था।

पहली बार पटना में देखा था। सन् 70 के आसपास। कालेज के पहले दूसरे साल का छात्र था। नवल जी ने कहा— शाम को आना है केदार जी आये हैं। खजांची रोड के तिराहे पर किशोर काफे हुआ करता था। मेरे घर के पास ही। हम वहीं इकट्ठा हुए। पत्नी के इलाज के लिए वह पटना में थे। मैं क्या बोलता। सिर्फ सुनता रहा। देखता रहा। इतना याद है कि नरेश मेहता और नामवर सिंह के हवाले से उन्होंने कोई ऐसी बात कही थी कि सब जोर से हंसे थे। उस विषण्ण परिस्थिति में भी वह हंस सकते थे हंसा सकते थे। पटना से उनका संबंध इस वियोग का बना। एक बहुत मार्मिक कविता पत्नी के प्रति है। इतनी बार की पटने की मुलाकातों में बस एक बार उन्होंने बेहद मद्धम स्वर में कहा था सब तो है एक वो नहीं हैं। वह बहुत कम बोलने वाले कवि हैं। शांत पर खौलते हुए। उन्होंने कहा था मुझे प्रशांत महासागर बहुत आकर्षित करता है। सोया हुआ मगर। उनकी कविता में जो तड़प है वह सतह के नीचे है। अपार हाहाकार। रात में जंजीरों का बजना। एक कविता पिता के निधन पर है जो अपनी बुनावट में अप्रतिम है। न होने को विभिन्न अनुपस्थितियों से व्यंजित किया गया है। मैंने हमेशा उन्हें एक ठेठ भारतीय गृहस्थ की तरह पाया। दिल्ली में पिता साथ रहने लगे थे। बताया कि एक बार वो विभाग से घर आये तो देखा कि पिता और नागार्जुन धूप में अगल बगल कुर्सियों पर बैठे हैं और हंस रहे हैं। नागार्जुन ने कहा दोनों में से कोई सुन नहीं रहा है पर वार्तालाप चल रहा है। जब तक मां थीं वह लगातार कलकत्ता दौड़ते रहे जहां बहन के घर पर मां रह रही थीं।

कलकत्ता ऐसे भी उनको खींचता था भादों की भरी नदी की तरह। जाड़ों में खासकर। पूरब के आदमी को सबसे ज्यादा कलकत्ता ही खींचता है। मैं उनकी बहन के घर भी गया हूं जहां खुला आंगन है और गुलजार पड़ोस। यहां उनका मन लगता था। उनको चाहने वाले तो हर जगह थे पर यहां उनके जेवारी भी बहुत थे और बांग्ला लेखकों कवियों में उनका बहुत आदर था। उनके पास कलकत्ता के बहुत संस्मरण थे। एक बुद्धदेव भट्टाचार्य का भी था कि कैसे नंदन में बिना लामकाफ के वह हिंदी कवि को ढूंढते चले आये थे। और एक संस्मरण सत्यजीत राय की फिल्मों के नायक सौमित्र चटर्जी का था। मार्मिक। वह खुद लिखते तो अच्छा होता। गांव, बनारस, छपरा, पटना, कलकत्ता, दिल्ली— बुद्ध सर्किट की तरह— यही केदार परिक्रमा थी। कलकत्ते में जब भी मिलना

हुआ उन्हें हमेशा प्रफुल्ल पाया, नये लड़कों लड़कियों से घिरे हुए, कभी कृपाशंकर कभी शंभुनाथ कभी कहीं और लगातार घूमते हुए। अंतिम बार उनके साथ बेलूर मठ गया। उस दिन बेतहाशा भीड़ थी। उन्होंने लावण्यमयी भीड़ को देखा और संन्यासियों को। शाम होते होते वह थक गये थे और हल्का बुखार भी चढ़ गया था। घर लौट गये। अगले दिन फिर मिले। दिल्ली में उनकी बेटी विदुषी संध्या जी के घर कई बार भेंट हुई। वह कितना मानते थे बेटियों को। एक बार जब राजेश भी साथ थे तो संध्या जी के घर पर दिल्ली में मौजूद सभी बेटियों को बुलाया था। दामाद भी थे। वहीं पहली बार विजय जी से मिला। इतना भरा भरा लगा। एक स्तबक। इतना खुश थे वह। पटने में रहने के कारण उनके चिरंजीव के विवाह में भी रहा और फिर अभी अभी उनकी सबसे बड़ी बेटी की शादी में भी शामिल हुआ। वह एक कुटुंब के मुखिया थे। यह उनकी कविता का भी समाज था। उनका जलग्रहण क्षेत्र गंगोत्री यमुनोत्री। उनकी कविता इसीलिए इतनी आर्द्र है। गहरे प्रेम और लालसा से भरी हुई। अगर हम कविता में विषयों की सूची बनायेंगे तो किसी भी सच्चे कवि को समझ नहीं पायेंगे, उन्हें तो बिलकुल नहीं। जरूरी है कविता की जमीन को पहचानना जैसे पानी तेल या खनिज खोजने वाले पहचानते हैं। भोपाल में उनकी बेटी के घर भी जाना हुआ और दिल्ली में साकेत में उनके घर उनके कमरे में भी जहां बड़े पलंग पर किताबें थीं और आरामकुर्सी के पास भी। एक बार उन्होंने दिल्ली की मशहूर बालूशाही खिलायी जो अभी तक याद है। वैसे उन्हें सबसे प्रिय था दही। दिन या रात कभी भी। और मिठाई पर कभी कोई रोक नहीं देखी। सादा सात्विक भोजन अधिक पसंद था। और चिखना के तौर पर शाम को फुटहा यानी फूटा हुआ चना जिसे कई बार वो खुद कहीं से लाते। और उस पर कुछ एकाधिकार जैसा भी जताते। पटने में जोगी जी सबसे अच्छा फुटहा ढूंढ लाते। इधर वह जब भी आये जोगी जी और श्रीराम तिवारी उनके साथ जरूर रहते। उनके कुटुंब में परमानंद जी तो थे ही देवेन्द्र बंगाली भी थे जिन पर एक बहुत प्यारा लेख है उनका। साहित्य समाज में मैंने अक्सर उनके साथ तरह तरह के लेखकों को देखा जिन्हें कुछ लोग उच्चभू नहीं भी कहेंगे, पर जो उनके आत्मीय थे। नागार्जुन त्रिलोचन भी ऐसे ही रहे। सबके साथ।

यह सिर्फ संयोग नहीं कि उनकी अनेक कविताएं साधारण लोगों को नायकत्व प्रदान करती हैं। ठेठ देहाती कार्यकर्ता के प्रति, कैलाशपति निषाद जैसी कविताएं कुछ उदाहरण मात्र हैं। अगर थोड़ा रुककर देखें तो उनके संपूर्ण रचना संसार के केंद्र में साधारण, उपेक्षित और हाशिए के लोग हैं। बाढ़ में घिरे लोग, टूटा हुआ ट्रक, आग पर चलना, त्रिनिदाद ये सब उसी जीवन के प्रतीक हैं। उनके पात्र अटूट जीवट के धनी हैं, नष्ट होकर भी पुनः पुनः जीवन से भरते जैसे टूटा हुआ ट्रक। यह निष्कंप प्रतिरोध की कविता है। जरूरी नहीं कि कविता हमेशा जोर से बोले। अक्सर हमसे कविता को पहचानने में भूल होती है। अभी हाल में रजा फाउंडेशन के कविता केंद्रित एक कार्यक्रम में मैंने प्रस्तावित किया कि सूर की कविता में आने वाले बाढ़, डूब, ग्राह सरीखे बिंब और तुलसीदास की विनयपत्रिका में भरे भूख, अकाल, दरिद्रता के प्रसंगों को रेखांकित करते हुए इन्हें नयी और भिन्न दृष्टि से पढ़ने की जरूरत है क्योंकि कविता ऊपरी लेखन में नहीं बल्कि मूलतः ध्वनि में होती है। केदारनाथ सिंह की कविता भी ऐसे ही बर्ताव और सलूक की मांग करती है। उनकी कविता गहरे प्रतिरोध और विपक्ष की कविता है। साथ ही जीवन से विवश मोह और हर कण के जीवन सत्यापन की कविता है।

केदारनाथ सिंह निश्चयपूर्वक तय करके जहां तक बन सका और जहां तक उनके सामाजिक जीवन में संभव था, सत्ता व प्रभुत्व की दुनिया से दूरी बनाये रहे। मुझे याद है एक बार किसी शहर में एक बड़े क्लब की तरफ से उनका अभिनंदन आदि था और उन्होंने जाने से इंकार कर दिया, हम सब के साथ बैठे रहे। एक बार एक मुख्यमंत्री के हेलिकॉप्टर भेजने के प्रस्ताव को भी ठुकरा कर जाने से इंकार किया। लेकिन कभी इसे प्रचारित नहीं किया। क्योंकि यह सहज कविस्वभाव,



कविकर्म का ही भाग है। 'कब्रिस्तान में पंचायत' एक लिहाज से हिंदी की नायाब किताब है। पंडित रघुनाथ शास्त्री से लेकर नान्हू बाबू और रामनरेश त्रिपाठी तक महान् व्यक्तित्वों की गाथा। दलित कविता और कवियों पर इतनी गंभीर चर्चा कम ही हुई होगी। इस किताब का शीर्षक लेख कब्रिस्तान में पंचायत बहुत दिलचस्प है और केदार जी के व्यक्तित्व का सच्चा प्रमाण। कब्रिस्तान को लेकर एक विवाद में दोनों पक्षों की ओर से एक ही नाम की पुड़िया आई— केदारनाथ सिंह। लेकिन ऐसा भी नहीं कि वह अजातशत्रु थे, एक कवि को होना भी नहीं चाहिए। जब भी समय आया उन्होंने अपना पक्ष चुना और उस पर अडिग रहे और विरोध सहा। आखिर कोई तो कारण है कि उनके जैसे लेखक पद्म सम्मानों से विरत रहे। साहित्य निर्णय में भी समय आने पर अपना मत निर्भीकतापूर्वक व्यक्त किया जबकि ऐसा न करने से बहुत ज्यादा सुभीता होती। केदार जी के लिए कविता ही सर्वोपरि थी और किसी कविता का अच्छा लगना ही उनके मत का नियामक, फिर कविता चाहे किसी की हो। जोखिम उठाने की हद तक वह अपनी पसंद की कविता और कवि के पक्ष में हाथ उठाते रहे और जब कभी मूल्य निर्णय का क्षण आया कोई भी इतर कारण उन्हें झुका न सका।

सन् 78 में उन्हें देखा। अक्टूबर का महीना था। चंडीगढ़ में साहित्य अकादेमी की ओर से कई भाषाओं के युवा कवियों के लिए एक हफ्ते की कविता कार्यशाला थी। राजेश जोशी, मंगलेश डबराल, विनोद भारद्वाज और खाकसार शिशिक्षु थे। और हमारे उस्ताद थे त्रिलोचन और केदारनाथ सिंह। विष्णु खरे तब अकादेमी में थे और हमारे लिए वह भी उस्ताद थे। दिन भर हम साथ रहते। देर शाम तक। मेरा अनुभव यह रहा कि केदार जी ने कभी कुछ पढ़ाया नहीं। लगा ही नहीं कि हमें कुछ सिखा रहे हैं। लगातार कविता पर ही तो बात होती। साथ नाश्ता खाना टहलना घूमना सब होता। बल्कि कई बार ये चारों रंगरूट कुछ ज्यादा ही चंचल लगते। अगर पूछा जाय कि आपने क्या सीखा तो मुंह से यही निकलेगा कि कुछ नहीं बस गप्पें कीं। लेकिन उस एक हफ्ते का साथ एक तरह का सत्संग था। हम बिना सचेत बने सीखते समझते रहते हैं। उस्तादी की परंपरा या गुरुकुल या संगीत घराने या शिल्पकारों के कारखाने— इनका महत्व और जरूरत अनमोल है। इनके लोप से बहुत बड़ी क्षति हुई है। गुरु का सत्संग और साथ ज्ञान के हर क्षेत्र में किसी न किसी रूप में जरूरी है। मैंने देखा कि जब त्रिलोचन कुछ कहते तो केदार जी चुप हो जाते— आगे आगे त्रिलोचन पीछे पीछे मैं। किसी शब्द को लेकर दुविधा होती तो पूछते। वहीं हमने देखा कि केदार जी के लिए संपूर्ण हिंदी कविता हथेली पर रखे आंवले की तरह है। इतने पद पंक्तियां कंठस्थ हैं। और एक शाम मीर और गालिब पर जो चर्चा उन्होंने की वह विस्मित कर देने वाली थी— त्रिलोचन केदारनाथ सिंह विष्णु खरे। बाद में भी कोई शाम ऐसी नहीं आई जब गालिब मीर केदार जी के साथ न हों। और विदेशी कवियों में रिल्के, लोर्का, पास्तरनाक और यीट्स केदार जी को प्रिय थे। उन पर केदार जी को सुनकर लगा कि हमें कितनी तैयारी करनी चाहिए, रियाज, मशक्कत। केदार जी की लोर्का की कविता वाली किताब मेरे ही पास रह गयी। तब वह टी. एस. इलियट की बिल्कुल आरंभिक कविताएं खोज रहे थे जो बहुत बाद में मुझे सड़क किनारे जर्जर जिल्द में मिलीं। हाल में वह अपनी आरंभिक कविताओं के छपने के बारे में सोच रहे थे और उनकी ऐसी कुछ कविताएं विश्वनाथ त्रिपाठी जी ने पुरानी डायरी से सुनाई थीं अगर भूलता नहीं हूँ तो।

कार्यशाला में अक्सर कविता की समस्याओं सवालों पर चर्चा भी होती। केदार जी बहुत बारीकी से लय छंद बिंब विन्यास की बातें बताते। बड़े कवियों का सत्संग लगातार सिखाता है मानों आप फूलोंभरे बाग में हों या चिनारों के बगीचे में या हिमालय के उच्चतर क्षेत्रों में। मैंने यही सीखा, पर जीवन में उतार नहीं पाया, कि कविता एक साधना है। और हर कला या शिल्प में बहुत कुछ ऐसा होता है जो सीखा और सिखाया जा सकता है। अंतिम दिनों में नागार्जुन की इच्छा थी कि छंदों की एक कार्यशाला हो। पर हम अभागे रहे।

फिर अगली बार थोड़ा समय बिताने का मौका मिला सन् 80 में जब भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार लेने दिल्ली गया। निर्णय अशोक जी का था। पहला ही था। सभी निर्णायकगण कार्यक्रम में थे। ठहरा था प्रिय कवि साथी श्याम कश्यप के यहां। बेरसराय का वह घर जेएनयू के पास था और गीता भाभी वहां विद्यार्थी थीं। केदार जी की भी। जिनका नाम विभाग के टाइम टेबल में संक्षेप में केएन सिंह है ऐसा कह के हंसती थीं क्योंकि केएन सिंह फिल्मों के रोबदार खलनायक थे। करीब एक हफ्ते तक लगभग रोज केदार जी से मिलना होता। राजेश भी वहीं ठहर गया था। तब केदार जी भी पास ही में रहते थे। और त्रिलोचन और शमशेर भी दिल्ली में ही थे। हमने क्या क्या बातें कीं कुछ याद नहीं है। कई बार केदार जी के घर पर या श्याम के घर पर बैठकी जमती। गीता भाभी विदुषी थीं और श्याम भी बहुत पढ़ता था। इसलिए केदार जी से तरह तरह के विषयों पर वे चर्चा करते। वहां केदार जी शिक्षक थे, पर हमने उनको हमेशा सहज और सहमीलू पाया। अंत अंत तक वह कवि ही रहे। कभी लगा ही नहीं कि वह इतने बड़े प्रोफेसर हैं। ऐसे किसी भी लेखक से मिलते हुए हमेशा सोचता हूँ कि जीवन के औपचारिक क्षणों में वह कैसा होंगे। पद, ख्याति, सम्मान सब उनके कद से छोटे थे। गहरा प्रेम, करुणा और सदाशयता, शालीनता और सादगी— मैं इनका मुरीद रहा। एक दिन उनके साथ दिल्ली घूमने निकला था। और हम 'दिनमान' कार्यालय भी गये। वहां केदार जी के साथ विनोद और मैंने एक फोटो भी खिंचवाई जिसमें केदार जी काफी कम उम्र के लग रहे हैं। अपने साथ के कवियों का जिक्र हमेशा बहुत सम्मान से करते। बहुत से संस्मरण थे उनके पास अपने समकालीनों और अग्रजों के। अगर सब लिख लिया गया होता तो हिंदी का उपकार होता। एक बार जब वह भोपाल में निराला सृजनपीठ वाले मकान में थे तो बिल्कुल सुबह किसी ने दरवाजा खटखटाया, देखा तो अज्ञेय जी थे। बैठे। कुछ देर। चलते समय कहे दिल्ली में तो भेंट होती नहीं सोचा यहां मिल लूं। वे बड़े लोग थे। बड़ा वो है जो छोटों को प्यार और आदर दे। केदार जी भी ऐसे ही थे। कभी मैंने उनको किसी पर भी बिगड़ते या झल्लाते नहीं देखा। कोई बात उनको अच्छी नहीं लगती तब भी मुंह पर कुछ कहते नहीं। कोई सैद्धांतिक बात भी बहुत संभालकर कहते। मेरी दूसरी आलोचना पुस्तक का नाम 'गोलमेज' था। मैंने किताब उन्हें दी थी। एक दिन अचानक उन्होंने बहुत एहतियात से कहा कि जहां तक हो बाहरी नामों मुहावरों से बचना चाहिए, गोलमेज राउंड टेबल जैसा है। फिर शायद उनको लगा कि मैं आहत हो रहा हूँ तो जोड़ा कि बिंब भी तो इमेज से आया है। लेकिन मैंने अपनी लापरवाही समझी और सलाह न करने का मलाल आज तक है। अब सोचता हूँ नाम बदल दूंगा। लेकिन पूछूंगा किससे? मैंने उनकी कई किताबों पर लिखा अच्छा बुरा जैसा भी बन पड़ा। लेकिन कभी उन्होंने बताया नहीं कि उनको कैसा लगा। एक लेख अंग्रेजी में इंडियन लिटरेचर में भी लिखा और साथ में कुछ कविताओं के अनुवाद भी। अनुवाद ठीकठाक हैं शायद कहा। पर लेख का जिक्र नहीं किया। आज भी सोचकर ग्लानि होती है कि एक जगह मैंने प्रमादवश कुछ कठोर टिप्पणी कर दी थी जो अनुचित और अवांछित थी। दूसरी भाषा में लिखने पर ऐसा हो सकता है कि आप कहना कुछ चाहें और कहा कुछ जाय। लेकिन केदार जी ने कभी कुछ नहीं कहा। बाद में एक अनुवाद कार्यशाला में राबर्ट फ्रास्ट की एक कविता के अनुवाद के कई प्रारूपों पर बात करते हुए मैंने उनसे पूछा कि इट्स रेनिंग के लिए क्या बेहतर होगा, बारिश हो रही है या पानी पड़ रहा है क्योंकि मैं दूसरे रूपांतर के पक्ष में था, तब उन्होंने पहले को चुना क्योंकि दूसरा मूल से ज्यादा दूर जा रहा था। तभी उन्होंने कहा कि हर भाषा का अपना अधिनायकवाद भी होता है जो कई बार सजग न रहने पर हमें अपनी गिरफ्त में ले लेता है। केदार जी बहुत अच्छे अनुवादक थे। रिल्के के उनके अनुवाद रिल्के को तो अक्षत रखते ही हैं, हिंदी का भी क्षेत्र विस्तार करते हैं क्योंकि अनुवाद क्षेत्र प्रसार की नीति और रीति है। स्वयं केदार

जी की कुछ कविताओं का अंग्रेजी में अनुवाद उन अनुवादक ने किया, नाम स्मृति पर चढ़ नहीं रहा है, जिन्होंने पाब्लो नेरुदा का किया था। केदार जी ने मलयालम के विख्यात कवि सच्चिदानंदन के साथ मिलकर भारतीय कविता के अनुवाद का संकलन 'तानाबाना' नाम से किया है जो शायद अब तक का सबसे प्रामाणिक काम है। मैंने एक बार अनुरोध किया था कि अपने प्रिय विदेशी कवियों की कुछ कविताओं के अनुवादों का एक संचयन बना दें पर वो रह ही गया।

कभी कभी सोचता हूँ कि केदार जी की कविता के केंद्रीय रूपक या मोटिफ क्या हो सकते हैं? अंधकार और प्रकाश आरंभ से ही विश्वकाव्य में सर्वाधिक नाभिक रूपक रहे हैं। हिंदी में निराला मुक्तिबोध तक में। मुझको लगता है कि पानी और मिट्टी शायद उनके केंद्रीय रूपक हो सकते हैं। केदार जी की कविता भी अपने कई समकालीनों की तरह न तो नागर कही जाएगी न वाचाल न मिथक आश्रित। केदार जी का सबसे बड़ा और भिन्न काम यह है कि उन्होंने भारतीय ग्रामीण जीवन के लिए आधुनिक और अद्यतन मुहावरों और शिल्प की खोज की। किसी भी समय में जीवन का कोई एक ही प्रतिनिधि पक्ष या स्वर नहीं होता जैसा कि आधुनिकतावाद के कुछ पैरोकार मानते समझते हैं। और संयोग से अधिसंख्य बड़े आधुनिक कवियों में महानगर ही उस काल का अक्ष है, बादलेयर से बाद तक। लेकिन सुदूर प्रांतर का जीवन भी ऐतिहासिक सामाजिक आर्थिक परिवर्तनों से अनछुआ नहीं रहता और इस भूकंप को दर्ज करने वाले कवि भी उतने ही आधुनिक हैं जैसे यीट्स, लोर्का या येसेनिन या बहुत हद तक रिल्के भी (ये सब केदार जी के प्रिय कवि रहे)। केदार जी के लगभग साथ ही सीमस हीनी भी ऐसा ही काम कर रहे थे। केदार जी ने देहात का जीवन नये बोध से नये मुहावरों में रचा और उसके लिए केंद्रीयता अर्जित की। इसीलिए उनके यहां एक प्रगाढ़, प्रशांत स्वर है जो ऊपर से अराजनैतिक भी लग सकता है। परंतु केदार जी प्रतिरोध के कवि हैं। गहरी करुणा ही कविता में प्रतिरोध की जननी है। केदार जी को सबसे प्रिय बुद्ध थे। अपनी कविता पर कभी उन्होंने बात नहीं की न सामने मुझे कभी करने दी। पर बुद्ध की बात करते हुए एक बार यूं ही उनके मुंह से निकल गया था कि उनको कभी कभी लगता है कि उनका बुद्ध से कोई वंशीय संबंध है। एक ही तो क्षेत्र है दोनों का। कुशीनगर से उन्हें बहुत प्यार था। कहा कि जब भी चलना हो मेरे साथ चलना। हांलाकि ऐसा हो न सका। केदार जी से जितनी बार भी मिलना हुआ वह हमेशा दूसरे कवियों, किताबों और जगहों की चर्चा करते। शाम की मुलाकातों में यात्राओं की बातें खूब करते। दिल्ली में गोविंद प्रसाद कई बार साथ होते। कैसे वह अमेरिका यात्रा में गिंसबर्ग से उनके घर पर मिले और गिंसबर्ग ने अपने हाथ से भात बनाकर खिलाया जो वह बनारस से सीख आये थे। कैसे इटली के एक शहर में वह उस घर में गये जहां कभी बायरन रहे जहां एक बहुत बूढ़ी स्त्री बायरन की वस्तुओं की हिफाजत कर रही थी। सबसे ज्यादा बातें वह इटली की करते थे। हमें रोमांच होता। और यह भी कि कैसे एक बार फैंज से शाम को उनके कमरे में मिले जहां फैंज अकेले बैठे थे दीवार की तरफ मुंह किए। एक बार उन्होंने इंतजार हुसेन की एक कहानी की बात बताई कि एक आदमी था जो एक कमरे में कैद था जिसमें न कोई दरवाजा था न खिड़की न रोशनदान। बस दीवारें और छत। कैसे निकले। तब उसने दीवार को एक जगह जीभ की नोक से चाटना शुरू किया कि एक दिन तो दीवार में सूराख खुलेगा। मुझे हठात् लगा कि अरे यह तो केदार जी की कविता की भी एक व्याख्या हो सकती है।

गालिब से सोहबत तो पहले ही हो गयी थी पर मीर की लत केदार जी से पड़ी। उनको कितना तो याद था। अपभ्रंश काव्य की ओर भी वही ले गये। जहां कहा गया है एक तो प्रिय मिलते नहीं, अगर जो इस बार मिल गये तो जैसे कच्ची मिट्टी का कसोरा पानी सोखता है वैसे ही सोख लूंगी। उन्होंने ही बताया कि अंतरंग संस्मरणों में जयशंकर प्रसाद मंगाकर पढ़ लो। मेरे जीवन की

कुछ महान शामें केदार जी और नामवर जी के साथ की शामें हैं। अक्सर दिल्ली के किसी कमरे में जहां ठहरा होता। नामवर जी और केदार जी और मैं सुनता रहता। यह भी देखता कि नामवर जी जब बोलते तब केदार जी चुप रहते। बहुत लिहाज करते। इन शामों में मैंने कितना सीखा बता पाना मुश्किल है क्योंकि जैसे आप नदी पर्वत समुद्र वन के साथ बस रहते हैं वैसे ही महापंडितों के साथ।

केदार जी के साथ बहुत बार रहना हुआ। कुछेक बार उनके सान्निध्य में कवितापाठ का भी सुअवसर मिला। एकाध बार मेरी कोशिश जमने की याने मुशायरा लूटने की भी रही। पता नहीं क्यों हिंदी के गंभीर कवियों में भी कई बार इस तरह की लूटपाट की मंशा और चेष्टा देखी जाती है जो कविता के वास्तविक कार्यभार को ठीक से न समझ पाने के कारण शायद होती है— कविता मनुष्य के भाव जगत, मानव संबंधों के घात प्रतिघात से प्रसूत भावों, और जीवन को, अन्य सभी अनुशासनों से एकदम अलग, निजी स्वायत्त दृष्टि से समझने और व्यक्त करने का उपक्रम है जो पाठक और श्रोता दोनों से धैर्य, ध्यान और विनम्रता की आशा करती है, न कि किसी पहले से जानी, प्रचलित धारणा का चुस्त कथन। केदार जी ने तब मुझे बरजा, आहिस्ते से, वो सुनाओ जो पहले नहीं सुनाई, या वो जिसमें जोखिम हो। खुद भी बिना उतार चढ़ाव के पढ़ते और शांति छा जाती। कभी कभी फरमाइश पर भी एकाध पढ़ते। दो मिनट का मौन, लहरतारा, बनारस और बाघ के कुछ अंशों के पाठ अविस्मरणीय हैं जहां शब्द के उच्चारण में बस उतनी ही सांस लगती जितने की जरूरत है।

केदार जी के साथ साहित्य अकादेमी में मैं भी सामान्य परिषद का सदस्य रहा। वहां के अनुभव से कह सकता हूँ कि केदार जी ने कभी भी अपना सुचिंतित पक्ष नहीं छोड़ा। जब मतदान का अवसर आया तो महाश्वेता देवी के लिए मतदान किया जैसा कि विनोद कुमार शुक्ल और भगवत रावत ने भी किया। इसका कुछ घाटा तो इन्हें हुआ ही। पूरे पांच साल में एक अवसर भी ऐसा नहीं आया जब लगा कि केदार जी ने अपना पांव पीछे खींचा हो। विनोद जी ने भी गहरी प्रतिबद्धता निभाई जो हमारी जमात में लगभग विरल है। लेकिन यह भी सही है कि केदार जी अपनी आत्मा की पुकार पर चलते थे। जब अशोक वाजपेयी के समय भारत भवन का बहिष्कार था तब भी, जब साहित्य अकादेमी का बहिष्कार चला तब भी, वह अपनी गति और मति से चलते रहे जिसमें मैं भी साथ रहा। लेकिन एक अवसर जरूर था जब मुझे लगा कि हमने सही नहीं किया। नामदेव ढसाल ने मुंबई में कविता का कार्यक्रम किया था और मुझे दिल्ली में अकादेमी की बैठक करते हुए केदार जी के साथ मुंबई जाना था। पर तब तक बहिष्कार की घोषणा हो गयी और केदार जी ने जाने से मना कर दिया। कुछ लोग जो पूर्व और पश्चात बहिष्कारी थे, वे गये। मुझे न जाने का खेद इसलिए भी है कि सबसे बड़े दलित कवि ने बुलाया था। केदार जी को सब बुलाते थे, पर साथ तो उन्हें कवियों लेखकों का ही पसंद था या फिर अपने गांव जेवार के लोगों का। वह अपनी पक्षधरता और कवि के रूप में अपने कर्तव्य को लेकर आश्वस्त थे। जहां नहीं जाने का मन था नहीं गये, जिससे सम्मान नहीं लेना था नहीं लिया। लेकिन थोड़ा कठोर होते तो शायद ज्यादा अच्छा रहता। हमारे साहित्य समाज में भी टुटपूजियों यानी मीडियाकरों की आज चलती है और हमारी सहिष्णुता और पीठोंकी उनको सहका देती है। एक कुकवि की प्रशंसा सारे महान कवियों की कीर्ति को भ्रष्ट और अपवित्र कर देती है। शठ के साथ शठता ही शोभती है। नहीं तो ये भस्मासुर बन जाते हैं। केदारनाथ सिंह ने प्रेम किया, घृणा नहीं।

इन्हीं मुलाकातों में एक बार मैंने उनसे पूछा कि आपकी नजर में खड़ी बोली हिंदी के दस बड़े कवि कौन से होंगे? ऐसी एक सूची संस्कृत वांगमय की नागार्जुन से ले चुका था और नामवर जी से भी दस सर्वाधिक प्रिय पुस्तकों की। केदार जी ने मैथिलीशरण गुप्त, निराला, प्रसाद, महादेवी, पंत के नाम लिए। फिर रुके। धीरे धीरे बढ़े। असमंजस में। अज्ञेय। त्रिलोचन नागार्जुन तो रहेंगे ही रहेंगे। मुक्तिबोध। और मैं बच्चन को, निशा निमंत्रण, को भी रखूंगा। लेकिन दस ही क्यों? भई ये क्या बात हुई। खैर!

केदार जी अब नहीं हैं। लेकिन उनकी कविताएँ हैं। इसीलिए एक लेखक का न होना कोई अपूर्णाय क्षति नहीं है। न जो नहीं था या जो कम था वो काम वह कर चुका। और उसका कोई स्थानापन्न नहीं है।

एक कवि की कभी मृत्यु नहीं होती, यह कहना चाहे जितना पुरातन लगे पर सही इसलिए है कि अगर एक भी सहृदय या समानधर्मा को उसकी एक भी पंक्ति याद रहती है, सैकड़ों साल बाद भी अगर कोई उसको उठाकर पढ़ता है तो वह जीवित है; एक ऐसा बीज जो हर ऋतु में जरा सी मिट्टी पानी के परस से अंकुरित हो जाए। केदारनाथ सिंह की कविता ('कब्रिस्तान में पंचायत' सहित) में वह अमर बीज है—

जाऊंगा कहां  
रहूंगा यहीं

किसी किवाड़ पर  
हाथ के निशान की तरह  
पड़ा रहूंगा

किसी पुराने ताखे  
या संदूक की गंध में  
छिपा रहूंगा मैं

दबा रहूंगा किसी रजिस्टर में  
अपने स्थायी पते के  
अक्षरों के नीचे

या बन सका  
तो ऊंची ढलानों पर  
नमक ढोते खच्चरों की  
घंटी बन जाऊंगा  
या फिर मांझी के पुल की  
कोई कील  
जाऊंगा कहां

देखना  
रहेगा सब जस का तस  
सिर्फ मेरी दिनचर्या बदल जाएगी  
साझ को जब लौटेंगे पक्षी  
लौट आऊंगा मैं भी  
सुबह जब उड़ेंगे  
उड़ जाऊंगा उनके संग

## तुम्हें याद हो कि न याद हो...

प्रियदर्शन

अपने बहुविध लेखन और अपनी पत्रकारिता के लिए सुख्यात लेखिका मृणाल पांडे का नया उपन्यास **सहेला** रे उस शास्त्रीय आस्वाद के विलोप की कहानी है जिससे हमारी कलाएं, हमारे नृत्य, हमारा संगीत बंधे रहे। चूंकि किसी भी विलोप की प्रक्रिया इकहरी नहीं होती है—वह एक बड़े पर्यावरणीय परिवर्तन का हिस्सा होती है, इसलिए यह कहानी हमारे समय के पूरे सांस्कृतिक परिवर्तन की कहानी भी बन जाती है। यह सांस्कृतिक परिवर्तन बीसवीं सदी के उस विस्थापन की देन है जिसे हम अब तक उसको भौगोलिक या आर्थिक राजनीतिक संदर्भों में ही देखते रहे हैं। इस विस्थापन का वह सांस्कृतिक पक्ष अनदेखा रह गया है जो भौगोलिक विस्थापन के साथ साथ बड़ी सूक्ष्मता से नत्थी होकर हमारे भीतर घटित होता रहा है, हमारी मनोरचना को प्रभावित करता रहा है।

इस सांस्कृतिक विस्थापन की कथा मृणाल पांडे ने शास्त्रीय संगीत के उन साधकों और रसिकों को याद करते हुए कही है जिन्होंने बड़े जतन से इस परंपरा को बचाया, संवारा और आगे बढ़ाया। इनमें वे जमींदार, रईस, कुलीन और अपने समय के शौकीन लोग रहे जिनके लिए शास्त्रीय गायन सुनना एक साधना से कम नहीं था। दूसरी तरफ यह कहानी उन तवायफों की है जिन्होंने समाज के अपयश सहे, बहिष्कार सहा लेकिन एक परंपरा को बिल्कुल पूजा की तरह बचाया बढ़ाया।

यह कहानी लिखना आसान काम नहीं था। जिस देश में इतिहास के प्रति हमेशा से एक अवज्ञा का भाव रहा हो, वहां कला की एक छूट रही विधा का इतिहास कौन सहेजता—वह भी उस आवाज का इतिहास, जिसकी बहुत हाल हाल तक रिकार्डिंग भी नहीं हुआ करती थी। इसके अलावा यह इतिहास उन कलावंतों और गुणीजनों का रहा जो अपने अपने ढंग से सामाजिक पढ़ंत

के दायरे में या तो अस्पृश्य थे या पहुंच से बाहर। ऐसी हालत में इस उपन्यास के लिए जो शोध कार्य संभव था वह सिर्फ पुराने लोगों की बातचीत और ज्यादातर उनकी स्मृति के सहारे की गई चर्चा पर निर्भर था। फिर वह पीढ़ी भी बहुत तेजी से गुम हुई जा रही है जिसने अपनी तरुणाई में कभी इसका आनंद लिया था, इसका रसपान किया था। इन सारी मुश्किलों के बाद भी मृगाल पांडे ने अगर यह कहानी लिखी है तो संभवतः इसलिए कि साहित्य की तरह संगीत भी उनके ममत्व में शामिल रहा। संगीत का प्रशिक्षण, अभ्यास और संस्कार न होता तो शायद सारे शोध के बावजूद यह कहानी लिखना संभव न होता।

उपन्यास के शुरु में जो पांच वंशावलिियां दी हुई हैं, वे इसकी जटिल संरचना का कुछ सुराग देने के अलावा हमारे लिए पाठ की समझ को भी आसान करती हैं। इन वंशावलियों में दो वंशावलियां उन 'गवनेहारियों' की हैं जिन्होंने अलग अलग संरक्षण और प्रशिक्षण के बीच इस शास्त्रीय परंपरा को आगे बढ़ाया। तीन परिवार उन प्रशंसकों और संरक्षकों के हैं जो इस पूरे दौर के गवाह रहे हैं, जिनकी स्मृतियों में वह इतिहास बसा है, लेकिन जो पीढ़ी दर पीढ़ी कुछ विस्मृत भी हो रहा है और कुछ बदल भी रहा है।

यह कहानी पांचवीं वंशावली की तीसरी पीढ़ी की लड़की विद्या की चिट्ठी से शुरू होती है। उसने अपने बड़े भाई के दोस्त, महफिलबाज और संगीत रसिक और मर्मज्ञ रहे राधा प्रसाद को यह चिट्ठी लिखी है। राधा प्रसाद अब एक प्रकाशक हैं और विद्या ने जानना चाहा है कि क्या वे सांगीतिक थिएटर के इतिहास पर केंद्रित उसका शोध छापना चाहेंगे और क्या इसके लिए आर्थिक मदद के तौर पर कुछ एडवांस रायल्टी देंगे?

यह एक चिट्ठी नहीं, एक पूरे सिलसिले की शुरुआत है जिसके साथ एक पूरा जमाना हमारे सामने खुलता चलता है। विद्या शोध के लिए निकलती है—तरह तरह के लोगों से संपर्क करती है—कुछ परिचितों से, कुछ अपरिचितों से, कुछ बरसों से बिछड़े लोगों से और कुछ बिल्कुल आखिरी समय में पहुंचे लोगों से—और किस्सों पर किस्से सामने आने लगते हैं।

मसलन अल्लारक्खी की कहानी जो बनारस की मशहूर हुस्नाबाई के परिवार से रहीं और खुद एक मशहूर गायिका रहीं। वे रामपुर की अपनी पुरानी हवेली में अपने आखिरी दिन गिन रही हैं। विद्या उनसे मिलने पहुंचती है और स्मृतियों का एक बंद पड़ा सोता जैसे ठहर ठहरकर बाहर आने लगता है। राजाओं के संरक्षण, उनकी मौत के बाद की उपेक्षा, ग्रामोफोन और रेडियो युग का आगमन और बाजार का हमला—यह सब सामने आते हैं। मगर उपन्यास की असली कहानी अल्लारक्खी से नहीं, उसकी सहेली हीराबाई से बनती है। बाद के दौर में बनारस में जाकर कलकत्ता तक मशहूर हुई हीराबाई पर कुमाऊं के जंगलात के हाकिम अंग्रेज अफसर हिवेट का दिल आ जाता है। हिवेट उससे बाकायदा शादी करता है, उसे विक्टोरिया हिवेट का दर्जा देता है और फिर संगीत से लेकर अंग्रेजी तक की तालीम दिलाता है। लेकिन हिवेट की मौत के बाद हीराबाई परिवार से दुत्कार दी जाती है और अंततः बेटी के साथ बनारस आकर रहने को मजबूर होती है। बनारस पहले हीराबाई पर निसार होता है और बाद में उसकी बेटी अंजलि पर।

यह कहानी जितनी आसानी से ऊपर कह दी गई, उतनी आसान नहीं है। इस सफर में कई मोड़ हैं। कई पेच हैं, कई आघात प्रत्याघात हैं जिनसे मां बेटी दोनों के हिस्से की शोहरत भी बंधी है और मायूसी भी। सबसे बड़ी बात वह सलीका है जिसके साथ लेखिका ने यह कहानी कही है। विद्या के शोध में चिट्ठी, ईमेल, सफर सब शामिल हैं। वह रामपुर जाती है, रानीखेत जाती है, इलाहाबाद और कोलकाता तक जाती है। वह इलाहाबाद के पुराने चर्च से संपर्क कर हीराबाई की बेटी अंजलि के जन्म की तारीख निकलवाती है, रानीखेत जाकर हीराबाई और हिवेट की शादी

के दस्तावेज देखती है, वहां वह तीन स्थानीय लोगों को यह जिम्मा देकर आती है कि वे उसे हीराबाई की जो भी मालूमात हो, उनके बारे में बताएं। इस मोड़ पर हीराबाई की कहानी किसी जासूसी उपन्यास जैसी दिलचस्प हो उठती है।

लेकिन फिर दुहराना होगा कि यह कहानी सिर्फ हीराबाई, अल्लारक्खी या उन जैसी कुछ और गायिकाओं की मार्फत शास्त्रीय गायकी के सफर की शिनाख्त की कहानी भर नहीं है। यह बस एक पक्ष है—वह पक्ष जो विद्या के शोध से तैयार होता है। लेकिन इसमें कई कहानियां शामिल हैं। मसलन, विद्या की ही अपनी कहानी जिसकी मां गौरी अपनी घुट्टी में संगीत प्रेम लिये आती हैं और पाती हैं कि उनके गांधीवादी पति को गायन वादन की ये महफिलें सख्त नापसंद हैं और वह धीरे धीरे खुद को आकाशवाणी की संगीत सभाओं तक महदूद कर लेती हैं। लेकिन उनकी संतानें—बेटा संजीव और बेटी विद्या अपनी घुट्टी में यह संगीत प्रेम लेकर बड़े हुए हैं। संजीव स्टैनफोर्ड की छात्रवृत्ति लेकर अमेरिका चला जाता है और विद्या बरसों बाद संगीत की इस परंपरा को अपने अध्ययन का विषय बनाती है।

मसलन, राधा प्रसाद और पुतुल दी की कहानी जो एक रायबहादुर खानदान के वारिस हैं और संगीत के गहन जानकार। उनका पूरा खानदान अपनी सांस्कृतिक नफासत और कुलीनता पर गर्व करता है। लेकिन यह कुलीन सुसांस्कृतिक दर्प अचानक विरूप और भोंडा लगने लगता है जब हम देखते हैं कि इस परिवार में आई राधा प्रसाद और पुतुल दी की मां को बाकी परिजन उपहास और उपेक्षा के साथ देखते हैं क्योंकि वह इनकी तरह संगीत की जानकार नहीं हैं और न ही सुंदर हैं। इस उपहास को ताउम्र पीठ पर ढोती मां का मन लेकिन फिर भी सरल है—सबको क्षमा कर देने पर आतुर, जो मिला, उसी से संतुष्ट हो जाने वाला।

मसलन सुकुमार चचा की कहानी जो अपने आप में भारतीय संगीत का चलता फिरता आर्काइव हैं, लेकिन संगीत के साथ हो रही छेड़छाड़ उन्हें कोफ्त से भर देती है। उनके पास पुरानी महफिलों, पुराने गायकों, पुरानी बंदिशों के किस्सों का विपुल खजाना है, लेकिन अपने अंतिम समय में वे यह खजाना किससे बांटें—यह सवाल भी उनके सामने है।

ऐसी कई कहानियां उपन्यास में मिलती और बढ़ती हैं। लेकिन इन सारी कहानियों का मर्म एक ही है—एक समृद्ध विरासत के विलोप की त्रासदी। क्या यह त्रासदी बस इसलिए घटित हुई कि राजाओं महाराजाओं कुलीनों जमींदारों और अंग्रेजों का वह दौर खत्म हो गया जिसमें इन कलाओं को संरक्षण मिलता था? अगर यह एक व्याख्या है तो बहुत स्थूल व्याख्या है। यह सच है कि इन कलाओं के संरक्षण का जो वैकल्पिक ढांचा बनना चाहिए था, वह हमारा लोकतंत्र बना नहीं पाया और सारे प्रयत्न सरकारी बाबूशाही की गिरफ्त में आकर मलिन पतित होते रहे। लेकिन शायद ज्यादा बड़ा संकट दूसरा था : जो उपभोग केंद्रित आधुनिक सभ्यता बाजार के कंधों पर सवार होकर आ रही है, उसमें हर चीज का एक विक्रय मूल्य है, एक एक्सपायरी डेट है, एक तात्कालिक आस्वाद की शर्त है। इस उपभोक्ता संस्कृति में संगीत भी रस का नहीं, उपभोग का मामला है; शास्त्रीयता के साथ संबंध बनाने के लिए जिस मानसिकता या संवेद्यता की आवश्यकता होती है, वह अपने भीतर पैदा करना भी अब रसिक का काम नहीं है—यह संगीत का फर्ज है कि वह एक खरीदी हुई चीज की तरह काम में आए, अपने उपभोक्ता को तत्काल तुष्ट करे।

यही वजह है कि इन तमाम संगीत विशारदों की भावी पीढ़ियां अपनी प्रतिभा को तरह तरह से बाजार में विक्रय योग्य बनाकर देश विदेश में कमाई में जुटी हैं। कोई विदेशों में भारतीयों को शास्त्रीय संगीत सिखा रहा है, कोई रिकार्ड कंपनियों के साथ मिलकर कारोबार में जुटा है, कोई किसी और ढंग से गुजर बसर कर रहा है। अल्लारक्खी की विदेश में जा बसी बेटी हैदरी, सुकुमार



चच्चा के बच्चे शांटुल और बांटुल, अंजलिबाई का पोता शाकिर—सब अपने अपने हिस्से की टूटन और गलाजत झेलते हुए अपने अपने ढंग से संगीत का कारोबार कर रहे हैं।

इस कहानी में तहें और भी हैं। जिंदगी की वे सारी सलवटें जो एक क्रम बनाती भी हैं और उसे तोड़ती भी हैं—तरह तरह की रंगतों के साथ यहां मौजूद हैं। कहीं इश्क है, कहीं उस पर बंदिश है, कहीं जमाने भर की शोहरत है, कहीं अपने हिस्से का सन्नाटा है, कहीं न टूटने वाली दोस्ती है, कहीं न खत्म होने वाली ईर्ष्या है, कहीं सजावटी किस्म की तहजीब है, कहीं कुलीनता में छुपी अमानवीयता है, कहीं टूटते साजों के बीच बची उम्मीद है, कहीं जीवन को बार बार सहेजने का जतन है।

और इन सबके बीच एक लंबे आलाप की तरह कहीं पार्श्व से आ रहा यह उदास करने वाला खयाल है कि सब कुछ एक दिन चुक जाता है। लय सुर ताल बिखर जाते हैं, सारी महफिलें उठ जाती हैं, सब कुछ स्मृतियों में रीतता चला जाता है, लोग एक एक कर पीछे छूटते और खत्म होते चले जाते हैं, कहानियां नई नई शक्तें लेती रहती हैं और जिंदगी नए हाथों में नई राहों में चल पड़ती है।

यह 'सहेला रे' है—मृणाल पांडे ने यह कथा बहुत रस लेकर लिखी है। यह उपन्यास अपनी भाषा और शैली के लिए भी पठनीय है। पूरा उपन्यास अलग अलग चिट्ठियों में है। कुछ चिट्ठियां विद्या और राधा भैया के बीच की हैं, कुछ संजीव की हैं, फिर अलग अलग उन लोगों की चिट्ठियां हैं जिनसे विद्या ने सूचनाएं मांगी हैं। इन सारी चिट्ठियों की भाषिक रंगत अलग अलग तरह की है। रानीखेत के तीन अलग अलग लोगों की चिट्ठियां इस लिहाज से दिलचस्प हैं। अल्लारक्खी की बेटाई हैदरी की चिट्ठी, सुकुमार बनर्जी की चिट्ठी और पुतुल दा की चिट्ठी—सबका अपना अपना आस्वाद है। निस्संदेह, इन सारी चिट्ठियों में मृणाल पांडे के अपने विद्वतापूर्ण लहजे की भी गहरी छाप है, लेकिन उनमें भाषिक मिजाज की अलग अलग खुशबू पकड़ना मुश्किल नहीं है। इस लिहाज से मृणाल पांडे की कलम भाषिक संपदा के धनी एक और लेखक मनोहर श्याम जोशी की याद दिलाती है जो 'कुरु कुरु स्वाहा' या 'कसप' में कई तरह की हिंदियां लिखते हुए मिलते हैं।

लेकिन यह लहजे का फर्क चतुराई भरा कमाल भर नहीं है, यह हिंदी की आत्मा से लिए बुने गए शब्दों का जाल भी है जो इस उपन्यास को आकर्षक बनाता है। खासकर इन दिनों जब हिंदी को लगातार एक इकहरी भाषा में बदला जा रहा है— सरल हिंदी के नाम पर उसकी प्रयोगशीलता का गला घोंटा जा रहा है और नई हिंदी के नाम पर गैरजरूरी अंग्रेजी छौंक लगाई जा रही है, तब मृणाल पांडे ने ऐसी रमणीय हिंदी लिखी है जिसे पढ़ना कई स्तरों पर प्रीतिकर है।

इस भाषा का एक उदाहरण दिए बिना बात अधूरी लगेगी। दिल्ली के तालकटोरा स्टेडियम में पाकिस्तान से आई गायिका रोशनआरा के गायन का जिक्र मृणाल जी कुछ इस अंदाज में करती हैं :

“रोशनआरा बेगम ने कोयल के सुरों में मुखड़ा उठाया तो तीर सा बींधता सुर सीनों पर लगा और काठ जैसे दिल वाली दिल्ली में भी वह हॉल सुनने वालों की हाय! से गूंज गया। मीन मेख निकालने में माहिर और पाकिस्तानी गायकों की ऐसी तैसी करने को सतत आतुर, सामने पसरे तमाम उस्ताद और पंडित भी सर धुनने लगे। बढ़त की लयकारी के साथ वह मखमली आवाज सहजता से तार सप्तक तक टहलकर बड़े प्यार से जर्दा गुलगुलाती सी वापस मध्यग्राम पर लौटती थी।”

इस भाषा का सबसे आत्मीय राग वे पत्र बनाते हैं जो विद्या, राधा प्रसाद और संजीव के

बीच के हैं। एक बहुत पुराने और गहरे रिश्ते की बरसों से चली आ रही टूटन को बहुत संभाल कर सहेजते और महसूस करते और पुराने जुड़ाव को फिर से जिंदा कर सकने की ऊष्मा से भरे ये पत्र अपने आप में धरोहर जैसे लगते हैं। खास बात यह है कि मृणाल जी को भाषिक प्रयोगशीलता से कतई परहेज नहीं है और यह काम वे अंग्रेजी और उर्दू से लेकर बोलियों तक—बिल्कुल तमाम स्रोतों में उतरकर करती दिखाई पड़ती हैं। ऐसे शब्दों की बाकायदा सूची बनाई जा सकती है जो अरसे बाद इस उपन्यास में दिखते हैं या बिल्कुल पहली बार प्रयुक्त हुए हैं।

हालांकि यह जोड़ना जरूरी लग रहा है कि इस उपन्यास का जितना बड़ा फलक है, उस लिहाज से यह कथा जल्दी जल्दी कह दी गई लगती है। चरित्रों के क्लोज अप कम, लांग शॉट ज्यादा हैं—शायद इसलिए कि बहुत दूर से इन्हें देखा जा रहा है। लेकिन इसका एक असर यह हुआ है कि वह सांस्कृतिक हूक कुछ कमजोर पड़ जाती है जो इस उपन्यास को पैदा करना चाहिए था।

वैसे यह उपन्यास पढ़ते हुए एक और प्रश्न सामने आता है? क्या हमारी शास्त्रीय सांगीतिक धरोहर भी कला के वैसे भव्य स्तूपों की तरह है जिन्हें बचाने के लिए बड़े राजा, बड़े साम्राज्य या सामंती चलन चाहिए? क्या एक समय के भव्य महलों, अट्टालिकाओं की तरह ये भी स्वर की वास्तुशिल्पीय भव्यता के चिह्न हैं जिन्हें अपने आप बदलते समय के साथ मिट जाना है?

इस सवाल का आसान जवाब नहीं हो सकता। यह जरूर है कि इस परंपरा को बचाए रखना एक चुनौती है जिसका वास्ता अपनी सभ्यतागत मानवीय गरिमा के चिह्नों को बचाए रखने से भी है।

मृणाल पांडे ने उपन्यास का नाम किशोरी अमोनकर की चर्चित बंदिश 'सहेला रे' से लिया है, लेकिन इसे पढ़ते हुए बेगम अख्तर की गाई मोमिन की गजल 'तुम्हें याद हो कि न याद हो' मन में जैसे गूंजती रहती है। बेशक, अलग अलग पाठकों के लिए यह गीत बदलता रह सकता है, लेकिन मन के भीतर के तार झंकृत करने वाला यह उपन्यास समकालीन समय की एक बड़ी उपलब्धि है।

**सहेला रे** : मृणाल पांडे; **प्रकाशक** : राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली; **मूल्य** : 199 रुपये

# संगीत की तर्ज पर उपन्यास

संजय कुमार

यह अकारण ही नहीं कि गीतांजलि श्री ने अपना यह नया उपन्यास रेत समाधि कृष्णा सोबती जी को समर्पित किया है। कृष्णा सोबती जी को वह अपना गुरु मानी हैं— अनुकरण करने के अर्थ में नहीं, बल्कि एक प्रेरणास्रोत के रूप में। अगर कृष्णा सोबती अपनी प्रयोगधर्मिता के लिए जानी जाती हैं— शिल्प और कथावस्तु दोनों के स्तर पर, तो गीतांजलि श्री निश्चय ही उस परंपरा की वाहक हैं। उनकी हर रचना एक नये कलेवर में और एक नये तेवर के साथ दिखाई देती है और 'रेत समाधि' का तो अंदाज निराला ही है। 'रेत समाधि' एक ऐसी रचना है जो उपन्यास को— अपनी विधा— को एक नये ही रूप, नयी संवेदना, नयी भाषा, नये शिल्प से समृद्ध कर देती है।

इस उपन्यास में जो बात हमें विशेष रूप से आकृष्ट करती है, वो है इसकी बुनावट, इसका नया रंग ढंग और ढब और यह शिल्प कथावस्तु के ढांचे को कलात्मकता प्रदान करना है। लेकिन शिल्प यहां कोई अलग से या बाहर से आरोपित नहीं है। शिल्प और कथा एक दूसरे में ऐसे गुंथे हुए हैं कि उनको अलगाना संभव नहीं। कथा और कहन अलग अलग नहीं हैं। और ऐसे भी अगर देखा जाये तो हर कथा तो अपने में बहुत साधारण होती है या हर कथा तो एक ही कथा होती है; किंतु कथा को साधारण व असाधारण या नया बनाता है उसे कहने का ढंग।

कलामर्मज्ञों और मनीषियों का मत है कि कला का चरम आदर्श संगीत है, क्योंकि यहां सिर्फ ध्वनि या नाद है शब्द नहीं। और अगर शब्द नहीं है तो अर्थ भी नहीं। एक गायक या श्रोता के रूप में स्वरों के माध्यम से ध्वनि के साथ एक रागात्मक संबंध बनता है, आप संगीत के उन क्षणों में रसमय होकर उस ध्वनि में डूब जाते हैं, उसके साथ एकाकर हो जाते हैं। इस एकाकार होने की अनुभूति का होना ही संगीत में सबकुछ है। इसलिये यहां शब्द या अर्थ का कोई अस्तित्व नहीं। इस दृष्टि से 'रेत समाधि' भी संगीत की तरह है जिसमें सिर्फ ध्वनि है— संवेदनाओं और भावों

की ध्वनि या अनुनाज, जिसके साथ पाठक को एकाकार होने की अनुभूति होती है। गीतांजलि श्री का भी आदर्श संगीत है, कम से कम इस उपन्यास को देखकर तो ऐसा ही लगता है। उनकी कोशिश है इस रचना को संगीत के स्तर पर पहुंचाने की, और हमारा यह मानना है कि अपनी इस कोशिश में काफी हद तक वह सफल भी हुई हैं।

यह रचना बहुत कुछ उत्तर भारतीय शास्त्रीय गायन की तरह है। शास्त्रीय गायन में स्वरों की प्रधानता होती है और पद गौण होता है। दो चार पंक्तियों का एक छोटा सा पद लेकर एक गायक घंटों तक उसको गा सकता है। इस रचना में भी स्वरों की तरह भावों और संवेदनाओं की प्रधानता है और कथावस्तु गौण है। बिल्कुल शास्त्रीय गायन की तरह है इसकी बुनावट और अन्विति और अगर अन्विति की बात करें तो जैसे शास्त्रीय गायन में स्वरों के संयोजन से राग की अन्विति बनती है, उसी तरह 'रेत समाधि' में भावों और संवेदनाओं के संयोजन से इसकी अन्विति बनती है न कि कथानक की अन्विति से। फिर इसकी भी बुनावट शास्त्रीय गायन की ही तरह है। उत्तर भारत शास्त्रीय कंठ संगीत में किसी भी रचना का तीन हिस्सा होता है— आलाप, जोड़ और गत/बंदिश (विलांबित और द्रुत), ठीक उसी तरह 'रेत समाधि' के भी तीन हिस्से हैं। पहला भाग 'पीठ' आलाप और जोड़ है। आलाप के अंत में जोड़ आता है। उसी तरह 'पीठ' का पहला हिस्सा आलाप है और बाद वाला अंतिम हिस्सा जोड़ है। फिर दूसरा और तीसरा हिस्सा 'धूप' और 'हृद सरहद'— गत है, 'धूप' विलांबित में है, तो 'सरहद' द्रुत में। आलाप का प्रयोजन राग विशेष के लक्षणों की अभिव्यक्ति मात्र होता है। एक तरह से आलाप राग की पूर्वपीठिका या पूर्वयोजना है। 'पीठ' का पहला हिस्सा भी आलाप की भांति उपन्यास की पूर्वपीठिका है जो जीवन के राग, लक्षणों की अभिव्यक्ति मात्र है। आलाप अनिबद्ध होता है, इसलिये वह समय की सीमा से बंधा नहीं रहता, उससे ऊपर उठ जाता है। ऐसा ही कुछ चमत्कार गीतांजलि श्री भी करती हैं। उपन्यास है तो समय की सीमा में निबद्ध होना ही होगा। कथानक है तो उसको आरंभ, मध्य और अंत के हिसाब से कालक्रम का अनुसरण करना ही पड़ेगा। लेकिन आलाप की तरह गीतांजलि श्री कालक्रम की सरहद को लांघ जाती हैं। मजेदार बात है कि आख्यानकर्ता एक पुरुष है और उसका कोई नाम नहीं है। वैसे तो इस उपन्यास में अधिकांश किरदारों का नाम नहीं है। मां का भी नाम नहीं है। मां का भी नाम चंदा है यह हमें उपन्यास के आखिरी हिस्से में पता लगता है। यह आख्यानकर्ता दखल देने वाले अंदाज में आख्यान में बार बार घुस आता है। आख्यानकर्ता के माध्यम से गीतांजलि श्री अपनी मंशा उपन्यास के शुरुआती पृष्ठों में ही जाहिर कर देती हैं— "कहानी है। सुगबुगी से भरी। फिर जो हवा चलती है उसमें कहानी उड़ती है। जो घास उगती है, हवा की दिशा में देह को उकसाती, उसमें भी, और डूबता सूरज भी कहानी के ढेरों कंदील जलाकर बादलों पर टांग देता है और ये सब गाथा में जुड़ते जाते हैं। राह आगे यों बढ़ती है, दायें बायें होती, घुमावती बनी, जैसे होश नहीं कि कहां रुके, और सब कुछ और कुछ भी किस्से सुनाने लग पड़ते हैं। ज्वालामुखी के अंतर्घट से निकलता, चुप चुप भराता, भाप और अंगारों और धुएं से फूटता अतीत।" (9)

या फिर, "हालांकि गाथा की कोई मुख्यधारा जरूरी नहीं। उसे छूट है कि भागे, बहे, नदी, झील, नए नए सोते में। पर फिलहाल की अड़ है कि भटकेंगे नहीं, तो नहीं वो भटकें फिलहाल।" (24) तो कुछ इस तरह गीतांजलि श्री कालक्रम को अतिक्रमित करती हैं। और फिर आलाप में चूकि स्वर तालबद्ध नहीं होते हैं, इसलिए गायक पर कोई बंदिश नहीं रहती। उसे इस बात की पूरी आजादी होती है कि वह जैसे चाहे वैसे स्वरों के साथ खेले, उसे विस्तार दे। यह पूरी तरह उसकी प्रतिभा और उसके कौशल पर निर्भर करता है। जो जितना ही पहुंचा या पारंगत गायक है उतना

उन स्वरों को परिष्कृत कर सकता है। गीतांजलि श्री भी एक प्रतिभाशाली कलाकार की तरह इस उपन्यास में भावों और संवेदनाओं को विस्तार देती हैं, उनकी गहरे तक पड़ताल करती हैं और किसी बड़े गायक कलाकार की तरह उनकी सूक्ष्मता और बारीकियों का हमें रसास्वादन कराती हैं।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि अगर गायक असाधारण प्रतिभा है तो वह उन स्वरों को भी आलाप के अंदर प्रवेश करा देता है जो उस राग के नहीं हैं। जैसे कि कुमार गंधर्व से किसी श्रोता ने पूछा कि यह स्वर आपने इस राग में कैसे लगा दिया? यह स्वर तो इस राग का है नहीं। उन्होंने उत्तर दिया कि क्या करूं, बहुत देर से वह कह रहा था कि मुझे बुलाओ, मुझे बुलाओ तौ मैंने बुला लिया। सही है कि वह स्वर इस राग में नहीं लगता लेकिन वह खड़ा हुआ मेरे दरवाजे खटखटाये जा रहा है। अब किसी गैर वाजिब स्वर का राग में बुलाना असंगत लगता है लेकिन प्रतिभा एवं गुणसम्पन्न गायक के लिए कुछ भी असंभव नहीं है। ऐसा ही कुछ संभव करती हैं गीतांजलि श्री 'रैत समाधि' में।

आलाप में सामान्यतः शब्द या बोल तो होते नहीं सिर्फ स्वर होते हैं। और उन स्वरों के सहारे गायक एक स्वरूप रचता है, उस राग का जिसके वे स्वर हैं। गीतांजलि श्री यहां स्वरों की भांति भावों और संवेदनाओं के माध्यम से एक राग रचती हैं— जीवन का राग, इंसान की जिजीविषा का राग। यह जिजीविषा ही तो है जो उसे अपने होने का एहसास कराती है। और अपने होने में बहुत कुछ खोना पड़ता है, भटकना पड़ता है; लेकिन इस भटकाव के बावजूद तलाश जारी रहती है, कभी न खत्म होने वाली तलाश। ऊर्जा का कभी क्षय या क्षरण नहीं होता, वह सिर्फ रूप बदलती है। उसी तरह जीवन का कभी अंत नहीं होता सिर्फ उसका रूप बदलता है। एक जीवन का पटाक्षेप होता है तो दूसरा शुरू हो जाता है। इस तरह इंसान की जिजीविषा की अनंत यात्रा चलती रहती है और उसी के साथ चलती रहती है अनवरत तलाश। चूंकि जीवन का अंत नहीं, तो फिर कहानी जो जीवन की कथा सुनाती है उसका भी कोई अंत नहीं। गीतांजलि श्री का भी मानना है कि कहानी कभी पूरी नहीं होती। तभी तो आख्यानकर्ता उपन्यास की पहली पंक्ति में ही घोषणा कर देता है— “एक कहानी अपनेआप को कहेगी। मुकम्मल कहानी होगी और अधूरी भी, जैसा कहानियों का चलन है।” (9) पाठक कहानी पढ़ते वक्त मशगूल हो, कहीं इस बात को भूल न जाये इसलिए आख्यानकर्ता बीच में आकर भूपेंद्र खक्खर के हवाले से हमें याद दिला जाता है— “उसे मालूम था कि कहानी को बक्सबंद कैनवसबंद नजरबंद नहीं किया जा सकता...कहानी क्योंकि कभी पूरी नहीं होती। कूद जाती है खिड़की, दरार, कुछ खुल्ला पाकर, नहीं तो धरती हिलाकर, बनाकर।” (289) यह वही जिजीविषा है, वही तलाश जो कि एक अस्सी वर्ष की छुटियाली मां को ‘नहीं’ से नई बना देती है। इसी से तो वो बेसाख्ता कह पड़ती (??) है— “नहीं नहीं मैं नहीं उठूंगी। अब तो मैं नहीं उठूंगी। अब तो मैं नई उठूंगी। अब तो मैं नही ही उठूंगी। (13) और वो उठ खड़ी होती है बिल्कुल नयी। आखिरकार अपने होने का अहसास तो नित नये होने से ही होता है। इसी से मां रोज नयी होती जाती है। अगर जिजीविषा मां को रोज नया बनाती है तो उसका अभाव उसकी बेटी को कम उम्र में ही बूढ़ी बना देती है और वो हैरान परेशान समझ ही नहीं पाती कि मां को क्या हो गया है— “कौन है ये औरत? मैं इसे नहीं जानती। रोज एक नयी कहानी। क्या ऐसा हो सकता है? क्या उम्र के साथ इसका कुछ हिल गया है।

“हिल मैं गयी हूं। मैं नहीं देख सकती अपनी मां का रोज एक अलग रूप। मैं नहीं झेल सकती उसके नित नये बदलते रंग। अब तो मैं जानती ही नहीं अगले पल ये अपने को क्या बतायेगी। हर समय मैं संशय में रहती हूं।” (318-19) और यह बेटी कौन? बिल्कुल आधुनिक,

नये जमाने की औरत, स्वच्छंद, बंधनों से मुक्त, अपने मन की करने वाली, अपनी शर्तों पर जीने वाली। फिर भी उसे समझ नहीं आता कि मां को क्या हो गया है? या फिर न समझकर भी समझ आ गया है, तभी तो वो कहती है— “इतनी दिलचस्पी उनकी उम्र में जवानी को हवा देती है। बेटी ने हंस के सोचा केके से कहेगी तुम्हें नहीं लगता कि जवानी गलत समय पे आती है? जब हम नादान होते हैं कुछ जिया नहीं होता। आती है और निकल जाती है, हमें पता नहीं चलता। बुढ़ापे में आनी चाहिए। पूरमपूर अनुभवी होने के बाद। तब ललकने का मतलब खुलता है। जवानी की बारीकियां मजा देती हैं। समझ आता है।” (282)

कहानी की तरह हम भी भटक गये हैं। तो लौटें फिर आलाप और राग की ओर। तो मुख्य बात ये कि ‘आलाप’ वाले इस भाग में गीतांजलि श्री भावों और संवेदनाओं के संयोजन से जीवन के राग का स्वरूप रचती हैं। अब राग तो सैकड़ों हजारों हैं, उनमें एक और जीवन का राग भी जुड़ जाता है। लेकिन रस तो आठ (बाद में एक नौवां शांत रस भी जुड़ जाता है) ही हैं, और राग चाहे कोई भी हो, उसका रस तो इन्हीं में से कोई होगा। फिर प्रश्न उठता है कि जीवन के राग का रस क्या? या उसका कोई रस है भी कि नहीं। अब भरत मुनि की लें जिनके बारे में ये माना जाता है कि उन्होंने रस सिद्धांत को प्रतिपादित किया, तो वो जीवन में कितने प्रकार के रस होते हैं, उनकी बात तो करते हैं, लेकिन जीवन का कौन सा रस, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसका उत्तर मिलता है अभिनव गुप्त के यहां। जीवन के राग का रस है शांत रस, रसों का रस जिसमें सारे रस एक माला की भांति पिरोये रहते हैं। शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद है जिसमें हम सुख दुख और रागद्वेष से ऊपर उठ जाते हैं और अन्य के प्रति समभाव की भावना पैदा होती है। यह समभाव की भावना तभी पैदा हो सकती है जब स्वयं और अन्य, अहम् और इदम् का भेद मिट जाये। अस्सी वर्ष की छुटियाती मां के साथ लगभग यही स्थिति होती है, जहां स्वयं और अन्य, अहम् और इदम्, जड़ और चेतन का भेद मिट जाता है और वह जीवन के राग में सबके साथ एकाकार होकर रसमय हो जाती है। इसीलिए तो पीठ, दरवाजा, दीवान, घड़ी, छड़ी, सड़क, कुत्ता, कौआ, तितली सभी किरदार हो जाते हैं; सभी का अपना संगीत है, सभी के अपने स्वर और सुर हैं, जो मां के स्वर और सुर में मिलकर बज उठते हैं। ‘मिले सुर मेरा तुम्हारा, तो सुर बने हमारा’। की तरह। एक बजता है तो दूसरा भी झंकृत हो उठता है। और यहां अनहद नाद की कल्पना साकार हो उठी है। जगत के अंदर और मां के अंदर एक संगीत चल रहा होता है और मां उसे महसूस कर पाती है। तभी तो वह धूप के साथ कुछ इस तरह संवाद करती है जैसे बचपन के बिछड़े दोस्त वर्षों बाद एक दूसरे से मिल रहे हों।

इस शांत रस या निर्वेद की अवस्था में मनुष्य स्थितप्रज्ञ हो जाता है, सुख दुख, राग द्वेष, प्रेम वैमनस्य, आसक्ति विरक्ति से परे। साथ ही यह एक ऐसे आनंद की अवस्था है जिसमें जग मुझमें, मैं जग में, मेरा विस्तार अपार जगत तक, अपार जगत सिमटकर मुझमें, की अनुभूति होती है। लेकिन इस एकाकार होने में स्वत्व को मिटाना नहीं, घुलाना होता है। हम हैं तो जग है, जग है तो हम हैं। अहम् और इदम् का अन्योन्याश्रित और परस्पर संबद्ध होना, सारी सीमाओं और सरहदों का बंधन तोड़ देता है, दूरियां मिटा देता है। तभी तो मां कहती है— “जानते हो सरहद क्या है? बार्डर। क्या होता है बार्डर? वजूद का घेरा होता है, किसी शख्सियत की टेक होता है।... सरहद तो हर चीज की है।... हर अंग की सरहद होती है। इस दिल की भी। उसको घेरे मगर उसको बाहर के अंगों से पुल की तरह जोड़े। न कि तोड़ने, दिल के भीतर और दिल के बाहर...। गधो, सरहद कुछ नहीं रोकती। दो अंगों के बीच पुल होती है। रात और दिन के बीच। जिंदगी मौत के। पाने खोने के। वो जुड़े हैं। उन्हें अलग नहीं कर सकते। सरहद क्षितिज। जहां दो लोक

मिलते हैं, कुलबहियां करते हैं। बार्डर इश्क है। इश्क जेल नहीं बनाता, हर रोक लांघने के लिए सितारे बिछाता है। बार्डर मिलन की रेखा है। इधर और उधर के जोड़ को अगल बगल लाकर खुशनुमा बनाने का... दोनों की मुलाकात के लिए होता है।” (331)

और इसी से तो मां के लिये ‘सरहद खेल है। बड़ा लज्जतदार। एक लाइन खींच दी। इखट इखट खेलने लगे। ऐसे। कूद कूद...। बार्डर माने कूदो। है ही कि लांघो, लौटो, खेलो, मुस्करा के स्वागत करो, वहां मिलो रचो। मजा है उसे लांघने में। सारा लेन देन वहीं होता है। सरहद अपने को दर्शाती है दूसरे से राब्ता करने। एक है तो दूसरा है। मोहब्बत में।” (331-32)

मैंने तो सरहद वाला अंश टुकड़े टुकड़े में और बीच बीच से उद्धृत किया है। लेकिन मजा तो इसको एक सांस में पूरा पढ़ जाने में है। जैसे शास्त्रीय गायन में गायक एक ही पंक्ति को बार बार गाता है, दुहराता है, लेकिन यह दुहराना मात्र दुहराना नहीं है। अपनी प्रतिभा और कौशल के बल पर वह स्वयं को विस्तार देता है, उन्हें और परिष्कृत करता है और इसी से हर बार वही पंक्ति श्रोता को नयी लगती है। गीतांजलि श्री भी यहां कुछ ऐसा ही करती हैं। इस अंश में पंक्ति (भाव) तो सिर्फ एक है— सरहद बांटता नहीं, जोड़ता है। लेकिन एक प्रतिभासंपन्न गायक की तरह गीतांजलि श्री उसको विस्तार देती हैं, उसका परिष्कार करती हैं, उसमें नये रंग भरती हैं, उसे नये अर्थ देती हैं कि पढ़ने वाले को कभी भी नहीं लगता कि एक ही बात बार बार दुहराई जा रही और ऐसा नहीं कि यह गद्यांश अकेला या अपवाद स्वरूप है। पूरी रचना ऐसे मुखड़ों से अंटी पड़ी है। हमने तो बस उसकी एक बानगी सामने रखी है।

और भी सरहदें हैं जिनको यह कृति लांघती है। एक तो, जाहिर है, साहित्य और संगीत की, जिसे हमने इस लेख में दर्शाने का प्रयास किया है और दूसरों की तरफ सिर्फ संकेत भर कर दें। लिखित और वाचिक का। जैसा कि वाचिक परंपरा (किस्सागोई, डास्तान, गाथा) में होता है, कड़ी से कड़ी जुड़ती है, बात से बात निकलती है, ऐसा कि बातों का न कोई ओर न छोर, एक कहानी के भीतर कई कहानियां होती हैं, घटनाक्रम सब गड्डमड्ड। सब कुछ एक ऐसे आख्यान समय में होता है, जिसमें अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों एक साथ मौजूद रहते हैं, एक दूसरे में ऐसे अंतर्गुहित कि उनको अलगाना मुश्किल। ये सारी चीजें मौजूद हैं इस उपन्यास में। इस मायने में यह उपन्यास परंपरा और आधुनिकता की सीमा को भी मिटाता है। यह उपन्यास आधुनिक है, लेकिन परंपरा से गहराई से जुड़ा हुआ और उससे पूरी तरह प्रतिकृत। पारंपरिक आख्यान युक्तियों का प्रयोग एक तरफ तो ‘रैत समाधि’ को नवीन बनाता है तो दूसरी तरफ परंपरा का भी नवीनीकरण करता है। जब परंपरा और आधुनिकता की सीमाओं की लांघने की बात कर रहे हैं तो चलते चलते यह भी बता दें कि यह लांघना किरदारों के स्तर पर भी हो रहा है। मसलन, पारंपरिक मां तथाकथित आधुनिक बेटी से ज्यादा आधुनिक है, और आधुनिक बेटी पारंपरिक।

फिर एक तीसरा सरहद सर्जना और आलोचना का— को भी लांघता है ये उपन्यास। यह उपन्यास वंशतः मेटाफिक्शन है और अपनी प्रविधि को लेकर आत्मचेतस है। कहानी कहने के क्रम में अपनी भी कहानी कहती है और अपने ही कहन की पड़ताल करती है। इस अर्थ में यह सृजन भी है और आलोचना भी।

चौथा, भाषा की सीमा। जब आप सरहदों को लांघते हैं, तब उन सरहदों को लांघने का चित्रण करने वाली भाषा को भी अपनी सरहद को लांघना पड़ता है, अपनी हद से गुजरना पड़ता है। सरहद का लांघना क्या होता है? बनी बनायी या बंधी बंधायी, चिरपरिचित कोटियों, श्रेणियों, परिभाषाओं और वर्गीकरणों से परे जाना। स्वाभाविक है कि इसके लिये भाषा भी उतनी ही लचीली

होनी चाहिए कि ये कोटियां, श्रेणियां उसे बांध न पायें, बल्कि उनको छेदती बेधती वह उनके परे निकल जायें। इसके लिये एक नयी भाषा गढ़नी पड़ती है— बिल्कुल स्वच्छंद, मुक्त, इठलाती, बलखाती, व्याकरण और वाक्य विन्यास के आतंक से मुक्त (व्याकरण भाषा के साथ वही करता है जो समाज व्यक्ति के साथ करता है— वर्जनाओं के माध्यम से सीमाओं में बांधने का काम)। गीतांजलि श्री इस उपन्यास में एक नयी भाषा गढ़ती हैं जो एक तरफ काव्यात्मकता में डीएच लॉरेंस की याद दिलाती है, तो दूसरी तरफ अपनी प्रयोगधर्मिता में जेम्स ज्वायस की। अब जब हमने इस कृति का वैशिष्ट्य बताने के लिए उत्तर भारतीय शास्त्रीय गायन के रूपक का सहारा लिया है तो फिर प्रगीतात्मक गहनता की बात करना फिजूल है। बात कर लें थोड़ी प्रयोगधर्मिता की (ध्यान रहे कि प्रगीतात्मक गहनता भी इस प्रयोगधर्मिता का हिस्सा है)। जो सूक्ष्म है, अमूर्त है, अनिर्वचनीय है, उसको मूर्त रूप देने के लिए गीतांजलि श्री कई प्रयोग करती हैं। नये शब्दों को गढ़ती हैं और अक्सर पुराने शब्दों में नये अर्थ भर देती हैं। यहां 'एलिस इन वंडरलैंड' का वह वाक्या याद आता है जब एलिस हम्प्टी डम्प्टी से मिलती है और हम्प्टी डम्प्टी उसके लिए एक शब्द का प्रयोग करता है एलिस उससे कहती है कि इस शब्द का वह अर्थ नहीं है जो वह बता रहा है, प्रत्युत्तर में हम्प्टी डम्प्टी उससे कहता है कि जब मैं किसी शब्द का इस्तेमाल करता हूं तो उस शब्द का वहीं अर्थ होता है जो और जितना भर मैं चाहता हूं; न उससे ज्यादा, न उससे कम। एलिस पूछती है कि क्या तुम किसी शब्द का अपनी इच्छानुसार जैसे चाहे जब चाहे कोई भी अर्थ निकाल सकते हो, भले ही दो अर्थों में परस्पर विरोध ही क्यों न हो? हम्प्टी डम्प्टी पलटकर एलिस से पूछता है कि प्रश्न यह है कि किसका अधिकार होना चाहिए? मेरा या शब्द का? तात्पर्य यह कि व्यक्ति (यहां लेखक) को शब्दों का गुलाम नहीं होना चाहिए, बल्कि शब्द उसके अधीन होने चाहिए। लेखक को यह आजादी होनी चाहिए कि वह शब्दों के साथ जैसे चाहे वैसे खेले, उन्हें नया अर्थ दे। गीतांजलि श्री अपने इस अधिकार का 'रैत समाधि' में खुलकर इस्तेमाल करती हैं। इसके लिए जिन युक्तियों का वे प्रयोग करती हैं, उनमें से एक है शब्दयुग्म का बनाना— दो अलग अलग शब्दों को जोड़कर उसे एक नया अर्थ प्रदान करना। जैसे, 'जलेबी दिमाग', 'बचपन समय', 'बचपन घर', 'मां बेटी', 'बेटी मां' (यहां मां बेटी/बेटी मां का मतलब मां और बेटी नहीं, बल्कि मां जब बेटी हो जाये और बेटी मां)। इस तरह के अनेकानेक उदाहरण मिल जायेंगे इस उपन्यास में। एक लंबी फेहरिस्त बनायी जा सकती है ऐसे शब्दयुग्मों की।

हालांकि यहां पर यह कहा जा सकता है कि इसमें नया क्या है? आधुनिक और उत्तर आधुनिक लेखन में शब्दयुग्म बनाने का प्रचलन सा चल पड़ा है और अब तो यह एक प्रथा जैसी हो गयी है। यहां पर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि गीतांजलि श्री इस तकनीक का उपन्यास में बहुत ही प्रभावशाली इस्तेमाल करती हैं।

एक दूसरी युक्ति जिसका उन्होंने बहुत जबरदस्त इस्तेमाल किया है और जो हमारी दृष्टि में बिल्कुल अभिनव प्रयोग है (हमारे जाने शायद पश्चिम के एक दो रचनाकारों ने इसका इस्तेमाल किया है) वह शब्दों की तोड़फोड़; शब्द को तोड़ देने से उसमें से एक नया अर्थ या नयी व्यंजना निकलती है। उदाहरणस्वरूप उन्होंने 'इतराती' शब्द को तोड़कर 'इत्रान्ती' कर दिया है। या फिर 'बातचीत' को तोड़कर दोनों शब्दों का बहुवचन बना दिया है— 'बातें चीतें'। और इस अभिनव प्रयोग से यह उपन्यास भरा पड़ा है।

फिर एक तीसरा प्रयोग जो गीतांजलि श्री करती हैं वह है विरामचिह्नों का अक्सर जानबूझकर प्रयोग न करना। इस वजह से वाक्य अक्सर बहुत लंबे हो जाते हैं। एक बार तो एक वाक्य करीब दो पृष्ठों (77-79) तक (इस वाक्य में मात्र 845 शब्द हैं) फैलता पसरता चला गया



है। अक्सर ऐसा इंटीरियर मोनोलॉग में होता है। यहां मजेदार बात यह है कि यह कोई इंटीरियर मोनोलॉग नहीं है, बल्कि विवरण है, बाह्य घटनाक्रम का, मन के अंदर घटित होने वाली चीजों का नहीं। आपको याद होगा कि उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक गद्य में किसी भी विरामचिह्न का प्रयोग नहीं होता था। फिर भी पाठक उसे आराम से पढ़ और समझ लेते थे। गौर से पढ़ने पर समझ में आ जाता है कि यह वस्तुतः एक बड़ा वाक्य नहीं कई छोटे वाक्यों की शृंखला है।

खैर लौटते हैं मुख्यधारा (एक्सप्रेसवे) पर। जैसाकि शुरू में हमने कहा था कि आलाप की तरह गीतांजलि श्री 'पीठ' के पूर्वार्ध में जीवन के राग का स्वरूप रचती हैं। 'पीठ' का उत्तरार्ध शास्त्रीय गायन के जोड़ की तरह है जिसमें मां का पहले खोना और फिर मिल जाना दर्शाया गया है। जोड़ तैयारी है ताल की तरफ जाने की। जैसे अभी तक गायक आलाप के दौरान पूरी तरह स्वच्छंद था, अब अपने आप को थोड़ा बांधता है, तालबद्ध गायन के लिये। वैसे ही मां का खोना और फिर मिल जाना तैयारी है बंदिश शुरू करने की। फिर शुरू होता है बंदिश पहले विलंबित में और फिर द्रुत। इसमें मां के देह की गांठ खुलती है। जैसे एक अल्हड़ किशोरी के शरीर में कोपलें फूटती हैं और उसे अपनी देह का अहसास होता है। फिर जैसे जैसे और ज्यों ज्यों वह अपने एक एक अंग प्रत्यंग को निरखती है, यह अहसास और गहराता जाता है और फिर एक अजीब से आश्वासन, आनंद और उमंग की अनुभूति से भर उठती है वह। ठीक ऐसा ही कुछ होता है मां के साथ इस विलंबित में और इस देह के अहसास की यात्रा में उसके साथ बेटी और रोजी, बेटी से कहीं ज्यादा रोजी। न स्त्री और न पुरुष या फिर कभी स्त्री कभी पुरुष के रूप में रोजी का किरदार बहुत ही दिलचस्प है। लेकिन वह कहानी फिर सही।

विलंबित में मां के देह की गांठ खुलती है और वह हो जाती है देह। तन से नयी। फिर शुरू होता है द्रुत— 'हद सरहद'। यहां मां के मन की गांठ खुलती है और वह हो जाती है मन से नयी। तो पहले तन से नयी, फिर मन से नयी। ऐसी पूर्णता को प्राप्त करने के बाद एक ही चीज बचती है, और फिर गीतांजलि श्री को भी वही करना पड़ता है जो चाहे अनचाहे हर लेखक और कलाकार को करना पड़ता है। गीतांजलि श्री भले ही लाख कहें कि कहानी का अंत नहीं होता, मरना जीवन का अंत नहीं, एक और सरहद लांघ जाना है, वगैरह, वगैरह, लेकिन कहानी को रोकना पड़ता है, बंद करना पड़ता है, भले ही वह कहानी दूसरी कहानियों के लिये या फिर उसी कहानी को दूसरे तरीकों से कहने के लिए संभावनाओं के द्वार खुले छोड़ देती है। गीतांजलि श्री भी वही करती हैं— मां मरती है और कहानी का पटाक्षेप होता है।

और इसी के साथ इस लेख का भी। अभी बस इतना ही। अब हमें इस उपन्यास के आख्यानकर्ता की तरह इजाजत दीजिये। आगे फिर कभी। हमारी यह समीक्षा अधूरी है— उस आलाप की तरह जिसकी बंदिश या गत अभी बाकी है। लेकिन हमें यह उम्मीद है कि सुधी पाठक इस उपन्यास को पढ़कर अपने ही तरीके से इसकी बंदिश गायेंगे, गुनगुनायेंगे और इस संगीत को पूरा करेंगे।

रेत—समाधि : गीतांजलि श्री, प्रकाशन : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, मूल्य : 795 रु.

# वैचारिक क्षेत्ररक्षण की एक सच्ची झूठी गाथा

सत्यम कुमार सिंह

अलका सरावगी के नये उपन्यास एक सच्ची झूठी गाथा की शुरुआत विलियम फॉकनर के प्रसिद्ध उपन्यास 'द साउंड एंड फ्यूरी' की दो पंक्तियों के उद्धरण से होती है। पहले ऐसा लगता है कि शुरुआती उद्धरण केवल प्रचलित फैशन के तहत, किसी बड़े पश्चिमी लेखक को 'कोट' करते हुए, लिखा गया है लेकिन आखिरी भाग (तीसरा) पढ़ते हुए उस उद्धरण को फिर से देखने का दिल करता है। फिर जो होता है वह उपन्यास को पढ़ने से रोक देने वाला होता है। तब उपन्यास अपनी जाति गोत्र, अपनी पूरी विरासत को तलाशने की जिद मचाने लगता है।

फॉकनर की यह किताब 'द साउंड एंड फ्यूरी' बीसवीं सदी के शुरुआत की किताब (1929) है और कहते हैं इसका प्लॉट फॉकनर ने शेक्सपीयर के मैकबेथ से लिया था। मैकबेथ का काल 17वीं सदी का माना जाता है। मैकबेथ में इस तरह कहा गया है : "जीवन एक इडियट द्वारा कही गई कथा है जिसमें शोर और गुस्सा (साउंड एंड फ्यूरी) भरा है और यह अर्थहीन है।" इस उपन्यास 'एक सच्ची झूठी गाथा' में इसे इस तरह उद्धरित किया है—“बाप रे! तुमने तो काफी बातें गढ़ रखी हैं। असल में तो फॉकनर की बात सच है; जीवन एक मंदबुद्धि गूंगे आदमी की कथा है जिसमें शोर और गुस्सा भरा है साउंड एंड फ्यूरी।” (पृ. 145)। साहित्य की दुनिया में मैकबेथ का दुखांत बीसवीं सदी की शुरुआत आते आते फॉकनर के द साउंड एंड फ्यूरी में कॉपसन परिवार और संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के पतन के आख्यान में रूपांतरित हो जाता है। द साउंड एंड फ्यूरी तब प्रकाश में आई जब नव साहित्यिक आलोचना (न्यु लिटररी क्रिटिक) ने इसकी आख्यानत्मक शैली को बहुस्तरीय विचारों की 'चेतनाधारा' (स्ट्रीम ऑफ कॉन्शसनेस) नाम दिया। यह बिलकुल नहीं कहा जा सकता ये उपन्यास उस शैली की नकल करता है लेकिन इन तमाम चीजों के आलोक में उपन्यास को देखना न केवल वैचारिक बहुस्तरीयता को सुव्यवस्थित करता है बल्कि यह कहा जाय

कि बगैर इसके उपन्यास बिलकुल सतही 'लोकप्रिय' किस्म का हो सकता था।

इस उपन्यास में गाथा एक लेखिका है जो 'अपनी पिछली किताब की सूचना ईमेल के जरिये सैकड़ों लोगों को भेज देती है। किताब का कवर, सार संक्षेप और प्राप्त करने का जरिया आदि'। इसी प्रक्रिया में उसे मेल से एक जवाब मिलता है : 'मैडम आपकी जानकारी के लिए मैं सिर्फ अंग्रेजी किताबें पढ़ पाता हूं। इस तरह आप लोगों के इनबॉक्स में कचरा डालें, क्या यह उचित है।' यहीं से गाथा का परिचय प्रमित सान्याल से होता है। इस उपन्यास में कहानी बस इतनी सी है कि मात्र इसी आभासी दुनिया (इंटरनेट) पर हुए बहस और परिचय पर गाथा भरोसा कर लेती है और एक दिन उससे मिलने के लिए कोलकाता से बागडोगरा एअरपोर्ट पहुंच जाती है। इस एअरपोर्ट पर प्रमित सान्याल का इंतजार करते हुए गाथा की स्मृति में प्रमित सान्याल से आभासी दुनिया (ईमेल) में हुई बातचीत चलती रहती है। अंत में बगैर मिले वह अपने घर लौट आती है। इसके अलावे पूरा उपन्यास केवल आख्यानों की बुनावट में है और इसे बहुत ही दिलचस्प ढंग से बुना गया है।

उपन्यास तीन भागों में व्यवस्थित है। पहले से तीसरे भाग में कहानी का जो विकास है वह गाथा के इंतजार, उसके अपने निर्णय के संशय और फिर लौट जाने के फैसले का हिस्सा है, दूसरा भाग उसकी इस आशंका के पुष्ट हो जाने का है कि प्रमित एक चालबाज, अपराधी, धोखेबाज, बहुरूपिया हो सकता है और वो वहां उसे लेने नहीं भी आएगा। लेकिन इसकी पुष्टि स्वयं प्रमित अपनी नेकनीयत से करता है कि वह उसे लेने नहीं आ सका क्योंकि वह अपनी परेशानियों में उसे नहीं डालना चाहता। वह यह भी स्पष्ट करता है कि उसने बंदूक चलाने की ट्रेनिंग ली हुई है और उसके इरादे क्या हैं। प्रमित सान्याल एक नक्सल है और बहुत पढ़ा लिखा, जहीन व्यक्ति है। अंतिम हिस्सा गाथा के वापस लौटकर सब कुछ सामान्य कर लेने की कोशिश का हिस्सा है लेकिन एक साल बीत जाने के बाद भी सब कुछ सामान्य नहीं हो पाता। प्रमित सान्याल से गाथा की बातचीत ने उसके हर नजरिये को झकझोर दिया है : "मुझे भले तुम्हारी बातें बुरी लगें, पर यह सच है कि तुमने मेरा खुद को और दुनिया को देखने का नजरिया किसी हद तक उलटपलट कर दिया है।" ( पृ. 117) गाथा ने उसके सारे ईमेल डिलीट कर दिया था। बावजूद इसके गाथा एक दिन उन मेल को पुनः प्राप्त करने का असफल कोशिश करती है। ठीक इसी मनोदशा में उसे प्रमित सान्याल की शादी का कार्ड मेल से प्राप्त होता है। एक नया सिलसिला शुरू होता है किंतु आश्चर्यजनक रूप से बदले हुए प्रमित सान्याल से। गाथा को यह बताया जाता है कि यह परिवर्तन केवल उसी की वजह से है। गाथा का गुस्सा तो कम हो जाता है लेकिन आशंकाएं कम नहीं होतीं।

उपन्यास की शैली आत्मकथात्मक है और इस शैली के सबसे बड़े संभावित खतरे आत्ममुग्धता या पूर्वाग्रहित पात्र ही होते हैं। इस उपन्यास का सबसे मजबूत पक्ष यह है कि इसके दोनों मुख्य पात्र (गाथा और प्रमित) लेखक हैं और दोनों एक दूसरे के आलोचक हैं। दोनों के लेखक होने की वजह से उपन्यास में एक आंतरिक आलोचना उसकी गतिशीलता को बनाए रखती है। गाथा एक स्थापित और प्रतिष्ठित लेखिका है। उसके कई लेखन प्रकाशित हो चुके हैं। वह देश भर के सेमिनारों और विश्वविद्यालयों में व्याख्यान देती रही है। इसके विपरीत प्रमित सान्याल की कोई भी रचना प्रकाशित नहीं है बल्कि वह कभी अपने लेखन को प्रकाशित ही नहीं करवाना चाहता है। बावजूद इसके अपनी साहित्यिक समझ और रचनात्मकता से गाथा को वह कई बार स्तब्ध कर डालता है।

प्रमित गाथा की रचनाओं की निर्मम आलोचना करता है : "मुझे पता है गाथा तुम सारे लेखक सिर्फ झूठ को ही छापते हो। तुम्हारे सारे बहाने, सारे तर्क तुम्हारे अज्ञान से निकलते हैं। तुम मुझे बताओ कि तुमने मूर्ख बनकर जीने का, बिना कुछ जाने जीने का यह रास्ता कैसे चुना?"

(पृ. 116) हालांकि इसका एक अलग पूरा स्त्रीवादी पाठ हो सकता है, जिसे सजग रूप से नजरअंदाज करने के बावजूद, उपन्यास लेखिका के तौर पर अलका सरावगी ने प्रमित सान्याल जैसे मजबूत प्रतिपक्षीय पात्र को रचकर पूरे उपन्यास के अंतर्द्वंद्व को अंत तक कायम रखा है। स्त्रीवादी पाठ को नजरअंदाज करना उपन्यास (पाठ) की ही वाजिब मांग बन जाती है क्योंकि स्वयं गाथा उसके नजरिये और 'विचारधारा' से सहमत तो होती है लेकिन अपनी वर्गीय स्थिति में स्वीकार नहीं कर पाती है। लेकिन उस 'विचारधारा' में वह प्रमित सान्याल को कैद मानती है और उसका लगातार यह प्रयास है कि किसी तरह प्रमित बाहर निकल आए। और दूसरा यह कि प्रमित की नाराजगी केवल गाथा से न होकर प्रचलित व्यवस्था से है। प्रमित गाथा पर यह तक आरोप लगा डालता है कि उसकी तमाम बुरी परिस्थितियां, दीनता के पीछे वही जिम्मेदार है अर्थात् प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष तौर पर गाथा प्रमित की शोषक है। और इस मान्यता से गाथा की पूरे तौर पर सजग सहमति है।

गाथा के पास वो सब कुछ है जिसे पाने के लिए आज की पूरी पीढ़ी ने खुद को गला काट प्रतियोगिता में झोंक दिया है। मध्यवर्गीय सुख सुविधा के अलावा अपने पति, सास ससुर से मिली कहीं भी आने जाने की आजादी, रुचि के काम करने की आजादी, सब कुछ! दूसरी तरफ प्रमित है जो सात साल की उम्र में अनाथ हो गया है। उसकी पहली मां जर्मन, दूसरी मां बंगाली और तीसरी मां आदिवासी। बचपन की कटु स्मृति से वह कभी उबर नहीं पाया। वह खुद को पहली मां की गोद से दूसरी फिर तीसरी मां की गोद में फेंका जाता रहा मानता है। लेकिन प्रमित के जेहन में एक बहुत सुंदर दुनिया बनाने का लक्ष्य है और वह उसी दुनिया को बनाने में सहायक रचनाकार होना चाहता है : “नहीं। मेरी बंदूक ने अपनी कविता लिखने की अपनी भाषा बना ली है।” (पृ. 120) इन दो असंगत दुनिया के लोगों के बीच से उठी गतिकी ही गाथा और प्रमित के बीच असंख्य वैचारिकता का आख्यान रचती है। चूंकि इस उपन्यास में दो वैचारिकता के बीच का ऐसा आख्यान है जिसमें देशकाल का घालमेल भी हो जाता है लेकिन उसके अपने अपने देशकाल अपने भूगोल में दर्ज हैं। यथा, “हम जिस तरह लिखते हैं वहां समय स्थान के अंदर ही जीवंत होता है। समय जो है, वह एक तरह का स्थान ही है।” (पृ. 46-47) यह महज कोई साहित्यिक लफ्फाजी नहीं है। यह विज्ञान का दर्शन है जिसे आईस्टीन और हॉकिंस के संदर्भ में कहें तो यह कि— धरती पर कोई भी समय उस क्षेत्र का पता है।

सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने सामाजिक संरचना को बिल्कुल बदलकर रख दिया है। परिवार, पति पत्नी के साथ संबंध, भाई बहन, मां बाप से संतान के संबंध, पड़ोसी से संबंध जैसे हर संबंध, और जाहिर है कि इस समय में स्त्री पुरुष संबंधों की संरचना भी बदल चुकी है। गाथा और प्रमित का संबंध केवल इसी सदी में संभव हो सकता था। ‘एक ऐसा संयोग जो पिछली बीती दुनिया में असंभव था, और आज की कम्प्यूटर मोबाइल की दुनिया में बहुत आसान और आमफहम’। (पृ. 11) गाथा और प्रमित का संबंध 21वीं सदी में स्त्री पुरुष के बीच बन रहे रिश्तों का बेहतरीन लक्षण प्रस्तुत करता है। इसका आधार बहुत ही क्षणिक हो सकता है, बिल्कुल नेटवर्क की तरह, और यह गाथा की आशंका की मूल वजह भी है कि पता नहीं प्रमित का फोन कहीं गिर तो नहीं गया या ऐसा ही कुछ। इस रिश्ते (गाथा और प्रमित) में पिछली सदी के तमाम बने बनाए संबंधों की सीमाएं नहीं हैं— पति पत्नी, भाई बहन, प्रेमी प्रेमिका, मां बेटा, दोस्ती इत्यादि। गाथा और प्रमित का संबंध इनमें से किसी भी खांचे में नहीं अटता। यह संबंध आभासी दुनिया का संबंध है और बिल्कुल नवीन है।

“गाथा ने पूछा था, यह कविता क्या मेरे लिए लिखी गई है?

हां, बिल्कुल। सिर्फ तुम्हारे लिए।

वाह! किसी ने आज तक मेरे लिए कविता नहीं लिखी।

तुम्हें परेशानी तो नहीं है न? हम गुब्बारे में बैठकर चांद तक जाएंगे।

गाथा एक मिनट के लिए रुककर सोचती है।

इंटरनेट की हवाई तरंग के परे जाने कौन क्या कह रहा हो और कौन क्या समझ रहा हो। मुझे परेशानी क्यों होगी? मैं तुम्हारी मां की उम्र की हूँ।

ओह! हां। लेकिन कोई अपनी मां के साथ चांद पर जाना चाहेगा? चलो कोई बात नहीं। बेटा भी तो ऐसा है जिसे रोने पर मां का दूध नहीं दिया गया। चावल की बीयर दी गई।

गाथा के अंदर बैठा मां का दिल सुबुगाता है।” (पृ. 20)

उपन्यास के अंत तक यह जिज्ञासा बनी रहती है कि आखिर गाथा अपने इस आभासी जगत के साथी से मिलने क्यों पहुंची है? क्या वह उस आभासी संसार को भौतिक जगत में तब्दील करना चाहती है या यह सिर्फ वैचारिकता का लगाव मात्र है? जे.बी. थॉम्पसन की किताब ‘ऑयडीयोलॉजी एंड मॉडर्न कल्चर’ में एक पूरा अध्याय विमर्शों की व्याख्या पर (इंटरप्रेटेशन ऑफ डिस्कोर्स) है। इस अध्याय में एक लड़का अपने दोस्तों से यह कह कहते हुए एक अश्लील चुटकुला साझा करता है कि उसे उसकी बहन ने सुनाया है। इसकी व्याख्या थॉम्पसन यह कहते हुए करते हैं कि ‘जोक्स’ सुनाते वक्त लड़के की जो सबसे महत्वपूर्ण चीज ‘स्टेक’ पर होती है वह ये कि-पता नहीं इसे सुनकर लोग हंसेंगे या नहीं? इस खतरे को कम करने के लिए वह लड़का बड़ी सावधानी से यह जोड़ता है कि इसे उसकी बहन ने सुनाया है ताकि दोस्त अगर ना भी हंसें तो कम से कम आश्चर्यचकित तो हो ही सकते हैं कि इन दो भाई बहनों में इस तरह की बातें होती हैं। इस उपन्यास में भी लगभग मां बेटे की उम्र के गाथा और प्रमित के बीच कई बातचीत ऐसी जो कई पाठकों को चकित करे। ऐसा नहीं है कि मनुष्य हमेशा परालौकिकता से चकित होता रहा है बल्कि आज की इंटरनेट की दुनिया में वह ज्यादातर वास्तविकता से ही चकित होता है। यह ‘पोस्ट ट्रुथ’ का ऐसा समय है जहां सच को यथार्थ की कसौटी पर जांचा नहीं जा सकता। इसलिए सच्चाई का ऐसा ‘कोडिफिकेशन’ तैयार हो चुका है जहां सच और झूठ का प्रमाण कोई यथार्थ न होकर बिल्कुल उसकी नकल या क्लोन दिखने वाले प्रति सत्य ने ली है। प्रमित सान्याल से गाथा की बातचीत में प्रमित एक तरफ तो एलिस इन वंडरलैंड, वेटिंग फॉर गोदो, बोरखेज की बातें करता है जो गाथा को किसी सपने से कम नहीं लगतीं तो ठीक उसी समय वह अपने वास्तविक संसार की भी बातें करने लगता है जैसे उसके दोस्त कबीरु की मौत कैसे हुई या वह कहां कहां युद्ध लड़ चुका है इत्यादि। गाथा प्रमित की साहित्यिक समझ की कायल है लेकिन वह जब भी अपनी वास्तविकताओं का जिक्र करने लगता है तब शायद गाथा को भय और घृणा होती है। इसी भय और घृणा के कारण गाथा प्रमित को एक साहित्यिक मैटेरियल मानती है। दूसरी तरफ प्रमित अपने ही कहे किस्से, चाहे वह गढ़ा हुआ ही हो, से इस कदर डरा रहता है कि वह हमेशा गाथा से वादा लेना नहीं भूलता कि वह कभी उस पर कुछ लिखे नहीं। यह समस्या सिर्फ गाथा की समस्या नहीं है। यह समस्या आज के मनुष्य की है; वह अपनी ही वास्तविकताओं को अनदेखा करने के बहुत सारे यंत्र बना चुका है। वास्तविकता को ‘इनोअर’ करने के लिए ही शायद आज अधिकांश जल संकट से जूझ रहे शहरों में ‘वॉटर पार्क’ की बहुतायत है। इसलिए गाथा जब एअरपोर्ट पर प्रमित के इंतजार में बैठी है तो उसके हरेक भाव पर कैमरे ने नजर रखी हुई है। हमारी वास्तविकता से हमारा अब सीधा संबंध नहीं रह गया है। वह अनिवार्यतः किसी यंत्र माध्यम से ही मनुष्यों से संबोधित है।

एक सच्ची झूठी गाथा : अलका सरावगी, प्रकाशन : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, मूल्य : 299 रु.

# यातनामयी करुणा से निःसृत मुक्ति कथाएं

अमिय बिंदु

मधु कांकरिया का उपन्यास हम यहां थे अपने नाम से मनुष्य की पोजीशनल स्थिति की धमक महसूस कराता है। पढ़ते हुए पाठक को लगातार लगता है कि हम जहां खड़े हैं भले ही वहां भी समस्याओं की भरमार हो परंतु बहुत दूरी तय करके यहां तक पहुंचा गया है। उपन्यास की मुख्य पात्र दीपशिखा की डायरी के माध्यम से पाठक उसके आसपास के समाज की जो झलक देखता है उसमें बहुत पुरानी और सड़ी हुई परंपराएं भी हैं जिन्हें कानूनी तौर पर, कहने के लिए आधुनिकता के आईने में बहुत पीछे छोड़ आए हैं लेकिन अभी भी उनका अस्तित्व हमारे इसी समाज में है। आदिवासी इलाके के दो तीन दिन के पर्यटन प्रवास के बाद दीपशिखा को महसूस होता है कि वह महानगर में कैद होकर रह गई है, वह झारखंड के उन इलाकों में हमेशा के लिए जाने का उद्यत हो उठती है। समस्याओं पर लिखते हुए, उनसे जूझते हुए और ऐसे हाशिए के समाजों के बीच काम करते हुए मधु कांकरिया ने मानो दीपशिखा के माध्यम से वह रहस्य पा लिया है कि जीवन में दुख या कष्ट का मूल कारण न तो दुख का एहसास है न ही जीवन के अर्थहीन होने में है बल्कि वास्तविक मूल कारण यह कभी न खत्म होने वाली अनंत, बेलगाम प्यास है जिनसे हमारा मन लगातार एक तनाव, बेचैनी, व्यग्रता और असंतुष्टि महसूस करता रहता है। इसी के चलते मनुष्य का मस्तिष्क कभी भी संतुष्ट नहीं रहता।

पूरे उपन्यास में ढेरों कथाएं मिलती हैं जो दीपशिखा की डायरी के माध्यम से पाठकों के सामने लाई जाती हैं। यह मात्र घटनाएं नहीं हैं बल्कि विकास की धारा में किनारों पर लगा दिए गए लोगों की चीखें हैं जिन्हें सामान्य तौर पर अनसुना कर दिया जाता है। या फिर जीवन की भागदौड़ में उन्हें बहुत मामूली कहकर छोड़ दिया जाता है। लेकिन कलकत्ता महानगर के बीच तड़पती दीपशिखा के लिए ये बातें बस यूं ही नहीं हैं बल्कि उसे साफ साफ दिखता है कि उन

बातों का सिरा कहीं न कहीं किसी लंबी यातना, शोषण या कष्ट के संस्थागत तरीकों से जुड़ा है।

जहां दीपशिखा काम करने जाती है वहां सहकर्मी सांवली सलोनी अपर्णा की परेशानी है कि पति हाथ नहीं बंटता, दूसरी सहकर्मी पारुल की समस्या है कि उसका पति अभी भी मम्मा का बेटा है, दीपशिखा की ताईजी की जेठानी शांतिबाई के साथ गर्भावस्था में हादसा हो जाता है क्योंकि वह पुरुष डॉक्टर के सामने नहीं जा सकती थीं फिर जिसके चलते जीवन भर वे मां न बन सकीं। दीपशिखा अपनी सहेली चंद्रा के बहाने से स्त्री यौनिकता का प्रश्न उठाती है जिसके खुलकर यौन आनंद लेने को उसका पति चरित्रहीनता मान लेता है। बचपन की सहेली तवलीन की समस्या बहुस्तरीय है; पहले तो बचपन में अपने मां बाप के खुले और उन्मुक्त रोमांस से परेशान रहती थी और शादी के बाद पति की बदतमीजी से जो उसे पैरों की जूती समझता है। वह दीपशिखा को बताती है कि हर रात बेकाबू सांडू की तरह घुसता है वह मेरे कमरे में और मुझे अपनी मर्दानगी के बोझ तले कुचलकर संतुष्ट सुअर की तरह सो जाता है। वह मां न बन पाने से भी परेशान है और जैसा सामान्यतया होता है खोट उसके पति में है लेकिन बांझ होने का दर्द उसे झेलना पड़ता है। दीपशिखा उसे महाभारत की कहानी सुनाती है और नियोग की बात बताती है लेकिन तवलीन उसके लिए तैयार नहीं होती। दीपशिखा को दिखता है कि उसके आसपास की सारी महिलाएं सांस्कृतिक तौर पर कंडीशंड कर दी गई हैं और अपनी स्थिति से विद्रोह करने की इच्छा तक नहीं है उनमें। महिलाएं पैदा नहीं होतीं बल्कि बना दी जाती हैं का जुमला उसे अपने आसपास साकार रूप में दिखाई पड़ता है।

इसी तरह धर्म की बात आती है तो उसे अपनी अम्मा का 15-20 मिनट तक आरती करना भी नागवार गुजरता है क्योंकि उस समय पूरे घर में पंखा बंद रहता है और महानगर का दमघोंटू माहौल लोगों को सांस नहीं लेने देता। उनसे उसकी लड़ाई तक हो जाती है। देखने में बहुत साधारण बात है यह लेकिन मुद्दा वही है कि हम क्या क्या और कब तक सहने रहें? अयोध्या, रामजन्मभूमि और मस्जिद ढहाने वाला दौर भी इस उपन्यास के कालखंड के अंतर्गत आता है जिससे दीपशिखा का सामना होता है और उसकी दृष्टि में मामूली से मुद्दे को एक धर्म के सम्मान और गर्व से जोड़कर उसे देशव्यापी बना दिया गया। वह जब अपने साथ काम करने वाले कारपेंटर जावेद हुसैन से पूछती है कि उसे बाबरी मस्जिद के बारे में पता है तो उसका जवाब होता है कि उसने तो पहली बार उसके बारे में सुना है। प्रतीक और मिथक के प्रयोग से किस प्रकार राजनीतिक पार्टियां लोगों को वोटों में तब्दील करती जा रही हैं इसकी एक झलक मिलती है।

विडंबना बहुत गहरी है कि समाज विज्ञानी भी इस बात से लगभग एकमत हैं कि सौ डेढ़ सौ लोगों से अधिक का समूह बनाना हो तो हमें किसी न किसी मिथक, प्रतीक या कल्पना का सहारा लेना पड़ता है जो अंततः झूठ होता है जबकि सत्य की लकीर हमारे समाज में सबसे बड़ी दिखाई जाती है। हमारे प्राचीन शास्त्र मिथकों से भरे पड़े हैं और हमारे धर्म भी ऐसे मिथक, ऐसे प्रतीकों का इस्तेमाल करते रहे हैं। एक घटना दीपशिखा के घर की आती है जिसमें सुबह सुबह भगवा रंग में रंगे पैरों की छाप दिखती है और अम्मा उसे लक्ष्मी का आगमन समझने लगती हैं। थोड़ी देर में पता चलता है कि कोई कैप्सूल गिर गया था और वही लोगों के पैर में लग गया था।

पाठकों को महसूस होने लगता है कि बाहर से चकाचौंध में डूबी दिखने वाली महानगरों की ज़िंदगी में सब कुछ आकर्षक और मोहक नहीं है। लाल बहादुर की कहानी कई पृष्ठों में फैली है जो एक ओर मालिक नौकर के संबंधों को परत दर परत खोलती है तो दूसरी ओर गरीबी के चलते मनुष्यता के गर्त में जाने की झलक दिखलाती है। कैसे अपने थोड़े से लालच के चलते सेठ जमनालाल ने बहादुर को उसके परिवार से हमेशा के लिए बिछुड़ा दिया। भयानक तो यह कि उसे

अपने गांव का नाम तक नहीं पता और उसने भी नियति मानकर मालिक के परिवार के लिए अपने को समर्पित कर दिया। अपने बुढ़ापे में जमनालाल जरूर उसके प्रति मुलायम हो जाते हैं लेकिन उनकी यह स्निग्धता उसके प्रति ममता से अधिक अपने किये पर पछतावे के रूप में सामने आती है। उनका यह भाव अधिक रहता है कि उसको रोक लेने का पाप उनके सिर है। वह उसे बचाने की कोशिश करते हैं और अपनी पत्नी के पास कुछ पैसे छोड़कर मर जाते हैं।

बच्चों पर महानगर ही नहीं परिवार का क्या असर होता है इसे भी कई छोटी छोटी घटनाओं से दिखलाया है। खुद दीपशिखा अपने पति से अलग इसीलिए हुई कि उसके बेटे सोनू की संवेदना कुंद होती जा रही थी और उसे अपने पिता में भयानक आदमी दिखने लगा था जो उसकी मां को मार भी सकता था। इसके अलावा तवलीन का बचपन, एक कमरे वाली खोली में मां बाप के सहज काम संबंधों के बीच अकुलाती दुलारी का जीवन जिसके चलते काम वासना की सांकलें उसके मन में भी चटकने लगती हैं। दूसरी ओर मां और बाप दोनों के कामकाजी हो जाने पर बच्चे की स्थिति। खुद सोनू को छोड़कर जाने में दीपशिखा को बहुत पछतावा होता है लेकिन वह सड़क किनारे बच्चे को लिटाकर काम करने वाली मजदूरियों को देखकर संतोष करती है तो कभी यह सोचकर कि परिवार ही बड़ी चीज तो नहीं है। फिर कमरे में बंद बच्ची खिली की घटना से बिडंबना को धार देने की कोशिश की गई है। नाम खिली है लेकिन बच्ची मुरझायी हुई क्योंकि उसके पिता शाम को छः बजे ऑफिस से आते हैं और मां रात के दस बजे तक। उस दिन बिजली कट गई थी तो अंधेरे में थर थर कांपती बच्ची खिड़की से आती रोशनी के सहारे खड़ी थी। दीपशिखा जो स्वयं अपने बच्चे को छोड़कर जाने के लिए अभिशप्त थी उसे खिली पर होने वाली क्रूरता नजर आती है क्योंकि उसके मां बाप के पास कोई और नहीं है जो उसकी देखभाल कर सके। परत दर परत ये संवेदनाएं कहीं से कुरेदती हैं तो कहीं से प्रश्न करने लगती हैं कि आखिर हम भी तो उसी दौड़ में शामिल हैं फिर दूसरों के लिए नसीहत क्यों?

उपन्यास में अस्सी और नब्बे के दशक का दौर वर्णित है जब देश का दरवाजा तकनीक और व्यापार के लिए तेजी से खुलता गया। कंप्यूटर एक सच्चाई बनकर हमारे जीवन में शामिल हुए। नई शताब्दी का आगमन भी कथानक के लगभग मध्य में होता है जब दीपशिखा अपनी डायरी में लिखती है कि नई शताब्दी आ गई है और इन नौ सालों में बहुत कुछ बदल गया है। लब्बोलुआब यह कि जिन्हें वह समस्या मानकर चल रही थी उनमें से अधिकांश समय के साथ, उसके हस्तक्षेप या बिना हस्तक्षेप के सुलझते गए। तवलीन एक बेटे की मां बन गई थी, ताई दुकान पर बैठने लगी थीं, बहादुर काल के गाल में समा चुका था। खुद उसका रिश्ता अब अतीत की बात बन चुका था।

महानगरीय जीवन की पूरी सड़ांध को व्यक्त करने के बीच एक समय आता है जब दीपशिखा को एक आदिवासी पर्यटन के सिलसिले में झारखंड के आदिवासी इलाकों गुमला, लोहरदगा और फिर पलामू जाने का मौका मिलता है। वहां उसने जीवन का एक नया राग सुना। उस राग से सराबोर दीपशिखा वहीं का होकर रह जाती है। उसका लौटकर कलकत्ता आना भी इस तरह ही होता है कि घर चलकर चीजों को करीने से लगाकर फिर वापस आना है। बेटे सोनू को हॉस्टल भेजकर वह सुकून से फिर उन्हीं आदिवासी इलाकों में जाने को तैयार हो जाती है। दीपशिखा की उत्कंठा देखकर पाठक महसूस कर सकता है कि कहने को महानगर में रहने वाले अपने को अधिक विकसित, अधिक चेतन, अधिक सजग कहते हुए जीवन जी रहे हैं लेकिन वहां हर कदम पर मानवता को मुंह चिढ़ाती समस्याएं हैं। स्त्री, बच्चे, बुजुर्ग, गरीब, नौकर, कामवाली बाइयों का जीवन लगातार मनुष्यता के स्तर से नीचे गिरता जा रहा है। इन्हीं के बीच धीरे धीरे



दीपशिखा परिवार और समाज के बंधनों में कसमसाने लगती है।

झारखंड के इलाकों में दीपशिखा सबसे अधिक प्रभावित होती हैं जंगल कुमार से। जाहिर है उनका नाम अपने आप में प्रतीक है। प्रतीक इस बात का कि वे अपना जीवन जंगलों को समर्पित कर चुके हैं। उनके पिछले जीवन के बारे में पता चलता है कि वे आईआईटी जैसी उच्च तकनीकी संस्थान से पढ़ चुकने के बाद गांव में संपोषणीय ऊर्जा स्रोत पर काम करने के लिए आते हैं लेकिन वहां की समस्याओं को देखते हुए उनसे जूझने को तत्पर हो उठते हैं। आदिवासियों के बीच घुलने मिलने के लिए वे उनके जैसा वेश धारण करते हैं और इंजीनियर महेंद्र बन जाते हैं जंगल कुमार। एक प्रश्न उठता है कि जीवन के पूर्वाद्ध में प्रतीकों और मिथकों से चिढ़ने वाली दीपशिखा को झारखंड में बनाए जा रहे नए प्रतीकों और मिथकों से कोई उकताहट क्यों नहीं होती? हालांकि बरसों से चली आ रही परंपराओं और प्रतीकों से उसे वहां भी वैसा ही रोष है। डायन प्रथा हो कि कोरवा जनजाति द्वारा बिना अंगूठे के तीर चलाने का अभ्यास वह उनसे वहां भी तिलमिला उठती है। यही वह दोधारी तलवार है जिस पर चलने के लिए हमें अतीव संतुलन की जरूरत पड़ती है। हर जागरूक इंसान परंपरा के नाम पर प्रचलित मिथकों, प्रथाओं, रूढ़ियों का विरोध करता है लेकिन अवचेतन में ही सही नए प्रतीक धारण करता चलता है। वैदिक धर्म के प्रतिरोध में खड़े जैन और बौद्ध धर्म में क्या कम प्रतीक और मिथक हैं? मूल अवधारणा वही रहती है कि धर्म की प्रतिस्थापना ही क्यों? क्या बुद्ध या महावीर का एकल जीवन अपने में प्रणम्य नहीं है?

दीपशिखा, जंगल कुमार की स्निग्धता, उनका साथ पाकर पुलकित, रोमांचित और अपने को किसी ऊंचे धरातल पर देख रही थी तो वहीं जंगल कुमार को अपने जीवन के पांचवे दशक में एक अन्यतम कोमलता के रूप में दीपशिखा मिली थी। वह उससे सराबोर तो होना चाहते थे, रात के अंधेरे में होते भी थे लेकिन यह नहीं चाहते थे कि बरसों से संजोई हुई उनकी छवि को धक्का लगे। यह छवि कहीं न कहीं से उनके लिए नया बंधन बन गया था। दीपशिखा इसे भी तोड़ना चाहती थी, जिसे जंगल कुमार अपना वास्ता देकर रोके हुए थे।

मधु कांकरिया द्वारा काफी पहले लिखे हुए 'खुले गगन के लाल सितारे' उपन्यास में भगत जी अपना जीवन आदिवासियों के लिए समर्पित कर देते हैं और 'वन बंधु कल्याण निकेतन' संस्था के द्वारा कार्य करते हैं वहीं इसमें इंजीनियर महेंद्र जंगल कुमार बन जाते हैं और 'खुशहाल भारती' के नाम से संस्था चलाते हैं। लेकिन समग्रता के स्तर पर देखें तो यह उपन्यास उससे आगे का उपन्यास है। यह उपन्यास मात्र नक्सली समस्या और आदिवासियों की समस्या पर केंद्रित नहीं है बल्कि समग्रता में पूरी मानवता की चिंता करता है। समस्याएं तो इसलिए पिरोई गई हैं कि वे संवेदनाओं की सीअन को उधेड़ती हैं और मनुष्य के मन को खोलकर रख देती हैं। दीपशिखा और जंगल कुमार दोनों का उपक्रम मात्र आदिवासी कल्याण नहीं है बल्कि वे विस्तृत फलक पर विकास की नई परिभाषा रचने को उद्यत हैं कि सर्वोच्च न्यायालय की उस तीखी टिप्पणी का कुछ प्रतिकार हो सके जिसमें उसने विकासवात्मक आतंकवाद कहकर पूरी सरकार को कटघरे में खड़ा किया था। इसीलिए वे अंततः बिजलीघर हेतु वेंकटेश प्रोजेक्ट का विरोध करने पर उतर आते हैं और षडयंत्रों का शिकार होकर जेल पहुंच जाते हैं। दीपशिखा तो उपन्यास के अंत तक भी कैदी बनी रहती है। उपन्यास में जंगल कुमार भले ही एक दूसरे नायक के तौर पर उपस्थित हैं लेकिन उनकी उपस्थिति का पूरा आयोजन दीपशिखा की दृष्टि से किया गया लगता है। यह मधु के उपन्यासों की खासियत है कि उनके उपन्यासों की महिला पात्र मात्र स्त्री अधिकार, स्त्रीवाद को लेकर नहीं खड़ी होती बल्कि समाज में अपनी उपस्थिति महसूस करवाने की चेष्टा में तत्पर होती हैं। इसी से यह भी निकलकर आता है कि उनके उपन्यासों में पुरुष पात्र बहुत विरोधी और नकारात्मक

होकर नायिका के विरुद्ध नहीं खड़ा होता। इस उपन्यास में भी पूर्वार्द्ध में दीपशिखा को बड़े भाई के ममत्व की शीतल छाया मिलती है तो उत्तरार्द्ध में जंगल कुमार के स्नेहिल स्निग्ध स्पर्श की।

परित्यक्ता होने के बावजूद अपने पति का रोना कहीं नहीं रोया दीपशिखा ने और न ही पति को बहुत बुरा साबित कर अपने को संघर्षशील दिखाने की कोशिश की है। कुछ पंक्तियों में उसके पति की बातें आती हैं क्योंकि उसे बेतरह महसूस होता है कि और भी गम हैं जमाने में इक पति के सिवाय। वह अपने जीवन की सार्थकता, जीवन की अर्थवत्ता की तलाश में लगती है। अपने आसपास के लोगों और वातावरण से रागात्मक संबंध बनाए हुए भी वह अपने एकांत में बिल्कुल अकेली है। जहां उसके पति, उसका पुत्र सोनू, बड़े भाई, जंगल कुमार और स्वयं उसकी अम्मा को भी प्रवेश नहीं मिलता। स्त्री चरित्र के गठन की यह कुछ अलग हटकर बनाई जा रही धारा है जहां स्त्री को अकेले अपने बल पर मुक्ति मिल सकने की संभावना दिखती है। उपन्यास की शुरुआत दीपशिखा की इस आशंका के साथ होती है कि वह हकीकत में किसी दुनिया में है या फिर सब कुछ किसी स्वप्न का हिस्सा है तो वहीं उपन्यास का अंत उसी के वक्तव्य से होता है कि यह सब वक्ती बादल हैं...। छंट जाएंगे। शुरू से लेकर आखिर तक दीपशिखा का आत्मविश्वास कहीं भी नहीं डिगता। अपने आसपास के वातावरण के प्रति जाग्रत दीपशिखा लगातार मजबूत और परिपक्व होती जाती है और अपनी एकमात्र कमजोरी अपने पुत्र को हॉस्टल में छोड़कर जीवन की अर्थवत्ता की तलाश में झारखंड चली जाती है।

अपने शिल्प में उपन्यास रोचक तो है ही पाठकों को एक सहज प्रवाह में बांधे रखता है। दो प्रमुख सूत्रधारों दीपशिखा और जंगल कुमार के माध्यम से कहानी भले आगे बढ़ती है लेकिन यह उन दोनों की कहानी नहीं है। डायरी विधा के प्रयोग से मुख्य कहानी को कई कई अवांतर कहानियों में पिरो देने का काम बड़े जतन और सहजता से किया गया है। जिससे यह दीपशिखा या जंगल कुमार की कहानी नहीं रह जाती बल्कि यह सभी की कहानी है, वे जो बिल्कुल हाशिए पर कर दिए गए हैं और जिनकी सुध लेने वाला कोई नहीं है। ऐसे जन जिनके लिए जीवन मात्र जीविका तक या कभी कभी तो जीवित रहने तक सीमित होने लगता है।

संवेदना से भीगे हुए इस उपन्यास को पढ़ते हुए बरबस याद आ जाता है कि आजकल कथा साहित्य, चाहे वह कहानी हो या उपन्यास, में बाहरी परिदृश्य, बाहरी सूचना, बाहरी समाचारों की आवाजाही बहुतेरी हो गई है। आजकल की बहुत सारी कहानियों में यह उकताहट दिखती है। लगता है रचनाकार अपनी चिंतना की बजाय अखबारी सूचनाओं से कहानी को आगे बढ़ाने की कोशिश कर रहा है।

साहित्य संवेदना की मांग करता है, भाव की मांग करता है। यह उपन्यास शुष्क सूचनाओं की बजाय ऐसे कथाओं से पिरोया गया है जो करुणा के उद्रेक से पूरित हैं। इस उपन्यास से पाठक गण सहज ही अपना तादात्म्य स्थापित कर लेंगे और कई कई चरित्र उन्हें झकझोरने की कोशिश करेंगे और बहुत दिनों तक उनके जेहन में खलबली मचाते रहेंगे। विस्तृत सामाजिक और संवेदनात्मक धरातल तक रचा गया यह उपन्यास अपने स्त्री पात्र दीपशिखा की दृष्टि से भी इस अर्थ में व्यापक है कि वह बिना पुरुष को नीचा दिखाए, बिना उसके कंधे का सहारा लिए उसकी सहगामिनी के रूप में अपनी मुक्ति का रास्ता खुद तलाशती है और उसे विश्वास है कि सामने आने वाली छोटी मोटी समस्याएं वक्ती बादल हैं...जो छंट जाएंगे।

हम यहां थे : मधु कांकरिया, प्रकाशक : किताबघर, नई दिल्ली, मूल्य : 500 रु.

# सभ्यता समीक्षा का गत्यात्मक पाठ

प्रियम अंकित

अंधेरे में एक ऐसी कविता है, जो अपने लिखे जाने के समय से ही, अपने वर्तमान से जूझते हुए भविष्य की चिंता करने वाली कविता है। इसलिए यह एक भविष्योन्मुखी कविता है। अर्थात् समय और यथार्थ के लगातार बदलने के बावजूद अपने अस्तित्व की प्रासंगिकता को, उसकी अनिवार्यता को लगातार सिद्ध करने वाली कविता। क्यों यह कविता पचास बरस बीतने के बाद भी हमारे लिए अनिवार्य बनी हुई है? कई आलोचकों ने इस कविता को समझने और समझाने के गड़बड़ और जटिल प्रयास किये हैं। कई बार उनकी यह आलोचना पाठकों के लिए बोझिल हो गई है। फिर भी यह कविता अपने कठिन शिल्प के बावजूद पाठकों के बीच उत्तरोत्तर लोकप्रिय होती जा रही है। इस कविता की फैंटेसी में एक प्रसंग है, जहां काव्यनायक को पकड़कर एक अंधेरे कमरे ले जाया जाता है और पार्श्व से आवाज आती है—स्क्रीनिंग करो—मि. गुप्ता/क्रॉस एक्जामिन हिम थॉरोली। ‘अंधेरे में’ की कई आलोचनाएं पढ़ने पर ऐसा लगता है कि इस कविता को भी ‘क्रॉस एक्जामिन’ किया जा रहा है, कभी मनोविश्लेषणवादी चश्मे से, कभी अस्तित्ववादी, कभी शुद्ध मार्क्सवाद के चश्मे से, कभी शुद्ध कविता के चश्मे से, तो कभी इन सबके घालमेल से। लगता है जैसे आलोचकों पर दबाव है। दबाव इस कविता को अपने मनमाफिक व्याख्यायित करने का। दबाव का स्वर मानो यह हो कि ‘मि. क्रिटिक—स्क्रीनिंग करो / क्रॉस एक्जामिन द पोएम थॉरोली।’ शायद कोई पश्यत् कैमरा मिल जाए जिसमें यह रिकार्ड हो कि कविता में अस्तित्ववाद कितना है, मनोविश्लेषणवाद और मार्क्सवाद कितना है। लेकिन यह कविता ‘क्रॉस एक्जामिनेशन’ के तमाम आलोचकीय प्रयासों को पराजित करती है। क्यों? इसलिए कि यह कविता हमारे समय और समाज की सबसे तीखी, सारगर्भित और दुर्लभ आलोचना है। दुर्लभ इसलिए कि हमारे समय और समाज की ऐसी सारगर्भित आलोचना और इस आलोचना से उभरने वाली भविष्यमूलक दृष्टि हिंदी कविता

के इतिहास में दुबारा घटित नहीं हुई। कविता 'खोये हुए' की 'खोज' करने वाली कविता है। इस दृष्टि से देखें तो अभी हाल ही में आई अमिताभ राय की किताब सभ्यता की यात्रा : अंधेरे में मुक्तिबोध की इस कालजयी कविता पर लंबा और सार्थक विनिबंध होने का एक श्रमसाध्य प्रयास है। अमिताभ का आत्मविश्वास उनके इस कथन में मुखर होता है—“इस कविता से ही नहीं, मुक्तिबोध की अधिकांश कविताओं से संदर्भ ग्रहण कर आलोचकों ने इन्हें कभी प्रगतिशील, कभी समाजवादी, कभी मार्क्सवादी, कभी अस्तित्ववादी साबित करने की कोशिश की है। इन सभी आलोचकों ने अपने तरीके से कुछ सार्थक कहने की कोशिश की होगी। मैं साहित्य में पाठ को सबसे ज्यादा महत्त्व देता हूँ। इसका कारण यह है कि कविता जो कहती है, प्रस्तावित करती है, उसे संपूर्णता में पकड़ने की आवश्यकता महसूस करता हूँ। कोई चाहे तो कविता को खंडों में विभक्त कर या खंड खंड की दृष्टि में देख सकता है। पूर्ववर्ती आलोचकों ने अपनी विचारधारा और मान्यता के अनुरूप इस कविता के साथ ऐसा ही किया भी है।” यहां लेखक बड़ी विनम्रता से अंधेरे में कविता के पूर्ववर्ती आलोचकीय पाठों की सीमा की तरफ इशारा करते हुए इस कविता के समग्र पाठ के एक नये और सार्थक आलोचनात्मक अध्ययन की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

हमारी परंपरा में अंधेरे को अज्ञान का, अत्याचार का और अनाचार का प्रतीक माना गया है; जबकि उजाले को ज्ञान का, न्याय का और समरसता का। परंपरा में अंधेरे से उबरने के लिए किसी मसीहा या आप्त पुरुष का आह्वान किया जाता रहा है। ऐसे मसीहा या आप्तपुरुष का, जो अपने साथ ज्ञान का प्रकाश लाता है और अज्ञान एवं अत्याचार के अंधेरे को दूर भगाता है। 'अंधेरे में' की फैंटेसी से रूबरू होते हुए यह प्रश्न अक्सर सामने आता है क्या इस कविता में भी अंधेरे और उजाले का वैसा ही द्वंद है, जैसा परंपरा से हमें मिला है? क्या यह कविता भी किसी मसीहा या आप्तपुरुष का आह्वान करती है। निस्संदेह इस कविता में एक पुरुष है—'रक्तालोक स्नात पुरुष'। और 'परम अभिव्यक्ति अनिवार आत्मसंभवा' है। ये दोनों अंधेरे के खिलाफ संघर्षरत जनता के साथ हैं, उसके भीतर हैं, उसका अभिन्न अंग हैं। इस जनता से स्वतंत्र उनका कोई अस्तित्व नहीं है। वे जनता की अपनी निधि हैं। मुक्तिबोध इस कविता में परंपरा का सचेत अतिक्रमण करते हैं। उनके यहां भी अंधेरे और उजाले का द्वंद है, लेकिन अंधेरे और उजाले का जो 'ट्रीटमेंट' है, वह परंपरा से हटकर है। यहां अमिताभ का यह प्रेक्षण ध्यान देने योग्य है कि 'इस गम्भीर अंधकार की एक समस्या यह भी है कि इसमें पक्ष और विपक्ष दोनों ही अंतर्निहित हैं, अंतर्भुक्त हैं। इसलिए किसी एक की पहचान भी उतनी स्पष्ट नहीं है। अंधकार की सघनता में मानवता की पक्षधर और उसकी विरोधी शक्तियाँ छिप गई हैं।' निस्संदेह मुक्तिबोध ने इस अंधेरे की व्यापकता और गहराई का जो नया ट्रीटमेंट इस कविता में किया है, लेखक ने उसे देखने समझने की सार्थक कोशिश की है।

काव्यनायक अंधेरे में सत्ता को उसके नग्न रूप में देखता है—मृत्यु दल की शोभायात्रा के रूप में। कर्नल, ब्रिगेडियर, जनरल, मार्शल आदि के साथ साथ इसमें ऐसे चेहरे शामिल हैं, जिन्हें देखकर वह कहता है—

*भई वाह!*

*उनमें कई प्रकांड आलोचक, विचारक जगमगाते कविगण*

*मंत्री भी, उद्योगपति और विद्वान*

*यहां तक कि शहर का हत्यारा कुख्यात*

*डोमाजी उस्ताद*

बनता है बलबन  
 हाय, हाय!!  
 यहां यह दीखते हैं भूत पिशाच काय।  
 भीतर का राक्षसी स्वार्थ अब  
 साफ उभर आया है,  
 छिपे हुए उद्देश्य  
 यहां निखर आए हैं,  
 यह शोभायात्रा है किसी मृत दल की।

'अंधेरे में' की उपरोक्त पंक्तियां पूरी कविता के टोन और टेनर को निर्धारित करने वाली महत्त्वपूर्ण पंक्तियां हैं। अमिताभ ने अपनी पुस्तक में जिस तरह से इन पंक्तियों के संदर्भ को पकड़ने का प्रयास किया है, उसमें शब्द संरचना, शब्द संयोजन, शब्द प्रवाह, विस्मयबोधक चिह्नों का प्रयोग इत्यादि के जरिये पंक्तियों के बीच की खामोशी में छिपे चिह्नों को उजागर करना उल्लेखीय है। व्यावहारिक और पाठ केंद्रित आलोचना की सबसे बड़ी खूबी यह होती है कि वह एहसास दिलाती है कि पंक्तियों के मार्फत कविता जितना कहती है, उससे कम वह पंक्तियों के बीच अंतराल के माध्यम से नहीं कहती। अमिताभ राय ने इस पुस्तक में 'अंधेरे में' का अध्ययन इसी दृष्टि से किया है। कविता की संरचना का, उसके भाषिक विन्यास का संवेदनशील अध्ययन करते हुए भी पुस्तक के लेखक ने अपने को बोझिल भाषावैज्ञानिक वाग्जाल से पूर्णतया मुक्त रखते हुए कविता के मर्म को समझने का प्रयास किया है। संरचनागत भाषिक जटिलताओं को खोलने का प्रयास किया गया है, न कि उनमें उलझने का। कविता की संरचना में गुंथे हुए उसके 'कटेंट' और उसकी सामाजिकता लेखक की निगाह में हमेशा बनी रहती है। वह कहता है कि "मुक्तिबोध नज्मी तो नहीं थे, परंतु अपने समाज को, उसकी प्रवृत्ति को बेहतर तरीके से समझते थे। यथार्थ की पकड़ भी बेहतर थी और इस बात की समझ भी थी कि कौन सी प्रवृत्ति समाज में अभी वर्द्धमानशील है। भले ही ये वर्द्धमान प्रवृत्तियां नकारात्मक हों, अमानवीयता की हद तक नकारात्मक। चूंकि तब ये इतनी स्पष्ट नहीं थीं, अतः इन्हें तभी पहचान पाना भी कोई सामान्य बोध न था। मुक्तिबोध के समय में भी कुछ दोमा जी उस्ताद निश्चित रूप से बलवान रहे होंगे। यह मुक्तिबोध की अतिरिक्त संवेदना ही है कि उन्हें, प्रत्यक्ष होने के पूर्व ही भीतर के राक्षसी स्वार्थ एवं छिपे हुए उद्देश्य साफ दिखाई देने लगते हैं। इस संवेदनशीलता और स्थिति के भीतरी यथार्थ को देख समझ पाने के कारण ही 'विचारों की फिरकी सिर में घूमती है'।"

'अंधेरे में' की फैंटेसी का अंत काव्य नायक के इस संकल्प के साथ होता है—

खोजता हूं पठार...पहाड़...समुंदर  
 जहां मिल सके मुझे  
 मेरी वह खोयी हुई  
 परम अभिव्यक्ति अनिवार  
 आत्म संभवा।

यह 'परम अभिव्यक्ति', जिसे 'अनिवार' भी कहा गया है, उसका एक आयाम यह है कि वह व्यक्ति में सामाजिक प्रतिबद्धता को और कला में प्रतिबद्ध कलाकार को प्रकाशित करने वाली चेतना है। यह राजनीतिक रूप से सजग चेतना है। यह 'आत्मग्रस्त' व्यक्ति की आत्मा को उसके 'अंतराल विवर के तम' से बाहर लाकर 'विश्वमूर्ति' में ढालने वाली चेतना है। उपरोक्त पंक्तियों का समापन जिस पूर्णविराम से होता है उस पर अमिताभ की यह टिप्पणी ध्यान देने योग्य है कि

“यहां का पूर्णविराम संकल्प के उत्कर्ष को प्रदर्शित करता है। यह समाप्ति का सूचक नहीं है। अगर किसी भाव, तथ्य की समाप्ति है, तो संशय, दुविधा की।” बात को आगे बढ़ाते हुए लेखक कहता है कि “मुक्तिबोध परिवर्तन चाहते थे, परंतु परिवर्तन तो समाज में ही होगा। इसीलिए परिवर्तन के संकल्प के साथ कविता समाप्त होती है। यहां आकर साहित्य का भी स्वरूपांतरण आवश्यक हो जाता है। उसे समाज का सहधर्मी हो जाना चाहिए। तभी यह स्वप्न पूरा होगा।”

‘अंधेरे में’ कविता के काव्यनायक के मानसिक द्वंद्व, उसके व्यक्तित्वांतरण, जनसंघर्ष की चेतना और कला के दायित्व के प्रति सजगता के भाव से जो अनुभव उपजता है, उसने हमारी भाषा में एक पद को बेहद लोकप्रिय बना दिया है। वह पद है ‘मुक्तिबोधीय चेतना’। इस पद को बड़े या ख्यातिप्राप्त आलोचकों के बार बार प्रयोग द्वारा नहीं, बल्कि पाठकों के लगाव द्वारा स्थापना मिली है। यह मुक्तिबोध के काव्य की व्यापक ‘अपील’ का सबूत है। ‘अंधेरे में’ को पढ़ने के बाद मुक्तिबोध के व्यक्तित्व से अभिन्न रूप में जुड़े यह शब्द याद आते हैं कि “पार्टनर, तुम्हारी पॉलिटिक्स क्या है’ या फिर ‘तय करो किस ओर हो तुम!’

‘अंधेरे में’ पर लिखे गए इस लंबे विनिबंध की शुरुआत में लेखक ने कविता को उसके कुछ ‘चमकदार अंशों’ के मार्फत व्याख्यायित करने के आलोचकीय अभ्यासों की पुरजोर मुखालफत की है। रचना को एक संपूर्ण पाठ मानते हुए, उसकी पूरी संरचना को दृष्टिगत करते हुए परिश्रमपूर्वक पूरी कविता को व्याख्यायित करने की कोशिश में उसने अपने इस दावे का पूरा मान रखा है।

**सभ्यता की यात्रा : अमिताभ राय, प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, मूल्य : 250 रु.**

# दुख को बयान करने का जोखिम

प्रीति चौधरी

जिस तरह के भी युद्ध हों, चाहे वे दो राज्यों के मध्य हों या खुद राज्य के भीतर होने वाले नृजातीय व जातीय संघर्ष के रूप में हों या सांप्रदायिक दंगों के रूप में—बलात्कार व यौन हिंसा को संघर्ष में शामिल पक्षों द्वारा बकायदे एक सुनियोजित, सुविचारित व व्यवस्थित शस्त्र के रूप में इस्तेमाल किया जाता रहा है। यह अलग मुद्दा है कि इसका संज्ञान लेने से राज्य, राष्ट्र लंबे समय तक इंकार करते रहे हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान रूसी सेनाओं द्वारा जर्मन महिलाओं पर किए गए अत्याचार और प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान जापानी सेनाओं द्वारा दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों पर ढाहे गए अत्याचारों की कहानियां तो थीं, किंतु राजनीति के बड़े बड़े कर्ताओं के मध्य स्त्रियों के पक्ष की सुनवायी अनुपस्थित थी? कहा जा सकता है कि पहली बार श्वेत स्त्रियों की देह पर इतने अत्याचार हुए कि पश्चिमी देशों और मीडिया को मजबूरी में उनका संज्ञान लेना पड़ा। कई आलोचकों का मानना है कि यदि बोस्नियाई औरतों के बलात्कार का केंद्र योरोप ना होता तो ये मामला चर्चा का विषय बनता ही नहीं। अफ्रीकी व एशियाई औरतें तो अपनी देह पर हिंसा कब से झेल रही थी, किंतु पश्चिमी मीडिया ने इनका संज्ञान कभी प्रभावशाली ढंग से नहीं लिया। सोवियत संघ के पतन के साथ ही पूर्वी यूरोपीय देशों में आए विखंडन विप्लव ने संघीय गणराज्यों की बड़ी पहचानों का चोला उतार फेंका और अनेक राष्ट्रीय अस्मिताएं उठ खड़ी हुईं और इसका खामियाजा औरतों को सबसे ज्यादा भुगतना पड़ा।

युगोस्लाविया का विखंडन नस्लीय हिंसा के नये दौर की शुरुआत का कारण बना। बोस्निया हर्जैगोविना और क्रोएशिया में बलात्कार को युद्ध के शस्त्र के रूप में अभूतपूर्व ढंग से इस्तेमाल किया गया, जिसमें बलात गर्भधारण करवाना और शत्रु से उपजी संतानों को जन्म देने के लिए महिलाओं को बाध्य किया गया। अपहृत व कैद की गई औरतों का जिस सुविचारित ढंग से

इस्तेमाल सर्बिया द्वारा किया गया उसने 'औरत की देह' को युद्ध क्षेत्र में तब्दील कर देने की मानसिकता व वैचारिकी के प्रति पूरी दुनिया की स्त्रियों, विशेषकर नारीवादियों में खलबली मचा दी। सरकारी रिपोर्ट व विश्लेषण, भले ही वो संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसी संस्थाओं द्वारा ही क्यों न किए गए हों, कई बार खानापूरी तक सीमित हो जाते हैं। गरिमा श्रीवास्तव की पुस्तक देह ही देश इस दिशा में एक विश्वसनीय व प्रामाणिक दस्तावेज की तरह संदर्भित की जा सकती है। यहां दर्द की दास्तानें, आंकड़ों से परे पूरे मानवीय स्पर्श के साथ पन्नों पर उतारी गई हैं। वैसे भी डायरी लिखना अपने आत्मन से बतियाना है। गरिमा ने भी अपनी डायरी में खुद से संवाद किया है और अपने को ऐसी स्थिति में पहुंचा दिया है जहां उनके विषय की बलात्कार पीड़ित स्त्रियां उनके चेतन और अवचेतन में अपने जीवन की समूची त्रासदी के साथ हर समय मौजूद रहने लगी हैं। अपने दो वर्षों के क्रोएशिया प्रवास में गरिमा श्रीवास्तव सीमोन को अपने अंदर गहरे उतार रही हैं। सीमोन को समझने का अर्थ ही है, स्त्रीवादी नजरिए से दुनिया, समय, समाज व इतिहास को समझने की एक विलक्षण ताकत हासिल कर लेना; जिसे लंबे समय तक मुख्यधारा के दृष्टिकोणों ने समझा ही नहीं। स्त्रीवादी नजरिये ने औरतों को अपनी स्थिति को समझने का औजार मुहैया कराया है। सीमोन के थमाये नुस्खे से गरिमा भी यही करती हैं। एक तो स्त्री की पराधीनता को समझ जाना दूसरे जो दुनिया गरिमा के आसपास मौजूद है उसके यथार्थ की तहों तक पहुंचने की जिद्द पालना गरिमा श्रीवास्तव को एक ऐसी दुनिया में प्रवेश कराते हैं जहां आधुनिक राष्ट्र राज्यों के राष्ट्रीय गौरव व अस्मिता के नीचे औरत की देह बिछी हुई है। नृजातीय व नस्लीय गौरव की अश्लीलता ये कि उनकी फतह स्त्री की योनि से होकर गुजरती है। स्त्री का योनिधारक होना ही उसकी देह को दंड का पात्र बना देता है।

आखिर सारे युद्ध, शत्रुपक्ष की स्त्रियों के लिए सामूहिक बलात्कार का सबब क्यों लाते हैं? स्त्रीवादी लेखिका व 'सेक्सुअल पॉलिटिक्स' पुस्तक की लेखिका केट मिलेट इस प्रश्न से जूझते हुए लिखती हैं कि 'Rape is generally the result of male sadism and hatred of women' (बलात्कार सामान्यतः पुरुषों के परपीड़क सुख और स्त्रियों के प्रति उनकी नफरत का परिणाम है।) गरिमा अपनी पुस्तक में एक जगह लिखती हैं : 'स्त्री होने से ही तो इन्हें मनुष्य होने की गरिमा नहीं मिल पा रही। देह ही तो शोषण की सबसे बड़ी साइट है।' (पृ. 167)

गरिमा श्रीवास्तव ने 'देह ही देश' लिखकर उस दुख को बयान करने का जोखिम उठाया है जिसे आमतौर पर कोई सुनना नहीं चाहता। गरिमा ने अपनी पुस्तक में कैथी करुथ को उद्धृत किया है : "विध्वंस से सिर्फ मानसिक आघात ही नहीं लगते बल्कि अस्तित्व की समस्या भी इसमें पैदा होती है।" हर कदम पर अपने जीने की वजह ढूंढनी पड़ती है।

गरिमा का विद्यार्थी बोजैक ऐसे ही युद्धग्रस्त क्षेत्र का बाशिंदा रहा है। बोजैक बोस्नियाई विद्यार्थी है जिसकी उम्र पचास से ज्यादा है। बोजैक के सामने ही उसकी आठ वर्षीया बेटी और पत्नी का बलात्कार होता है। 'बच्ची तीन दिनों तक रक्त में डूबी रही, सैनिक उससे खेलते रहे। इस बीच कब उसने अंतिम सांस ली, पता नहीं।' कुछ दिनों बाद अवसाद ग्रसित पत्नी भी चल बसी और बोजैक जीता रहा, इन दोनों को याद करता हुआ।

गरिमा आगे लिखती हैं, "शांति स्थापित होने के बाद भी जिन्होंने युद्ध को अपनी देहों पर रेंगता, चलता, बहता महसूस किया, एक बार नहीं अनेक बार जिनकी कोखों ने क्रूर सैनिकों के घृणित वीर्य को जबरन वहन किया, वे हमेशा के लिए हृदय और मानसिक रोगों की शिकार हो गईं।"

शीतयुद्ध का अंत होते ही सोवियत संघ और पूरे पूर्वी योरोप में विखंडन की लहर चल पड़ी। मार्शल टीटो का युगोस्लाविया भी चरमरा उठा और वहां गृहयुद्ध शुरू हो गया। बोस्निया पर



सर्वियाई शासक स्लाबोदान मिलोशिविक की वैचारिकी और नेतृत्व के तहत भयंकर अत्याचार की प्रक्रिया आरंभ हो गई। यह कई वर्षों तक चलता रहा। युद्ध की समाप्ति के बाद बोस्नियाई औरतों पर होने वाले अत्याचारों ने दुनिया का ध्यान अपनी ओर खींचा। एक मोटे अनुमान के अनुसार बोस्निया में युद्ध के दौरान लगभग पचास हजार औरतें और लड़कियां बलात्कार का शिकार हुईं और पहली बार यौन दासता और बलात्कार को मानवता के प्रति अपराध के रूप में दर्ज किया गया, जिसकी गूज बीजिंग में हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के महिला सम्मेलन में भी उठी। बोस्निया और रवांडा में हुई यौन हिंसा के मद्देनजर ही संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद ने संकल्प 1325 पारित किया जो स्त्रियों की सुरक्षा और शांति से संबंधित था। सुरक्षा परिषद ने संकल्प 1325 के माध्यम से युद्धग्रस्त व संघर्षरत क्षेत्रों में संघर्ष के बाद शांति निर्माण की प्रक्रिया में प्रत्येक स्तर पर महिलाओं की भूमिका को सुनिश्चित किया है। शांति बहाली की समूची प्रक्रिया में 'जेंडर' को यदि वास्तव में ध्यान में रखा जाय तो महिलाओं के ऊपर घटित हिंसा का सामना करने और राहत प्रदान करने में उपयुक्त संवेदनशीलता बरती जा सकती है। सुरक्षा परिषद के संकल्प 1325 ने जिस लैंगिक हिंसा की बात की है, गरिमा श्रीवास्तव की पुस्तक 'देह ही देश' उस हिंसा को रेशे दर रेशे महसूस करती है। जब पुस्तक को पढ़ते समय इतना अवसाद होता है तो अंदाजा लगाया जा सकता है, इन जिंदगियों की त्रासदी को लिखने में लेखिका को खुद से कितना जूझना पड़ा होगा। गरिमा कई जगह इसे दर्ज भी करती हैं। गरिमा, बलात्कार पीड़िताओं में हुई मुलाकातों को अपने साथ लिए चलती हैं। कहानी दर कहानी सुनती हैं और पितृसत्तात्मक संरचना में औरत के शोषण की सैद्धांतिकी को व्यवहार से जोड़कर सबके लिए एक ठोस समझ और नजरिया विकसित करने की जिम्मेदारी उठाती हैं। गरिमा श्रीवास्तव पुस्तक की भूमिका में साफ कर देती हैं : "मेरे लिए सिर्फ साक्षी भर हो पाना संभव नहीं हो पाया, निर्विकार तटस्थता कहीं थी ही नहीं, लगा स्त्री होने के नाते अपने आपको नये सिरे से पहचान रही हूँ।" सच तो ये है कि इस पुस्तक का पाठ और इसका अर्थ भी स्त्री पुरुष पाठकों के लिए अलग अलग हो सकता है। हालांकि इराक और अफगानिस्तान के युद्धग्रस्त क्षेत्रों में पुरुषों के साथ होने वाली यौन हिंसा की घटना भी सामने आई है पर स्त्रियों के साथ होने वाली हिंसा के मायने अलग और गहरे संबंध वाले हैं। "स्त्रियों की देह पर नियंत्रण करना युद्ध नीति का ही एक हिस्सा होता है, जिससे तीन उद्देश्य सधते हैं। पहला आम नागरिकों में भय का संचार, दूसरा नागरिकों का विस्थापन और तीसरा सैनिकों को बलात्कार की छूट देकर पुरस्कृत करना।" इन सबके पीछे दूसरे पक्ष की औरतों का बलात्कार करना प्रतिपक्ष के अंदर सामूहिक शर्म और पराजित हो जाने— 'अपनी औरतों' को न बचा पाने— का भाव पैदा करना है। जाहिर है स्त्री विमर्श यौन हिंसा को जेंडर, सेक्सुएलिटी और सामूहिक अस्मिता के निर्माण को अपने नजरिए से समझ कुछ निष्कर्षों का सामान्यीकरण कर सकता है।

गरिमा को कुछ ऐसी औरतें भी मिलीं जो देह के परे थीं, भयंकर उदासी भरे पन्नों के बीच ऐसी औरतें मुस्कराने की ताकत बख्शाती हैं। ऐसी औरत से आप भी मिलिए। एक है याद्रांका जो गरिमा श्रीवास्तव को ट्रेन में मिली थी। गरिमा की तरह वो भी क्रोएशिया के शहर जांग्रेब में रहती है। गरिमा के शब्दों में "जींस और जैकेट पहने हुए अड़तालीस के पेटे को छूती सीधी सतर तनी गर्दन वाली याद्रांका से मिलने पर यह अहसास ही नहीं होता कि वह रेप विक्टिम है।" गरिमा, याद्रांका की आपबीती सुनने उसके घर जाती हैं और याद्रांका ने पहले ही दिन चार घंटे तक चले बलात्कार के बारे में बताया और यह भी बताया कि औरतों के साथ ऐसा घट रहा था, पर वे उस पर बात नहीं करती थीं। ऐसी बहुत सारी औरतों ने अपने वजूद से ही घृणा कर ली थी, पर याद्रांका का कहना है 'रेप के बाद मैंने आत्मसम्मान गंवाया नहीं है, क्योंकि मैं तो उनके लिए

वस्तु मात्र थी, व्यक्ति नहीं, व्यक्ति के रूप में तो मेरा आत्मसम्मान अक्षुण्ण है। रोटी के टुकड़े के लिए यदि मैंने शरीर दिया होता तब मेरा सम्मान नष्ट होता। स्वाभिमान है बलात्कारी की आंखों में सीधे देखना ताकि वह जाने कि वह जो कर रहा है मुझे मालूम है। जोर जबरदस्ती से शरीर को हानि पहुंचायी जा सकती है, आत्मसम्मान को नहीं।” इस स्त्री की चेतना अप्रतिम है, रोटी के टुकड़े के लिए शरीर नहीं दिया। सारी स्त्रियां याद्रांका की तरह मजबूत नहीं।

युद्ध की यौन हिंसा के अलावा गरिमा श्रीवास्तव ने दक्षिण पूर्वी यूरोप के देह बाजार और इसके लिए की गई महिला ट्रेफिकिंग पर भी नजर डाली है। देह व्यापार की ऐसी ही एक जगह है ‘ऐरिजोना मार्केट’ जहां से सेक्स ट्रेफिकिंग होती है। क्रोएशिया पश्चिमी यूरोप के लिए प्रमुख द्वार का काम करता है, जहां स्लोवेनिया, बोस्निया, सर्बिया से औरतों को आसानी से लाया जाता है। युद्ध के दौरान अंतर्राष्ट्रीय सैन्य बलों की उपस्थिति बड़े पैमाने पर इस इलाके में रही जो सेक्सवर्क के फलने फूलने के लिए अनुकूल परिस्थितियां मुहैया करवाने में मददगार रहा। कई बार यूएन शांति सैनिक भी यौन हिंसा में लिप्त पाए गए जिन पर चर्चा नहीं हुई। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए अब शांति मिशनों के हर स्तर पर, चाहे वो शांति स्थापना हो या पुनर्संरचना का कार्य, महिलाओं की समुचित भागीदारी को सुनिश्चित करने की बात हो रही है।

गरिमा श्रीवास्तव का शोध कई पूर्वधारणाओं को तोड़ता है। आमतौर पर भ्रष्टाचार को तीसरी दुनिया और एशियाई समाज से जोड़कर देखा जाता है। किंतु पूर्वी योरोप में सेक्स ट्रेफिकिंग जैसे मामलों में शामिल भ्रष्टाचार आंखें खोल देने वाला है। गरिमा श्रीवास्तव की बोलकोवेच से हुई मुलाकात नये तथ्यों से अवगत कराती है। बोलकोवेच, कॉन्फ्लिक्ट जोन में काम करती हैं, और सेक्स ट्रेफिकिंग के पूरे संजाल को समझ चुकी हैं। उन्होंने अपने कंप्यूटर पर दर्ज किया है : “ज्यों ही मैंने सेक्स ट्रेफिकर्स के बहुत सारे साक्ष्य इकट्ठे करने शुरू कर दिए, मेरे सामने कई बातें खुलती गईं। यूएन के बहुत सारे अधिकारी जो अलग अलग देशों में तैनात थे उनमें से अनेक सेक्स ट्रेफिकिंग के व्यापार से संबद्ध पाए गए। उच्चाधिकारियों को इसकी भनक लगते ही मुझे नौकरी से निकाल दिया गया।” बोलकोवेच इस बात का भी जिक्र करती हैं कि वेश्यालयों के मालिकों द्वारा संयुक्त राष्ट्र के पीस कीपिंग फोर्सेज के अधिकारियों को महंगे उपहार भी दिए गए, जिनमें नाबालिग लड़कियां भी शामिल थीं। कुल मिलाकर शांति मिशन औरतों के लिए राहत का आधार बनने की बजाय, उनके दोहरे उत्पीड़न का कारण बन गया। मीडिया में मुद्दा बनने और कुछ स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा इस पर बहस करने के बाद जांच शुरू होने पर कई लड़कियों ने दोषी अफसरों की पहचान भी की, लेकिन उनके खिलाफ अनुशानात्मक कार्रवाई तो दूर उनके कृत्यों के पक्ष में तर्क भी दिए गए। कहा गया कि सैनिक और अधिकारी शांति स्थापना के लिए अपना घर बार, देश छोड़कर आए हैं, यदि वे अतृप्त रहेंगे तो अपना काम सुचारु रूप से कैसे कर सकेंगे।

गरिमा श्रीवास्तव सेक्स ट्रेफिकिंग के मुद्दे की तह तक पहुंचने के लिए सारे उपलब्ध तथ्य खंगालती हैं। वो लिखती हैं कि “अखबारों और मीडिया ने इस मुद्दे को बहुत गंभीरता से लिया क्योंकि दोषी सैनिकों पर हल्के आरोप लगाकर जांच में उन्हें बरी कर दिया गया था।”

गरिमा दर्ज करती हैं कि “1 अगस्त, 2002 को यूएन की एक विशेष टीम बनाई गई, जिसमें बोस्नियाई पुलिस भी शामिल थी। रेस्टोरेंट और बारों पर 600 छापों का लंबा सिलसिला चला, 182 स्त्रियां जो मुख्य रूप से रोमानिया, यूक्रेन और माल्डोवा से लायी गई थीं, उन्हें छुड़ाया गया।” बोलकोवेच का मानना है कि अकेले बोस्निया में 6 से 10 हजार विदेशी युवतियां हैं जो जबरन सेक्सवर्क में डाल दी गई हैं। तमाम स्त्रियों को पश्चिमी यूरोप में काम दिलवाने का झांसा देकर उनके पासपोर्ट झटक लिए जाते और 500 से 1500 डॉलर के बदले इन्हें दलालों को बेच दिया जाता है। कई

जगहों पर तो औरतें और बच्चियां पशुओं की तरह नीलाम की जाती हैं। नीलामी के लिए लायी गई औरतों को अकेले और समूह दोनों में खड़ा कर दिया जाता है। ऐसी जगहों पर कुंवारी और सुंदर औरतें महंगे दामों पर बेची जाती हैं। बच्चे वाली स्त्रियों और वृद्धाओं के दाम बहुत कम लगते हैं, उन्हें आया आदि के काम के लिए ले जाया जाता है। स्त्रियों के कुंवारेपन की जांच के लिए बड़े ही आदिम और अमानवीय तरीके अपनाये जाते हैं। धातु की सड़सी और उंगली से अंदरूनी अंगों की परख का जिक्र रोंगटे खड़े कर देता है। 'गर्भवती औरतों को ट्रैफिकर्स मुसीबत समझते हैं। अक्सर नीलामी के पहले माल खाली करवा लिया जाता है।' ये ऐसे दृश्य हैं लगता है आप मध्यकालीन बर्बरता से रूबरू हो रहे हैं जहां गुलामों की खुलेआम खरीद फरोख्त हो रही है। यह बीसवीं सदी का यूरोप है जो औरतों के लिए मध्यकालीन ढंग में बर्बर हो गया है। पूरी किताब में, पुनर्वास कार्यक्रम से जुड़ी बोल्कोवेच से गरिमा का संपर्क मानीखेज है। बोल्कोवेच द्वारा दी गई विश्वसनीय सी लगती सूचनाएं और अनुभव अमरीका द्वारा घोषित प्रजातंत्र और मानवाधिकारों का स्वयंभू लंबरदार होने का भरम भी बखूबी तोड़ते हैं। ऐरिजोना मार्केट जैसे देह व्यापार के अड्डे को अमरीका ने मुक्त बाजार जोन के रूप में विकसित किया है। इस बाजार के प्रमुख ग्राहक यूएन और नाटो के सैनिक थे। बाल्कन राज्यों में शांति स्थापना के लिए अमरीकी मध्यस्थता में संपन्न 'डेटॉन समझौता' के तहत नाटो सैनिकों को 'कुछ भी' करने की छूट दी गई, जो जाहिर है शांति स्थापित करने के प्रयास के तहत ही देखा जाना था। नाटो सैनिकों को अनुशासनात्मक कार्यवाही से मिली कूटनीतिक सुरक्षा ने बोस्निया को एक उपनिवेश बनाकर रख दिया।

दुश्का, लिलियाना, इमेजोने, एंजिलीना, नीसा जैसों के साथ संवाद करना आसान नहीं रहा होगा। गरिमा जब पेरिस और रोम नहीं घूमना चाहतीं, तीन माह के अवकाश में भी भारत नहीं लौटना चाहतीं, स्पष्ट है वे किसी वृहत्तर कार्य में जुटी हैं। वे दर्दों को कुरेद रही हैं उन्हें अपनी स्याही से भिगो रहीं और डायरी में पसार रहीं। जबकि इसमें खतरा है, इतने स्याह अतीत को याद करना ही कितनी पीड़िताएं चाहती होंगी। गरिमा को कई तरह की बलात्कार पीड़िताएं मिलती हैं। कुछ के लिए अतीत ही वर्तमान बन गया है, कुछ के लिए वर्तमान अतीत। पर भूला कोई नहीं, ऐतिहासिक चोटें भूली भी नहीं जातीं। विजेता भले भूल जाएं, पीड़ाएं उत्पीड़ितों को याद रहती हैं। बोस्निया में हुए महिला उत्पीड़न पर अमरीकन स्त्रीवादी रवैये की भी गरिमा आलोचना करती हैं। बकौल गरिमा एनलोये, ओटो, वांस ने तो युद्ध के दौरान हुई यौन हिंसा के दौरान बलात्कृत स्त्रियों को इन हादसों को विस्मृत कर सामान्य जीवन जीने की दिशा में प्रयास करने को कहा और यह माना कि युद्धकालीन अधिसंख्य समागम ऐच्छिक थे। अक्सर जांचों और विश्लेषणों के नतीजे बलात्कार के संदर्भ में ऐसे ही होते हैं। शुक्र है कुछ स्त्रियों ने सच कहने का साहस किया और अपनी आपबीती सुनायी। गरिमा 2010 में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की फैलोशिप पर क्रोएशिया जाती हैं, जाग्रेब में हिंदी विभाग स्थापित करने। बर्फीले और उदास, बारिश वाले मौसमों में एकांत भोगने की विवशता को वे जाया नहीं होने देतीं। 'देह ही देश' में हर जगह खून के छीटे और मांस के लोथड़े जैसी औरतें हैं, उदासी भरा जाग्रेब का मौसम है पर इन सबके बीच लेखिका की अपनी जिजीविषा है। पुस्तक संघर्षरत क्षेत्रों की समस्याओं को समझने के लिए अकादमिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।

देह ही देश : गरिमा श्रीवास्तव, प्रकाशक : राजपाल प्रकाशन, नई दिल्ली, मूल्य : 285 रु.

## इस अंक के लेखकों के मोबाइल नंबर

विश्वनाथ त्रिपाठी	:	9871479790
गरिमा श्रीवास्तव	:	9968971716
मुकुल शर्मा	:	9810801919
राजकुमार	:	9415201281
प्रचंड प्रवीर	:	9810325009
योगेंद्र शेखर प्रताप	:	9631952649
अशोक महेश्वरी	:	9810289836
नवल शुक्ल	:	9425636550
श्रीप्रकाश शुक्ल	:	9415890513
जसिंता केरकट्टा	:	7250960618
संध्या नवोदिता	:	9839721868
अच्युतानंद मिश्र	:	9213166256
राजू शर्मा	:	9871054093
ममता कालिया	:	9212741322
अरुण कमल	:	9931443866
प्रियदर्शन	:	9811901398
संजय कुमार	:	9451571906
सत्यम कुमार सिंह	:	9823297052
अमिय बिंदु	:	9311841337
प्रियम अंकित	:	9359976161
प्रीति चौधरी	:	7607680694